CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

काशी-मार्तण्ड

जगद्गुरु श्री रामानंदाचार्य जी का जीवनामृत

अमिता शाह

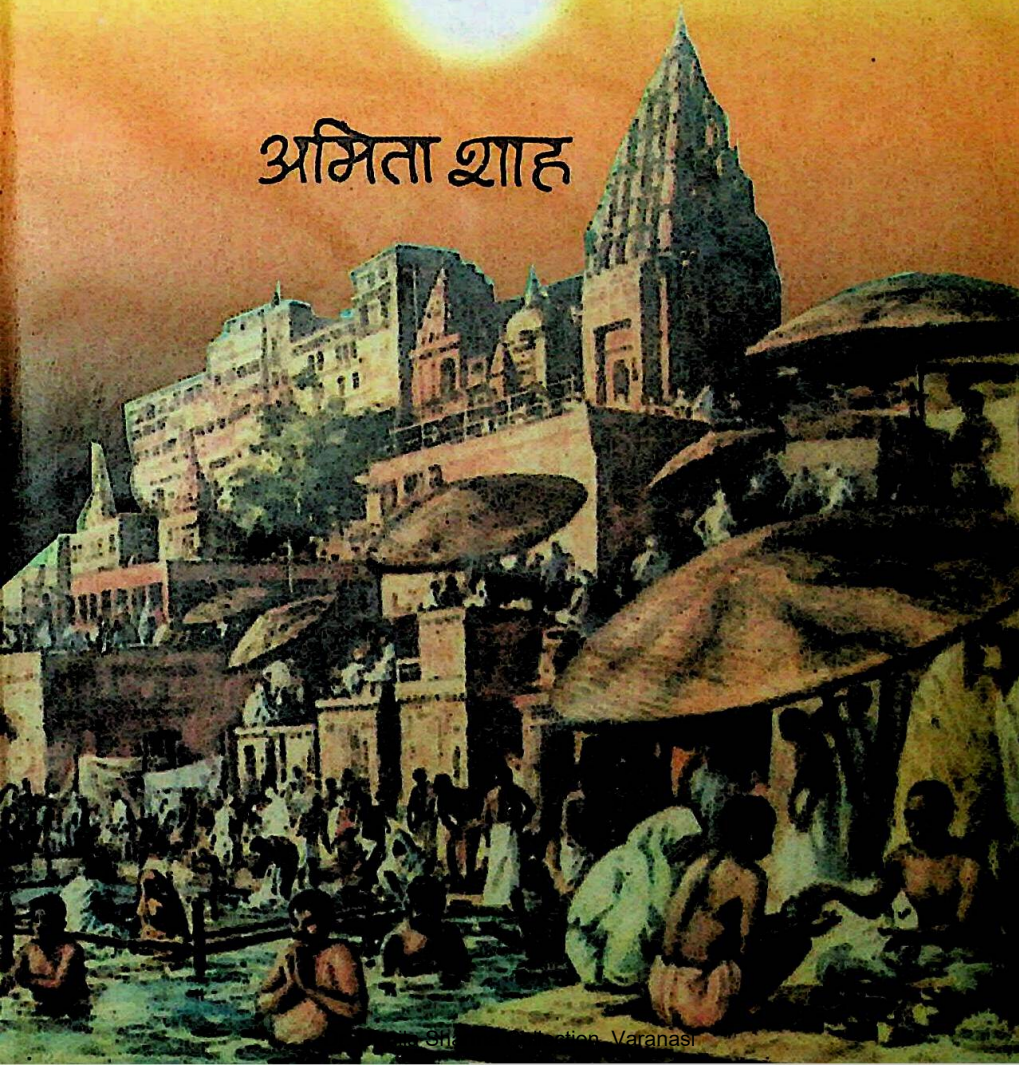

Sri Ram Publication, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5.3

Devjibhai Mistry (Anuvadia)
602,Adarsh Apt. 51st, T.P.S. Road. Borivali (w).
Mumbai 400092, Mo :- 9820998906. Resi :- 28983454

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत कृति

काशी-मार्तण्ड

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का जीवनामृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री स्वामी रामानन्द सन्त आश्रम

93/3, मायाकुण्ड, ऋषिकेश (उ.प्र.)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी-मार्तण्ड

लेखिका : अमिता शाह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© : लेखिका

द्वितीय संस्करण : 2000
प्रकाशक : श्री स्वामी रामानन्द सन्त आश्रम,
93/3, मायाकुण्ड, ऋषिकेश (उ.प्र.)
आवरण : चेतनदास
मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

KASHI-MARTAND (Biography)
by Amita Shah

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी-मार्तण्ड

श्री रामानन्दाचार्य जी प्रवचन करते हुए
(श्री रामजन्मभूमि—श्री अयोध्या जी में 100 वर्षों से भी
अधिक समय से सुपूजित चित्र)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्री रामः शरणं मम् ॥

जगद्गुरु श्री भगवान रामानन्द जी के जन्म (आविर्भाव) सप्त शताब्दी जन्मोत्सव के अवसर पर 'काशी मार्तण्ड' का पुनः मुद्रण हो रहा है, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यह ग्रन्थ श्री स्वामी रामानन्द जी कृपाप्रसाद ग्रन्थ है, इसलिए अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। श्री स्वामी जी की कृपा से लेखिका को माननीय राष्ट्रपति के द्वारा सम्मानित किया गया।

प्रकाशन एवं मुद्रण में सहयोगी जन श्री स्वामीजी के आशीर्वाद के पात्र हैं।

इति शुभम्।

॥ श्री राम ॥

महामण्डलेश्वर श्री महन्त
स्वामी अभिरामदास त्यागी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

卐 श्रीरामः शरणं मम् 卐

शाश्वत सनातन हिन्दू धर्म अनादिकाल से प्राणीमात्र के अभ्युदय एवं परमानन्द की प्राप्ति का साधन वर्षित करता आ रहा है। परमात्मा की अखण्ड आनन्दमयी सृष्टि में जीव परमात्मा का अभिन्न अंश है, उसका परमात्मा श्रीराम के साथ अनादिकाल से नित्य का सम्बन्ध है। जब जीव सृष्टिकर्ता को भूल सृष्टि में तल्लीन हो जाता है तो संसार के भोगों की आसक्ति उसे सच्चिदानन्द स्वरूप से विचलित कर नाना प्रकार की चिन्ता, भय, उद्वेग प्रदान करती है। यदाकदा होने वाली क्षणिक सुख की अनुभूति एवं भविष्य में मिलने वाले सुख की आकांक्षा उसे संसार से विरत नहीं होने देती। तब अकारण करुणावृष्टि करने वाले परमात्मा संसार से तप्त जीव पर कृपा करने के लिए अपने निज धाम से अपने परिकरों को विशिष्ट चेतना प्रदान कर इस भूमण्डल पर भेज देते हैं।

परमात्मा द्वारा भेजे गये महापुरुष बाल्यावस्था से ही विलक्षण शक्ति-सम्पन्न दिखायी देते हैं। वह स्वयं तो जीवन मुक्त होते हुए भी लोक-कल्याणार्थ साधना में प्रवृत्त होते दिखायी देते हैं। उनका उद्देश्य मानव को मानवता का पाठ पढ़ाकर, प्रेम सुधा का पान कराना तथा परमानन्द की प्राप्ति कराना होता है। उनकी दृष्टि, वाणी और संकल्प प्रेम, करुणा एवं आनन्द से परिपूर्ण होते हैं। उनके निकट आने वाले प्राणी उनके सहज आकर्षण से प्रभावित हो उनके श्रीचरणों में समर्पित हो जाते हैं। उन महापुरुषों की आध्यात्मिक ऊर्जा के स्पंदनों के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति सहज स्वरूप में स्थित हो परम शान्ति का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार के महापुरुषों में से एक त्याग, तपस्या, प्रेम, करुणा एवं परमानन्द के साक्षात् श्रीविग्रह कलिपावनावतार यति सम्राट अवधूत मार्ग के प्रवर्तक जगत्गुरु अनन्त श्री विभूषित स्वामी रामानन्दाचार्य भगवान का अवतरण भारत के परम पवित्र भूभाग में गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम स्थल प्रयागराज में हुआ था। उन्होंने भूतभावन परम वैष्णवाचार्य भागवत शिरोमणि त्रिभुवनगुरु विश्वनाथजी की नगरी काशी के पंचगंगाघाट का स्वयं की तपस्थली के रूप में चयन किया। बाद में काशी को केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण भारत में हिन्दू सनातन धर्म की रक्षा एवं मानव समुदाय में भेदभाव मिटाकर भ्रष्ट मान्यताओं को तोड़ पतित पावनी, लोक-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्धारिणी, सर्वहितकारी, प्रेमरस से परिपूर्ण अमृत स्वरूपिनी अखण्ड आनन्दमयी परमात्मा श्रीराम की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने अपनी क्रियाशक्ति एवं इच्छाशक्ति के द्वारा अधर्म का नाश कर वास्तविक धर्म के स्वरूप को प्रगट किया। अर्थ एवं काम को ही सर्वस्व समझने वाले मानवों की ऊर्जा को दिशान्तर प्रदान कर ऊर्ध्वगामी बना परमात्मा के प्रेमरस से पूर्णरूपेण तृप्त किया।

जगत्गुरु श्री स्वामी रामानन्दजी का जीवन चरित समुद्रवत् अगाध है, उसका कुछ अंश प्रसंग पारिजात नामक ग्रन्थ में एवं अन्य ग्रन्थों में वर्णित है। उसी से सहयोग लेकर सुश्री अमिताबेन ने भगवत भागवत रसिकों की रुचि जिज्ञासा को ध्यान में रख, 'काशी-मार्तण्ड' को इस रूप में लिखा है। इसके माध्यम से श्री स्वामीजी के जीवन चरित्र से अपरिचित जिज्ञासुओं को श्री स्वामी के उदात्त चरित्र का परिचय मिलेगा। वर्तमान समय में श्री स्वामी रामानन्द सम्प्रदाय, जो भारत एवं विश्व के लोगों का पथ-प्रदर्शन एवं जन-सेवा का अनुपम कार्य कर रहा है उसका श्रेय ज्ञान-आलोक के प्रदाता भुवन भास्कर स्वरूप श्री स्वामी रामानन्दाचार्य को ही है। श्री स्वामीजी के क्रान्तिकारी विचारों से प्रेरित श्री गोस्वामी तुलसीदासजी, मीरा, कबीर, रैदास आदि से तो सम्पूर्ण भारतवासी सुपरिचित ही हैं।

श्री स्वामीजी का जीवन चरित्र तो प्रस्तुत पुस्तक 'काशी-मार्तण्ड' में आप सब पढ़ेंगे ही, हम तो आप सबसे निवेदन करना चाहते हैं कि पूर्वाग्रह को छोड़ यथार्थ तथ्य को स्वीकार कर श्री स्वामीजी का उपदेश चरितार्थ करना ही उनके प्रति अहो भाव प्रगट करना होगा।

परमात्मा श्रीराम से प्रार्थना है कि श्री स्वामीजी का जीवन चरित्र हम सबके अन्तःकरण में छिपे मोहान्धकार को दूर कर, मानवता, कर्तव्य परायणता, एवं जीवनलक्ष्य को प्रकाशित कर परम श्रेय की प्राप्ति कराने वाला सिद्ध हो।

अन्त में अमिताबेन को अन्तःकरण से सप्रेम शुभ आशीष प्रदान कर परमात्मा श्रीराम से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें सदैव सद्बुद्धि प्रदान कर लोक हितकारी साहित्य सृजन कराने की क्षमता प्रदान करें।

जय श्री स्वामी रामानन्दजी की।

केदार धाम,
श्री हनुमान गुफा
पोस्ट : केदारनाथ, जिला—चमोली
पिन : 246 445 (उ० प्र०)

शुभेच्छु,
महामण्डलेश्वर श्री महन्त
स्वामी अभिरामदास त्यागी
93/3, मायाकुण्ड, ऋषिकेश (उ० प्र०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

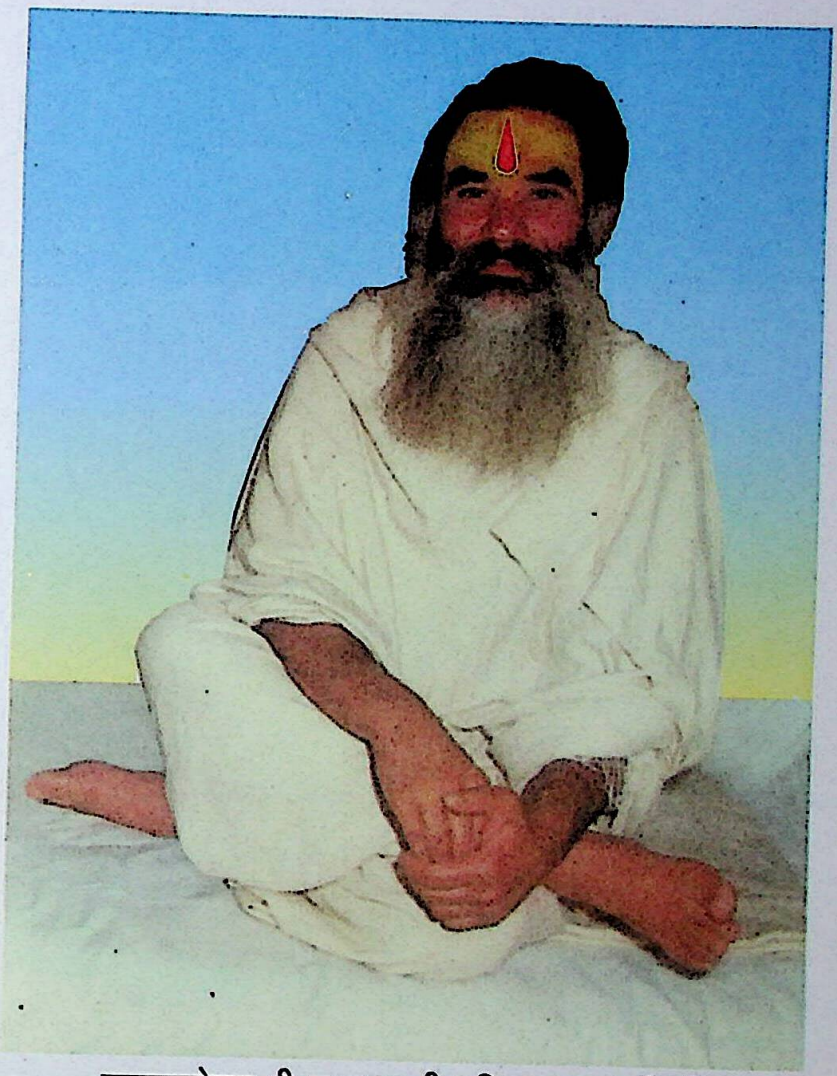

महामण्डलेश्वर श्री महन्त स्वामी अभिरामदास त्यागी जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राक्कथन

॥ रामानन्दगुरुं नमामि भगवद्रामस्वरूपं परम् ॥

चराचरनायक भगवान श्रीराम स्वरूप जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य के चरणों में कोटिशः प्रणाम।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस लेखन कार्य के माध्यम से महाविभूति श्री रामानन्दाचार्यजी के साथ अन्तःकरण की वृत्तियों को रखकर 'स्वांतः सुखाय'—परमानन्द की प्राप्ति ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य रहा है। आचार्यप्रवर जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य एवं सद्गुरुदेव श्री अभिरामदासजी त्यागी की असीम कृपा से आशातीत लाभ भी मिला है। उन्हीं पवित्र चरणों की अहैतुकी कृपा से यह परम पावन चरित्र लिखने की प्रेरणा, सामर्थ्य एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है।

कलिपावनावतार श्री स्वामीजी के अगाध चरित्र को अल्प मति से समझने में त्रुटि होनी अवश्यम्भावी है, उसे प्रेरणा ग्रहण करने की मेरी अक्षमता समझ पूजनीय स्वामीजी, परमपूज्य श्री सद्गुरुदेव एवं विज्ञ सज्जनवृन्द से क्षमा की अपेक्षा रखती हूँ। जन्म से अहिन्दीभाषी होने के कारण हो सकता है कि भाषा-सम्बन्धी भी कुछ भूलें रही हों। ग्रन्थ सम्बन्धी सर्व त्रुटियों से अवगत कराकर पाठकवृन्द अनुगृहीत करेंगे यह अपेक्षा अवांछनीय नहीं होगी। 'सुज्ञेषु किम् बहुना।'

'प्रसंग-पारिजात' नामक दिव्य प्राचीन ग्रन्थ को मुख्य प्रमाण मानकर अन्य प्राप्य ग्रन्थों की घटनाओं का समन्वय करने का यहाँ प्रयत्न किया गया है। 'प्रसंग-पारिजात' की प्राचीनता एवं सत्यता को कुछ सन्तों ने शंका की दृष्टि से देखा है। उनकी शंकाओं के निवारणार्थ एक पत्र का प्रमाण देना यहाँ उचित होगा।

"श्रीमते रामानन्दाय नमः

स्वामी चेतनदासजी महाराज ने एक दिव्य ग्रन्थ 'प्रसंग-पारिजात' नाम से लिखा था। श्री बालकरामजी विनायक जब सारनाथ में पुस्तकालयाध्यक्ष थे, तब उनको अत्यन्त जीर्ण पत्रों पर यह ग्रन्थ मिला। श्री विनायकजी ने उसकी प्रतिलिपि तैयार कर ली थी। सन् 1936 के आसपास सुप्रसिद्ध विशाल भारत पत्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसकी चर्चा चली तो श्री विनायकजी ने इसकी टीका भी लिख दी थी, वे कई भाषाओं के विद्वान थे। सन् 1936 में मैं और पण्डित भगवतदास मिश्र श्री विनायकजी के पास लिखित हिरण्यगर्भोव्याख्यान देखने जाया करते थे। पिशाची भाषा क्लिष्ट होने से मैंने केवल अनुवाद मात्र की प्रतिलिपि कर ली थी और पण्डित भगवत्दासजी मिश्र ने मूल और हिन्दी दोनों उतार लिया था।

सन् 1942 में श्री विनायकजी का साकेतवास हो गया तब 8-9 वर्ष बाद मिश्रजी उसे छपाकर बेचते थे। अस्तु। केवल अनुवाद मात्र श्री निर्भीकजी एम० ए० ने प्रकाशित किया था। अब दोनों अप्राप्य हो गये थे। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि स्वनामधन्य श्री अभिरामदासजी ने श्री केदारनाथ में श्री दिनकर जोशी आदि साहित्य प्रेमियों के सहयोग से इस दिव्य, सिद्ध, तान्त्रिक ग्रन्थराज को प्रकाशित करके पुनः इसे सुलभ कर दिया है।

सम्प्रदाय तुच्छ सेवक डॉ० रामकुमारदास डी० लिट्०
श्रीराम ग्रन्थागार, मनि पर्वत, श्री अयोध्याजी
13-12-1986"

ग्रन्थ रचना में उदारतापूर्वक सहाय करने वाले उत्तरकाशी के श्रीवैष्णव भगवानदासजी, अहमदाबाद कोशलेन्द्र मठ के पीठाधीश्वर श्री रामेश्वरानन्दाचार्यजी, चित्रकूट, तुलसी मठ के पाठाधीश्वर श्री रामभद्राचार्यजी तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहाय करने वाले अनेकों की मैं अत्यन्त ऋणी हूँ। स्वामीजी के विषय में जिज्ञासु समझ अपना अमूल्य समय एवं सहाय प्रदान करने की कृपा करके उन सबने मुझे उपकृत किया है।

मैं परम आदरणीय महामण्डलेश्वर श्री महन्त स्वामी श्री अभिरामदास त्यागीजी की हृदय से ऋणी हूँ, जिनकी प्रेरणा और सहयोग से प्रस्तुत ग्रन्थ का कार्य पूर्ण हो सका है। अन्त में मैं सर्वश्री ओमप्रकाश वर्मा अध्यापक, दाऊदयाल वैदिक वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, खारी बावली, दिल्ली-6, भक्त नरेश प्रसाद भटनागर, पं० देवदत्त शर्मा, और कुमार नरेन्द्र की विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों में रुचि ली। मुझे आशा है—सुधी पाठक-जगत् में काशी-मार्तण्ड का उचित मूल्यांकन होगा।

"जय श्री राम"

—अमिता शाह

सम्पर्कसूत्र :
श्री अभिराम निवास,
10 उमिया पार्क सोसायटी, विद्या विहार स्कूल के निकट,
सुभान पुरा,
वड़ोदरा—390 007 (गुजरात) फोन : 0265-393096

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

1. पूर्व-परिचय ... 17
2. प्राकट्य एवं शैशव ... 22
   (1) जन्म (सं० 1356) ... 25
   (2) काशी गमन ... 31
   (3) सालवी को मोक्षप्राप्ति ... 36
   (4) जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी ... 39
   (5) आयु समाप्ति पर अन्तर्ध्यान ... 40
   (6) पुनः प्रादुर्भाव (सं० 1369) ... 45
   (7) निकृष्ट अन्न का परिणाम एवं रैदासजी का जन्म ... 51
   (8) मृतक को संजीवनी ... 54
   (9) पूर्वजन्म के प्रेमी ... 56
   (10) अमीर खुसरो ... 57
   (11) अतिरोगी की रोगमुक्ति ... 61
   (12) हसन और गंगू ... 62
   (13) कलिपावनावतार ... 64
   (14) शंकराचार्य से मिलन ... 67
3. पुनरुद्धार ... 71
   (1) हिन्दू पुनरुद्धार (सं० 1381) ... 71
   (2) शिवजी से संवाद ... 76
   (3) श्री अनन्तानन्दजी ... 79
   (4) खेचरी मुद्रा ... 81
   (5) कबीरजी का जन्म ... 82
   (6) तत्वोपदेश ... 85
   (7) मस्जिद में शंखनाद ... 88
   (8) श्री सुखानन्दजी ... 90

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(9) पवित्राप और निष्पाप ... 92
(10) कनिष्ठ की दुष्टता ... 94
(11) श्री सुरसुरानन्दजी ... 95
(12) अविद्या का सन्देश ... 96
(13) श्री नरहर्यानन्दजी ... 99

4. पतितोद्धार ... 101
(1) श्री रैदासजी ... 103
(2) धवलगिरि के योगी ... 106
(3) श्रीराम नाम की महिमा ... 109
(4) श्री सेना नाई ... 111
(5) विद्यारण्य मुनि का पत्र (सं० 1392) ... 113
(6) नामवर अमीर ... 115
(7) श्री योगानन्दजी ... 117
(8) मुस्लिम कन्या फातिमा ... 119
(9) श्री कबीरजी ... 120
(10) भक्त भाजन ... 123
(11) सन्त मिलन का फल ... 124
(12) स्वामीजी का बोध ... 125

5. प्रवर्तन ... 128
(1) सम्प्रदाय प्रवर्तन ... 128
(2) श्री सम्प्रदाय परम्परा ... 134
(3) विजयनगर की स्थापना (सं० 1404) ... 139
(4) श्री पद्मावतीजी ... 140
(5) पीनर व्यापारी ... 142
(6) सम्प्रदाय के भेद ... 143
(7) श्री पीपाजी ... 146
(8) वाममार्गी तान्त्रिक ... 148

6. भारत-दिग्विजय ... 150
(1) गांगरौनगढ़ की ओर प्रस्थान (सं० 1415) ... 151
(2) जगन्नाथपुरी में स्वागत ... 157
(3) विजयनगर का समारोह ... 159

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(4) कांचीपुरम्—सीताजी का श्राप एवं स्वामीजी का भविष्य कथन ... 162
(5) रामेश्वरम् में चमत्कार ... 169
(6) सोमनाथ के भग्नावशेष ... 178
(7) अर्बुदाचल—वैष्णवमताब्ज भास्कर ... 180
(8) हरिद्वार में नरनारायण ... 189
(9) चित्रकूट पर निवास ... 191
(10) काशी में पुनरागमन ... 195

7. प्रपत्ति ... 198
(1) श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव ... 198
(2) वेदांत का मर्म ... 205
(3) अयोध्या में धर्मपरिवर्तन (सं० 1432) ... 206
(4) नेत्र रोगी का उपचार ... 212
(5) झीटाजी पण्डित ... 214
(6) श्री भावानन्दजी ... 216
(7) बकरी कन्या की मुक्ति ... 218
(8) हिमालय के गोहिणनाथ ... 219
(9) सत्यमूर्ति को वेदांत दर्शन ... 221
(10) श्री गालवानन्दजी ... 225
(11) हिमालय यात्रा ... 227

8. पाखण्ड-खण्डन ... 233
(1) तैमूर का आक्रमण एवं स्वामीजी की शर्तें (सं० 1456) ... 233
(2) तर्क का मिथ्यत्व ... 241
(3) देवताओं का उद्धार ... 243
(4) महाजन को पुत्रप्राप्ति ... 246
(5) षड्रिपु का सामना ... 247
(6) श्री धन्नाजी जाट ... 249
(7) तान्त्रिक कन्या की मुक्ति ... 250
(8) पुष्प द्वारा वेदान्त दीक्षा ... 252
(9) विनयमुनि चौरासी वाले ... 253
(10) अपार तान्त्रिक ... 255
(11) मोहान्धकार की निवृत्ति ... 257
(12) सात्विकता का प्रभाव ... 258

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(13) पतिव्रता की पुकार ... 259
(14) असम में अकाल ... 262
(15) भाष्यकारों का आवाहन ... 264
(16) दूधनाथ की पितृभक्ति ... 267
(17) पण्डितों के पण्डित ... 268
(18) भगवत् प्रसाद की महिमा ... 271
(19) प्रेमामृत एवं रामभक्ति प्रसार ... 274
(20) बहलुल लोदी की पीड़ा ... 280

9. पर-प्रस्थान (सं० 1515) ... 282
(1) हंस-कबूतर द्वारा संकेत ... 284
(2) प्रेमी भक्तों के लिए परमगुरु का अन्तिम सन्देश ... 287
(3) श्री रामनवमी पर अन्तर्ध्यान ... 289
(4) भंडारा एवं 'प्रसंग-पारिजात' निर्माण ... 292
(5) शिष्यों द्वारा प्रवर्तन ... 294
(6) 'प्रसंग-पारिजात' मुद्रण ... 295
(7) श्रीमठ का जीर्णोद्धार ... 297

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहयोग-प्रदाता

रु. 6100/- **श्री मुनिलाल गुप्ता**
ए-50/1 वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली-52

रु. 5100/- **मैसर्स किशनलाल एण्ड संस**
चाँदनी चौक, दिल्ली-6

रु. 5100/- **श्री अशोक बंसल**
मैसर्स सौरभ इंडिया प्रा. लि.
2732 दूसरी मंजिल, नया बाजार, दिल्ली-6

रु. 5100/- **श्री आनन्द गोयल, सुरेश गोयल**
ए-82, वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली-52

रु. 3100/- **श्री ज्ञानचंद गुप्ता**
78/1 महरौली, दिल्ली-30

रु. 2100/- **स्व. विद्यावती जी की स्मृति में**
मैसर्स बिशनचंद नरेशकुमार
कटरा हुसैन बख्श, खारी बावली, दिल्ली-6

रु. 2100/- **श्री दिनेश केजरीवाल**
7/26 कैमिकल सेंटर इंडिया
सदर बाजार, दिल्ली-6

रु. 2100/- **श्री सुन्दरलाल शर्मा**
लाडो सराय, महरौली, दिल्ली-30

रु. 1100/- **श्री एम.के. सागर**
एस-419, ग्रेटर कैलाश-II
नयी दिल्ली-48

रु० 5001/- **गोकुलदास बांगड़ (कुम्भराज वाले)**
रामगंज, गुना (म० प्र०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रु. 1100/- लाला मणि राम जैन,
सीताराम बाजार, दिल्ली-6

रु. 1100/- श्री राम अवतार गुप्ता,
नया बाँस, खारी बावली, दिल्ली-6

रु. 1100/- श्रीमती ललिता भटनागर
सी-54, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली-26

रु. 1001/- श्री अतुलकुमार
सिन्दूर साड़ी केन्द्र
चाँदनी चौक, दिल्ली-6

रु. 501/- मैसर्स हरनारायण एंड कम्पनी,
चाँदनी चौक, दिल्ली-6

रु. 501/- गीतिका भटनागर,
सी-54, शिवाजी पार्क,
नयी दिल्ली-26

रु. 2500/- श्री रामदयाल शंकरदयाल मूँदड़ा जी की स्मृति में
द्वारा श्री जगदीश मूँदड़ा, गूजरी, जिला-धार (म.प्र.)

रु. 2100/- श्री विजयकुमार
मैसर्स विनोदकुमार एण्ड कम्पनी, कुतुब रोड, दिल्ली-6

रु. 2100/- श्री मणिराम जैन
सीताराम बाजार, दिल्ली-6

रु. 1100/- श्री आनन्द गोयल
9432, टोकरीवालान, आजाद मार्किट, दिल्ली-6

रु. 1100/- सुश्री रिंकु भटनागर
सी-54, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-26

रु. 501/- रेशू भटनागर
सी-54, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-26

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. पूर्व-परिचय

सीतानाथ समारंभाम् रामानंदार्य मध्यमाम् ।
श्री अभिराम गुर्वंताम् वंदे गुरु परंपराम् ॥

सिद्ध शिरोमणि, परमहंस, त्रिगुणातीत महामंडलेश्वर महंत सद्गुरुदेव श्री अभिरामदासजी त्यागी के चरण कमल में कोटि-कोटि प्रणाम् । अखण्ड विज्ञानराशि, श्री रामांशभूत, कलि-पावनावतार, हिन्दू-धर्मोद्धारक, यतीन्द्र जगद्-गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के पाद-पंकज में अनन्तकोटि वन्दन । सकल सृष्टि के परमाधार, सगुण-निर्गुण एवं दोनों से परे, करुणावरुणालय परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर श्री सीतारामजी के युगल पादारविन्द में कोटिशः कोटि प्रणिपात् ।

प्राचीन समय से भारत विश्व के सभ्य देशों में सिरमौर रहा है । विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, धनबल-जनबल, ज्ञान-विज्ञान तथा लौकिक-पारलौकिक आदि सभी विद्याओं का उद्गम स्थान भारतवर्ष ही है । यहाँ की अनादि सनातन संस्कृति का आधार उसकी आध्यात्मिकता है । सम्पूर्ण विश्व को सुसंस्कृत करने वाली इस पुरातन संस्कृति को महाकाल के विनाशकारी प्रहारों से बचाने को परमकृपालु परमात्मा ने प्रत्येक युगों में उस युग की आवश्यकतानुसार गुणसमूह का प्राबल्य रखते हुए अवतार धारण किया है ।

अवतार का अर्थ है परमात्मा की सर्वशक्तिमान अव्यक्त चेतना का व्यक्त रूप में भूमण्डल पर अवतरण होना । इस अलौकिक रहस्य की बात जो जानते हैं एवं श्रद्धापूर्वक मानते हैं वे परमतत्व को अवश्य प्राप्त करते हैं । गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति अर्जुनः ॥

परमात्मा अपने आश्रित प्रपन्न जनों को अनन्य शरणागति के रहस्यों को समझाकर अनन्य भावचिन्तन में लगा देते हैं । परन्तु जब जीव अपना कर्तव्य छोड़कर पुरुषार्थहीन स्थिति में आकर निषिद्ध कर्मों में प्रवृत्त होने लगता है तब उसका धर्मविरुद्ध आचरण पृथ्वी के लिए भार बन जाता है । परमात्मा की इच्छा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ति एवं क्रियाशक्ति (श्रीदेवी, भूदेवी) परमात्मा को अनुग्रह करुणाशक्ति से अवतार के लिए प्रेरित करती है। तब देश-काल-स्थिति के अनुरूप परमात्मा पूर्ण, अंशा, आवेशा, अनुग्रह आदि अवतार के रूप में प्रकट होते हैं।

सर्वशक्तिमान एवं सर्व गुणों के अधिष्ठाता होने के उपरान्त परमात्मा ने, मर्यादाओं का जब ह्रास होने लगा तब मर्यादा पुरुषोत्तम का रूप लिया, समाज में कर्महीनता बढ़ने पर कर्मावतार बने, हिंसक प्रवृत्ति अमर्याद बनने पर अहिंसा के पुजारी बनकर आये, ज्ञान का प्रभाव कम होने लगा तब ज्ञानावतार बने तथा प्रजा में भावनाशून्यता एव दिशाविहीनता आने पर भक्ति-आन्दोलन के कर्णधार बनकर अवतार लिया। कार्यक्षेत्र कोई भी हो, अवतार नित्य काल की असरों से परे होते हैं। अपने साथ वे ऐसी परम चेतना का आविर्भाव करते हैं जो दूसरे किसी भी माध्यम से संसार को मिलनी असम्भव है।

प्राचीन युग के उच्चतम शिखरों को छूने के पश्चात् परिवर्तनशील प्रकृति के वशीभूत होकर मध्यकालीन भारत में भी पर्याप्त परिवर्तन आ चुका था। भारत इस युग में छोटे-मोटे कई भागों में विभाजित हो गया था। राजपूतों के पारस्परिक द्वेष तथा मिथ्याभिमान ने देश की संयुक्त शक्ति को क्षीण कर दिया था। वर्ण-व्यवस्था के दारुण दुरुपयोग से हिन्दू समाज कई जाति, वर्ग, उपवर्ग में बँट चुका था। धार्मिक दृष्टिकोण में भी पर्याप्त परिवर्तन आ गया था, जड़-बाह्याचार, जटिल विधिविधान तथा कर्मकांडों से जनता धर्म का अर्थ समझने में असमर्थ हो गयी थी।

इस युग में भी सनातन संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु परमात्मा की करुणामयी कृपा भारतवर्ष पर अवश्य हुई। मध्यकालीन भारत ने कुछ महान आचार्यों का प्राकट्य देखा।

आठवीं शताब्दी में भगवान शंकर सनातन संस्कृति को अवैदिक जैन तथा बौद्ध-धर्म के प्रतिकार से बचाकर वैदिक मत की पुनः स्थापना हेतु जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी के रूप में प्रकट हुए। प्रखर प्रज्ञावान आचार्य ने सम्पूर्ण भारत में परिभ्रमण करके विविध नास्तिक मतों का खण्डन किया। तत्वज्ञ एवं बौद्धिक समाज, जो बौद्ध एवं अन्य मत से प्रभावित हो गया था, शंकराचार्य ने उन्हें वेदान्त मत में पुनः स्थापित किया। संस्कृति की सेवा हेतु महर्षि बादरायण व्यास रचित 'ब्रह्मसूत्रों' की व्याख्या करके 'कैवलाद्वैत' मत प्रतिपादित किया। दार्शनिक मतों से अन्य मतों का खण्डन करते हुए उन्होंने अभूतपूर्व सिद्धि प्राप्त की। समग्र भारत ने उन्हें 'जगद्गुरु' के पद से सम्मानित किया। परन्तु कैवलाद्वैत के ज्ञान एवं सिद्धान्तों को अधिकांश जनता न समझ सकी। समाज पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। मायावाद में फँसकर लोकमानस में निष्कर्मण्यता का प्रभाव बढ़ गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशवीं शताब्दी में समाज की जड़ता को दूर करने परब्रह्म श्री रामजी के अनुज श्री रामानुजाचार्य प्रकट हुए। उन्होंने भक्तिमार्ग को प्राणि मात्र के लिए सुलभ बनाया तथा भक्ति का विश्लेषण करके मायावाद, जड़ता तथा निष्कर्मण्यता दूर करने का भगीरथ कार्य किया। ब्रह्मसूत्रों पर आधारित 'विशिष्टाद्वैत' मत प्रस्थापित करके 'श्रीभाष्य' की रचना की। परन्तु उनका अनुपम कार्य उनके अनुयायियों की कुछ हठधर्मिता एवं संकीर्णता के कारण भक्ति तथा वर्णव्यवस्था का बाह्य आडम्बर मात्र रह गया। समाज में प्रचलित देवी-देवताओं का अन्यनता के नाम पर विरोध करके उन्होंने भक्ति को संकीर्ण दायरे में बाँध लिया। अतः भक्ति का ह्रास होने लगा।

ग्यारहवीं शताब्दी में श्री निम्बार्काचार्यजी ने द्वैत-अद्वैत का संयोग करके 'द्वैताद्वैत' मत प्रस्थापित किया। वैष्णव समाज में श्री राधाकृष्ण की ध्यानभक्ति को रसमयी बनाकर बहुत प्रचार किया एवं प्रजा को दिशा-निर्देश करने का प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने समाज के सभी वर्णों को भक्ति की छूट नहीं दी।

बारहवीं शताब्दी में वायुदेव के अंशावतार श्री माध्वाचार्यजी का प्राकट्य हुआ। प्रजा को निष्कर्मण्य बनाने वाले मायावाद के अद्वैत मत का सम्पूर्ण त्याग करके 'द्वैतमत' का प्रचार किया तथा सृष्टि के अनादि तत्वों को पाँच प्रकार से विभाजित किया।

उपरोक्त सभी आचार्यों का प्राकट्य दक्षिण भारत में हुआ अतः उत्तरभारत को कार्यक्षेत्र बनाने के उपरान्त उनके कार्य एवं जीवन विषयक जानकारी दक्षिण में सुरक्षित रह सकी क्योंकि लगभग दशवीं शताब्दी में उत्तर भारत पर परदेशी यवन आक्रमण एवं आतंक का आरम्भ हो चुका था।

देश की वायव्य सीमाओं से असंस्कृत म्लेच्छों ने धनालोभ एवं धर्मप्रचारार्थ सम्पत्ति एवं संस्कृति से परिपूर्ण इस देवभूमि पर आक्रमण आरम्भ किये। हिन्दुस्तान की राजनैतिक व सामाजिक रुग्णावस्था का आक्रान्ताओं ने भरपूर लाभ उठाया। प्रभापूर्ण भारत को उनके अत्याचारों ने विपत्तियों की उत्ताल तरंगों से दीन बना दिया। उन्मादरूपी घोड़े पर सवार होकर कलि के अभिवर्धन हेतु प्रदेश जीतते तथा धन-सम्पत्ति का दुरुपयोग करते हुए दुष्टजन आगे बढ़ते रहे। द्वेषरूपी इन्द्र तथा हिंसारूपी श्याम मेघदूत अत्याचाररूपी वर्षा करता रहा। भारत की प्रजा धर्म-विध्वंसियों की ताड़नारूपी बिजली के डर से अत्यन्त त्रस्त होती रही। यवनों की स्वार्थ रंजित नीतियों के कारण राजनैतिक टकराव से सांस्कृतिक टकराव अत्यधिक तनावपूर्ण होता गया।

धार्मिक आधिपत्य जमाने को विधर्मियों ने धर्म-परिवर्तन के नये-नये अस्त्र निकाले। यात्रा-कर, धार्मिक मेलों, उत्सवों पर कठोर प्रतिबन्ध, नये मन्दिर निर्माण तथा जीर्ण मन्दिर पुनरुद्धार पर रोक, देवालय सम्पत्ति की लूट, देवी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवताओं की मूर्ति का विध्वंस एवं अपमान, धार्मिक चिह्न लगाने पर प्रतिबन्ध, अस्त्र-शस्त्रादि रखने पर रोक, धर्म-परिवर्तन करने पर बड़े-बड़े पुरस्कार तथा विरोध करने पर सामूहिक हत्या जैसे अनेक प्रकार के दमन करके असंस्कृत, असभ्य आक्रान्ताओं ने सुसंस्कृत समाज का जनजीवन विक्षिप्त कर दिया।

अनेक राष्ट्र एवं धर्मप्रेमी राजा तथा प्रजा अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते रहे। उनके प्रयत्न सामूहिक न होते हुए व्यक्तिगत ही रहे। अतः कभी जीते, कभी हारे; कभी भागे, कभी सन्धि-करार किये परन्तु संस्कृति को बचाने वे निरन्तर लड़ते रहे। सत्ता का केन्द्र तथा राज्य की सीमाएँ निरन्तर बदलती रहीं। अनिश्चितता के इस युग में प्रजा का जीवन अत्यन्त कठिन हो गया।

विधर्मियों की राजनैतिक धर्मान्धता का प्रभाव सामाजिक संगठन पर पड़ना अवश्यम्भावी था। अत्याचारों के प्रभाव से हिन्दुओं का बहुत बड़ा वर्ग अनुदार एवं असहिष्णु बनकर समाज तथा संस्कृति को बचाने कटिबद्ध हो गया। इसका परिणाम भीषण सिद्ध हुआ। युगधर्म तथा लोकधर्म से परांगमुख होकर बाह्याचार तथा रूढ़ियों के कवच से ही समाज को सुरक्षित रखना उनका सबसे बड़ा प्रयास बन गया। इससे सामाजिक व्यवस्था जड़ बनकर अस्तव्यस्त हो गयी।

इससे त्रस्त होकर, विवश होकर तथा लालचवश होकर कुछ लोगों ने धर्म-परिवर्तन स्वीकार भी किया। परन्तु इसी समय एक ऐसे अवतारी दिव्यात्मा का इस देवभूमि पर पदार्पण हुआ जिनके कारण अधिकांश धर्मप्रेमी प्रजा ने दमन-अत्याचार सहन किये, अपमानित दशा में जीना स्वीकार किया, प्राणों की आहुति दे दी परन्तु धर्म-परिवर्तन स्वीकार नहीं किया। वे थे जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी।

परब्रह्म परमात्मा श्री रामजी के अंशावतार गीता में दिये अपने वचन की परिपूर्ति हेतु अमर्याद आतंक के मध्य उत्तर भारत में प्रकट हुए। मुस्लिमों के भीषण अत्याचार से उत्पीड़ित हिन्दू जनता के उद्धार का मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया तथा भक्ति के प्रवर्तन का महनीय कार्य सम्पन्न करके भारतीय समाज में एक महती धार्मिक क्रान्ति की। वे अपने युग के क्रान्तदर्शी महात्मा थे जिन्होंने राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में सर्वतोमुखी योजनाएँ बनाकर विधर्मी अत्याचार से ग्रसित भारतीय समाज को राष्ट्र एवं संस्कृति की रक्षा के लिए सक्षम मार्गदर्शन एवं शक्ति प्रदान की।

मुस्लिम धर्मान्धता के सम्पूर्ण विरोधी होने के उपरान्त उनके हृदय की विशालता का अनुभव मुस्लिम भी सदैव करते रहे। उनके अलौकिक व्यक्तित्व का स्वीकार करते हुए एक मुस्लिम फकीर मौलाना रशीदुद्दीन ने अपनी फारसी पुस्तक 'तल-कर-तुल-कुकरा' में लिखा है :

"इस पुरी में पंचगंगाघाट पर एक प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं जो तेजपूर्ण तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ण योगेश्वर हैं। वैष्णवों के वे सर्वमान्य आचार्य हैं तथा सदाचार एवं ब्रह्मनिष्ठत्व का साक्षात स्वरूप हैं। परम तत्वों के रहस्य के वे ज्ञाता हैं तथा सच्चे भगवत् प्रेमी और ब्रह्मविदों के समाज पर उनका उत्कृष्ट प्रभाव है। धर्माधिकार में हिन्दुओं के सम्राट हैं, उन पवित्र महात्मा को स्वामी रामानन्द कहते हैं। उनके विरक्त शिष्यों की संख्या ही पांच सौ से अधिक है। अधिकांश सन्त आत्मारामी, परमहंसी जीवन व्यतीत करते हैं। इस सम्प्रदाय को श्रीसम्प्रदाय कहते हैं।"

सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र हिन्दू संस्कृति ही एक अद्वितीय प्रमाण है, जहाँ विधर्मियों के अत्याचारी शासन एवं क्रूर दमन के उपरान्त भी पुरातन संस्कृति का उन्मूलन नहीं हो सका। अन्यथा इस दारुण परिस्थिति में संसार की ग्रीक, यूनानी, मिस्र, पर्सिया आदि प्रत्येक प्राचीन संस्कृतियों को उन्मूलित होते हुए देखा गया है। इसका अधिकांश श्रेय जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के अविरल प्रयत्न को है। इसके उपरान्त भी करुणता यह है कि उनके विषय में सर्वमान्य विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है।

स्वयं भारत के इतिहास में उनका स्थान नगण्य पाया जाता है। अधिकांश धर्मप्रेमी हिन्दू जनता भी अपने धर्म-संस्थापक से अनभिज्ञ है। सांस्कृतिक पुस्तकें भी उनके विषय में अधिक जानकारी नहीं देतीं। इसका मुख्य कारण है धर्मान्ध यवनों द्वारा उनके आश्रम एवं उनके विषय की प्रत्येक पुस्तकों का विनाश। जिन्होंने हिन्दू संस्कृति को बचाया, यवनों के धर्मान्तर करने के प्रयत्नों पर रोक लगायी, उनके लिए यवनों का आक्रोश तो अवश्यम्भावी था, किन्तु स्वयं हिन्दू धर्मप्रेमी जनता ने अनायास ही अपने धर्मोद्धारक को विस्मृत कर दिया। उनके विषय में मात्र एक ही प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है, जिसके ऊपर भी बहुत समय तक उसमें दिये गये आदेशानुसार स्वयं रोक लगा दी गयी थी। परन्तु आज समय आ गया है अपने प्रणम्य को श्रद्धापूर्ण भावांजलि अर्पण करने का। आयें! हम सब मिलकर उनके श्रीचरणों में अपने श्रद्धासुमन अर्पण करते हुए कह दें :

जय स्वामी रामानन्दाचार्यजी की !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2. प्राकट्य एवं शैशव

प्रातःकाल की स्वर्णिम लालिमा नभोमण्डल में व्याप्त हो चुकी थी। उषारानी ने मार्तण्डराज के—भगवान सूर्यनारायण के—स्वागतार्थ भाँति-भाँति के रंगों से आकाश को सजा दिया था। कहीं-कहीं कुक्कुटजी तो कहीं गाय-बछड़ों की ध्वनि सुनायी दे रही थी।

तीर्थराज प्रयाग में नगर के गवाक्षों से अगुरु धूम्र उठ रहा था। कदाचित् ब्राह्मणों के घरों में आहुतियाँ दी जाती थीं। मन्द-शीतल वायु के झोंके वृक्षों को एवं वल्लरियों को झुला रहे थे। हिल्लोरें लेती वल्लरियाँ, पक्षियों का मधुर कलरव तथा भृंगों के गुंजार से वातावरण अधिक आह्लादक हो रहा था, मानो तृण-तृण, अणु-अणु उल्लसित एवं नवपल्लवित हो रहे हैं। जाह्नवी और कालिन्दी के मध्य स्थित प्रयागपुरी सुर्योदय के साथ-साथ चेतनवंती बनती जा रही थी।

गंगा और यमुना के हिल्लोर-कर जिसे पावस में प्रतिवर्ष प्रक्षालित करते हैं, उस सुकोमल बालुका पर अनेक भक्तजन त्रिवेणी संगम पर स्नान करने आ चुके थे। कोई श्रद्धान्वित होकर गंगाजी को अंजलि दे रहा था, तो कोई करबद्ध मस्तक झुका रहा था। कोई स्नान कर रहा था, तो कोई निवृत्त होकर पूजनादि में व्यस्त हो चुका था। पतितपावनी गंगाजी के मधुर-मंगल कलकल नाद का ब्राह्मण के स्तोत्र पाठ तथा आसपास के मन्दिरों में होते हुए घंटारव भी साथ दे रहे थे। धवल-श्यामल तरंगें जहाँ अंकमाल लेती हैं, अनेक भक्त श्रद्धान्वित होकर गोते लगा रहे हैं। यहाँ संसारी भी हैं, साधु भी; धनी भी हैं, निर्धन भी; स्त्रियाँ भी हैं, बच्चे भी।

इसी समय प्रतिभा सम्पन्न, तेजस्वी ब्राह्मण दम्पति का यहाँ आगमन हुआ। उनके गौरवान्वित मुखमण्डल से अभिभूत जनता ने उन्हें मार्ग दे दिया। उनके पीछे उनके भृत्य भी थे, जो बहुत सामान उठाये आ रहे थे। वे अपने निश्चित स्थान पर पहुँचे, जहाँ भिक्षुओं की लम्बी कतार पहले से लगी हुई थी। ब्राह्मण पत्नी ने प्रेम से सर्व भिक्षुओं को दान दिया। तदनन्तर यत्र-तत्र घूमते हुए गरीब विप्रों एवं साधु-सन्तों को दान-दक्षिणा देकर उन्होंने वन्दना की।

समादर प्राप्त यह ब्राह्मण दम्पति परिचितों से प्रेमपूर्वक वार्तालाप करता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ त्रिवेणी तक पहुँचा। प्रणम्या माता गंगाजी को करबद्ध होकर प्रणाम करने के पश्चात् विधिपूर्वक पूजन-अर्चन किया। कुछ समय रुककर वे यहाँ से प्रस्थान कर गये।

सत्कार प्राप्त अपरिचित ब्राह्मण-साधुओं ने जब पृच्छा की तो उन्हें पता चला कि वे प्रयाग के सुप्रसिद्ध पण्डित पुष्पसदन शर्मा तथा उनकी सहधर्मचारिणी विदुषी पत्नी सुशीलादेवी थे। कान्यकुब्ज वंश के ये पण्डित वाजसनेय शाखाध्यायी होने से 'वाजपेयीजी' के नाम से भी प्रसिद्ध थे। काशी के विद्वान ब्राह्मण चारुमती पुत्री सुशीलादेवी को 'मुखीदेवी' के नाम से जानते थे।

वाजपेयीजी एक ऐसे भाग्यवान थे जिनको लक्ष्मी एवं सरस्वती का वरदान प्राप्त था। तपोनिष्ठ परिवार सदैव व्रत, तप, अनुष्ठान, दान धर्म में संलग्न रहता था। परब्रह्म परमात्मा श्री रामचन्द्र के अनन्य भक्त गृहमन्दिर में पूजनादि से निवृत्त होकर सदैव प्रातःकाल संगम पर यथायोग्य दान दिया करते थे। यहाँ से भगवान श्री वेणीमाधव के दर्शनार्थ जाने का उनका नित्य नियम था। सन्तान सुख से वंचित परिवार की लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त परमात्मा की कृपा उन पर उतरी थी, अर्थात् सुशीलादेवी अब माता बनने वाली थीं। प्रसन्न हो गये धर्मनिष्ठ लोग इस दम्पति की वार्ता सुनकर। अन्यथा इस कलिकाल में···।

इधर वाजपेयीजी एवं सुशीलादेवी त्रिवेणी संगम से भगवान श्री वेणीमाधव के दर्शनार्थ आगे बढ़े। सुशीलादेवी आज अत्यन्त प्रसन्न थीं। अलौकिक आनन्द की अनुभूति कर रही थीं वे, क्योंकि त्रिवेणी संगम की अधिष्ठात्री संगमादेवी ने उन्हें दिव्य बालक के प्रति सावधान किया था। आनन्दाम्बुधि के अवगाहन में सहभागी बनाने उन्होंने यह बात अपने पति को बतायी। कृतकृत्य हो गये वाजपेयीजी। अन्तर में उमड़ता हुआ आनन्द तथा परस्पर का सीमातीत प्रेम नेत्रों के द्वारा व्यक्त हुआ।

मन्दिर में पहुँचकर दोनों नित्यपूजन में व्यस्त हुए। परन्तु आज सुशीलादेवी का मन कहीं स्थिर नहीं हो रहा था। नित्यविधि यन्त्रवत् सम्पन्न करके पुलक-पूरित नेत्रों से भगवान श्री वेणीमाधव के श्रीविग्रह को टकटकी लगाकर वे देखती रहीं। रोम-रोम गद्गदित हो उठा था। आनन्दाश्रु बह रहे थे उनके दृगों से। अंजलि बाँधकर वह बैठी रहीं—बैठी रहीं।

अचानक उन्हें लगा कि दिव्य-मन्द सुगन्ध आ रही है। वे किसी देवलोक अथवा स्वप्नलोक में पहुँच चुकी हैं। नहीं—भगवान का श्रीविग्रह तो अब भी दृष्टिगोचर हो रहा था। परन्तु यह क्या? श्रीविग्रह जैसे जीवन्त हो उठा। प्रभु अलौकिक दिव्य स्मित बिखेर रहे हैं तथा करुणापूरित नेत्रों से उनकी ओर देख रहे हैं। सुशीलादेवी कुछ सोचें, समझें, इसके पूर्व ही प्रभु ने अपना दिव्य हस्त बढ़ाया तथा एक दिव्य दाहिनावर्त शंख सुशीलादेवी के हाथों में दे दिया। अन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंजस में पड़ी सुशीलादेवी ने उसे ले तो लिया परन्तु यह निश्चित न कर पायीं कि यह सत्य घटना है या स्वप्न। क्योंकि और कोई वहाँ उपस्थित नहीं था। आनन्द के अतिरेक में वे ध्यानावस्था में डूब गयीं, कि तन्द्रावस्था में कितना समय व्यतीत हुआ यह उन्हें पता न चला।

जब ध्यान आया तो देखा कि उनके स्वामी उन्हें जगा रहे हैं। आश्चर्य में डूब गयीं वे। भगवान का श्रीविग्रह पुनः पूर्ववत् हो चुका था। कुछ याद करने का प्रयत्न करने लगीं। वाजपेयीजी ने पूछा :

"प्रिये ! आज बहुत समय ध्यान किया तुमने। और यह शंख किसने दिया ?" तब सुशीलादेवी को कुछ ज्ञान हुआ। सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा उनका। नेत्रों से निर्झर बहने लगे। कभी शंख की ओर तो कभी प्रभु के श्रीविग्रह की ओर वे देखती रहीं। पुनः जब वाजपेयीजी ने पूछा तब अवरुद्ध कण्ठ से इतना ही बोल पायीं :

"प्रभु की कृपा है, नाथ ! प्रभु ने ही मुझे दिया है।"

समझ न पाये वाजपेयीजी। यह कैसे संभव है ? परन्तु ऐसा दिव्य अलभ्य दाहिनावर्त शंख कहीं उपलब्ध भी तो नहीं है। अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले :

"देवी ! प्रभु की अपार अनुकम्पा हुई है हम पर। लगता है हमारी सन्तान कोई साधारण बालक नहीं अपितु दैवी बालक ही होगा। तभी तो तुम्हें यह प्राप्त हुआ है। चलो, इसे हम अपने गृहमन्दिर में नित्य पूजन के लिए प्रतिष्ठित करेंगे।"

परिवारजनों को एवं नगरजनों को जैसे-जैसे इस बात का पता चला, सब भाग्यवान दम्पति के भाग्य की प्रशंसा करने लगे। लोगों ने उस दिव्य मन्द सुगन्धयुक्त शंख का दर्शन भी किया जो भगवान श्री सीतारामजी के साथ प्रतिष्ठित हो गया था।

यह समय था संवत् 1356 का। प्रयाग पर काशीनरेश हरिसिंह देव का शासन था, जो मुस्लिम आतंक से प्रजा को बचाने नित्य रूप से दिल्ली बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के सरदारों को दण्ड भरते थे। सम्पूर्ण उत्तर भारत में विधर्मी मुस्लिमों का शासन व्याप्त हो चुका था। देवभूमि भारत को दुर्भाग्य ने पूर्णतः ग्रसित कर लिया था। स्वयं माँ-भारती के अंक में उनके पुत्रों को अपनी संस्कृति छोड़ने पर बाध्य किया जा रहा था। व्यथित एवं लाचार प्रजा नियति के क्रूर विधान को शिरोधार्य करने के अतिरिक्त कर भी क्या सकती थी।

आक्रांताओं ने कई राजाओं को हराकर उनके स्थान पर मुस्लिम सरदारों को नियुक्त किया था, जो प्रजा को अनेक प्रकार से व्यथित कर रहे थे। मन्दिरों के ध्वंस, धर्म-परिवर्तन तथा कत्ल के सिवा कुछ सुनायी नहीं देता था। प्रजा को इस विपत्ति से बचाने के लिए कई राजाओं ने प्रतिवर्ष भारी लगान दण्ड के रूप में देना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वीकार किया था। काशीनरेश भी जानते थे कि म्लेच्छों को जीतना तो असम्भव ही था अतः हिन्दुओं के आदरणीय पवित्र पुरी काशी एवं निकटवर्ती प्रदेशों का प्रशासन करके उन स्थानों की वे रक्षा कर पायेंगे। इसलिए प्रतिवर्ष भारी लगान भेजना उन्होंने स्वीकार किया था।

भगवान श्री काशीविश्वनाथ के दर्शन करने के पश्चात् अनेक धार्मिक जनता प्रयाग में गंगा-जमुना-सरस्वती के त्रिवेणी संगम में अवगाहन करके संसार ताप से मुक्त होकर शान्ति-सुख की प्राप्ति करके काशीनरेश को आशीर्वचन दे रहे थे। उनके शासन तले प्रजा निर्भयता से धर्मपालन कर सकती थी।

एक दिन की बात है। प्रातःकाल का समय था। सुशीलादेवी अपनी प्रातः पूजा के पश्चात् गृह आँगन में आयीं। पूजन के थाल से आँगन में लगायी तुलसीजी का पूजन किया, दीप दिखाया। तदनन्तर भगवान सूर्यनारायण को अर्घ्य देने लगीं। इस समय उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि सूर्य की किरणावली से अत्यन्त तेजस्वी तेजपुंज उनकी ओर आ रहा है। उनके नेत्र चौंधिया गये। अधखुले नेत्रों से करोड़ों सूर्यों को प्रकाशित करने वाले धनुर्धारी प्रभु श्री राघवेन्द्र के प्रसन्न मुखारविन्द का उन्हें दर्शन हुआ। आनन्द के अतिरेक में पूर्ण शरीर में कंप होने लगा। हाथों से पात्र गिर गया। वह तेजपुंज देख तुलसी क्यारी का सहारा लेकर वहीं बैठ गयीं तथा बेहोश हो गयीं।

पात्र गिरने की ध्वनि सुनकर घर के लोग बाहर दौड़े। देखा तो मुखीदेवी आँगन में बेहोश पड़ी थीं। तुरन्त उनकी सुश्रूषा की गयी। कुछ समय पश्चात् वे होश में आयीं तब उन्हें ऐसा लगा कि वह ज्योतिपुंज उनके उदर में जा पहुँचा है। पूर्ण वृत्तान्त उन्होंने कह सुनाया। सर्वत्र आनन्द व्याप्त हो गया। अब पूर्ण परिवार दिव्य बालक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। क्योंकि अब माता के मुखमण्डल पर अद्भुत ज्योति चमकने लगी थी। अपने उदर में स्थित भगवत् प्रकाश को देख माता की दशा अपूर्व रहने लगी थी। समस्त प्रयाग में कर्णोपकर्ण यह बात प्रचलित हो गयी थी कि वाजपेयीजी के घर दिव्य सन्तति का जन्म होने वाला है।

सम्वत् 1356 का माघ मास आ गया। प्रखर ठंड से सम्पूर्ण उत्तर भारत काँपने लगा। आकाश में घटाएँ तितर-बितर हो गयीं। प्रेमी मोर नृत्य करके थक-थककर विश्राम करने लगे। असह्य जाड़े के उपरान्त अनेक व्रतनिष्ठ हिन्दू परम पुनीत त्रिवेणी स्नान का पुण्य लेने प्रयाग में आने लगे।

भारत भर के ज्योतिर्विद अपनी-अपनी पत्रिकाएँ लेकर अपनी विद्या का चमत्कार देखने प्रयाग में आने लगे, क्योंकि उनकी पत्रिकाएँ किसी महामानव के आगमन की सूचना कर रही थीं। कौंडिल्य आदि 26 सिद्धों की जमात भी भगवान के प्रादुर्भाव की सूचना मिलते ही प्रयाग में डेरा डाले पड़ी थी तथा नित्य भाग्यवान ब्राह्मण वाजपेयीजी के घर की फेरी लगाती थी। अनेक ऋषि महर्षि सहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीर्थेश आश्रमी महर्षि भारद्वाज की भी अचल समाधि भंग हुई क्योंकि तपोबल से उन्हें सूचना प्राप्त हुई कि परब्रह्म सृष्टिनायक श्रीराम अंशावतार लिये धर्म संस्थापन हेतु प्रयाग में प्रकट हो रहे हैं।

देखते ही देखते माघ कृष्ण सप्तमी का वह पवित्र दिन निकट आ गया। षष्ठी की रात्रि से ही त्रिवेणी के तट पर योगीजन श्री सीतारामजी की पवित्र ध्वनि का गुंजन करने लगे। दोना पक्षी किसी महामानव के आगमन की सूचना देने लगा। ब्रह्ममुहूर्त हुआ। सर्व तपस्वी, योगी, जति अपने-अपने व्रत में दृढ़ होकर बैठ गये। आज उनके तप से ही भगवान का प्राकट्य होने वाला था। वयोवृद्ध ब्राह्मण भी सूर्योदय के पूर्व वेदपाठ करते हुए ध्यानमग्न हो गये।

आज माघ कृष्ण सप्तमी! उदयाचल पर भगवान भुवन भास्कर भी शीघ्र ही पहुँच गये आज! अरुण किरण ने महत् पुराणपुरुष के आगमन की घोषणा की क्योंकि आज सूर्योदय के साथ भारतवर्ष को आलोकित करने वाले एक विशिष्ट मार्तण्ड का भी उदय होने वाला था। नास्तिकों में भी आज आस्तिकता दिखायी देने लगी। बुद्धिमान एवं विवेकी जनों का मन उत्साह से भर गया। प्रयाग में सर्वत्र स्नानार्थियों के समूह से 'हर हर गंगे' की पावन ध्वनि श्रवणों में आने लगी।

आज मुखीदेवी कुछ अधिक ही अस्वस्थ थीं। प्रसव का समय अब निकट आ चुका था। पण्डित वाजपेयीजी आज सूर्यनारायण को अर्घ्य देने नित्य पूजन के पश्चात् आँगन में आये। शुभ अवसर देख द्वादश महाभागवत (ब्रह्मा, नारद, शिव, सनत्कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बली, शुकदेव तथा युधिष्ठिर) वेदपाठी ब्राह्मण का रूप लेकर उनके आँगन में पहुँचे तथा परमात्मा के प्रादुर्भाव के मंगल मुहूर्त पर नारायणसूक्त का गान करने लगे। उन ब्राह्मणों के दिव्य तेजोमय रूप एवं स्वर विन्यास से मुग्ध अनेक लोग वहाँ एकत्रित होने लगे। वाजपेयीजी भी तेजस्वी विप्रों को देख चकित रह गये।

किसी ने गृहस्वामी से कुछ कहा भी नहीं अतः वाजपेयीजी समझे कि पर्व के यात्री दूर से स्नानार्थ आये होंगे तथा विश्राम करके मेरा आँगन पावन किया होगा। इन तेजस्वी ब्राह्मणों का सत्कार किस प्रकार किया जाय यह सोचने ही लगे थे कि 26 सिद्धों की जमात, जो नित्य घर की फेरी लगाकर निकल जाती थी, घर की परिक्रमा की तथा आँगन में बैठ गयी। सबने मिलकर नारायणसूक्त का पाठ पूर्ण किया।

सहसा गगन निर्मल हो गया। वायु एवं सुरसरि के प्रवाह में एक आह्लादक सुख-स्पर्श आ गया। वृक्षों एवं लताओं में ही नहीं, धरित्रि के नन्हें तृणों तक में नवांकुर एवं पुष्प एक साथ प्रकट हो गये। पक्षियों का कलरव तथा भृंगों का गुंजार कुछ अलौकिक माधुरी-मण्डित हो गया। किसी को भी चमत्कृत करने के लिए प्रकृति का यह परिवर्तन पर्याप्त था, किन्तु यहाँ तो प्रकृति स्वयं परमात्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आगमन पर उल्लसित हुई थी। लगता था कि गगन साम की सस्वर ध्वनि, जयनाद एवं संगीत से गुंजरित हो उठा है।

घर में मुखीदेवी को प्रसव वेदना हुई और वे एक सुन्दर, मनोहर, तेजस्वी पुत्ररत्न की माता बनीं। परितृप्ति के अलौकिक क्षणों में उन्होने देखा कि गौरवर्ण का शिशु पालथी मारे हुए आँखें बन्द करके पड़ा हुआ है। उसके साँस की गति इतनी मन्द है कि समझ में भी नहीं आती। माता समझी मृत बालक ने जन्म लिया है यह देख वे करुण स्वर से रोने लगीं।

सूचना मिलते ही वाजपेयीजी घर में दौड़े। उन्होंने देखा कि अमित तेजस्वी मुखमण्डल शिशु की साँस अत्यन्त मन्द गति से चल रही है। उसकी पालथी एवं ध्यानस्थ मुद्रा देख वे अत्यन्त विस्मित हुए। अपनी गृहिणी को आश्वासन दिया कि दिव्य बालक मृत नहीं है।

शिशु की अवस्था देख चकित वाजपेयीजी पुनः बाहर पधारे तथा तेजस्वी ब्राह्मणों को प्रार्थनापूर्वक बुलाकर भीतर ले गये। आगन्तुक इसीलिए तो यहाँ आये थे। उनके पहुँचते ही शिशु की समाधि टूटी तथा विशाल नेत्र खुल गये। सिद्धों ने सोने के यवराज पत्र एवं पारसा चढ़ाये। द्वादश विप्रों ने स्तुति की और ब्रह्माण्ड के स्वामी की सेवा में स्वयं को स्वीकृत करने के लिए प्रार्थना की। शिशु ने एक बार उनकी ओर देखा, वे क्षण भर के लिए मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा की अवस्था में उन्हें पृथ्वी पर जन्म लेने का आदेश प्राप्त हुआ। वे सचेत हुए और रामलला की जय पुकारी। और सब एक साथ शिशु को प्रणाम करते हुए बाहर निकल गये। जिस प्रकार अचानक आये थे उसी प्रकार वे अदृश्य हो गये। एकत्रित जनसमूह इस घटना से अत्यन्त प्रभावित हुआ। दिव्य पुत्र की प्राप्ति पर सबने वाजपेयीजी को बहुत अभिनन्दन दिये तथा प्रसन्न होते हुए सब विदा हुए। सर्वत्र आनन्द-मंगल व्याप्त हो गया।

कर्णोपकर्ण यह बात नगर भर में फैल गयी। स्नेहीजन प्रसन्नता से बधाई देने आवागमन करने लगे। दिशाएँ प्रफुल्लित हो गयीं, वन-बाग खिल उठे। मन्द सुगन्धमय वायु सबको आनन्दित करने लगी। गंगा-जमुना-सरस्वती की तरंगें उमड़-उमड़कर अपना आनन्द व्यक्त करने लगीं। धर्म-प्रेमियों को यह विश्वास हो गया कि यह दिव्य बालक ही विश्व को धर्म, मर्यादा एवं सौष्ठव का आलोक प्रदान करेगा।

इधर बालक ने बाल-क्रन्दन करके सबको मोहान्वित कर दिया। सर्व चमत्कार एवं घटनाओं को भूलकर परिवार सहित दम्पति शिशु के प्रति वात्सल्य रस में सराबोर हो गया तथा उसकी देखभाल में संलग्न हो गया।

शिशु के जातकर्म संस्कारार्थ वाजपेयीजी ने द्विज मण्डली के प्रमुख बालक वाराणसी अवस्थीजी को आमन्त्रित किया। बालक की अद्वितीय तेजोमय मुख-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुद्रा तथा अपूर्व जन्मकुण्डली देख अवस्थीजी चकित हो गये। सर्वगुणसम्पन्न तेजस्वी बालक का भविष्य बताते हुए उन्होंने कहा कि वह दिव्य बालक परमात्मा श्रीराम के समान ही अखिल विश्व में वन्दनीय बनेगा। महासमर्थ, ज्ञानी, योगी तथा विश्वविजयी विद्वान बालक परमात्मा श्री रामजी की कृपा से प्राप्त होने पर बालक का नाम रखा गया 'रामदत्त'। प्रसन्नतापूर्वक जातकर्म सम्पन्न करते हुए अवस्थीजी ने वाजपेयीजी को तीन सूचनाएँ दीं। दिव्य बालक की प्रत्येक रुचि का पालन करते हुए उसे तीन वर्ष तक मात्र दूध ही पिलाना, घर के बाहर न निकालना तथा दर्पण न दिखाना।

प्रसन्नचित्त बालक के पास जाते ही सर्व सुध-बुध खो बैठते थे। परिवारजन एवं स्नेहीजन का मन सदैव बालक के प्रति आकर्षित होता रहा। दिव्य शिशु अपनी अलौकिक बाल-क्रीड़ाओं से सबको अलौकिक आनन्द देता रहा। बालक को घर के बाहर निकालने पर प्रतिबन्ध होने से पास-पड़ोस वाले बच्चों से लेकर वृद्ध तक सब दिव्य बालक के साथ क्रीड़ा करके प्रेम रस से आप्लावित होने नित्य वाजपेयीजी के घर आते रहे।

एक बार एकवर्षीय बालक घुटनों के बल चलता हुआ घर के आँगन में पहुँच गया। एकान्त देखकर हनुमानजी बन्दर का रूप रखकर तथा काकभुशुंडीजी कौए के रूप में बालप्रभु के पास आये। उन्हें आँगन में खेलते देख ये दोनों भी उनके साथ खेल-कूद करने लगे। दिव्य बालक रामदत्त अपनी बाल-क्रीड़ा से उनको अधिकाधिक आनन्द देने लगा। उसी समय माता आँगन में आयी। उन्होंने देखा कि रामदत्त एक बड़े बन्दर की पूंछ पकड़कर खेल रहा है, पास ही एक कौआ बैठा है जो भाँति-भाँति की ध्वनि से बालक को आनन्दित कर रहा है। डरी हुई माता ने बन्दर को भगाना चाहा, परन्तु आश्चर्य! सर्वत्र उन्हें यही दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। व्याकुल माता वहीं बैठ गयी। माता को व्याकुल देख बालक ने लीला समाप्त की, घुटनों के बल सरकते हुए वह माता के निकट पहुँचा तथा माता के अंक में बैठ गया। माता सुशीलादेवी तुरन्त उसे लेकर घर में चली गयीं।

तदनन्तर यह नित्यक्रम बन गया। आँगन में खेलते हुए बालक के चार क-वर्गी साथी बन गये। कणिका, कपि, कीर और काग। माता मुखीदेवी भाँति-भाँति के खिलौने दिव्य पुत्र को प्रेमपूर्वक देतीं, काग खिलौने लेकर उड़ जाया करता तथा शिशु के मचलने पर तुरन्त दे देता। कपि सदैव अपनी उछल-कूद से बालक को आकर्षित करता। कुटिल मन वाले काग भी अपनी मलिन भावना का त्याग करके भगवत् भाव से विभूषित हो चुके थे क्योंकि अमरकाक काकभुशुंडी स्वयं अपने प्रभु की सेवा में नित्य उपस्थित रहते थे।

दिव्य बालक रामदत्त की मधुर लीलाएँ देख अभिभूत लोग वाजपेयी-दम्पति को दशरथ-कौशल्या एवं नन्द-यशोदा के समान ही भाग्यशाली मानते थे। वे स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी बालक के साथ धन्यता का अनुभव करते थे। उन्हें यही प्रतीत हुआ करता था कि वे भूतल पर नहीं, अपितु परमात्मा श्रीराम के नित्यधाम साकेत में ही निवास कर रहे हैं। मात्र दूध ही जिसका आहार रहा वह दिव्य बालक अब तीन वर्ष का होने वाला था।

उपदेश-त्रयी रूपी तीनवर्षीय अनुष्ठान किस प्रकार पूर्ण हुआ, यह भी दम्पति को ज्ञान न रहा। बाललीलाओं से परमानन्द में मगन वाजपेयीजी ने अब सनातन संस्कृतिनुरूप अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न करना निश्चित किया। चौथे वर्ष की पंचमी को बालक रामदत्त का अन्नप्राशन संस्कार निश्चित किया गया।

उस दिन अनेक प्रेमीजन, स्नेहीजन एवं भक्तजन वाजपेयीजी के घर आये। घर में उत्सव-सा वातावरण हो गया। अलौकिक बालक का स्नेहाकर्षण सबको बारम्बार यहाँ खींच लाता था। माता ने अनेक प्रकार के व्यन्जन तथा मिष्ठान्न बनाये। लौकिक तथा वैदिक विधि-विधान के पश्चात् चन्दन की पीठ पर बालक को गोद में लेकर माता बैठी। सामने भोग का थाल रखा गया। पूजन के अनन्तर बालक की रुचि जानने माता ने थाल से सब-कुछ थोड़ा-थोड़ा बालक को लेने का आग्रह किया परन्तु रामदत्त ने कुछ भी न लेते हुए खीर की ओर उँगली दिखायी। उसमें से थोड़ा पायस रामदत्त को दिया गया। तब से एकमात्र पायस-हविष-खीर ही रामदत्त का जीवनपर्यन्त आहार रहा। अतः वे बाद में 'हविष्यासी' के नाम से भी प्रख्यात हुए।

बालक शनैः-शनैः बड़ा होने लगा, अब उसकी ब्रह्मदीक्षा का समय भी हो चुका था। पिता ने महाशिवरात्रि का दिन निश्चित किया। ब्रह्मदीक्षा के लिए उपयुक्त बनाने दशादिशिदेव को प्रसन्न करने वाला कर्णवेध संस्कार करने घर पर सुनार बुलाया गया। माता बालक को खीर खिलाने लगी और सुनार कान छेदने की ताक में लगा। परन्तु पिता पुत्र को भुलावे में डालकर ऐसा करना नहीं चाहते थे। उन्होंने सोने की छोटी बालियाँ दिखाकर बालक से कहा, "भैया, इन्हें कानों में पहनोगे ?" बालक ने प्रसन्नता से स्वीकृति दे दी। स्वयं कान पर हाथ रखे, नेत्र बन्द किये और समाधिस्थ हो गया। अवसर पाकर सुनार ने कान छेदकर बालियाँ पहना दीं। पूर्ण स्वस्थता से रामदत्त ने नेत्र खोले जैसे स्वप्न से जागा हो। माता-पिता सहित सर्व सम्बन्धी आश्चर्यचकित होकर देखते रहे। बालक ने जल माँगा, पिता ने जल पिलाया। दोनों अपने प्रिय पुत्र को अंक में लेकर प्यार करने लगे। तदनन्तर ब्रह्मदीक्षा की सर्व विधि सम्पन्न हुई।

एक दिन वाजपेयीजी प्रातःकाल स्नानादि ने निवृत्त होकर गृहमन्दिर में नित्य नियम में बैठे थे। बालक रामदत्त खेलता हुआ वहाँ आया तथा पूजन में रखा दिव्य दाहिनावर्त शंख उठाकर जोर से बजाने लगा। चारवर्षीय बालक का शंखनाद सुन माता-पिता सहित परिवारजन आश्चर्यचकित हो गये। यह वही शंख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था जो माता सुशीलादेवी को भगवान श्री वेणीमाधव ने प्रसाद में दिया था। पिता को बालक का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा, किन्तु बालक की रुचि का पालन करना अपना कर्तव्य समझ वे कुछ न बोले। चतुर बालक ने पिता की अनिच्छा देख शंख पुनः मन्दिर में रख दिया तथा माता के पास चला गया।

उस रात्रि को वाजपेयीजी को स्वप्न में श्री वेणीमाधव भगवान के साक्षात दर्शन हुए तथा उनका आदेश मिला कि वह दिव्य शंख बालक के लिए ही उन्हें दिया गया है अत. रामदत्त को शंख लेने से न रोका जाय।

दूसरे दिन प्रातःकाल पूजन के समय पिता ने स्वयं बालक को बुलाया तथा शंख देकर बजाने के लिए कहा। रामदत्त ने प्रसन्नता से शंख लिया तथा लम्बे समय तक सुमधुर नाद से शख बजाता रहा। दिव्य शंख से गुंजारित वह अमृतनाद लोगों के कर्ण से हृदय तक प्रवेश कर गया तथा सबको परमानन्द का रसास्वादन कराता रहा। इस दिव्य नाद को सुनकर अन्य लोग भी वहाँ एकत्रित हो गये। दिव्य बालक के हाथों में दिव्य शंख! सुमधुर दिव्य ध्वनि! देखने वाले धन्य हो गये, सुनने वाले धन्य हो गये। बालक ने शंखनाद बन्द किया परन्तु लोगों की दिव्य नाद सुनने की पिपासा शान्त नहीं हुई, अतः बालक ने नित्य चार बार शंख बजाना स्वीकार किया।

प्रतिदिन नियमपूर्वक रामदत्त प्रात.काल, दोपहर, सन्ध्याकाल तथा रात्रि में दिव्य नाद गुंजारित करता रहा। इस मनोहर स्वर-विन्यास को सुनकर लोग मोहित होते रहे, पुन.-पुनः इस नाद को सुनने गोपियों की भाँति व्याकुल रहने लगे।

समय व्यतीत होता गया। शनैः-शनैः बढ़ता हुआ रामदत्त अब पाँच वर्ष का हो गया। प्रकाण्ड पण्डित वाजपेयीजी चार वेद, चार उपवेद, अष्टांग व्याकरण एवं अष्टांग योगमार्ग के प्रमुख विद्वान माने जाते थे। अपने पुत्र को भी प्रकाण्ड पण्डित बनाने की वे इच्छा रखते थे। अतः उन्होंने श्रीमद् वाल्मीकि रामायण का अनुष्ठान आरम्भ किया। प्रिय पुत्र को नित्य निकट बैठाकर रामायण के कुछ सर्गों का वे पाठ करते रहे तथा रामदत्त एकाग्र चित्त से सब सुनता रहा। सुधीर बालक की श्रवण एवं धारण शक्ति ऐसी सुचारु रूप से विकसित थी कि पिता जितने सर्गों का पाठ करते, रामदत्त को कण्ठस्थ हो जाया करते थे। सुने हुए पाठ को नित्य सायंकाल अपने सुमधुर कण्ठ से वह माता तो सुनाया करता था। माता-पिता स्वपुत्र की बुद्धि एवं गृहणशक्ति देख आनन्दविभोर हो जाते थे।

ग्रन्थ की समाप्ति पर अनुष्ठान विसर्जन हुआ। अपने छह वर्षीय पुत्र की प्रतिभा से प्रसन्न वाजपेयीजी ने प्रसिद्ध विद्वानों की सभा बुलायी। अनेक नामी विद्वानों की उपस्थिति में छोटे-से बालक ने सुमधुर कण्ठ से निःसंकोच रामायण का सस्वर गान प्रारम्भ किया। छह वर्षीय दिव्य बालक के सुरीले कण्ठ से शुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत पाठ सुनकर पण्डितगण विस्मित एवं चकित रह गये। सस्वर गान सुन वे इस प्रकार मुग्ध हुए जिस प्रकार लव-कुश के गान से अयोध्या की राजसभा हुई थी। प्रातः से सायंकाल हुआ, किन्तु न गाने वाला श्रमित हुआ न ही सुनने वाले शान्त। अतः पुनः दूसरे दिन सभा बुलायी गयी। पण्डितों की लालसा ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, प्रतिदिन सभा बैठती गयी।

रामदत्त की कीर्ति दूर-सुदूर तक व्याप्त हो गयी। अनेक लोग दूर-दूर से बालक के सुमधुर कण्ठ से रामायण का सस्वर पाठ सुनने के लिए आने लगे। सभा में सदैव धन्य ! धन्य ! की ध्वनि गूँजती रही। इस अद्भुत बालक ने थोड़ा-थोड़ा करके सम्पूर्ण ऋषिकाव्य संस्कृत में मुखाग्र सुनाया। इस प्रतिभावान तेजस्वी दिव्य बालक का प्रयाग के पण्डितों ने सस्नेह सन्मान किया। उसके माता-पिता की भी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। माता-पिता का आनन्द अपरिमित हो गया। किन्तु रामदत्त प्रशंसा को तटस्थ भाव से सुनता रहा।

बालक की तेजस्विता देख पिता का उत्साह अत्यधिक हो गया। नित्य कोई न कोई ग्रन्थ उन्होंने रामदत्त को सुनाना आरम्भ किया। रामदत्त बालसहज चंचलता छोड़ गम्भीर होकर ग्रन्थ की आध्यात्मिक चर्चाएँ रुचि एवं प्रेमपूर्वक सुनकर हृदयंगम करने लगा। उसकी आयु के अन्य कुमार यह देख अत्यन्त आश्चर्य करने लगे। इस प्रकार छह से आठ वर्ष की आयु तक रामदत्त को श्रीमद्रामायण, श्रीमद्भागवत् और मनुस्मृति कण्ठस्थ हो गये।

(2)

आठवें वर्ष पर उपनयन संस्कार की तैयारी आरम्भ हुई।

माघ शुक्ल द्वादशी को यज्ञोपवीत-संस्कार निश्चित किया गया। उस दिन वाजपेयीजी के घर स्नेही-सम्बन्धियों के साथ-साथ अनेक प्रसिद्ध विद्वान्, पण्डितगण तथा प्रशंसकों का बहुत बड़ा समूह एकत्रित हो गया। शास्त्रोक्त विधि से रामदत्त का मुण्डन संस्कार करके, ब्रह्मचारी के वस्त्र पहनाये गये। आप्तजनों ने स्वस्ति वचनों से तथा दर्शकगणों ने पुष्प वर्षा से बालक का स्वागत किया। स्त्रियों ने मधुर मंगल गीत से सारा मण्डप गुंजारित कर दिया। तेजस्वी बालक का तेज ब्रह्मचारी के श्वेत वस्त्रों में अनुपम हो गया। जनसमुदाय अपने प्रिय दिव्य बालक को वात्सल्य रस से आप्लावित करता रहा।

कर्मकाण्डी ब्राह्मणों द्वारा रामदत्त को विधिपूर्वक यज्ञोपवीत पहनाया गया। आचार्य की आज्ञानुसार दण्ड-कमण्डल एवं यज्ञोपवीत से शोभित बटुक ने सबसे भिक्षा माँगी। तदनन्तर लौकिक विधानानुसार उपनीत ब्रह्मचारी को पलाश-दण्ड लेकर अध्ययन हेतु काशी जाने की आज्ञा की गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय एक अपूर्व घटना घटी। मात्र विधानपूर्ति हेतु करने वाली विधि के अनुसार बटुक को पलाश-दण्ड सहित काशी जाने का आदेश दिया गया, किन्तु बालक वास्तव में काशी की ओर चल निकला। आचार्यों एवं सबन्धुओं के बहुत समझाने पर भी अपने दृढ़ निश्चय पर वह अटल रहा।

जब स्वपुत्र की काशी जाने की तीव्र इच्छा देखी तो विवश होकर पिता को भी काशी जाने का निश्चय करना पड़ा। काशी में बालक के मामा ओंकारेश्वरजी रहते थे, जो न्यायशास्त्र एवं व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित माने गये थे। माता-पिता सहित कुछ प्रेमीजन भी काशी यात्रा करने के बहाने साथ चलने के लिए उत्सुक हुए। इस प्रकार एक बहुत बड़ा संघ प्रयाग से काशी जाने निकला।

ब्रह्मचारी रामदत्त के साथ परिवार एवं स्नेहीजन जब जंगलों के विकट मार्ग पर पहुंचे, तो उन्होंने देखा कि साधन-सम्पन्न अनेक परिवार अपना घर-कार्य-व्यापार छोड़कर जंगलों में छिपे हुए हैं। उनसे मिलते तथा उनका समाचार पूछते हुए उनको ज्ञात हुआ कि दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के शासन में हिन्दू प्रजा पर भीषण अत्याचार हो रहे थे। धर्म के नाम पर विधर्मी प्रजा हिन्दू धर्मावलम्बियों पर असह्य यातना, भाँति-भाँति के अपमान तथा धर्म-परिवर्तन कराने नित्य नयी-नयी युक्तियाँ प्रयोग करते थे। उनके डर से वे साधन-सम्पत्ति लेकर व्यापार-धन्धा छोड़कर जगलों में छिपे हुए थे।

आगे बढ़ते हुए संघ का कुछ ब्राह्मण परिवारों से मिलन हुआ। वे भी विधर्मी आततायियों के डर से जंगलों में रुके हुए थे। बालक रामदत्त यह देख अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गया। कोई भी धर्म अन्य व्यक्तियों से दुर्व्यवहार किस प्रकार सिखा सकता है यह उसकी समझ में नहीं आया। अपने पिता से उसने इस विषय पर चर्चा भी की। एक विद्वान वृद्ध ब्राह्मण से, जो दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश से भागकर यहाँ पहुँचे थे, यह चर्चा सुनी।

नवनीत ब्रह्मचारी बालक की अमाप जिज्ञासा देख वृद्ध ब्राह्मण तेजस्वी बालक के निकट आये तथा प्रेम से उसके मस्तक पर हाथ रखकर बोले :

"वत्स ! तुम्हारी बात उपयुक्त ही है। कोई भी धर्म कभी किसी भी व्यक्ति से दुर्व्यवहार करना नहीं सिखा सकता। हमारी सनातन संस्कृति मानव तो क्या, पशु-पक्षी एवं वृक्षों से भी प्रेम-सौहार्द की भावना सिखाती है। परन्तु म्लेच्छों की संस्कृति ही दोषपूर्ण है। उनका पवित्र ग्रन्थ कुरान ही उन्हें अन्य धर्मावलम्बियों से दुर्व्यवहार करने का आदेश देता है।"

"नहीं तात ! ऐसा नहीं हो सकता।"

"हाँ वत्स ! मैंने पवित्र कुरान का आदर से पाठ किया है। उसमें कुछ आयतें ऐसी हैं जो अनुयायियों को उत्तेजित करती हैं। उदाहरण स्वरूप;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

— फिर जब हराम के महीने बीत जायें तो मश्रिकों को, जहाँ कहीं पाओ कत्ल करो और उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो। और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो, फिर यदि वे तौबा कर नमाज कायम करें और जकात दें तो उनका मार्ग छोड़ दो, बिस्सन्देह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है।

(पार: 10, सूर. 9, आयत 5)

— जिन लोगों ने हमारी आयतों का इन्कार किया है उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खालें पक जायेंगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे यातना का रसास्वादन कर लें। (5-4-56)

— हे इमान लाने वालो (मुसलमानो)! अपने बापों और भाइयों को भी अपना मित्र मत बनाओ यदि वह इमान की अपेक्षा कुफ्र को पसन्द करें और तुममें से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा तो ऐसे ही जालिम होंगे।"

(10-7-83)

"बस-बस, तात! आगे न सुनाइये।" बालक बोला, "परमात्मा श्रीराम उन सबको सद्बुद्धि प्रदान करें।"

बालक रामदत्त को अत्यन्त कष्ट हुआ। देश एवं धर्म पर आये संकट से वह खिन्न हुआ। इस विषय में क्या-क्या करना चाहिए यह चर्चा करते-करते एक दिन संघ काशी पहुँच गया।

पुण्यसलिला गंगाजी के तट पर बसी हुई रमणीय, वन्दनीय काशी मोक्ष-दायिनी पवित्र सप्तपुरियों में एक है। माँ-गंगा के पवित्र जल से स्नानादिक के पश्चात् संघ भगवान विश्वनाथ के दर्शनार्थ गया तथा अपने श्रद्धासुमन वहाँ अर्पित किये।

तदनन्तर ब्रह्मचारी रामदत्त माता-पिता के साथ मामा के घर पहुँचा। ओंकारेश्वरजी स्वयं काशी के विख्यात पण्डित थे। न्यायशास्त्र एवं व्याकरण में उनकी तुलना कोई नहीं कर सकता था। अन्य शास्त्रों का भी उन्होंने सांगोपांग अध्ययन किया था। तदुपरान्त उपनीत ब्रह्मचारी बटुक को उन सबने किसी उपयुक्त गुरुकुल में रखना चाहा। जहाँ भी ब्रह्मचारी बालक को ले गये, आचार्यों से ऐसे गहन प्रश्न वह करता कि वे निरुत्तर एवं मौन हो जाते और इस तेजस्वी बालक को शिक्षा देने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते।

तेजस्वी, प्रभावशाली बालक अपनी प्रखर प्रज्ञा से काशी में भी प्रसिद्ध हो गया। बालक के दिव्य जन्म की बातें तथा तीव्र बुद्धिमत्ता एवं ग्रहणशक्ति से काशी के नामी विद्वान भी उससे अभिभूत हुए। कर्णोपकर्ण काशी के लोगों में भी यह बातें प्रचलित होने लगीं अतः श्रद्धालु लोग दिव्य तेजोमय बालक के दर्शनार्थ मामा ओंकारेश्वरजी के घर आने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मचारी रामदत्त को प्रारम्भिक शिक्षा तो पिता से ही प्राप्त हुई थी। अब मामा सहित प्रसिद्ध विद्वानों ने विधि-विधान सहित वेद-वेदांग का अध्यापन शुरू किया। अत्यन्त कठिन तर्कशास्त्र, मीमांसा, योग एवं सांख्यशास्त्र का ज्ञान अल्पावधि में ही ब्रह्मचारी ने प्राप्त कर लिया। समस्त वेद एवं रहस्य सहित पुराण तथा अलंकारशास्त्र सहित काव्यों का भी सम्यक अध्ययन हुआ। न्याय एवं व्याकरण की शिक्षा मामा स्वयं उत्साहपूर्वक देते थे।

अब तो कुमार का मधुर मुख अलौकिक कांति से विभूषित हो गया। उसे देखने तथा मिलने मामा के घर मेला-सा लगने लगा। इससे त्रस्त होकर ब्रह्मचारी कुमार ने सबसे मिलना बन्द कर दिया। बहुत आग्रह पर मात्र इष्ट तथा मित्रों से ही वे मिलते थे। कहीं बाहर जाना भी बन्द हो गया।

कुमार की आयु अब ग्यारह वर्ष की हो चुकी थी। प्रचलित प्रथानुसार अब उनका विवाह करना आवश्यक हो गया। अतः पिता ने रूप, गुण एवं शील में कुमार के योग्य 'शांडिल्य' गोत्र में उत्पन्न एक सुन्दर कन्या 'सालवी' से रामदत्त का विवाह निश्चित किया। पिता ने न तो पुत्र को पूछने की आवश्यकता समझी, न ही पुत्र को इस स्थिति का ज्ञान हुआ।

एक दिन काशी से दूर काली खोह में रहने वाली एक प्रसिद्ध विदुषी वृद्धा कुमार से मिलने आयी। वह ऐसी कठिन संस्कृत भाषा बोलती थी कि उसके तात्पर्य को सुधीगण भी कठिनाई से समझ पाते थे। कुमार रामदत्त ने वृद्धा को सविनय प्रणाम किया और उसके निकट बैठ गये। वृद्धा ने सप्रेम कुमार के मस्तक पर हस्त रखा और कुशल समाचार पूछे। तदनन्तर उन्होंने कुमार से तीन प्रश्न पूछे। वह बोली :

"प्रिय रामदत्त ! यह बताओ कि वह कौन नारी है जो पुरुष के लिए छिप-छिपकर नाना प्रकार के भोग प्रस्तुत करती रहती है। जब पुरुष उसे एक बार भी देख लेता है तो वह सदा के लिए लुप्त हो जाती है।"

वृद्धा की बात का तात्पर्य उपस्थित कोई न समझ सका, किन्तु कुमार ने सहजता से करबद्ध होकर कहा, "माता ! वह नारी माया है, जो देहरूपी इन्द्रियों में छिपकर आत्मारूपी पुरुष को नाना प्रकार के भोग नित्य प्रस्तुत करती है तथा लुभाती रहती है और जीव को बन्धन में डालती है। परन्तु अगर जीव एक बार भी स्वरूप को पहचान ले, अर्थात् माया के मिथ्या स्वरूप को देख ले, तो माया सदा के लिए लुप्त हो जाती है। तदनन्तर वह जीव को बन्धन में नहीं बाँध सकती।"

वृद्धा प्रसन्न हो गयी। जैसा सुना था वैसा ही तेजस्वी कुमार को उन्होंने पाया। वह वात्सल्य से कुमार के अंग पर हस्त फेरती रही। काली खोह में रहकर यह विदुषी वृद्धा परमात्मा की साधना में नित्य संलग्न रहती थी। वर्तमान समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से अलिप्त वृद्धा एक दिन साधना के लिए बैठी तब उसे अलौकिक आनन्द हुआ। ध्यान के अन्तर्गत उसको अनन्त ब्रह्माण्ड के स्वामी चराचरनायक धनुर्धारी परमेश्वर श्रीराम के साक्षात दर्शन हुए। वृद्धा की साधना सफल हो गयी। प्रभु श्रीराम ने उन्हें आदेश दिया कि काशी जाकर कुमार रामदत्त को विवाह करने से सचेत किया जाय क्योंकि उनका यह जन्म धर्मसंस्थापन एवं देशकार्य हेतु हुआ है। वात्सल्य रस में आप्लावित वृद्धा को सुधि आयी। उन्होंने कुमार से पुनः प्रश्न किया :

"प्रिय पुत्र ! उस नारी से विवाह करना चाहोगे ?"

कुमार चौंके। शीघ्र ही उनके अन्तर में यह बात आयी कि वृद्धा अकारण नहीं आयी है। अवश्य वह उनको सचेत करने आयी है। कुछ सोचकर कुमार ने सहसा प्रत्युत्तर दिया :

"माते ! वह माया रानी तो अन्धी है, उसमें आनन्द का अभाव है। जो माया के साथ विवाह करने की इच्छा करता है, जो माया का बन्धन स्वीकार करता है, वह अन्धा होकर विषयरस के नाना प्रकार के भोग में ही निमग्न हो जाता है। वह अन्धा मनुष्य परमात्मा के परमार्थ पथ पर चलने के लिए पंगु हो जाता है। विषयभोग की लालसा सदैव उसके परमार्थरूपी मार्ग को अवरुद्ध करती है।"

उपर्युक्त उत्तर सुन वृद्धा ने अर्थसमर नेत्र से पुनः प्रश्न किया, "हे वत्स ! क्या आजीवन ब्रह्मचारी रहना चाहोगे ?"

वृद्धा अवश्य् कुछ संकेत दे रही थी। कुछ क्षण मौन के पश्चात कुमार करबद्ध हुए तथा बोले :

"हाँ माता ! आप ऐसा ही आशीर्वाद दीजिये।"

वृद्धा ने कुमार को अंकमाल दिया। कुमार के माता-पिता को कुमार की रुचि का पालन करने की आज्ञा देती हुई वृद्धा वहाँ से पुनः लौट गयी।

यह बात सुनकर वाजपेयीजी खिन्न हो गये। वे तो कुमार का विवाह निश्चित कर चुके थे। अब उन सबको वे किस प्रकार समझायेंगे ? वे उठकर कुमारिल मीमांसा ले आये जिसमें यह स्पष्ट रूप से लिखा था कि जीवन में एक बार विवाह करके गृहस्थाश्रम अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

करबद्ध होकर कुमार ने कहा, "हे तात ! हम विवाह के बन्धन में पड़कर देश की इस संकटापन्न स्थिति में धर्म कार्य हेतु आवश्यक योगदान नहीं दे पायेंगे। आपका विधान यद्यपि श्रुति सम्मत है, किन्तु तीव्र वैराग्य वालों के लिए ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे ही सन्यस्ताश्रम का भी तो श्रुति का ही आदेश है।

"यदहरेव विरज्ये तदहरेव प्रवजेत।"

भारत में बढ़ती हुई धर्मग्लानि को रोककर अधर्म को दूर करके धर्मसंस्थापन करना ही हमारा जीवन लक्ष्य है। हिन्दुओं की दयनीयता, लोगों की सद्धर्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमुखता, नास्तिकवाद का प्रकोप, वेदों का तिरस्कार, हिंसा-व्यापार एवं म्लेच्छों के अत्याचार के इस भीषण युग में संस्कृति की रक्षा हेतु विवाह करने के लिए हमें बाध्य न करने की हम प्रार्थना करते हैं।"

किन्तु पिता का प्रेम कैसे यह मान लेता? उन्होंने कुमारिल मीमांसा से कुछ श्लोक सुनाये परन्तु कुमार विचारों में निमग्न हो गये। वे सोचने लगे कि देश एवं धर्म दोनों ही आज संकटग्रस्त हैं। विधर्मी म्लेच्छों की दुष्ट दानवलीला से तथा अमानुषी अत्याचार से उत्पीड़ित हैं। तलवारों की नोंक पर धर्म-परिवर्तन कराने वाले यवनों के भय से अनेक परिवार जंगलों में छिपे हुए हैं। अनेक लोग अपमानित स्थिति में जीवन निर्वाह कर रहे हैं। यदि इस समय मुस्लिम धर्मांधता को रोका नहीं गया तो सनातन संस्कृति का मूलोच्छेदन हो जायेगा। कुमार सोचते रहे, पिता कुमारिल मीमांसा सुनाते रहे। जब कुमार ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया, तो पिता ने सोचा कि पुत्र संकोच एवं मर्यादावश कोई उत्तर नहीं दे रहा है। अतः वे निजकार्य में व्यस्त हो गये। उन्हें व्यग्रता मात्र उस परिवार के लिए थी, जहाँ कुमार का विवाह निश्चित किया गया था।

(3)

इधर जिस बालिका से कुमार का विवाह निश्चित हुआ था, उस कन्या 'सालवी' ने एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि कुमार से विवाह होते ही वह विधवा हो जायेगी। यवन पीड़ित समाज में विधवा जीवन व्यतीत करना अत्यन्त दुष्कर था। अतः बालिका ने आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने का दृढ़ संकल्प किया।

स्वप्न का वृत्तांत उसने अपने परिवारजनों को सुनाया, परन्तु सम्बन्धियों ने कन्या को समझाया कि स्वप्न सदैव सत्य नहीं हुआ करते। तदुपरान्त भी कन्या अपने संकल्प में दृढ़ रही। छोटी-सी सुन्दर बालिका ने अन्नाहार का सम्पूर्ण त्याग किया तथा मात्र लौंग खाकर रहने लगी। बालिका का तपानुराग देखकर लोग पार्वती की उग्र तपस्या का स्मरण करने लगे।

बालिका का दृढ़ संकल्प एवं तपानुराग देख वैदिकों ने कहा कि किसी योग्य गुरु से दीक्षा लेने के बाद ही कन्या को तप-अनुष्ठान करना चाहिए। यह सुनकर सालवी ने निश्चय किया कि जिस तेजस्वी विप्रकुमार से उसका विवाह होने वाला था उसी से दीक्षा लेना उचित है। अपना निर्णय विप्रकुमारी ने पिता को सुनाया तथा दीक्षार्थ कुमार के पास जाने की इच्छा व्यक्त की। पुत्री की प्रसन्नता हेतु पिता तुरन्त कुमार के पास जाने को तैयार हुए। शुभ मुहूर्त देख पिता-पुत्री तथा अन्य विद्वान ब्राह्मणगण तेजस्वी कुमार से मिलने वाजपेयीजी के घर पहुंचे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमार रामदत्त विद्याध्ययन के बाद एकान्त स्थान में बैठ नित्य साधना में निमग्न रहते थे। काशी से थोड़ी दूर गंगाजी का एक निर्जन घाट, पंचगंगाघाट था। कुमार को सघन वृक्षों से भरपूर भगवती भगीरथी के तट का यह स्थान अत्यन्त प्रिय था अतः समय-समय पर वे इस घाट पर साधना हेतु आते थे। जन्म से ही विरक्त यह अलौकिक दैवी बालक यज्ञोपवीत संस्कार पश्चात् मात्र श्वेत वस्त्र ही पहनता था। उनकी धीर-गम्भीर परन्तु सौम्य प्रतिभा से अनेक लोग अभिभूत होते रहे थे तथा माता-पिता की प्रशंसा करते रहे थे।

जब सालवी अपने पिता सहित वाजपेयीजी के घर पहुँची, कुमार पंचगंगाघाट पर साधनारत थे। सालवी के पिता ने वाजपेयीजी से पुत्री का स्वप्न, उसका संकल्प तथा कुमार को गुरु बनाने का निर्णय सुनाया। पिता ने इन घटनाओं में परमात्मा की इच्छाओं को फलीभूत होते हुए देखा।

सालवी तथा उसके पिता को लेकर मामा ओंकारेश्वरजी पंचगंगाघाट पर गये। क्योंकि रामदत्त का आने का कोई निश्चित समय नहीं था। अतः सम्पूर्ण ब्राह्मण वर्ग भी उनके साथ पंचगंगाघाट गया, क्योंकि वे इस निमित्त से तेजस्वी कुमार को देखना चाहते थे।

काशी से निकलकर खेतों में होते हुए गंगाजी के किनारे-किनारे जब वे आगे बढ़े तो स्थान पूर्णतः निर्जन बनता गया। अब तो सघन वृक्षों से भरा जंगल ही आ गया था। निर्मल गंगाजी कलकल करती बह रही थीं, पक्षियों की सुमधुर ध्वनि से वातावरण में अद्भुत सुन्दरता व्याप्त थी। यहाँ पहुँचते ही सबके चित्त में एक दिव्यता का आभास हुआ। पंचगंगाघाट अब निकट ही आ गया था।

सबकी दृष्टि वृक्ष के नीचे आसन लगाकर समाधिस्थ कुमार रामदत्त की ओर गयीं। छोटी-सी आयु वाले स्वभाव सिद्ध इस तापस कुमार को देखते ही सबके मन में आदर भाव स्वतः उत्पन्न हो गया। कुमार की प्रशांत एवं तेजस्वी मुखमुद्रा देख पण्डितगण भी प्रभावित थे। वृक्षों से छनकर आती हुई सूर्यकिरन ध्यानस्थ बालमुनि के देह को अत्यधिक तेजपूर्ण बना रही थी। सालवी का निर्णय अब सबको उचित लगा।

मामा ओंकारेश्वरजी आगे बढ़े तथा ध्यानस्थ कुमार के निकट पहुँचकर उसके मस्तिष्क पर हस्त रखकर सप्रेम बोले, "उठो वत्स !" मृदु स्पर्श एवं स्वर से कुमार के कमल पुष्प की पंखुरियों समान विशाल नेत्र खुल गये। इस निर्जन स्थान पर इतने लोगों को देख बालमुनि को अत्याश्चर्य हुआ।

तुरन्त उठकर वे खड़े हुए तथा विनम्रता सहित मामा एवं सर्व ब्राह्मणों के चरण-स्पर्श किये। इस विनम्रता से विप्रवर्ग अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मामा ने सबका परिचय दिया तथा यहाँ आने का प्रयोजन सुनाकर अन्त में कहा :

"प्रिय पुत्र ! यह कन्या अब आजीवन ब्रह्मचारिणी रह तप-साधन करने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

दृढ़ संकल्प कर चुकी है और गुरु रूप में यह तुम्हारा चयन कर चुकी है। अतः उसे दीक्षा देकर कृतार्थ करो।"

कुमार शुरू से ही संकोचशील थे। उन्होंने इस कार्य के लिए सकोच प्रकट किया परन्तु कन्या, उसके पिता एवं प्रभावित विप्रवर्ग की प्रार्थना पर कुमार सालवी को दीक्षा देने को तैयार हुए।

बालमुनि के प्रस्ताव स्वीकार करने पर सालवी अत्यन्त प्रसन्न हो गयी। पिता की आज्ञा लेकर हाथ में समिधा लिए वह आगे बढ़ी तथा आसन पर विराजमान बालमुनि को प्रणाम किया। लवंग आहारिणी इस बालिका को कुमार ने कुश से स्पर्श किया तथा सदैव साथ रहने वाला दिव्य दाहिनावर्त शंख बजा दिया।

धीर-गम्भीर दिव्य शंखनाद कानों में प्रवेश होते ही कन्या समाधिस्थ हो गयी। पात्रता तो वह पहले ही प्राप्त कर चुकी थी, उस पर सक्षम गुरु की प्राप्ति हुई; अतः दीक्षा का फल तत्काल प्राप्त हुआ। सालवी का चित्त एकाग्र बन अन्तरगुहा में प्रवेश कर गया, उसे अगले 10 जन्मों का ज्ञान हुआ। अखिल ब्रह्मांड के साथ जगत्जननी जगदम्बा श्री जानकीजी के साक्षात दर्शन हुए। परमानन्द में सराबोर वह कुछ समय पश्चात् सचेत हुई।

उठकर अपने पिता, अन्य विप्रवर्ग एवं सद्गुरु को पुनः प्रणाम किया। अपना अनुभव गम्भीरता से पिता को सुनाया तथा पुनः उसी आनन्द रस में गोता लगाने समाधिस्थ हो गयी। सालवी के पुनः समाधिस्थ होकर बैठने पर पिता एवं अन्य विप्रवर्ग उसे जगाकर चलने का परामर्श करने लगे।

तभी एक आश्चर्यकारक घटना घटी। सबने देखा कि ब्रह्मांड फटा तथा सालवी से एक दिव्य ज्योति निकलकर रविमण्डल में विलीन हो गयी। सालवी को मोक्ष प्राप्ति हो गयी। उसका स्थूल देह निश्चेष्ट हो गया। पिता को अत्यन्त दुःख हुआ परन्तु पुत्री की मोक्ष गति देख उन्होंने स्वयं को सँभाल लिया। विप्रवर्ग इस घटना को देख विस्मित एवं चकित रह गये। बालमुनि की दिव्य बालक के रूप में चमत्कारिक चर्चाएं बहुत सुनी थीं, किन्तु आज तो उसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। वे सब बालमुनि को प्रणाम करने लगे, परन्तु वे तो पुनः समाधिस्थ हो चुके थे।

सालवी का निश्चेष्ट देह लेकर पिता सहित अन्य लोग वहाँ से पुनः स्वस्थान लौट गये।

यह अलौकिक चमत्कारिक घटना कर्णोपकर्ण काशी में सर्वत्र व्याप्त हो गयी। घर-घर में नर-नारी, युवा-वृद्ध इसी की चर्चा करने लगे। ओंकारेश्वरजी ने भी यह घटना घर जाकर वाजपेयीजी एवं अपनी बहन को सुनायी।

सालवी की मोक्ष प्राप्ति का सर्वप्रथम प्रभाव कुमार के माता-पिता के हृदय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर पड़ा। जन्म से लेकर एक-एक घटना का स्मरण करते हुए उन्हें विश्वास हो गया कि उनका पुत्र दिव्य बालक मात्र नहीं, स्वयं भगवान का अवतार है। दोनों ने बड़प्पन का त्याग करके पुत्र की शरण में जाने का तथा दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। क्योंकि जीवन में आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए गुरु की आवश्यकता को वे जानते थे।

(4)

भारतवर्ष के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में आदिकाल से आधिपत्य जमाने वाले परब्रह्म परमेश्वर श्री रामचन्द्र एवं जगत्जननी श्री जानकीजी को इष्ट मानने वाला एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय 'श्रीसम्प्रदाय' प्राचीन समय से अस्तित्व में है। जगदम्बा श्री जानकीजी द्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों ने समय-समय पर देश-काल-परिस्थिति के अनुसार भारत की जनता को सक्षम मार्गदर्शन प्रदान किया है। आदिकाल से प्रचलित इस सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा के वर्तमान आचार्य जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्य निजकुटीर में बैठ स्वसाधना में निरत थे। अपने योगबल एवं धर्मनिष्ठा के लिए सुप्रसिद्ध ये तपोनिष्ठ महात्मा समय-समय पर विचरण करके साधारण जनता को धर्मलाभ देते रहे थे।

चक्र पर स्थित काशीपुरी, जो भगवान विष्णु की केशवपुरी के नाम से विख्यात थी, उन्हें अधिक आकर्षित करती रही थी। भगवान विश्वनाथ के दर्शनार्थ वे अनेक बार काशी आ चुके थे, क्योंकि स्वयं विश्वनाथ भी उनके इष्ट प्रभु श्री रामजी का निरन्तर जप करते हुए लोगों को मोक्ष प्राप्ति देते रहे थे। आज साधना में उनका चित्त पुनः-पुनः विचलित हो रहा था।

ध्यानावस्था में ज्ञात हुआ कि भगवान काशीविश्वनाथ बारम्बार उन्हें बुला रहे हैं। भविष्य की कुछ घटनाओं को ध्यानावस्था में देख प्रकृति की प्रेरणा से जगद्गुरु तुरन्त सावधान हो गये। विश्व के इस रंगमंच पर उनको निमित्त बनाकर परमात्मा ने कुछ विशिष्ट कार्य उन्हें प्रदान किया था। जगद्गुरु ने साधना छोड़ मात्र एक-दो प्रमुख शिष्यों को साथ लेकर काशी की ओर प्रस्थान किया।

उनके तेजस्वी मुखमण्डल एवं योगशक्ति से अनेक लोग पहले भी प्रभावित हो चुके थे। काशी में भी अनेक धर्मप्रेमी जनों ने उनसे दीक्षा प्राप्त कर रखी थी। उनके आगमन से काशी के श्रद्धालु लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये। अनेक लोग उनके दर्शनार्थ गये। ओंकारेश्वरजी भी वाजपेयीजी के साथ महात्मा के दर्शनार्थ गये। उन्होंने आज के चमत्कार की बात जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी से कही। कुछ क्षण के लिए तेजस्वी महात्मा ध्यानस्थ हो गये। उनके मुखमण्डल पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसन्नता एवं विषाद की मिश्रित रेखा उभर आयी। वे इस विषय में कुछ नहीं बोले। दर्शन करके सब अपने घरों को लौट गये।

(5)

दूसरे दिन प्रातःकाल वाजपेयीजी एवं मुखीदेवी ने स्वपुत्र से दीक्षा लेने का निर्णय लिया। स्नानादि से निवृत्त होकर माता-पिता पंचगंगाघाट जाने को तैयार हुए। मामा ओंकारेश्वरजी भी उनके साथ चले। उनको जाते हुए देख अन्य सम्बन्धी एवं श्रद्धालु लोग भी बालमुनि के दर्शनार्थ उनके साथ चल दिये। बहुत बड़ा समूह पुनः पंचगंगाघाट पर पहुँच गया।

बालमुनि कभी-कभी रात्रि-भर साधना में लगे रहते थे, अतः बहुत बार रात को भी घर नहीं लौटते थे। जब यह समूह घाट पर पहुँचा तो ध्यानस्थ कुमार ने पदध्वनि सुनकर आँखें खोलीं। उन्होंने माता-पिता के साथ अन्य लोगों को देखा तो उठकर वे अपने माता-पिता को चरण-स्पर्श करने लगे।

परन्तु पुत्र को रोकते हुए पिता बोले, "देव! क्यों हमें अधिकाधिक मोहान्वित कर रहे हो? अब तो हमें विश्वास हो गया है कि आप ही हमारे इष्ट प्रभु श्री रामजी हो। अब हमारी एक ही प्रार्थना है, कृपया हम दोनों को शिष्य रूप में स्वीकार करके हमें दीक्षा दीजिये।"

माता के नेत्र आनन्दाश्रु से छलक उठे अपने तापस पुत्र को देखकर। वे बोलीं, "हाँ पुत्र! हमें दीक्षा दो ताकि हमारा जीवन सफल हो जाय। इतनी कृपा की है, थोड़ी और कर दो हम पर।" स्वर गद्गद हो उठा उनका।

यह सुनते ही कुमार संकुचित हो गये। प्रार्थना को अस्वीकार करना अधर्म तथा स्वीकार करना मर्यादा के विरुद्ध समझकर वे बोले:

"तात! यह आप दोनों क्या कर रहे हैं? माता! मैं आपका पुत्र हूँ। 'आत्मा वै जायते पुत्रः'—वही आत्मा पुत्र रूप से जायमान होता है। अतः मिथ्या आग्रह न कीजिये।"

"नहीं, नहीं पुत्र! हमें गुरु की आवश्यकता है और तुमसे बढ़कर कौन गुरु हमें मिलेंगे?" पिता ने कहा।

तपस्वी रामदत्त कुछ नहीं बोले। उन्होंने पास पड़ा दिव्य दाहिनावर्त शंख बजा दिया। इस पावन ध्वनि ने दोनों की चिति-शक्ति को तत्क्षण जाग्रत कर दिया। दोनों ही वहाँ बैठकर ध्यानमग्न हो गये। मामा तथा अन्य विप्रवर्ग आश्चर्य से देखने लगे कि अब कदाचित् इन दोनों का भी मोक्ष हो जायेगा। निस्तब्ध खड़े हुए सब देखते रहे कि आगे क्या होता है।

वाजपेयीजी एवं मुखीदेवी ने ध्यानस्थ अवस्था में एक श्यामकुमार को नीली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घटा की भाँति विद्युत छटा से प्रकाशित होकर हाथ में धनुष-बाण लिये मधुर स्मित करते हुए देखा। उन्होंने देखा कि श्यामकुमार एवं पुत्र के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं था। इसी अवस्था में उन्हें पूर्वजन्म का ज्ञान भी हुआ।

दोनों ने देखा कि वे संघ के साथ यात्रा पर निकले हुए थे तब बदरीवन में रास्ता भूल गये। जंगलों में भटकते उन्होंने परमात्मा से बहुत प्रार्थना की तब रघुनाथजी ने सहायता करके उन्हें ऋषिकेश में स्थित भगवान ऋषिकेश के मन्दिर (वर्तमान भरत मन्दिर) पहुंचा दिया।

शेष संघ से पृथक् हुए दोनों ने तदनन्तर वहीं रुककर नित्य सेवा-पूजा करने का निश्चय कर लिया। उनकी भक्ति से भगवान श्री रामचन्द्र प्रसन्न हुए तथा उन्हें आशीर्वाद देते हुए वर माँगने को कहा। तब दोनों ने प्राचीन ऋषि-महर्षियों के मार्ग का अवलम्बन करते हुए प्रभु को ही पुत्र रूप में माँगा। उनकी प्रार्थना को सस्मित स्वीकार करते हुए भगवान ने कहा कि अगले जन्म में वे स्वयं उनके घर पुत्र रूप में आयेंगे किन्तु पुत्र की आयु मात्र बारह वर्ष की होगी। तदनन्तर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। यह दृश्य देखकर वाजपेयीजी तथा मुखीदेवी की समाधि भंग हुई। दोनों को जाग्रत में ही तुरीयावस्था का अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ। दोनों स्वपुत्र के चरणों में मस्तक रखने को आगे बढ़े ही थे कि···।

सबने आश्चर्य से देखा कि देखते-ही-देखते बालमुनि अपने आसन से अदृश्य हो गये। दोनों को पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण हुआ और तत्क्षण ज्ञात हुआ कि आज ही पुत्र की बारह वर्ष की आयु समाप्त हो गयी थी। माता रुदन करने लगी।

अन्य विप्रवर्ग को वाजपेयीजी ने पूर्ण वृत्तान्त कहकर अश्रुसहित बताया कि दिव्य पुत्र अब पुनः कभी नहीं आयेगा क्योंकि उसकी मात्र बारह वर्ष की आयु अब समाप्त हो गयी थी। परमानन्द के प्रकाशमान पर्वत से दारुण दुःखरूपी अँधेरी गर्त में वे जा गिरे। दोनों ही फूट-फूटकर रोने लगे।

कुमार के प्रेमी एवं श्रद्धालुओं को भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ। प्रिय बालमुनि के दर्शन पुनः कभी नहीं होंगे इस विचार से उनके नेत्रों से भी अश्रुधारा बह निकली। इस दारुण दुःख से व्यथित कुछ लोग काशी आये। कुमार की सबके देखते ही अदृश्य होने की बात कर्णोपकर्ण सर्वत्र व्याप्त हो गयी।

धीरे-धीरे पंचगंगाघाट पर लोगों की भारी भीड़ जमा होने लगी। माता-पिता सहित सम्बन्धीजन करुण विलाप करने लगे थे। यह देख लोगों का हृदय भी भर आया। कुछ पण्डित माता-पिता को आक्रंद न करने के लिए समझाने लगे किन्तु अपत्य स्नेह नदी की प्रबल धारा के समान होता है, उसके सामने कोई ज्ञान-चर्चा नहीं टिक सकती। अब उनके धैर्य का अन्त आ चुका था। बारम्बार वे जीवन-त्याग की बात करने लगे।

धीरे-धीरे सब लोग चले गये। घाट पर मात्र कुछ स्नेहीजन एवं श्रद्धालुजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही रह गये। माता-पिता एक ही बात की पुनः-पुनः याचना करते थे, "हा पुत्र ! हा देव ! यह क्या हो गया ? हमारी आयु ही तू ले लेता ! यह दिन तो देखने को नहीं मिलता।" लोगों के समझाने पर उन्होंने पुनरुक्ति की :

"अब हम जीकर क्या करेंगे ? इस जीवन पर धिक्कार है। प्रिय विरह की अग्नि में सदैव जलते रहने से तो शरीर त्यागना ही उचित है। प्राचीन काल में महाराज दशरथ ने पुत्र वियोग में शरीर त्याग दिया था, हम भी उन्हीं का अनुकरण करेंगे। बस ! हमें कृपया न रोको तथा मणिकर्णिकाघाट पर ले चलो।"

मणिकर्णिकाघाट काशी का पवित्र श्मशान है जहाँ अनवरत शवदाह होता ही रहता है। यहाँ पहुँचते ही महारागी व्यक्ति को भी क्षणिक वैराग्य हो जाता है। पास ही बहती हुई माँ गंगाजी अपने पुत्रों को दुःखी देख अनादिकाल से मानव-जाति को यह सन्देश देती आ रही हैं कि परिवर्तन संसार का नियम है। महाकाल के प्रवाह में मृत्यु क्षणिक परिवर्तन मात्र है। काल के गर्भ से अनेक जीव उत्पन्न होते हैं तथा उसी में विलीन हो जाते हैं। जब जीवन स्वयं अनित्य है तो उसमें घटती घटनाएँ भी अनित्य हैं अतः घटनाओं को घटने दो, उनसे प्रभावित नहीं होना चाहिए। परन्तु माँ गंगा की इन बातों को सुनने का धैर्य उस समय किसके पास रहता है ?

वाजपेयीजी एवं मुखीदेवी की तीव्र इच्छा देख लोग उन्हें मणिकर्णिकाघाट पर ले गये। यहाँ पहुँचते ही उनका विलाप घृत प्राप्त अग्नि की भाँति अत्यधिक बढ़ गया। प्रिय विरहाग्नि में संदग्ध हृदयों का दारुण आक्रंद देख-सुन घाट पर भी कई लोग जमा हो गये। घटना को सुनकर उन्हें दुःख भी बहुत हुआ अपितु विधि के विधान को नतमस्तक शिरोधार्य करने के सिवाय वे और क्या कर सकते थे ?

सद्भाग्य से उसी समय जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी मणिकर्णिकाघाट पहुँच गये। अपने मुकाम पर ध्यान में अवस्थित राघवानन्दाचार्यजी को यहाँ पहुँचने की परमात्मा ने प्रेरणा दी थी। लोगों ने आदरपूर्वक भीड़ में से उनको रास्ता दे दिया। परिस्थिति को जानकर आचार्यश्री का ऋषिहृदय करुणा से आप्लावित हुआ। कुमार के माता-पिता का विलाप देख वे खिन्न हुए।

वे दोनों भी तेजस्वी महात्मा को देख उनके चरणों में गिरकर हृदयद्रावक आक्रंद करने लगे। स्वामीजी ने विविध प्रकार के वचनों से वाजपेयीजी एवं मुखीदेवी का उद्वेग कम करने का प्रयत्न किया। किन्तु सब व्यर्थ ही हुआ। कुछ क्षणों के लिए स्वामीजी ने नेत्र बन्द किये तथा ध्यानस्थ हुए। तदनन्तर उन्होंने कहा, "हे पण्डित ! आप तो जानते ही हो कि आपके पुत्र आपरूप में भगवान श्री राघवेन्द्र ही थे। पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों के वरदान के फलस्वरूप आपको मात्र बारह वर्षीय आयु वाले पुत्र की प्राप्ति हुई थी। अतः यह शोक उचित नहीं। माता ! आप भी व्यर्थ विलाप छोड़कर परमात्मा का चिन्तन करो।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु मुखीदेवी किसी प्रकार से चुप नहीं हुईं। वे बारम्बार कहती थीं, "हे पुत्र ! अब मुझे यहाँ क्यों रखा है ? मुझे भी अपने पास बुला लो। महाराज दशरथ को जो सुख दिया वह मुझे भी दे दो। मैं अब व्यर्थ जीवन नहीं चाहती।"

तपस्वी महात्मा श्री राघवानन्दाचार्यजी ने रोते हुए वाजपेयीजी के सिर पर अपना हस्त उन्हें शान्त करने को रखा। तपोनिष्ठ महात्मा के स्पर्शमात्र से वाजपेयीजी का मोह दूर हो गया तथा ज्ञान का प्रकाश हुआ। परन्तु माता पुत्र-वियोग न सह सकी।

उनकी इच्छा भी परमात्मा ने पूर्ण की। राजा दशरथ का अनुकरण करते हुए रोते-बिलखते ही उन्होंने घाट पर शरीर त्याग दिया। वे परमात्मा के दिव्य धाम साकेत को चली गयीं।

वाजपेयीजी पर पुनः वज्रपात हुआ। पुत्र वियोग अभी कम हुआ नहीं था कि पत्नी वियोग हो गया। अब वे पुनः आक्रद करने लगे। किन्तु आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार सम्पन्न किया। ओंकारेश्वरजी को भी अपनी बहन के इस प्रकार चले जाने का बहुत दुःख हुआ, परन्तु तपोनिष्ठ महात्मा की उपस्थिति ने उनका दुःख कुछ कम कर दिया। तदनन्तर स्वामी राघवानन्दाचार्यजी वहाँ से लौट गये। लोगों ने ओंकारेश्वरजी एवं वाजपेयीजी को उनके घर पहुंचाया।

दूसरे दिन प्रतिष्ठित काशीवासी वाजपेयीजी के घर शोक प्रकट करने के लिए एकत्रित हुए। लोगों ने देखा कि दाक्षिणत्य (उड़ीसा के) गुरु पुनः वहाँ उपस्थित हुए। उन तपस्वी महात्मा की उपस्थिति ने घर का वातावरण ही बदल दिया। श्रद्धालु एवं प्रेमी लोगों ने स्वामीजी से प्रणिपात करते हुए बालमुनि के पुनः दर्शन के लिए प्रार्थना की। लोगों का प्रेम एवं श्रद्धा देखते हुए योगी पुनः ध्यानस्थ हो गये। समाधि अवस्था में उन्होंने परमात्मा की इच्छा तथा उसके साथ बँधा हुआ अपना कर्तव्य देखा। अपने आराध्य प्रभु श्री राघवेन्द्र के अंशावतार बालमुनि के पुनः प्राकट्य की सम्भावना देख वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि श्रीसम्प्रदाय, सनातन धर्म एवं भारतवर्ष का भविष्य अब अन्धकारमय नहीं रहेगा।

जाग्रत होकर स्वामीजी ने श्रद्धालुओं से पूछा, "आप सब बालमुनि से इतना प्रेम करते हो कि अभी उनका दर्शन करना चाहते हो ? क्या आप अपनी आयु उन्हें अर्पित कर सकते हो ?"

प्रेमीजन तुरन्त तैयार हो गये। अतः प्रसन्न होकर दाक्षिणत्य गुरु ने कहा, "हे भगवत्-प्रेमियो ! आप सबका इतना प्रेमभाव है तो बालमुनि अवश्य प्रकट होकर आपको दर्शन देंगे। भारतभूमि की धर्मग्लानि को दूर करके धर्मप्रेमियों को आनन्दित करेंगे।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सुनते ही लोग हर्षोन्मत्त बन गये। वाजपेयीजी एवं ओंकारेश्वरजी को तो मानो अपने श्रवणों पर विश्वास ही नहीं हुआ। अपनी आयु देने वे भी तैयार ही थे। किन्तु यह असम्भव-सा कार्य होगा कैसे ? क्या पुनः कोई चमत्कार होगा ?

वाजपेयीजी ने स्वामीजी के श्रीचरणों में मस्तक रखते हुए कहा, 'हे स्वामी-जी ! यह मैं क्या सुन रहा हूं ? क्या मैं पुनः पुत्र-दर्शन कर सकूंगा ? आप शीघ्र ही बताइये कि प्रिय-दर्शन के लिए हमें क्या करना होगा ? बस, एक बार मन भरकर देख लूं, फिर इस जीवन का क्या काम है ?" अविरल अश्रुधारा बह रही थी उनके दृगों से।

जगद्गुरु ने उन्हें सांत्वना प्रदान की। तदनन्तर कहा, "नहीं वत्स ! इतनी शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं है। साकेतधाम गामिनी माता मुखीदेवी की श्राद्धविधि सम्पन्न होने के बाद पंचगंगाघाट पर ही एक बृहद् श्रीराममहायज्ञ का आयोजन किया जायेगा। आगे जैसी परमात्मा श्रीराम की इच्छा होगी वैसा ही होगा। परन्तु आप सब प्रेमियों से यथाशक्ति अधिकाधिक 'श्रीराम' महामन्त्र का जप करने की मैं प्रार्थना करूंगा। मैं भी उस समय तक मौनव्रत ग्रहण करूंगा।"

प्रेमीजनों ने अधिक-से-अधिक महामन्त्र का जप करने का संकल्प कर लिया। अनेक लोग धर्म-संस्थापन हेतु अपनी समस्त आयु देने को भी तैयार हुए।

तदनन्तर स्वामीजी अपने मुकाम पर चले गये। सर्वत्र आनन्द व्याप्त हो गया कि प्रिय बालऋषि का पुनः दर्शन प्राप्त होगा। काशी में कर्णोपकर्ण यह वार्ता फैल गयी कि दाक्षिणत्य गुरु अपने योगबल से बालमुनि का पुनः दर्शन करायेंगे। कोई कहता था कि बालमुनि पुनः प्रकट हो जायेंगे तथा लम्बी आयु व्यतीत करेंगे, तो कोई कहता कि मात्र दर्शन ही मिलेंगे हम सबको। कुछ भी हो, काशी में एक नया ही वातावरण जमने लगा।

अनेक लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ उनके मुकाम पर भी गये किन्तु जगद्गुरुश्री ने एकान्त तथा मौन ग्रहण कर रखा था। अतः उनके शिष्यों से इस विषय में परामर्श करके सन्तोष मान लेना पड़ा था। वे अपने सद्गुरुदेव की शक्तियों से पूर्णतः परिचित होने पर भी जनता के सन्मुख मौन ही रहते थे।

समय व्यतीत हो गया। निश्चित समय पर वाजपेयीजी ने अपनी धर्मपत्नी मुखीदेवी का श्राद्ध-तर्पणादि क्रिया व्यथित हृदय से सम्पन्न की। पुत्रदर्शन की लालसा से वे प्रसन्न थे, तो पत्नी-विरह से खिन्न। वे सोचते थे कि यदि पुत्र-विरह से पत्नी ने देह त्याग नहीं किया होता तो इस सूचना से वह कितनी प्रसन्न हो जाती ? परन्तु विधि के विधान को कौन बदल सकता है ?

जगद्गुरुश्री की दी हुई अवधि पूर्ण होने पर वाजपेयीजी, ओंकारेश्वरजी तथा अन्य प्रतिष्ठित काशीवासी स्वामीजी के दर्शनार्थ गये। उनकी मौनव्रत की अवधि भी पूर्ण हो गयी थी। यज्ञ की तैयारी के लिए सबको उन्होंने मार्गदर्शन प्रदान किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदनन्तर कुमार के लिए आयु अर्पण करने के लिए तत्पर व्यक्तियों में से चार सत्पात्र व्यक्तियों का स्वामीजी ने वरण किया। सर्वप्रथम वरण शास्त्री का था, जो सदाचार एवं धर्मनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे। दूसरे वैदिक कर्मकाण्ड के अद्वितीय ज्ञाता कर्मठजी थे। तपस्वी धर्मणजी का तथा नवयुवक छात्र चतुर्वेदी का भी वरण किया गया।

यज्ञ में वेदघोष करने काशी के तैंतीस अद्वितीय ज्ञाता ब्राह्मणों का चयन किया गया। पंचगंगाघाट का वही स्थान निश्चित किया गया, जहाँ बालमुनि अदृश्य हुए थे। महायज्ञ की तैयारी धूमधाम से होने लगी।

काशी में तथा आसपास के नगरग्राम में घर-घर में यज्ञ की चर्चा व्याप्त हो गयी। बालमुनि की चर्चित चर्चाओं ने सबको पहले से ही आकर्षित कर रखा था। नर-नारी बालमुनि एवं चमत्कारी यज्ञ के कर्ता स्वामीजी के दर्शनार्थ आने लगे। काशी में उत्सव-सा आनन्द व्याप्त हो गया।

(6)

जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी के मार्गदर्शन तले महायज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। पंचगंगाघाट पर आवश्यक सामग्री धीरे-धीरे एकत्रित होने लगी।

इस समय काशीनरेश ने एक दूत जगद्गुरु के पास भेजा तथा यज्ञ में उपस्थित रहने की अनुमति माँगी, जिसे आचार्यश्री ने प्रसन्नतापूर्वक मान लिया। काशी-नरेश हालाँकि राजकार्य में अत्यन्त व्यस्त थे क्योंकि दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के शासन की नींव डगमगाने लगी थी। विश्वासघात तथा लहूरंगे हाथों से सत्ता प्राप्त करने वाले इस सुलतान की नीतियों से स्वयं उसके सरदार त्रस्त हो गये थे तथा विद्रोह करने लगे थे। हिन्दू राजा अपनी परतन्त्रता एवं अपमान-अत्याचारों से पीड़ित थे। केन्द्र का शासन ढीला होते ही अनेक राजा स्वयं को स्वतन्त्र घोषित करने लगे थे। काशीनरेश भी योग्य समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु धार्मिक वृत्ति के काशीनरेश ने सर्वप्रथम श्रीराम महायज्ञ को महत्व दिया।

सम्वत् 1369 का चैत्र मास आरम्भ हुआ। अनेक लोग दूर-दूर से काशी आने लगे। यज्ञपुरुष के दर्शन के उपरान्त चमत्कार देखने की जिज्ञासावृत्ति उनको खींच लायी। जगदगुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी अपने योग बल से क्षीण आयु कुमार को पुनः सजीवन करके उसे लम्बी आयु प्रदान करने वाले थे।

चैत्र सुदी प्रतिपदा का वह शुभ दिन आ गया। अनेक कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने स्वस्ति वचन से शुभारम्भ किया। शुभ मुहूर्त पर आयु अर्पण करने के लिए तत्पर व्यक्तियों में से वरण किये गये चार व्यक्ति सहित वाजपेयीजी को यज्ञमण्डप में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिठाया गया। तैंतीस शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों ने सस्वर वेदमन्त्र के पाठ आरम्भ किये। प्रारम्भिक विधि-विधान सहित यज्ञ का शुभारम्भ हुआ। धीरे-धीरे सस्वर वेद ध्वनि से सारा वातावरण गुंजायमान हो गया। जहाँ नीरव शान्ति का साम्राज्य सदैव व्याप्त रहता था, वह स्थान आज अनेक धर्म प्रेमियों से भर गया। काशी के अनेक प्रतिष्ठित लोग, अनेक सन्त-महात्मा, प्रकाण्ड पण्डितगण एवं काशीनरेश स्वयं इस आयोजन से अत्यन्त अभिभूत हुए।

पास ही कलकल करती गंगाजी बह रही थीं, मन्द-मन्द बहती वायु वन पुष्पों से सुरभि लेकर वातावरण में बिखेर रही थी। हविष्यान्न की आहुति षडाक्षर मन्त्रराज के उच्चारण सहित अग्निकुण्ड में दी जाने लगी। धीरे-धीरे आकाश भी मानो वेदघोष की प्रतिध्वनि करने लगा। यज्ञ की धूम्रराशि बढ़ती-बढ़ती समस्त काशी में व्याप्त हो गयी तथा सब जीवों के तन-मन को सात्विक भाव प्रदान करने लगी। प्रात.काल से सायंकाल हो गया। सात्विकता से सराबोर लोगों ने देखा कि आज का यज्ञ कार्य समाप्त हुआ।

छह करोड़ मन्त्रराज का अनुष्ठान निश्चित किया गया था। एकादशी के दिन अनुष्ठान की पूर्णाहुति रखी गयी थी। परन्तु प्रतिदिन लोगों की भारी भीड़ यहाँ जमती गयी। प्रातः से सायंकाल तक यज्ञघोष होता रहा। लोगों को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि वे कलिकाल में नहीं परन्तु वैदिक काल में जी रहे हैं। दूर-दूर से लोग यज्ञपुरुष के दर्शनार्थ आते रहे। काशीनरेश ने सब व्यवस्था राज्यकोष से करना स्वयं स्वीकार किया था। पूरे दस दिन पंचगंगाघाट लोगों से छलकता रहा।

एकादशी का वह चमत्कारी दिन आ गया। आज तो घाट पर इतनी जन-संख्या एकत्र हो गयी कि वहाँ पाँव तक रखने का स्थान न रहा। आज यज्ञमण्डप में एक रिक्त आसन बालमुनि के लिए रखा गया। पुन यज्ञघोष का आरम्भ हुआ। हविष्यान्न की अन्तिम आहुतियाँ मन्त्रराज के उच्चारण सहित जैसे-जैसे अग्निकुण्ड में दी जाने लगीं, लोगों की उत्सुकता बढ़ती गयी। इतनी भारी जन-संख्या होने के उपरान्त वातावरण पुनः निस्तब्ध हो गया।

मध्याह्न हुआ। सूर्य की प्रखर किरणों से व्यग्र होने पर भी आज कोई विचलित नहीं हुआ। आज तो वायु एवं गंगाजी की धारा की गति भी मन्द भासित हो रही थी, मानो उन्हें भी यज्ञ का चमत्कारिक परिणाम देखना हो।

जैसे ही पूर्णाहुति सम्पन्न हुई, लोगों ने सानन्दाश्चर्य देखा कि यज्ञ की ज्वाला के साथ-साथ यज्ञकुण्ड से बालमुनि धीरे-धीरे ऊपर आये। कुछ समय तो लोग अपने नेत्रों पर भी विश्वास न कर सके। सर्वत्र नीरव निस्तब्धता ! लोगों ने देखा कि···वही गौर वर्ण, प्रलम्ब बाहु, अरुणाभ नेत्र, उन्नत तेजोदीप्त भाल, सर्वांग जैसे सुनिपुण करों से सावधानीपूर्वक निर्मित हुआ था। बालमुनि का श्रीअंग इतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुगठित, इतना मृदुल, इतना अरुणाभ था जैसे मूर्तिमान तप एवं सौकुमार्य ने एकत्व प्राप्त कर लिया हो। परम तेजस्वी, प्रसन्नचित्त बालमुनि ने सर्वजनों को वन्दन किया। धन्य-धन्य हो गये दर्शकजन। दूर से देख लेने मात्र से अन्तर के समस्त कलुष मानो ध्वस्त हो जाते थे। इतना आनन्द, इतना आलोक, ऐसी शान्ति, ऐसा आह्लाद अन्तर में कभी उमड़ भी सकता है, इसका उन्होंने कभी अनुमान भी नहीं किया था।

जैसे ही सत्यता की प्रतीति हुई हर्षोन्मत्त लोगों ने गगनभेदी नारे लगाये, 'बालमुनि की जय', 'जगद्गुरु श्री राघवानन्दजी की जय', 'भगवान श्री सीताराम-जी की जय'। और इसके साथ ही मन्दगति वायु एवं गंगाजी ने अपनी गति को तेज कर दिया। पक्षियों ने सुरीले स्वर से जयघोष में स्वर मिलाया। प्रिय बालमुनि के पुनः प्रादुर्भाव की इस पुण्य घडी में उपस्थित रहने के सद्भाग्य से सबके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। वाजपेयीजी सहित आयु अर्पण करने वाले व्यक्ति जड़वत् बालमुनि को करबद्ध होकर देखते रहे, मानो अब भी उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वाजपेयीजी को इस समय मुखीदेवी का तीव्र स्मरण हुआ, यदि इस समय वे जीवित होतीं तो दौड़कर अपने लाडले बेटे को हृदय से लगा लेतीं।

प्रेमार्द्र दृष्टि से निरामय आनन्द में बहती जनता को कुछ क्षण देखने के पश्चात् बालमुनि सीधे जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी के निकट पहुँचे। उन्होंने उनको दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहा :

"हे गुरुदेव ! आपकी कृपा से प्राप्त इस जीवन का मार्गदर्शन भी आप ही कीजिये। हमें सन्यास दीक्षा देकर कृतार्थ करें। शिष्य रूप में स्वीकार करके इस जीवन को धन्य बनाने की कृपा कीजिये।"

जगद्गुरु ने आशीर्वाद देते हुए सस्मित प्रत्युत्तर दिया, "अब भी हमको मोहान्वित कर रहे हो ? आप ही मेरे उपास्य, सर्वेश्वर श्री रामजी के अंशावतार हैं, इस रहस्य को मैं जान गया हूँ। आपने ही कृपा करके पुनः प्रादुर्भाव के इस पुनीत कार्य में मुझे निमित्त बनाना चाहा सो वह कर्तव्य मैंने पूर्ण किया। अब आप यदि संन्यास दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, तो मैं भला कैसे विमुख हो सकता हूँ ?"

यह सुनते ही वाजपेयीजी के नेत्र अश्रुपूरित हो गये। 'इतनी छोटी आयु में कुमार संन्यास ग्रहण करेंगे ? नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ?' परन्तु जब कुमार का यही निर्णय है, तो वे कैसे रोक सकते हैं ? उनके मुख पर विषाद की रेखाएँ उभर आयीं। यह देख जगद्गुरु ने कुमार को कहा, "कुमार ! तुम्हें अपने पिता से अनुमति लेनी पड़ेगी।" जगद्गुरु ने गुरु-शिष्य का अभिनय करते हुए कहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमार रामदत्त पिता के निकट गये तथा करबद्ध होकर बोले, "तात ! हम जानते हैं कि संन्यास दीक्षा के लिए अनुमति देना पिता के लिए कठिन होता है। किन्तु आपके पुत्र की आयु मात्र बारह वर्ष की थी। नवजीवन प्राप्त इस बटुक को श्री सद्गुरुदेव के चरणाश्रित बनने का सौभाग्य लेने दो। प्रारम्भ से ही आपने देखा है कि संसार में हमारी किंचित्मात्र रुचि नहीं है। अत. संन्यास लेने से हमें न रोकना ही उचित रहेगा।"

पिता गद्गद् हो गये। कुछ बोल न पाये। मात्र अश्रु निमीलित नेत्र से पुत्र के मस्तक पर हस्त रखा तथा बोले, "तुम्हारी इच्छा ही मेरी प्रसन्नता रहेगी, वत्स ! मात्र एक याचना करता हूँ सदैव मेरी दृष्टि के सामने रहना।"

"अवश्य, तात ! वैसे भी हमें पंचगंगाघाट का यह स्थान अत्यन्त प्रिय है। हम यहीं रहेंगे।" कुमार रामदत्त ने उत्तर दिया।

पिता की अनुमति प्राप्त होने पर राघवानन्दजी ने शास्त्रोक्त विधि-विधान सहित पंच संस्कारपूर्वक वैष्णवी विरक्त दीक्षा से कुमार रामदत्त को अलंकृत किया। तुलसी कंठी, छाप, ऊर्ध्वपुंड तिलक के साथ श्री तारकमन्त्र, मन्त्रद्वय तथा चरममन्त्र आदि के रहस्यों का उपदेश दिया। सम्प्रदाय की प्रथानुसार जन्मनाम 'रामदत्त' बदलकर 'रामानन्द' रखा गया। बालमुनि को विधिवत् शुक्ल वस्त्र धारण कराया गया। स्वामीजी के श्रीमुख से सहज ही निकला, "रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महितले।"

लोगों की भीड अभी भी वैसी ही जमी हुई थी। काशीनरेश ने जगद्गुरु को प्रणाम करके बालमुनि को प्रणाम किया और वहाँ से चले गये। कई लोग यज्ञ-पुरुष एवं बालमुनि के दर्शनार्थ यज्ञमण्डप के निकट आने की चेष्टा कर रहे थे, तो कई दर्शन से पावन होकर भस्मप्रसादी लेकर पुनः लौट रहे थे। कई प्रेमी भक्त चित्रलिखे से चकोर बन बालमुनि के चन्द्रमुख को निहार रहे थे। चारों तरफ से बालमुनि की जय-जयकार की ध्वनि सुनायी देती थी। जब लोगों को ज्ञान हुआ कि उनके प्रिय बालमुनि ने अब संन्यास दीक्षा भी ले ली है, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। धीरे-धीरे सब वहाँ से आज के चमत्कार की चर्चा करते हुए विदा हुए।

बालमुनि ने अपने श्री सद्गुरुदेव को साष्टांग दण्डवत् नमस्कार किया तथा उनके आदेश पर वहाँ रखे हुए रिक्त आसन पर विराजमान हुए।

प्रभु प्रेमियों ने बालमुनि की यह मुद्रा अपने हृदयपटल पर अंकित कर ली। कई कलाकारों ने चित्र भी बनाये। इस तेजस्वी प्रभावशाली दर्शन से लोगों की अंजलि आप ही बँध जाती थी। नवीन संन्यासी का गौर-सुगठित श्रीअंग, तेजो-दीप्त भालप्रदेश पर ऊर्ध्वपुंड तिलक, गले में तुलसी कंठी तथा कटिप्रदेश को आच्छादित करता हुआ शुक्ल वस्त्र उनके गौर वर्ण को अधिक गौरवान्वित करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा था। मांडल में पीठिका पर विराजमान बालऋषि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

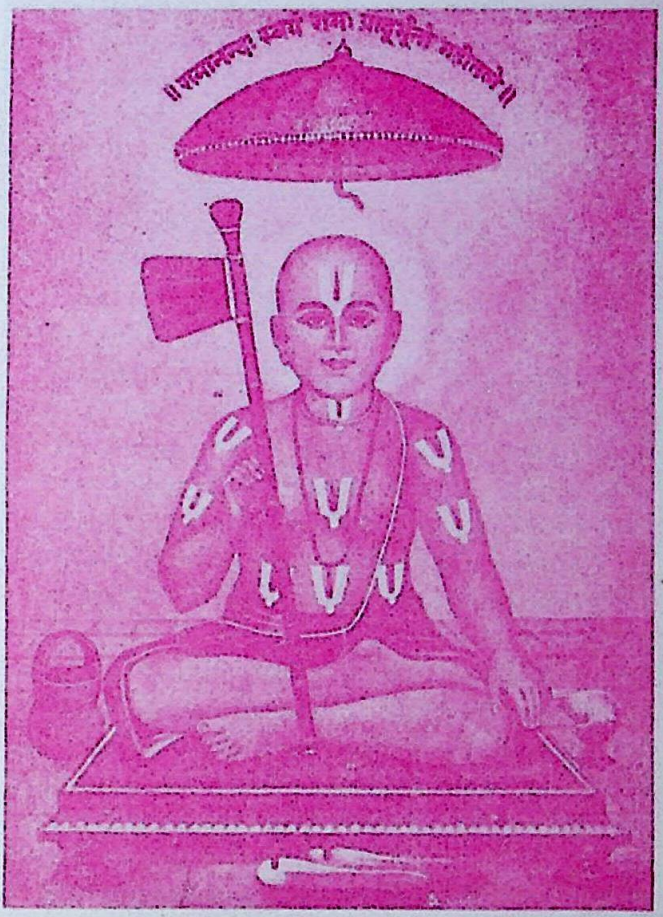

कबीर, रैदास, तुलसी, मीरा आदि के प्रेरणास्रोत, मध्य-कालिक इतिहास की महान् विभूति विशाल श्री रामानन्द सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक, हिन्दू-धर्मोद्धारक, कलिपावनावतार यतीन्द्र चक्रचूड़ामणि, अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी महाराज

आविर्भाव : वि.सं. 1356 माघ कृष्ण सप्तमी

(अखिल भारतीय रामानन्द युवा समिति द्वारा प्रकाशित चित्र)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकट ही कमण्डल एवं उनका दिव्य दाहिनावर्त शंख भी रखा हुआ था। विशाल कमलदल नेत्र से बहती अविरल प्रेमधारा से परिप्लावित श्रद्धालुओं के दृग आप ही अश्रुपूरित हुए।

जगद्गुरु निज आसन से उठे। नवीन शिष्य के निकट गये तथा उनको आशीर्वचन देते हुए कहा, "प्रिय शिष्य रामानन्द! अब पुनः यात्रा पर अभी प्रस्थान करता हूँ। समय-समय पर आता रहूँगा।" बालऋषि रामानन्दजी ने अपने श्री सद्गुरुदेव को प्रणिपात किया तथा जगद्गुरु उन्हें तथा समस्त जनता को आशीर्वाद देते हुए वहाँ से चल दिये। उनके साथ ही उनके शिष्य भी चलने लगे। जनता हतप्रभ होकर देखती रही कि जगद्गुरु इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं?

वाजपेयीजी ने जगद्गुरु के प्रस्थान की बात सुनी। जिन तपोनिधि ने उनके प्रिय पुत्र को पुनर्जीवन देने का चमत्कारिक कार्य किया, उनका इस प्रकार चले जाना देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे भी सब कुछ भूलकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ अन्य लोग भी उनके साथ-साथ चलने लगे। इस प्रकार लोगों का एक बहुत बड़ा समूह उनके पीछे-पीछे जाने लगा। असम्भव को सम्भव बनाने वाले महायोगी को कुछ समय और रोकने की चेष्टा सब करने लगे।

परन्तु स्वामीजी तो परमविरक्त थे। गीतारूपी अमृत को उन्होंने जीवन में चरितार्थ किया था। वे निश्चयपूर्वक मानते थे कि परमात्मा को जिससे जो कार्य कराना है, उसे वो कार्य करने की क्षमता प्रदान कर ही देते हैं अतः समर्थ व्यक्ति को अहंभाव न रखते हुए परमात्मा की इस करुणा के लिए अधिकाधिक नम्र बनना चाहिए। उन्होंने सोचा कि चमत्कारिक यज्ञ की चर्चा अब न जाने कितने समय तक चलती रहेगी अतः शीघ्र ही निकल जाना ही उचित रहेगा। साथ-साथ चल रहे समूह को समझाकर पुनः लौटाने लगे परन्तु वाजपेयीजी किसी प्रकार लौटने के लिए तैयार नहीं हुए।

अतः चलते-चलते स्वामीजी एक तालाब के किनारे एक इमली के वृक्ष के नीचे बैठ गये। वाजपेयीजी ने उनको प्रणिपात किया और वहीं खड़े रहे। स्वामीजी ने प्रेमार्द्र स्वर में वाजपेयीजी से कहा:

"वत्स! यह आप क्या कर रहे हो? बृहद् यज्ञ का कार्यभार अब कौन देखेगा? वहाँ यज्ञमण्डप में कितने ब्राह्मण एवं आमन्त्रित अतिथि उपस्थित हैं, उनका आदर-सत्कार कौन करेगा? यह आप उचित नहीं कर रहे हैं।"

वाजपेयीजी ने करबद्ध होकर सजल नेत्र सहित गद्गद् स्वर से कहा, "हे स्वामीजी! आपके अनुग्रह के भार से मैं इतना दबा हुआ हूँ कि आपकी सेवा छोड़ अन्य कोई कार्य मुझे रुचिकर नहीं लगता। फिर चाहे वह कार्य कितना भी आवश्यक क्यों न हो। मैं तो आपकी सेवा में ही रहना चाहता हूँ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरु ने सस्नेह कहा, "प्रिय वत्स ! सेवा के लिए मैं पुनः आ जाऊँगा। अभी तो आप यज्ञमण्डप का अधूरा कार्य पूर्ण करो। परन्तु एक बात सदैव याद रखना। आपका पुत्र आपरूप में भगवान ही है। उन्हें साक्षात भगवान समझना तथा उनके किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना। अभी आयु छोटी है अतः भोजन कराने में अपना वात्सल्यभाव रखना। अब मुझे जाने दो।"

वाजपेयीजी स्वामीजी की आज्ञा शिरोधार्य करके पुन पंचगंगाघाट की ओर आये, किन्तु उनका मन तो स्वामीजी का अनुगामी बनकर उनके साथ ही चला गया।

वाजपेयीजी जब पंचगंगाघाट पहुँचे तब भी भीड़ कम नहीं हुई थी। धीरे-धीरे भीड़ कम होती गयी। वाजपेयीजी एवं ओंकारेश्वरजी ने प्रतिष्ठित काशी-वासियों के सहयोग से निमन्त्रित ब्राह्मण एवं अतिथियों को दान-दक्षिणा से सन्मानित किया। राजसेवकों ने भी बहुत सहायता की। ब्राह्मणवर्ग, पण्डितगण तथा श्रद्धालु एवं प्रेमीजन समुदाय यज्ञकर्ता से सत्कार पाकर प्रेममग्न होकर स्वस्थान को लौट गये।

वाजपेयीजी ने देखा कि आयु अर्पण करने वालों में से एक तांतिया शास्त्री अब भी बालऋषि को टकटकी लगाकर अनिमेष देख रहे थे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे तथा हस्त स्वतः करबद्ध हो गये थे। वाजपेयीजी उनके निकट गये तथा हाथ जोड़ते हुए बोले :

"शास्त्रीजी ! आपने अहैतुकी कृपा करके मुझे तथा मेरे पूर्वजों को जिस प्रकार उपकृत किया है, वह मुझे जीवनपर्यन्त याद रहेगा। आपके इस सन्तोचित व्यवहार के प्रतिदान में सिवाय कृतज्ञता के और मैं क्या कर सकता हूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

तांतिया शास्त्री कुछ क्षण वाजपेयीजी को देखते रहे। मौन रहते हुए स्वस्थान से उठे तथा बालऋषि के श्रीचरणों में गिर गये और अश्रुधार से उनके पादप्रक्षालन करते रहे। तदनन्तर सबको प्रणाम करते हुए वहाँ से चले गये।

रात्रि हो गयी थी तथा यज्ञकार्य अभी शेष रह गया था। अतः बहुत-से लोगों ने आज रात्रि वहीं रुकने का निर्णय किया। बालऋषि को पिता एवं मामा ने बहुत समझाया परन्तु घर न जाकर वे पंचगंगाघाट पर ही रुके।

दूसरे दिन प्रातःकाल पिता एवं मामा की सम्मति लेकर बालऋषि रामानन्दजी ने गंगाजी के किनारे पंचगंगाघाट से भी दूर बालघाट की निर्जन कुटीर में रहने का निर्णय पिता को सुनाया। उन्होंने कहा कि यहाँ अब कुछ समय लोगों की भीड़ लगती रहेगी अतः साधना के लिए वह निर्जन स्थान ही उपयुक्त रहेगा। वहाँ एक छोटी-सी कुटीर बनी हुई थी जहाँ बालऋषि अपना दिव्य शंख तथा पाषाण का पात्र लेकर पहुँच गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पतितपावनी गंगाजी आदिकाल से मानव समाज को शक्ति एवं भक्ति प्रदान करती रही हैं। इनके पवित्र तट पर न जाने कितने नामी-अनामी सिद्ध सन्तों ने जप-तप करके तट की महिमा-गरिमा बढ़ायी है। बालघाट की निर्जन कुटीर में बालऋषि रामानन्दजी भी गंगाजी के तट पर साधना करने लगे। वे कब जागते हैं, कब सोते हैं, इस बात को कोई नहीं जान सका। निर्जन जंगल में घर से नित्य उनके लिए दिन में एक बार पायस (खीर) आता रहा। निजकृत्य से निवृत्त होकर आयी हुई खीर को गंगाजल से पवित्र करके दिन के तीसरे प्रहर वे पाते थे। कभी-कभी निशीथ में तथा कभी-कभी समय-कुसमय पर दिव्य शंख की पावन ध्वनि से जंगल गुंजारित हो जाया करता था।

(7)

वर्ष व्यतीत होते गये। काशीवासियों में भी दैवी बालमुनि एवं योगी श्री राघवानन्दाचार्यजी की चर्चा लुप्तप्रायः हो गयी। परन्तु वसुन्धरा को अब बालऋषि रामानन्दजी की सात्विक सत्ता की अनुभूति होने लगी। पानी, पवन, अग्नि तथा आकाश ने भी सात्विक सत्ता का अनुभव किया। वे निरन्तर श्रीआज्ञा की प्रतीक्षा करते रहे परन्तु बालमुनि ने सदा मर्यादाओं का ही पालन किया। काशी तथा उसके आसपास के क्षेत्र में सात्विक भाव की वृद्धि होने लगी। आसपास के म्लेच्छ अधिकारियों की तलवारों का अब विरोध होने लगा। यवन पापाचार वा अत्याचार करने से डरने लगे। वहाँ साधु-सन्त निश्चिन्त हो निज साधना में प्रवृत्त होने लगे। काशी के नास्तिकों ने भी अब स्वीकार कर लिया कि दिव्य महात्मा की उपस्थिति मात्र से वायुमण्डल की सात्विकता इतनी प्रबल हो जाती है कि उसके प्रभाव से निर्बल जीव अनजाने ही सात्विक होने लगता है। चिन्ता तथा भय के स्थान पर सर्वत्र प्रसन्नता की अनुभूति होने लगी।

बालमुनि सदैव एकान्त में स्वसाधना में प्रवृत्त रहते थे। बालघाट की झोंपड़ी के द्वार पर एक परदा लगा रहता था। कभी-कभी कुछ साधु-सन्त दैवी बालमुनि के दर्शनार्थ आते थे।

एक दिन की बात है। बालऋषि रामानन्दजी अपनी नित्य साधना में व्यस्त थे। घर से खीर लाने वाला ब्रह्मचारी कुमार अभी तक आया नहीं था। उस समय एक तेजस्वी कन्या चाँदी के कटोरे में खीर लेकर आयी। कुटी का परदा बन्द था अतः परदे के भीतर कटोरा रखते हुए बोली :

"हे बालमुनि ! मैं जनुतनया गंगा हूँ। आपके लिए यह पवित्र पायस लायी हूँ। आज ब्रह्मचारी का बनाया पायस न पाइयेगा।"

सुनते ही श्री रामानन्दजी ने परदा हटा दिया तथा कन्या को भीतर बैठने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेत किया। कन्या प्रणाम करते हुए वहाँ बैठ गयी। रामानन्दजी ने भगवान को पायस भोग लगाया तथा कन्या को थोड़ा प्रसाद दिया। कन्या ने प्रसाद शिरोधार्य करके पा लिया तथा 'फिर कभी दर्शन को आऊँगी' कहते हुए अदृश्य हो गयी। शेष प्रसाद परमानन्दजी ने पा लिया।

गंगाजी ने ब्रह्मचारी की बनायी खीर न खाने के लिए क्यों चेतावनी दी --जब इस ओर ध्यान गया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वह ब्रह्मचारी कुमार प्रमादवश कार्य ठीक नहीं कर रहा था। रामानन्दजी तो पवित्र धान पाकर जीवन निर्वाह करने का सन्तोचित व्यवहार करते रहे थे। अब तक तो फिर भी धान पवित्र आ रहा था। परन्तु आज जिस वैश्य के घर से वह सामग्री लाया था, उसका व्यवहार चर्मकार जैसा था और उसका धान पवित्र नहीं था।

वे जानते थे कि पवन पवित्र है, जल पवित्र है, पंचतत्व भी पवित्र हैं और अन्न भी पवित्र ही है। परन्तु इन सभी चीजों में संगदोष के कारण विकार आ जाते हैं। सगदोप व्यक्ति अथवा विचार का होता है। प्रत्येक व्यक्ति की वृत्तियों के अनुसार उसके आसपास एक विशेष प्रकार का सूक्ष्म आभामण्डल अथवा स्पंदन समूह होता है। अन्त करण के विविध भाव के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्पंदन होते हैं। प्रवल भाव के स्पंदन वायुमण्डल में अधिक होते हैं इसी कारण महापुरुषों के संग का महात्म्य है। उनके सात्विक भाव से प्रभावित वायुमण्डल में रहने से निर्बल अन्तःकरण वाले व्यक्ति के भाव भी सात्विक होने लगते हैं। मन्दिरों में, तीर्थस्थानों में तथा महात्माओं के पास जाने से, वहाँ सात्विकता प्रवल होने के कारण, मन को शान्ति मिलती है। इसी प्रकार तामसी, कामी अथवा दुर्गुणी व्यक्तियों के अधिक सम्पर्क में रहने से निर्वल मन वाले व्यक्ति अनजाने ही उनके स्पंदनों को ग्रहण कर उन्हीं के गुणों वाले बन जाते हैं। अतः दुष्ट तथा दुर्जनों का संगत्याग ही उत्तम है।

प्रत्येक व्यक्ति के आसपास अन्तःकरण के भावानुसार विद्युत चुम्बकीय स्पंदन समूह समान रूप से नित्य विद्यमान रहता है। परन्तु स्पंदनों के विकिरण का प्रावल्य आँखों के द्वारा तथा हाथ-पैर की उँगलियों द्वारा अधिक मात्रा में होता है। महापुरुषों द्वारा होने वाले शक्तिपात नेत्रों के द्वारा प्रवल सात्विक विद्युत-चुम्बकीय स्पंदनों के विकिरण द्वारा ही होते हैं। व्यवहार में भी प्रत्यक्ष देखा जाता है कि काम तथा क्रोध का रूप न होने के उपरान्त भी व्यक्ति की आँखों द्वारा उसे पहचाना जाता है। महात्माओं के स्पर्श, चरणोदक, आशीर्वाद, उच्छिष्ट भोजन आदि का महत्व शास्त्रों में इन्हीं कारणों से अत्यधिक बताया गया है। भोजन पकाते समय बनाने वाले व्यक्ति के भाव का असर चुम्बकीय स्पंदन द्वारा पकाये गये अन्न पर भी बहुत होता है। विकारी अथवा निम्न वृत्ति वाले व्यक्तियों द्वारा बनाया गया भोजन पाने से साधक की साधना में विघ्न आ सकता है। इसी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिए महात्मा व्यावसायिक बुद्धि वाला अन्न भी नहीं ग्रहण करते क्योंकि संग-दोष के प्रभाव से वह अन्न दूषित हो चुका होता है।

संगदोष का ध्यान आते ही ऋषिकुमार खिन्न हो गये। उनके मुख से निकल गया, 'हा चर्म्मकार !' वे तो ब्रह्मचारी कुमार पर विश्वास रखकर अपनी साधना में ही व्यस्त रहते थे। परन्तु उनकी रसना रागमय हो गयी थी, अतः परमात्मा ने ही उन्हें दूषित अन्न खाने से बचा लिया।

कुछ देर बाद कुमार खीर लेकर आया तो बालमुनि ने बटुक को कहा, "आज तो भोग लग चुका है तथा हम भी प्रसाद पा चुके हैं, अतः खीर अब तुम ही पा लो।"

बटुक तो पहले ही प्रमादी था। उसने यह भी नहीं पूछा कि भोग कैसे लग चुका है तथा यह खीर क्यों ब्रह्मचारी नहीं स्वीकार कर रहे हैं। उसने तो प्रसन्नता-पूर्वक खीर ग्रहण कर ली। कुधान्य के प्रभाव तथा विधिवश उसने तत्क्षण शरीर त्याग दिया।

चर्मकार जैसे व्यवहार वाले वैश्य के घर का निकृष्ट अन्न खाने से बटुक का जन्म काशी में एक चमार के घर हुआ। काशी के रघूमल नामक चमार तथा उसकी पत्नी घूरबनिया बहुत धार्मिक वृत्ति के थे। अपने क्षेत्र के वे चमड़े के अच्छे व्यापारी थे। बहुत वर्षों के बाद उनके दाम्पत्य जीवन में एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र रत्न का आगमन हुआ था। उस परिवार में प्रसन्नता छा गयी। परन्तु एक विकट विघ्न आ पड़ा। शिशु ने जन्मते ही माता का दूध नहीं पिया। परिवार के लोगों में चिन्ता फैल गयी। कई उपचार किये गये, पर कोई लाभ नहीं हुआ। पिता रघ्घू ने वैद्य-हकीमों द्वारा दवा-दारू कराने के साथ-साथ सन्त-महात्माओं की प्रार्थना भी बहुत की।

रामानन्दजी को यह बात ध्यान में ज्ञात हुई। रघ्घू के घर बटुक का जन्म तो जाति के उद्धार के लिए हुआ था। निकृष्ट अन्न के परिणाम से भयभीत शिशु कुछ भी ग्रहण नहीं कर रहा था। अपने आवश्यक कर्मों से निवृत्त होकर रामानन्दजी स्वयं रघ्घू के घर गये। चमारवास में एक तेजस्वी तरुण महात्मा को अपने घर आया देख रघ्घू संकोच एवं प्रसन्नता से कुछ बोल ही न पाया। उसके नेत्र आनन्दाश्रु से प्रमुदित हुए। दण्डवत् प्रणाम किया तथा तुरन्त उसे अपना पुत्र याद आया। वह दौड़कर घर से नवजात शिशु को उठा लाया। रामानन्दजी इसी कार्य के लिए तो यहाँ आये थे। उन्होंने शिशु का मस्तक स्पर्श किया तथा भगवान श्रीराम का चरणामृत घुट्टी में मिलाकर पिला दिया। तत्काल शिशु प्रसन्न हो गया। समस्त परिवार ने तरुण स्वामीजी की चरण-वन्दना की। शिशु तो टकटकी लगाकर रामानन्दजी को देखता ही रहा। रामानन्दजी ने उन्हें सान्त्वना दी कि अब चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है, वह माता का दूध पियेगा। बालक ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब से माता का दूध पीना शुरू किया। रामानन्दजी जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार अचानक चले गये।

बालक का नाम रखा 'रविदास'। माता-पिता की धार्मिक छत्रछाया में स्वामीजी द्वारा पुनः जीवनदान प्राप्त बालक रविदास बड़ा होने लगा।

(8)

वर्ष व्यतीत होते गये। स्वामी रामानन्दजी अपनी बालघाट की निर्जन कुटी में साधना करते रहे।

एक बार एक चमत्कारिक घटना घटी। स्वामी रामानन्दजी अपनी कुटी में पूजन-भजन में व्यस्त थे। पूजन की समाप्ति पर उन्होंने शंखघोष कर दिया। दैवयोग से उसी समय कुछ लोग एक मृतक को अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए लेकर वहाँ से जा रहे थे। परन्तु दिव्य शंख का अमृतमय नाद कानों में प्रवेश होते ही मृतक संजीवनी पाकर जीवित हो गया। जब लोगों ने इस रहस्य को समझा तब रामानन्दजी की जयजयकार करने लगे। स्वामीजी के दर्शन पाकर वे धन्य हो गये।

यह समाचार वायुवेग से काशी में फैल गया। अनेक प्रकार के आधि-व्याधि तथा रोगों से ग्रस्त लोगों को तो मानो डूबते हुए को प्रबल सहारा मिल गया। लोग अपने रुग्ण-अस्वस्थ सम्बन्धियों को लेकर निर्जन जंगल में स्वामीजी के दर्शन एवं रोगमुक्ति के लिए आने लगे। तपस्वी स्वामीजी की प्रार्थना करके शंखध्वनि सुनकर वे रोगमुक्त होने लगे। दूर-दूर से लोग आते तथा सफल मनोरथ होकर चले जाते। परन्तु बालघाट के निर्जन स्थान पर अब निरन्तर भारी भीड़ होने लगी। कई रोगी, अतिरोगी तथा मरणासन्न व्यक्ति भी यहाँ आने तथा दुःखमुक्ति पाने लगे। चारों पहर लोगों का मेला-सा लगने लगा। अपनी साधना में विक्षेप देख स्वामी रामानन्दजी ने दिव्य शंखनाद करना बन्द कर दिया।

दूर-दूर से आये आशाभरे लोगों को अब निराश होना पड़ा। इसके निवारणार्थ काशी के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति स्वामीजी से प्रार्थना करने लगे अतः संन्यासी ने चतुर्मास पर्यन्त मात्र प्रातःकाल शंखनाद करना स्वीकार किया।

उन चतुर्मास पर्यन्त नित्य बालघाट पर मेला लगता रहा। काशी की स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोद में लिए नित्य प्रातःकाल पहुँच जाती थीं। दूर-दूर से भाँति-भाँति के रोगग्रस्त लोग यहाँ आते तथा दिव्य नाद सुनकर निरोगी बनते रहे। नित्य प्रातःकाल यहाँ स्वामीजी की तथा भगवान श्री सीतारामजी की जयजयकार की ध्वनि गूँजती रही।

काशी के प्रतिष्ठित लोगों ने एवं काशीनरेश ने मिलकर प्रार्थनापूर्वक स्वामी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामानन्दजी के लिए पंचगंगाघाट पर ऊँचे स्थान पर एक कुटीर बनायी। पास ही एक बड़ी शिला के नीचे गुफा भी थी। गुफा तथा कुटी को, जोड़कर एक कर दिया गया था। चतुर्मास की पूर्णाहुति पर देवोत्थानी एकादशी के दिन काशी के विद्वान पण्डित, प्रतिष्ठित नागरिक एवं काशीनरेश की विनती पर युवान संन्यासी ने पंचगंगाघाट की नयी कुटीर में प्रवेश किया।

भगवती भगीरथी के तट पर पंचगंगाघाट का प्रकृति सौन्दर्य उन्मुक्त हो उठा। स्वामीजी के स्वागतार्थ सम्पूर्ण प्रकृति बालिका बनी यहाँ चपल क्रीड़ालग्ना हो गयी। गंगाजी की पवित्र धाराओं की सुमधुर ध्वनि तथा तट पर किसलय कलित सघन वृक्ष। उत्तुंग वृक्षावली के साथ-साथ तरुराजि सर्वत्र अपनी शाखाओं से धरित्रि को अंकमाल देती हुई पड़ी थी। झूमती, हिल्लोरें लेती-सी पुष्प वल्लरियाँ, पुष्प-गन्धादि का सुकोमल आलाप, भ्रमरों का गुंजन, कोकिल की काकली, कण-कण जैसे प्रसन्न हो उठा तपोनिधान के आगमन से।

एक श्रीमंत ने उस दिन पंचगंगाघाट पर भण्डारा किया। अपनी मरणासन्न स्थिति में स्वामीजी के दिव्य शंखनाद से उसने नवजीवन पाया था। अनेक साधु-सन्तों को पकवान्न भोजन कराके दान-दक्षिणा से सन्मानित किया गया। लोगों ने रामानन्दजी के जयनाद से दिशाओं को गुंजित कर दिया।

उनसे प्रभावित कुछ सन्तों ने उनके निकट रहने एवं ज्ञानचर्चा के लिए, पास में ही अपनी कुटीरें भी बना लीं।

जिनकी वाणी ही वेद और जिनके श्वास से ही श्रुति, स्मृति आदि सकल शास्त्रों की उत्पत्ति हुई है, ऐसे परब्रह्म, नरलीलारूपधारी रामानन्दजी निजकुटीर में अपनी साधना में निरत हुए। काशी के विद्वान अपनी शंकाओं का समाधान कराने उनके पास आते रहे। कभी-कभी शास्त्रार्थ भी होता था।

स्वामी रामानन्दजी की कीर्ति दूर-सुदूर तक प्रसरित होती गयी। काशी तो हमेशा से भारत के नामी विद्वानों को आकर्षित करता रहा है। अनेक विद्वान तथा पण्डित स्वामी रामानन्दजी के पास ज्ञानप्राप्ति हेतु अथवा शंकाओं के निर्मूलन की इच्छा से पंचगंगाघाट आने लगे। इस आयु में तपस्वी का दिव्य तपोमय स्वरूप, उनकी प्रेमपूरित धीर-गम्भीर वाणी तथा शास्त्रों के अतल स्पर्शी रहस्यों को समझने एवं समझाने की स्वामी रामानन्द की वाक्धारा से प्रभावित अनेक पण्डित एवं विद्वान यहाँ नित्य आने लगे। उनकी सौम्य, मृदु तथा प्रेम से परिप्लावित वाक्धारा ने अनेकों को इस प्रकार अभिभूत किया कि इस छोटी आयु वाले स्वामी रामानन्द के वे प्रेमी भक्त बन गये।

देश की इस संकटापन्न स्थिति में सनातन धर्म की रक्षा हेतु वे नित्य राजा तथा प्रजा को अपना-अपना कर्तव्य सुनाते थे। उनके देश-प्रेम, धर्म-प्रेम तथा सारगर्भित तत्व रहस्यों को सुनकर लोग आश्चर्यचकित होते थे। दूर-दूर से आने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वालों की संख्या पंचगंगाघाट पर इतनी बढ़ने लगी कि काशीनरेश का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उन्होंने आगन्तुकों की व्यवस्था हेतु घाट पर कुछ कुटीरें बनवायीं। भगवान श्री सीतारामजी के एक सुन्दर मन्दिर का भी निर्माण कराया। कुछ प्रेमी सन्तों ने तथा भक्तों ने इसकी व्यवस्था स्वयं स्वीकार कर ली।

स्वामी रामानन्दजी की विचारधारा विशाल समुद्र की भाँति थी। सनातन धर्म के ह्रास से वे उद्विग्न थे तथा कारणभूत धर्मांध विधर्मियों का सामना करने की सीख वे सदैव देते थे। तदुपरान्त मुस्लिम धर्म के अनेक सूफी-सन्त तथा मौलवी धर्मचर्चा करने उनके पास आने लगे क्योंकि सच्चे मानवीय एवं धार्मिक मूल्यों के प्रेमियों के लिए वे एक प्रेरणामूर्ति बन गये थे। कई प्रेमी-भक्त सत्संग के लिए भी नित्य रूप से आने लगे थे। कभी-कभी स्वामीजी के दर्शन होते तो कभी अन्य सन्तों से सत्संग चलता रहता।

(9)

एक बार राजस्थान के प्रतिष्ठित सिसोदिया राजवंश की राजकुमारी अनेक उपहार लिए आश्रम आयी। भाग्यवश उसे तत्काल दर्शन प्राप्त हुए। वह प्रसन्न हो गयी।

स्वामीजी को प्रणाम करते हुए वह बोली, "हे स्वामीजी! मेरी समस्या के समाधान हेतु मैं आपके पास बहुत बड़ी आशाएँ लेकर आयी हूँ। मैं सिसोदिया वंश की राजकन्या हूँ। पूर्वजन्म में मेरा नाम शशी था, तथा मेरा प्रियतम पुन्नु था। इस जन्म में मैं उसी से विवाह करना चाहती हूँ। मैंने उसे बहुत खोजा परन्तु उसकी कोई जानकारी मेरे पास नहीं है। मेरे माता-पिता मेरे विवाह के लिए शीघ्रता कर रहे हैं। अब आपकी शरण में आयी हूँ। कृपया मेरी लाज रखिये।"

स्वामीजी ने प्रेमार्द्र स्वर से कहा, "हे राजकुमारी! आप यहीं आश्रम में रुको। आपका प्रियतम यहीं आ रहा है।" राजकन्या बहुत प्रसन्न हुई। वह आश्रम में रुकी। नित्य सत्संग में जाती तदनन्तर स्वामीजी की कुटी के नीचे एक वृक्ष के पास बैठ अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती रही।

इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गये। चौथे दिन प्रसिद्ध राजा हम्मीर देव के युवराज पुष्करसिंह बहुत उपहारों के साथ राजसी वैभव से आश्रम आये। भगवान श्री सीतारामजी के दर्शन करके तथा उपहार चढ़ाकर वह स्वामीजी के दर्शनार्थ कुटीर के पास आये।

वृक्ष के पास बैठी राजकुमारी को विश्वास हो गया कि वही उसका पूर्वजन्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

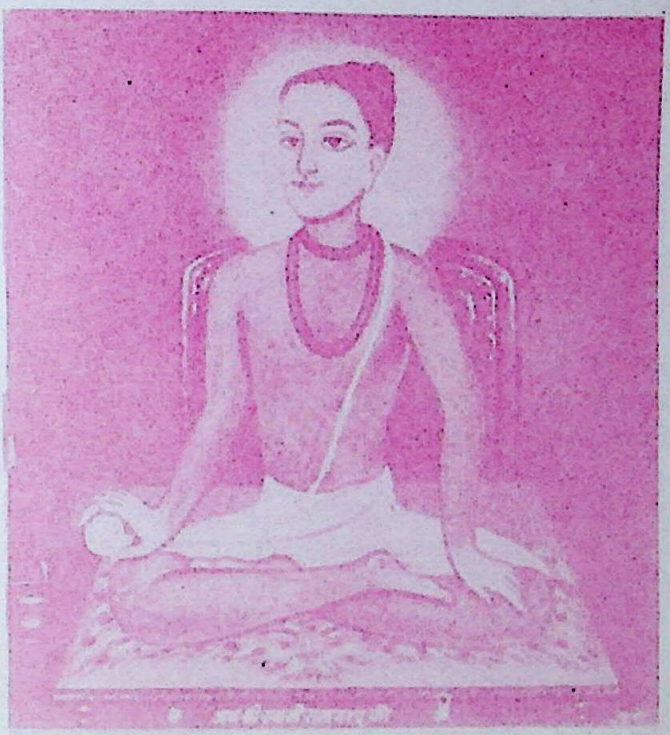

जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य जी

रहनुमायें सालकाँ साहिब कमाल।
मुरशिदे कामिल कबीरो बे मिशाल।
दर रज्जब विस्तुम फिना फिल्लाह शुद।
स्वामि रामानन्द मुजतर पुरज़वाल॥

ईश्वरभक्तों के पथ-प्रदर्शक, परमोत्कृष्ट ज्ञानी कबीर के अद्वितीय गुरु जिनका शानी दूसरा कोई नहीं, ऐसे प्रभावशाली स्वामी रामानन्द 20 रज्जव को परमात्मा से जा मिले।

(पुरातन पुस्तक 'प्रसंग-पारिजात' पर चित्रित स्वामी जी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रियतम पुन्नु है। राजकुमार ने भी वहाँ बैठी राजकुमारी को देखा। वह भी कुंवरी के रूप-यौवन पर मोहित हो गये। दोनों के हृदय में पूर्वजन्म का प्रेम उभर आया।

उसी समय स्वामीजी की कुटी में शंखनाद हुआ। कुंवर तथा कुंवरी दोनों को अलौकिक अनुभव हुआ। कुंवर ने देखा कि प्रियतमा शशी पर मोहित होकर उसने रजकवृत्ति स्वीकार की, और कुंवरी को अपनी ओर आकर्षित किया। दोनों जन्म के प्रणयी-युगल का मिलन हो गया। कुंवरी ने देखा कि वह ब्राह्मण कन्या होकर मुसलमान बनी। पति के वियोग से दु:खी वह प्रार्थना कर रही थी कि एक पहाड़ फटा तथा वह उसमें समा गयी। जब उसका प्रियतम वहाँ आया तो उसके लिए भी पहाड़ फटा तथा वो भी उसमें समा गया।

दोनों पुनः होश में आये। अपने अनुभव दोनों ने परस्पर सुनाये। दिव्य शंखनाद से प्राप्त आत्मज्ञान के धुँधले प्रकाश से दोनों सचेत हो गये। जीवन की अस्थिरता तथा पुनर्जन्म में मुस्लिम होने के भय से दोनों ने सरल मृदु शब्दों में स्वामीजी से परमार्थ की दीक्षा माँगी।

स्वामीजी ने प्रत्युत्तर में कहा, "आप दोनों में श्रद्धा का अभ्युदय हुआ है, वह अति उत्तम है। परन्तु अभी तो आप लोग गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सदोष, अमर्यादित तथा अनार्य प्रेम को शुद्ध एवं मर्यादित करो। जब सत्यव्रत तथा सतीत्व से अलंकृत होकर आओगे तो परमार्थ की दीक्षा अवश्य मिलेगी।"

स्वामीजी की आज्ञा शिरोधार्य करके दोनों अपने देश चले गये। माता-पिता की सम्मति से दोनों का विवाह हुआ। शास्त्रोक्त मर्यादाओं को निभाते हुए उन्होंने स्वामीजी की आज्ञा का पालन किया।

बहुत वर्षों के बाद पुनः काशी आये तब उन्हें परमार्थ की दीक्षा प्रदान की गयी।

(10)

युवान स्वामी रामानन्दजी के पास आज कुछ लोग सत्संग के लिए आये हुए थे। उनमें कुछ मुस्लिम सन्त भी दिखाई देते थे। किसी के प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा :

"परब्रह्म परमात्मा को किसी प्रकार के देश-काल या मान्यताओं में नहीं बाँधना चाहिए। परमात्मा को मात्र निर्गुण ब्रह्म अथवा निराकार अल्लाह मानने वाले अथवा मात्र मन्दिरों के श्रीविग्रहों में समाहित करने वाले उन अन्धे मनुष्यों जैसे हैं जिन्होंने हाथी के पैर पकड़कर निष्कर्ष निकाला था कि हाथी मात्र खम्भे जैसा ही है, अथवा पूंछ पकड़कर कहा था कि वह मात्र रज्जु जैसा ही है। वास्तव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जिन्होंने हाथी को देखा है, वह जानता है कि उनका कथन उनकी समझ के अनुसार सत्य है, परन्तु वह असत्य भी है।

इसी प्रकार इस सापेक्ष विश्व में चक्षु दृष्टिगोचर होने से जो सगुण प्रतीत होता है, वह वास्तव में सगुण नहीं है, साथ ही अन्तर्यामी होने से जो निर्गुण प्रतीत होता है, वह निर्गुण भी नहीं है। उनको मान्यता में बाँधना ही उनकी सर्वशक्तिमत्ता का अस्वीकार होगा। जो परमात्मा को जान लेता है उसके लिए मान्यताओं का कोई मूल्य नहीं है। वही तो मन्दिरों में विराजमान राम-कृष्ण है, वही निर्गुण ब्रह्म है, वही अल्लाह है। क्या असम्भव है उसके लिए ? क्या एक ही व्यक्ति को हम लोग भिन्न-भिन्न सम्बन्ध से अथवा नाम से नहीं पहचानते ?

जीव का इष्ट सगुण ब्रह्म है, निर्गुण ब्रह्म बोध के लिए है। आवश्यकता मात्र उनको जानने की है।"

"स्वामीजी ! उन्हें कैसे जानें ?" एक मुस्लिम सन्त ने जो स्वामीजी के शब्दों से प्रभावित हुए थे, पूछा।

"मनुष्य का जीवन ध्येय ही परमात्मा होना चाहिए। उन्हें जानकर उनके पास पहुँचो, अथवा वहाँ पहुँचकर उन्हें जानो।" स्वामीजी का तेजोदीप्त मुख अधिक उज्ज्वल हुआ। कुछ क्षणों के मौन के उपरान्त वे बोले :

"ध्यान मनुष्य की आँख है, प्रेम मनुष्य के पंख। आँख मंजिल का--ध्येय का ज्ञान देती है, उसके विषय में जानकारी देती है, तो प्रेम ध्येय की ओर गति देता है, मंजिल पर पहुँचाकर 'वह क्या है' उसकी स्वानुभूति देता है। इसलिए आँख और प्रेम मनुष्य की पूर्णता का प्रतीक हैं। नेत्र दूर तक देख सकते हैं, उसके विषय में समझ सकते हैं, परन्तु बिना पंख वहाँ पहुँचना कैसे होगा ? आँख अपंग है, पंख अन्ध। मात्र प्रेम कितना ही गतिशील क्यों न हो, निस्सन्देह वह ध्येय को ही पहुँचेगा यह निश्चित नहीं है क्योंकि उसे ध्येय का ज्ञान नहीं है। मात्र ध्यान गतिहीन है, वह परमात्मा के विस्तार का अनुभव न कर सकेगा।

ध्यान की गहराई दृष्टि को शुद्ध करती है, प्रेम की गहराई अन्तर को ऋजु, उल्लसित करती है। ध्यान में डूबकर मनुष्य केन्द्र में पहुँचता है तो प्रेमरूपी पंख से विस्तार प्राप्त करता है। ध्यान केन्द्र की ओर गति है, प्रेम परिधि की ओर गति का नाम है। त्रिज्या की भाँति जो दोनों तरफ विकास करते हैं, वे ही पूर्णत्व को प्राप्त हो सकते हैं। मात्र ध्यान अथवा प्रेम परमात्मा का पूर्ण परिचय देने में असमर्थ हैं, क्योंकि ध्यान परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का बोध कराता है तो प्रेम परमात्मा के सगुण स्वरूप का बोध कराता है। वस्तुतः निर्गुण-सगुण एक ही है अर्थात् ध्यान तथा प्रेम अन्तिम बिन्दु पर एकाकार हो जाते हैं। ध्यान की पूर्णता प्रेम का आविर्भाव करती है तथा प्रेम के पूर्णतः साकार होते ही ध्यान स्वतः हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मा को प्रेम करने का पूरा अर्थ है उनके विस्तार को प्रेम करना। यह संसार परमात्मा का ही विस्तार है। संसार को चाहकर उसके सर्जक को ढूंढना तथा उसे चाहकर स्वानुभव लेना ही ध्यान है। ध्यान और प्रेमयुक्त मनुष्य जल-कमलवत् होते हैं। प्रेम के कारण वे जल में भी होते हैं तथा ध्यान के कारण जल से अलिप्त भी। जिससे वे मुक्त हैं, उसी की वह शोभा बन जाते हैं। कमल कीचड़ में रहकर भी ऊपर उठता है तथा कीचड़ को कविता का गौरव प्रदान करता है। कीचड़ की हीनता कमल के कारण लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार प्रेम संसार की तमाम हीनता के बीच परमात्मा के सर्जन का श्रद्धायुक्त स्वीकार है।

ध्यान व्यर्थ को हटाकर सार्थक तक ले जाता है, तो प्रेम व्यर्थ में समाविष्ट सार्थक को साकार करता है। प्रेम जीवन को विधेयात्मक बनाता है, ध्यान निषेधात्मक। ध्यान का बीजमन्त्र है 'नेति-नेति' तथा प्रेम का बीजमन्त्र है 'तू ही-तू ही'। जहाँ न-कार और ह-कार पूर्ण रूप से एकत्व प्राप्त करते हैं, वहीं पूर्णसत्य प्रकट होता है, वही पूर्णसत्य पूर्णत्व प्रदान करता है। ज्ञान और प्रेम जहाँ पूर्ण रूप से प्रकट होकर एकाकार हो जाते हैं।"

अमीर खुसरो—एक मुस्लिम सन्त आज पंचगंगाघाट कुतूहलवश आये हुए थे। तेजस्वी युवान स्वामी रामानन्दजी की कीर्ति सुनकर उनके दर्शन एवं सत्संग-लाभ के लिए आये थे। भाग्यवश कुछ लोगों से चर्चा करते हुए स्वामीजी के उपरोक्त वाक्य सुनकर खुसरो अभिभूत हो गये। कट्टर मुस्लिम धर्मी होते हुए भी वे हिन्दू संस्कृति के प्रशंसक थे। भारतीय संस्कृति की जिज्ञासा से वे परिभ्रमण करते हुए काशी आ पहुँचे थे।

अमीर खुसरो के गुरु सूफी सन्त निजामुद्दीन औलिया दिल्ली में रहते थे। वे भी सिद्ध सन्त थे। अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात् पंजाब के गाजी मलेक तुगलक ने सत्ता छीन ली थी। गयासुद्दीन तुगलक नाम धारण करके वह बादशाह बन गया। उसने एक किले का निर्माण शुरू किया। उसी समय औलियाजी एक तालाब का निर्माणकार्य कर रहे थे। सुलतान ने मजदूरों को वह कार्य छोड़कर किले का कार्य करने को बाध्य किया। अतः मजदूरों ने दिन में किले का कार्य करके रात्रि में तालाब खोदना शुरू किया। क्रोधित सुलतान ने मिट्टी का तेल देने पर रोक लगाई, तो औलियाजी ने पानी से ही मशाल जलाकर कार्य चालू रखा था। ऐसे सिद्ध गुरु के चेले अमीर खुसरो अब स्वामी रामानन्द के प्रेमी बन गये।

अमीर खुसरो ने हिन्दू धर्म की, भारतीय ज्ञान-विज्ञान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए अनेक फारसी कविताएँ लिखीं। युवान स्वामी रामानन्दजी की भारतीय तत्वधारा को समझाने की कला से वे इतने अभिभूत हुए कि परिभ्रमण छोड़ अधिकांश वे काशी में ही रहने लगे थे। कट्टरपंथी मुस्लिमों के विरोध के उपरान्त भी खुसरो हिन्दू-मुस्लिम संस्कारों के समन्वय के सर्वश्रेष्ठ पक्षधर थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार दिल्ली से निजामुद्दीन औलिया ने अपने शागिर्द कवि खुसरो के हाथ एक पत्र काशी भेजा। उस पत्र को सुनहरे बेलबूटों से सुसज्जित करके उसमें अक्षर इस प्रकार सम्मिलित किये कि देखने से पता ही न चले। पत्र जब खुसरो के हाथ पहुँचा, तब उन्होंने ध्यान से देखा कि पत्र में बेलबूटों से मिलते-जुलते अक्षरो से अरबी भाषा में कुरान का एक पद लिखा था :

'इल्लाव जिक्र अल्लाह तत् मैनुलकुलूब'

अर्थात् ईश्वर के भजन सुमिरन से ही आत्मा को शान्ति मिलती है।

खुसरो चतुर कवि थे। उन्होंने उस पद का परिचय दिया तथा टीका-टिप्पणी सहित उसकी पूरी व्याख्या लिखी। उसमें खुदा एवं बन्दों की अर्थात् भगवत् एवं भागवन्तों की ऐक्यता तथा तन्मयता के विषय में लिखा गया था। दोनों पत्र लेकर खुसरो पंचगंगाघाट पहुँच गये।

पंचगंगाघाट आश्रम पर स्वामी रामानन्द निजकुटी में परदा बन्द किये साधना में व्यस्त थे। अतः कवि ने पत्र वहाँ उपस्थित सत्संगियों को सुनाया। सब प्रसन्न हो गये।

कुटी का परदा बन्द होने से उन्होंने पत्र बड़ी सावधानी से परदे के भीतर रख दिया। जब बहुत समय तक स्वामीजी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तब प्रेमरस पूर्ण एक कसीदा (दोहा) सुनाया, जिसका प्रथम चरण फारसी में तथा दूसरा चरण हिन्दी में था। उन्होंने स्वामी रामानन्दजी की दयालुता को नायिका मानकर उसके प्रति अगाध प्रेम प्रकट किया था।

कविता समाप्त होते ही परदा खुला। खुसरो को अलौकिक दर्शन हुए। उपस्थित सबकी आँखें उस छवि समुद्र में मछलियाँ बनकर तैरने लगीं।

खुसरो अपने गुरु के सच्चे चेले थे। स्वयं दुःखरहित होकर दर्शन प्राप्त होने पर श्रद्धा से आत्मसुख भोगते रहे तथा गुरुदेव का स्मरण करते रहे। उसी समय एक दोना पक्षी चोंच में आभु (एक प्रकार का तृण) लिये उड़ता हुआ आया तथा चौखट पर तृण चढ़ाया। मूक भाषा में कुछ कहकर वह मंडलाकार उड़ने लगा।

स्वामीजी ने स्मित करते हुए कहा, "अमीर ! आपके गुरु भी याद करते ही आ गये।" उन्होंने अभिमन्त्रित जल पक्षी पर छिड़का और शिर पर धारण करते हुए पक्षी वहाँ से उड़ गया। वे औलियाजी थे।

तत्पश्चात् श्री रामजी की प्रेरणा से तथा काशीनरेश की प्रार्थना से शुद्ध पाटंबर पर शाण्डिल्य ऋषि द्वारा लिखा हुआ मन्त्र अंकित करके अबरक की मंजूषा (पेटी) में पत्र रखकर पेटी पर अद्भुत पुष्पलताएँ चित्रित की गयीं। औलिया के पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने वह पत्र खुसरो के हाथ औलियाजी को भेजा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(11)

राजस्थान में छोटे-छोटे अनेक स्वतन्त्र-परतन्त्र राजाओं के राज्य थे। अनेक राजपूत राजाओं की भाँति सुधाबल के राजा भी मुस्लिम आक्रामकों से प्रजा की रक्षा करते थे। वे प्रजावत्सल तथा धार्मिक वृत्ति के थे। परन्तु स्वयं पारिवारिक चिन्ताओं से घिरे हुए थे।

उनको सात पुत्र प्राप्त हुए थे, परन्तु एक-एक करके छह स्वर्ग सिधार गये थे। परमात्मा की कृपा से मात्र एक कुमार बचा था। अत्यन्त स्नेह से उसे बड़ा किया, युवान होने पर उसका विवाह भी किया। परन्तु अब एकमात्र इस पुत्र को भी यक्षमा (क्षय) रोग ने ग्रसित कर लिया था। राजा ने बहुत उपचार किये, अनेकों वैद्यों तथा हकीमों को बुलाया, परन्तु कुमार अधिकाधिक रोगग्रस्त होते गये।

काशी के दिव्य स्वामीजी के चमत्कारों की चर्चा सर्वत्र व्याप्त हो गयी थी। अतः राजा ने राजकुमार को लेकर काशी जाने का निश्चय किया। सुयोग देख अपने परिवार व परिकर सहित राजा काशी पहुँच गये। भगवान श्री सीतारामजी के दर्शन करने के पश्चात् वे स्वामीजी की कुटीर के निकट पहुँचे।

जब राजा परिवार सहित स्वामीजी की कुटीर के पास पहुँचे तब परदा बन्द था। राजमाता धैर्य न रख सकीं। करुण स्वर से वे बोलीं :

"हे दिव्य स्वामीजी ! मुझ अभागिन पर दया कीजिये। मेरे सात पुत्रों में जीवित एकमात्र इस पुत्र को भी यक्षमा रोग ने ग्रसित कर लिया है। राजकुल की रक्षा के लिए, मेरे प्राणों की रक्षा के लिए तथा बहू के सुहाग की रक्षा के लिए इसे जीवनदान देने की कृपा कीजिये।"

स्वामी रामानन्दजी ने भीतर ही से कहा, "राजकुमार को गंगाजी में फेंक दो। आज से सातवें दिन आना और गंगाजी से कुमार को माँगना। वे निरोगी बन पुनः आयेंगे।"

ऐसी कठिन आज्ञा सुन राजकुटुम्ब किंकर्तव्यविमूढ़ बन गया। जीते-जी कुमार को गंगाजी में फेंकने की हिम्मत कोई भी कैसे कर सकता था ? परन्तु राजकुमार ने स्वयं इस आज्ञा पर विचार किया। वे सोचने लगे कि वैसे भी मृत्यु तो उनके निकट पहुँच ही चुकी है। तो महात्मा के वचन में विश्वास रखकर क्यों न स्वयं ही गंगाजी में कूद जाय ? शौर्य तथा निर्भयता तो क्षत्रियों का स्वाभाविक धर्म ही होता है। ऐसा सोचकर निर्भीकतापूर्वक राजकुमार ने गंगाजी में कूदकर साहसपूर्ण कार्य करके अपने श्रद्धा-विश्वास का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। राजकुटुम्ब चकित होकर देखता रहा।

सात दिन तक वे एक कुटीर में ही रुके सन्तों के साथ सत्संग का लाभ उठाते रहे; तथा सन्त-महात्माओं के दर्शन से पावन होते रहे। स्वामी रामानन्दजी कई दिन से कुटी के भीतर बन्द परदे में ही अपनी साधना में निरत थे। उनका एकमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आहार खीर था। राजकुटुम्ब सदैव स्वामीजी का आर्त्त-भाव मे नाम स्मरण करते सात दिन तक राजकुमार की प्रतीक्षा करता रहा।

इधर गंगाजी में प्रवेश करते ही कुमार एक दिव्य उद्यान में पहुँचे। उद्यान के बीच एक सरोवर था, उसके किनारे एक महल में राजकुमार को स्वागतपूर्वक रखा गया। महल की रचना अद्भुत थी अतः उत्सुकतापूर्वक वे महल की रचना देखने लगे। विचित्र रचना देखते-देखते वे रोगमुक्त हो गये, स्वयं उनको भी पता न चला। सात दिन शीघ्र ही व्यतीत हो गये।

सातवें दिन राजकुटुम्ब प्रातःकाल पंचगंगाघाट पर पहुँच गया। विधि-विधान सहित भगवती गंगाजी का पूजन, आरती एवं स्तुति करने लगे। अपने लाडले कुंवर को पुनः लौटाने की गंगामैया से प्रार्थना की। तब सबने आश्चर्य से देखा कि सम्पूर्ण निरोगी तथा तेजस्वी बनकर राजकुमार गंगाजी से बाहर आये। माता-पिता पुत्र को निरोगी देख हर्षविभोर हो गये। माता ने दौड़कर अपने पुत्र को गले लगा लिया।

तदनन्तर राजकुटुम्ब स्वामीजी की कुटी के ऊँचे स्थान पर पहुँचा। वहाँ उनको दिव्य दर्शन भी प्राप्त हुए। निजकुटीर में एक पीठिका पर विराजमान गौरवर्णीय, अनुपम तेजस्वी, मधुर मुखारविन्द, कमलदल विशाल नयन, अलौकिक वस्त्र तथा कटि पर एकमात्र श्वेत वस्त्र से सुशोभित सुगठित श्रीअंग, प्रेममूर्ति स्वामीजी के पास उनका प्रसिद्ध दिव्य शंख तथा कमण्डल रखा हुआ था। अलौकिक दर्शन से राजकुटुम्ब धन्य हो गया। सबने स्वामीजी की जयजयकार मनायी।

इस आनन्द के अवसर पर आश्रम में भण्डारा किया गया। सन्त-महात्माओं को दान-दक्षिणा से सन्मानित किया गया। तदनन्तर श्रद्धान्वित होकर राजकुटुम्ब पुन. अपने राज्य को लौट गया।

(12)

दक्षिण भारत में गुलबर्गा के पास एक गाँव में श्रीमन्त गंगू ब्राह्मण के घर एक मुस्लिम नौकर हसन काम करता था। हसन स्वामीभक्त तथा मेहनती व्यक्ति था। गंगू ब्राह्मण के किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो गयी थी अतः उसके अस्थिफूल लेकर वे काशी जाना चाहते थे। रास्ता बहुत विकट तथा लम्बा था। अतः उन्होंने अपने विश्वासपात्र नौकर हसन को भी साथ ले लिया।

वर्षा ऋतु का समय था। अत्यन्त कठिनाई से वे काशी पहुँचे। जब गंगाजी के घाट पर गये तो उन्होंने देखा कि वहाँ बहुत कम व्यक्ति स्नानार्थ दिखायी दे रहे थे। गंगाजी का प्रवाह भी बहुत तेज था। काशी के एक कर्मकांडी पण्डित के द्वारा आवश्यक विधि-विधान कराने के बाद गंगू ब्राह्मण अस्थिकलश लेकर गंगाजी में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहाने गये। परन्तु अत्यन्त तेज प्रवाह के कारण वे अपना सन्तुलन नहीं रख पाये और धारा के साथ बहने लगे। घाट पर खड़े कर्मकांडी पण्डित तथा नौकर हसन ने जब यह दृश्य देखा तो पण्डित चिल्लाने लगा परन्तु स्वामीभक्त नौकर अपने प्राणों की परवाह न करते हुए स्वामी की रक्षा के लिए गंगाजी में कूद गया। किन्तु वह भी बहने लगा तथा बहते हुए दोनों एक भँवर में फँस गये। घाट पर सब लोग एकत्रित हो गये तथा हल्ला करने लगे। तेज धारा में कूदने की हिम्मत किसी की नहीं थी। उसी समय तेज वर्षा शुरू हो गयी और घाट पर भागमभाग मच गयी।

गंगू ब्राह्मण ने अपना अन्तिम समय आया देख भगवान श्री काशीविश्वनाथ का हृदयपूर्वक तीव्रता से स्मरण किया। हसन ने भी अब बचने की आशा छोड़ दी थी। गंगू ब्राह्मण बेहोश हो गया।

उसी समय एक अपूर्व घटना घटी। पानी में गोते लगाते हसन ने देखा कि गंगाजी की तेज धारा में बाँस की एक पतली-सी लकड़ी लिए एक बालक उनकी ओर आ रहा है तथा गंगाजी ने भी उसे मार्ग दे दिया है। बालक हसन के पास आया तथा लकड़ी हसन को दी और बोला, "जय स्वामी रामानन्दजी की" हसन ने वही दुहराया। एक हाथ से उसने अपने बेहोश स्वामी को सम्भाला तथा एक हाथ से बालक की छड़ी पकड़कर बालक के पीछे-पीछे गंगाजी की तेज धारा से आसानी से बाहर निकल आया।

वर्षा रुक गयी थी। हसन अपने स्वामी को होश में लाने का प्रयत्न करने लगा। लोग भी पुनः घाट पर जमा हो गये। दोनों को सुरक्षित देख सबको बहुत आश्चर्य हुआ। सबकी चेष्टा से गंगू ब्राह्मण होश में आये तब हसन से सर्व वृत्तान्त लोगों ने सुना। सबने बालक को ढूंढा परन्तु वह तो अदृश्य हो चुका था।

अतः लोगों ने चमत्कारिक स्वामी रामानन्दजी के विषय में परदेसियों को सुनाया। लोगों से पूछते हुए वे स्वामी रामानन्दजी के दर्शनार्थ आश्रम गये। जब पंचगंगाघाट पहुँचे तब स्वामीजी की कुटीर का परदा बन्द था।

बाहर ही से दोनों ने स्वामी रामानन्दजी की जयजयकार मनायी। तदनन्तर गंगू ब्राह्मण बोले, "हे स्वामीजी ! आपके नाम प्रताप से ही हमारी जान बची है। अब हमको दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।"

स्वामीजी ने कृपा करके झरोखा दर्शन की व्यवस्था कर दी। गंगू पुनः बोले, "हे कृपालु ! हम आपके उस परम भाग्यवान सुन्दर बाल-शिष्य रूप के दर्शन भी चाहते हैं जिसने हमारी जान बचायी है।"

स्वामीजी ने प्रत्युत्तर में कहा, "हे विप्र ! वह बालक हमारा शिष्य नहीं था। आपकी प्रार्थना से सर्वनियन्ता भगवान ने स्वयं बालक रूप में आपको बचाया है। आप अपने नौकर को नौकर न समझना, वह बड़ा भाग्यवान है जो प्रभु का दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर सका। झकरखाँ ! भविष्य में अवश्य तुम बादशाह बनोगे।"

तपोनिष्ठ संन्यासी के मुख से यह बात सुनकर हसन अत्यन्त प्रसन्न हो गया। स्वामीजी ने एक नौकर को झकरखाँ के नाम से सम्मानित किया था। स्वामी रामानन्दजी के सुयश का गान तथा उनकी महिमा लोगों को सुनाते हुए वे पुनः दक्षिण देश लौट गये।

(13)

एक दिन की बात है। ब्रह्ममुहूर्त में स्वामीजी उठे तथा गंगाघाट पर स्नानार्थ गये। वहाँ से लौटकर अपने नित्य नियम में बैठने की तैयारी कर रहे थे। कुटी का परदा अभी बन्द नहीं किया था, उसी समय हाथ में राजदण्ड लिए श्यामकाय कलिराज राजसी ठाठ से वहाँ से निकले। अचानक कलि की दृष्टि कुटी में अमित सौन्दर्यवान तथा परम तेजस्वी धवल वस्त्रधारी स्वामीजी पर पड़ी। सूर्य का प्रखर तेज तथा चन्द्र की अनुपम शीतलता का अद्भुत सम्मिश्रण देख कलि को विश्वास हो गया कि वे ही परब्रह्म परमात्मा श्री रामजी के अंशावतार हैं, जिनकी चर्चा देवगण भी किया करते थे। दिव्य दर्शन पाकर वह कृतार्थ हो गया। परन्तु उसी समय स्वामीजी ने कुटीर का परदा बन्द कर दिया।

पुनः दर्शन की लालसा में कलि कुटी के बाहर ही बैठ गया, परन्तु लोभ संवरण न कर सका। स्वामीजी के तपोबल से पवित्र सात्विक स्थान पर उसके लिए कोई आश्रय नहीं था। भीतर भी वह प्रवेश नहीं कर सकता था। तभी उसकी दृष्टि पूजन के लिए रखे गये एक स्वर्णपात्र पर गयी। स्वर्ण में प्रवेश करने का अधिकार तो स्वयं श्रीभगवान ने ही उसे दिया था। अतः सूक्ष्म रूप धारण

'बुरहाने-मआसिर' नामक फारसी पुस्तक में मोहम्मद कासिम फरिश्ता ने लिखा है 'कि गंगू ब्राह्मण अपने नौकर हसन की कर्तव्यपरायणता से अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। उसने गुलवर्गा के सुलतान से हसन के इसी गुण का उल्लेख करके नौकरी में लगाया था। हसन ने स्वामी गंगू की स्मृति में अपना नाम हसन गंगू रखा था। मेहनत तथा कर्तव्यपरायणता से क्रमशः विकास करते हुए वह अमीर बन गया। अन्य अमीरों ने उसे 'झकरखाँ' का खिताब इनायत किया था। बहुत वर्षों के बाद वि० स० 1403 में वह गुलबर्गा का सुलतान बना तथा अलाउद्दीन बहमनशाह नाम धारण करके बहमनी राज्य की स्थापना की।

—मध्ययुगीय भारत, डॉ० छोटूभाई नायक, गुज० पुनी० अहमदाबाद, पृ० 231

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर वह स्वर्णपात्र पर बैठ गया तथा स्वामीजी का अलौकिक दर्शन करता रहा।

पूजन करते समय आचमनी से आचमन करते हुए स्वामीजी को कुछ खटका। उन्होंने पूछा :

"तू कौन है ? तथा क्या चाहता है ? हमारे भजन में विघ्न क्यों करता है ?"

तत्क्षण कलिराज को सूक्ष्म रूप छोड़कर स्थूल रूप में स्वामीजी के सामने उपस्थित होना पड़ा। स्वामीजी को प्रणाम करते हुए वह बोला :

"हे भगवन् ! मैं वर्तमान समय का सार्वभौम चक्रवर्ती कलि हूँ। भजन में विघ्न करने का तो मेरा स्वभाव ही है; परन्तु आपसे कुछ निवेदन करने ही यहाँ प्रवेश करने की हिम्मत की है। कृपया मुझे क्षमा कीजिये।"

विनयपूर्ण वाणी सुनकर स्वामीजी ने पूछा, "अच्छा कहिये ! क्या निवेदन करना चाहते हैं ?" कलि ने हाथ जोड़ते हुए पुनः सविनय कहा, "हे दीनबन्धु ! आप समदृष्टि हैं। आपको न किसी से राग है न किसी से द्वेष। अतएव मेरी प्रार्थना है कि सत्य, त्रेता तथा द्वापर की भाँति मुझ पर भी दया दृष्टि कीजिये। पूर्व युगों में जिनके साथ अन्याय हुआ है उनको सर्व अधिकार देकर आपके ही चरित्र का अनुकरण करने का मैंने निश्चय किया है। आप भगवान ने भी शूद्रों एवं स्त्रियों को गुह, वन्दर, शबरी तथा गोपियों के रूप में तारा है। आपका अनुकरण करते हुए मैंने और युगों में तिरस्कृत शूद्रों एवं स्त्रियों को विशेष पात्रता देकर आपकी ही रुचि का पालन किया है। इसलिए आप भगवान से यही प्रार्थना है कि तारक मन्त्र उपदेश रूपी द्वार सबके लिए समान रूप से खोल दें जिससे मेरे राजत्वकाल में सबका कल्याण हो।"

कलिराज की बात स्वामीजी इस प्रकार सुनते रहे; जैसे जो कुछ कलि कह गया तथा आगे भी जो कहने जा रहा है, उसे वे पहले से ही जानते थे। कलि आगे बोला :

"हे परब्रह्म परमात्मा ! वेद मर्यादारूपी वर्णाश्रम धर्म का मेरे राज्य में कोई महत्व नहीं रहा है। फिर भी अपने प्रधान सेनापति के शील संकोचवश मैंने वर्ण-व्यवस्था की थोड़ी प्रतिष्ठा रहने दी है। परन्तु वह भी क्षय रोग से ग्रस्त प्राणी की भाँति भीतर से सत्वहीन हो गयी है।

हे करुणासागर ! प्रचण्ड धनुर्धर कुसुमायुध कामदेव ललनाओं के प्रति वीरभाव रूपी भाग्य यन्त्र स्थापित करके पुरुषों के हृदय में निरन्तर लक्ष्यवेध का अभ्यास करता रहता है। अतः अखण्ड मातृभाव वाले पुरुष तो गिनती के ही रह गये हैं। साकर्य रूपी कलि कीड़े ने सौर को कतरने में ही अपना पौरुष लगा दिया है। सतीधर्म रूपी सौर के ह्रास से वर्णाश्रम रूपी वृक्ष कैसे टिक सकता है ? अनाचार से धरती तथा धेनु, दोनों कंपायमान हैं।

हे दयानिधान ! इसके उपरान्त भी आपने सबसे छोटे इस पुत्र कलि पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किस प्रकार दया का विस्तार किया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण चतुरविधि प्रभुत्व की स्थापना तथा वेदों का मान-मर्दन है। क्योंकि मेरे अग्रज सत्य, त्रेता तथा द्वापर के राज्यकाल में मोक्षमार्गी तो क्या, अर्थ तथा कामनापूर्ति हेतु भी सहस्रों वर्षों तक लोगों को अपरिमित कष्ट उठाने पड़ते थे, तब कहीं उनके उद्देश्य की सिद्धि होती थी। परन्तु मेरे राज्यकाल में अल्प काल में, अल्प परिश्रम से ही सिद्धि लाभ प्राप्त हो जाता है।

हे जगदीश्वर ! मेरे युग में दम्भ ने प्रणव को पथरा दिया है, अतः विशुद्ध प्रेम के बदले सर्वत्र दम्भ ही दृष्टिगोचर हो रहा है। ज्ञानी जिस मान-सत्कार के योग्य हैं, वह कपटियों ने छीन लिये हैं। अनृत ने ऋत का अर्थात् झूठ ने सत्य का वेश धारण कर लिया है।

अतः हे प्रभु ! मेरी प्रार्थना है कि तारक मन्त्र के अधिकारी प्राणीमात्र को बनाकर सबके लिए कल्याण का मार्ग सुलभ कीजिये। क्योंकि एकमात्र तारक मन्त्र की सत्ता में ही मेरे जैसे सत्ताधारी भी लोहा मानते हैं।

यही महामन्त्र सदाशिव नित्य जपते हैं तथा आप भगवान भी इसकी महिमा जानते हैं। इसी महामन्त्र का बीज विश्व के प्रत्येक अणु में निहित है तथा उसी की ज्योति सर्वत्र जगमगा रही है। तो उसके अधिकारी सब लोग क्यों नहीं हो सकते ?"

कलि का विनम्र एवं सारगर्भित वक्तव्य सुनकर स्वामीजी ने साधुवाद कहा तथा उसकी प्रार्थना स्वीकार करके उसे सन्तुष्ट किया। अतः कलि प्रसन्न हो गया तथा स्वामीजी का स्तवन करते हुए कहने लगा :

"हे दीन-दुःख हारक अच्युत ! हे सनकादिक मोह भंजन हंस ! हे भागवत् भावन श्रीमन्नारायण ! हे रामतत्वज्ञाता शंकर ! हे निष्काम कर्म रहस्यदर्शी असुरारि ! हे निर्लिप्त कला-कौशल पंचशिष ! हे चतुर्विद्या वाणी के आधार ! हे अव्यक्त ज्ञानराशि ! हे साक्षात सदाचार ! आपकी सर्वदा जय हो !

हे परमात्मा श्रीराम ! आप ही ब्रह्मविद्या के स्वामी परमज्ञानी जनकजी के दामाद हैं। आपकी महिमा का वर्णन करने में शेषजी भी समर्थ नहीं हैं। हे वेदारंभ हिरण्यागर्भ ! आपने मुझ दुरात्मा के दोषों पर ध्यान न देकर मेरी प्रार्थना स्वीकार की, यही आपकी परम महानता है। हे परमेश्वर ! आपके इस सन्तोचित व्यवहार से मैं परम सन्तुष्ट हूँ।

हे क्षमामूर्ति ! ओष्ट पर दाहिना तथा जननेन्द्रिय पर बाँया हाथ रखकर चलने वाले मेरे नग्न स्वरूप को देखकर किस मुनि के हृदय में क्रोध उत्पन्न नहीं होगा ? परन्तु आप तो अपूर्व मुनि हैं, स्वयं भगवान ही हो। आपकी क्षमा की जय हो।

हे करुणानिधान ! मर्यादा रूपी प्रतिमाओं को तोड़ने में मैं म्लेच्छ के समान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ। मैं पुण्यकर्मों का लुटेरा तथा दम्भ का पौत्र हूँ। इस पर भी आपका इतना वात्सल्य ? आपके इस दिव्य स्वभाव पर मैं बिक गया हूँ। मैं वचन देता हूँ कि आपके सरल और पवित्र मार्ग पर चलने वालों को मैं किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाऊँगा। अतः हृदयस्थ शुभ मन्दिर में प्रतिष्ठित परमात्मा के दर्शन का द्वार मेरे सहित सबके लिए उन्मुक्त कीजिये तथा सबको इस मन्दिर का समान रूप से पुजारी बनाइये।"

कलिराज की स्तुति एवं सद्भाव सुनकर सहृदय स्वामीजी ने उसे भी तारक मन्त्र का उपदेश देकर कृतार्थ किया। कलि ने सन्तुष्ट होकर साष्टांग प्रणाम किया तथा वहाँ से स्वामीजी की जयजयकार करते हुए चला गया।

युवान स्वामीजी निजकार्य में पुनः प्रवृत्त हो गये।

(14)

स्वामी रामानन्दजी की कीर्ति दूर-सुदूर तक फैल गयी थी। धर्मप्रेमी, राष्ट्र-प्रेमी तथा प्रेममूर्ति, चमत्कारिक महात्मा को लोग अत्यन्त आदर देते।

एक बार श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य श्री भारतीतीर्थ अपने अनुज माधवाचार्य तथा जमात के साथ तीर्थाटन पर निकले। परिभ्रमण करते हुए वे काशी आ पहुँचे। काशी के नगरजनों ने हर्षपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया। काशी-नरेश भी उनके स्वागतार्थ गये। सोने व चाँदी जड़ित सिंहासन हाथी पर रखकर उस पर जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी को बिठाकर काशी के राजमार्गों पर शोभा-यात्रा निकाली गयी। अनेक स्थान पर लोगों ने उन्हें उपहार चढ़ाये तथा उनको धर्म का प्रतीक मान जयजयकार की।

जमात काशीविश्वनाथ के मन्दिर में पहुँची। भगवान आशुतोष का विधि-विधान सहित पूजन-अर्चन हुआ। जमात का मुकाम मन्दिर के विशाल प्रांगण में ही हुआ। नगर के लोग दर्शनार्थ आते रहे। लोगों की श्रद्धा एवं आदर देख दोनों भाई सहित जमात के साधु-सन्त प्रसन्न होते रहे।

रात्रि होने पर दर्शनार्थी चले गये। अन्य साधु-महात्मा भी निद्राधीन हो गये। तब जगद्गुरु श्री शंकराचार्य तथा अनुज माधवाचार्य ने छद्म वेश धारण किया तथा स्वामी रामानन्दजी के दर्शनार्थ पूछते हुए उनके आश्रम की ओर जाने लगे। हिन्दुस्तान तथा हिन्दू धर्म की दुर्दशा से दोनों अत्यन्त व्यथित थे। स्वामी रामानन्दजी की चर्चा एवं चमत्कारों की कहानी सुनकर उनसे वे दोनों कुछ चर्चा करना तथा प्रश्न पूछना चाहते थे। भगवान श्री काशीविश्वनाथ ने उन्हें यही आदेश दिया था।

रात्रि के अन्धकार में दोनों कठिनाईपूर्वक स्वामीजी की कुटीर तक पहुँचे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर्यामी स्वामीजी उनके आगमन की बात पहले से ही जान चुके थे; परन्तु वे महामन्त्र का जाप कर रहे थे, अतः आचार्यपति को अनुज के साथ द्वार पर ही प्रतीक्षा करनी पड़ी।

द्वार पर परदा लगा हुआ था। दोनों को द्वार पर बैठे-बैठे ही अवर्णनीय आनन्द का अनुभव हुआ। उनकी वृत्ति आप ही एकाग्र होकर अन्तर्यामी में विलीन हो गयी। जिस आनन्द की एक बूंद मात्र से त्रिलोक का सुख मिलता है; उस परमआनन्द के महासागर में वे गोता लगाने लगे।

इस प्रकार कितना समय व्यतीत हुआ उनको ज्ञात नहीं रहा। भजन पूर्ण होने पर घण्टी बजी, शंखनाद भी हुआ; परन्तु उनकी रस समाधि भग न हुई। वे यही सोचते रहे कि जिन महापुरुष की कुटीर के बाहर बैठकर जिस देवदुर्लभ सुख की प्राप्ति अनायास ही हुई, उनके साक्षात दर्शन का क्या प्रभाव होगा? जब स्वामीजी ने परदा खोलकर स्वयं उन्हें स्वागतपूर्वक भीतर बुलाया तब ही उनकी योगनिद्रा भंग हुई। अलौकिक दर्शन पाते ही आत्मविस्मृतिपूर्वक दोनों श्री स्वामीजी के चरणों में गिर गये। उन्हें उठाकर प्रेमपूर्वक हृदय से लगाते हुए स्वामीजी ने कहा :

"यह आप क्या कर रहे हैं? अपने जगद्गुरु के पद एवं स्वरूप को सभालिये। ज्ञान की मर्यादा की रक्षा कीजिये। कृपया आसन ग्रहण कीजिये।"

दोनों आसन पर बैठ गये परन्तु अब भी जल से निकली हुई मछली की भाँति उसी दिव्य रस का चिन्तन करते रहे, जो बाहर उन्हें प्राप्त हुआ था। दोनों को मौन देखकर स्वामीजी बोले :

"हे जगद्गुरु! आप छद्म वेश लेकर आये हो, पर भेद खुल गया है। लोग क्या कहेंगे?"

गद्गद् और शिथिल स्वर में शंकराचार्य श्री भारतीतीर्थ ने कहा, "हे गुरुओं के गुरु! आपकी प्रेमसरिता की प्रखर धारा ने ज्ञान रूपी करारे को काटकर प्रवाह में डाल दिया है। आनन्द सागर में गोते खाकर हम पूर्णरूपेण आप्लावित हो चुके हैं। बाल संन्यास का प्रश्न लेकर आये थे, परन्तु उसका समाधान आप ही मिल गया है।

हे मुनिश्रेष्ठ! हम तो भगवान श्री काशीविश्वनाथ की प्रेरणा से यहाँ आये हैं। हमें किसी के कहने-सुनने की अब कोई चिन्ता नहीं है। हमारी समस्त साधना एवं ज्ञान साधारण कुटीर में रहने वाले एक भजनानन्दी महात्मा के सामने नतमस्तक खड़ा है। स्वामीजी! यह मेरा अनुज है। यह भी आपसे आशीर्वाद चाहता है।"

स्वामीजी ने दोनों को आशीर्वाद देते हुए कहा :

"हे शंकराचार्यजी! आपके प्रश्न हम जानते हैं। आप कर्मत्याग की बात भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोच रहे हैं, परन्तु गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

'न हि देहभृतां शक्यं त्यक्तुं कर्माणि अशेषजः।'

देहधारी मनुष्य के द्वारा कर्मों का सम्पूर्ण त्याग सर्वदा असम्भव है, क्योंकि प्रकृति के गुणों से विवश प्राणी को कर्म तो करने ही पड़ते हैं।

वास्तविक त्याग कर्म का नहीं कर्तृत्व के अभिमान का होना चाहिए। कर्तृत्वाभिमान ही प्रवृत्ति प्रतिपादक है, अतः उसके रहते कर्म तथा कर्मफल का त्याग सम्भव नहीं है। कर्तृत्वाभिमान का त्याग ही संन्यासनिष्ठा है, न कि कर्मत्याग।

इसका त्याग तभी सम्भव है जब हृदयस्थ पुरुषोत्तम से परिचय हो जाय। अतः मनुष्य को सर्वप्रथम हृदयमन्दिर में स्थित पुरुषोत्तम से परिचय प्राप्त करना चाहिए।"

शंकराचार्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उनका अनुज माधवाचार्य अपलक स्वामीजी को देख रहा था। माधव भी संन्यासी था। उसके तेजस्वी बदन पर दृढ़ आत्मविश्वास था। स्वामी श्री रामानन्दजी उसे देख प्रसन्न हो गये। उनका भूत-भविष्य भी स्वामीजी ने देख लिया। वे बोले :

"आपका अनुज देव-आराधन से निष्पाप हो गया है। निराभिमान जनित ज्ञान प्राप्त करने से वेदमाता ने इन्हें पवित्र कर दिया है। इन्हें पूर्वजन्म का ज्ञान भी हो गया है तथा यह संस्कार ज्ञानाग्नि में संदग्ध होने ही वाले हैं। इनका भविष्य भी उज्ज्वल है। देश की दयनीय परिस्थिति से आप्लावित यह देश के लिए अवश्य कुछ करेंगे।"

माधव भी प्रसन्न हो गये। उन्होंने स्वामीजी को पुनः नमस्कार किया। शंकराचार्यजी ने कहा :

"हे यतिपति ! आप सम्प्रति विरक्तों में मूर्धन्य हैं। हंसों में परमहंस हैं। आपकी स्तुति किस प्रकार करें ? एक कृपा कीजिये। मेरे अनुज के मस्तक पर हाथ फेरिये जिससे वह प्रतिभाशाली होकर वेदभाष्य लिख सके। वेद का भाष्य करना तो ऋषियों का काम है। अतएव उसे ऋषि बनाइये।"

इस प्रार्थना पर स्वामीजी ने माधवाचार्य के मस्तक पर हाथ फेर दिया। इस पावन स्पर्श से स्तब्ध होकर वे अलौकिक स्थिति का अनुभव करने लगे। तदनन्तर स्वामीजी ने शंखनाद गुंजारित कर दिया, जिसको सुनते ही वे सत्यलोक में ब्रह्मर्षियों में प्रतिष्ठित हो गये। तदनन्तर स्वामीजी माधवाचार्य से कहने लगे :

"हे विद्यारण्य ! विद्या तभी रहेगी, जब जंगल में रहोगे, एकान्त में रहोगे। ध्वनि (नामस्मरण रूपी देव-आराधना) और ध्यान का त्याग तीन काल में कभी नहीं करना। नियमित रूप से किये जाने वाले नामध्वनि तथा ध्यान ही चैतन्य बनकर फलदायी बनते हैं। नामस्मरण भाव से परिप्लावित होना आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे माधवाचार्य ! परमात्मा का सम्पूर्ण सृष्टि-विस्तार भावमयी माया ही है। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की भावना से ही विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। भाव से ही सृष्टि का सर्जन हुआ है और सृष्टा स्वयं भाव के ही आधीन रहते हैं। भाव के आधीन देवता तथा भाव के आधीन भगवान ! भाव से ही भव तथा भाव से ही भवि ! जन्ममरण का यह चक्र मनुष्यों की भावना-वासनाओं का ही परिणाम है; भावना से ही जीव भटकता रहता है, इस प्रकार भाव ही मनुष्य का भाग्य निश्चित करता है।

यह सुनिश्चित है कि प्रेमपूर्ण भाव ही सच्चिदानन्द विग्रह है। श्रीराम नाम रूपी दिव्य ध्वनि सदैव करने से ही पूर्वार्जित कर्म दग्ध होते हैं। नाम-विग्रह रूपी प्रतीक मानस पूजा के लिए सबको सदैव सुलभ है। अतः नामस्मरण नित्य करना।"

स्वामीजी ने पुनः शंख बजाया, जिसे सुनते ही माधवाचार्य अचेत हो गये और शंकराचार्य भी सुधि खो बैठे। बहुत समय के बाद जब होश आया तो दोनों ने स्वामीजी को दण्डवत प्रणाम किया। स्वामीजी की स्तुति की तथा चरणरज मस्तक पर चढ़ाई तदनन्तर दोनों स्वस्थान चले गये।

माधवाचार्य तब से स्वामीजी के प्रेमी भक्त बन गये। वे स्वामीजी से बहुत प्रभावित हुए थे। देश के लिए कुछ भी करने को वे तैयार थे, इस विषय में स्वामीजी से वे पुनः चर्चा करना चाहते थे, अतः दूसरे दिन कुछ संन्यासियों के साथ माधवाचार्य पुनः आश्रम में आये। धर्म तथा राष्ट्र की संकटापन्न स्थिति में आवश्यक कर्तव्यों का परामर्श किया। जगद्गुरु श्री शंकराचार्य भारतीतीर्थ के अनुज माधवाचार्य तब से माधव विद्यारण्य के नाम से अपनी पहचान बनाने लगे। प्रेरणामूर्ति स्वामीजी के बताये गये रास्ते पर वे कर्तव्यपरायण होकर निकल पड़े। लोगों में उनकी विद्यारण्य मुनि के नाम से ख्याति हुई।

आचार्य विद्यातीर्थ के शिष्य भारतीतीर्थ तथा माधवाचार्य थे। माधवाचार्य विद्यारण्य पहले विद्यातीर्थजी से तथा उनके अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् भारतीतीर्थ से उपदेश ग्रहण करते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. पुनरुद्धार

स्वामी रामानन्दजी की आयु लगभग 25 वर्ष की हो चुकी थी। उनकी कीर्ति व तेज देशव्यापी बन चुके थे। स्वामीजी कभी-कभी ही लोगों की प्रार्थना पर उनके दर्शनार्थ तथा सत्संग हेतु बाहर पधारते थे, अन्यथा वे सदैव अपनी बन्द कुटीर में निजानन्द में निमग्न अपनी साधना में निरत रहते थे।

इस समय काशी में पुनः जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी जमात सहित पधारे। जमात सीधे पंचगंगाघाट पहुँची। स्वामीजी अपने श्री सद्गुरुदेव के चरणों में प्रणिपात करके धन्य बन गये। काशीवासियों ने स्वामीजी के साथ जमात की सेवा में कोई त्रुटि न रखी। वाजपेयीजी को सेवा का अमूल्य अवसर मिल गया। जितने दिन जमात रुकी, वे पंचगंगाघाट पर सेवा में लगे रहे। वहाँ अपूर्व भीड़ जमने लगी।

कुछ दिन रुककर जमात परिभ्रमण एवं यात्रार्थ आगे बढ़ने को तैयार हुई। इस समय जगद्गुरुश्री ने निज शिष्य रामानन्दजी को साथ चलने का आदेश दिया। अपने श्री सद्गुरुदेव के साथ यात्रा करने का सुअवसर भला स्वामीजी कैसे जाने देते ?

शंखनाद की मंगलमय ध्वनि सहित निश्चित समय पर जमात पंचगंगाघाट से विदा हुई। काशीवासियों का बहुत बड़ा समूह उस समय स्वामीजी एवं जगद्गुरुश्री को भावभरी विदाई देने वहाँ उपस्थित था। स्वामीजी की विदाई से वे अत्यन्त व्याकुल हो गये, क्योंकि पंचगंगाघाट अब पुनः आनन्द-उल्लास रहित हो गया। कुछ सन्त, जो वहाँ निवास करते थे, वे भी स्वामीजी के साथ यात्रा पर चले गये।

जमात काशी छोड़ उत्तर की ओर प्रस्थान कर गयी। अनेक नगर-ग्राम-जंगलों में होते हुए जमात बढ़ती रही। अनेक स्थान पर आग्रहपूर्वक लोगों ने जमात को रोका तथा सत्संग लाभ लिया। जंगलों में छिपे अनेक परिवारों ने अपनी कथा-व्यथा इन सन्तों को सुनायी। उन सबको हिम्मत प्रदान की गयी तथा स्वधर्म में ही रत रहने का अनुरोध किया गया।

इस समय देश की परिस्थिति अत्यन्त विकट थी। संवत् 1381 में लखनौती में विद्रोह हुआ। उस समय दिल्ली के सुलतान गयासुद्दीन तुगलक विद्रोह को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दबाने स्वपुत्र जूना खाँ को राज्य-भार देकर सैन्य सहित लखनौती पहुँचे। मुस्लिमों में नैतिक मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। सत्ता के लिए पुत्र पिता की, भाई भाई की तथा भृत्य स्वामी की हत्या करने में किंचित्मात्र संकोच नहीं करते थे। पिता के लखनौती पहुँचने पर जूना खाँ ने दिल्ली सत्ता हस्तगत कर ली तथा दिल्ली में विद्रोह कर दिया। यह सन्देश जब गयासुद्दीन को प्राप्त हुआ तो वे तुरन्त दिल्ली लौटे, परन्तु पुत्र ने छल रचाया। पिता के स्वागत का कार्यक्रम एक तम्बू में रखा तथा तम्बू गिराकर पिता की, भाई की तथा उनके विश्वासी साथियों की हत्या कर दी। तदनन्तर मोहम्मद-बिन-तुगलक के नाम से वह दिल्ली का सुलतान बन गया।

पिता की हत्या करने वाले इस बादशाह ने सत्ता हस्तगत करने के पश्चात् हिन्दुओं पर निर्दयता का दौर चलाया। भाँति-भाँति के कर लगाये। खेतों की उपज का आधा हिस्सा राज्य में देने का नियम बनाया। कृषिकार सब कंगाल हो गये। उनसे जमीन छीन ली गयी तथा धर्मांतर करने वालों को दे दी गयी। गाँवों की प्रजा पर भी निर्दय अत्याचार किये। इसके डर से अनेक लोग जंगलों में भाग गये। भागते हुए लोगों की सैन्य द्वारा सामूहिक हत्या करायी गयी। सर्वत्र हाहाकार मच गया तथा असन्तोष फैल गया।

धर्मांध सुलतान ने धर्म-परिवर्तन कराने के लिए नयी-नयी युक्तियाँ लगायीं। अनेक स्थान पर प्रजा ने विद्रोह भी किया किन्तु उसे निर्दयता से दबाने सर्वत्र सैन्य भेजा गया। सैन्य ने हिन्दुओं की निर्मम हत्या का अमानुषी दौर चलाया। अनेक राजाओं को हारकर भागना पड़ा। अनेकों को धर्म-परिवर्तन स्वीकार करना पड़ा। अनेक छोटे हिन्दू राज्यों को मुस्लिम सत्ता में सम्मिलित कर दिया गया।

अयोध्या--परमात्मा श्री रामचन्द्र का दिव्य धाम भी इससे बचा न रह सका। यहाँ के राजा वीरसिंह देव धर्म-परिवर्तन करने के भय से राज्य छोड़कर भाग गये। शेष राजपरिवार का बलात् धर्मपरिवर्तन कराया गया। विरोध करने वालों की हत्या की गयी। अनेक लोग घर-व्यापार छोड़कर भाग निकले। सर्वत्र लहू की नदियाँ बहने लगीं। लोग त्राहि-त्राहि पुकारने लगे।

इन समाचारों से जमात व्यथित हो गयी। सर्वत्र लोगों को धैर्य बँधाते हुए स्वधर्म में ही रत रहने का अनुरोध किया गया। त्रस्त प्रजा को समय पर मिलती इस सहानुभूति से प्रबल दृढ़ता एवं स्थिरता मिलती थी।

सद्गुरुदेव से परामर्श करके स्वामी रामानन्दजी ने इन बलपूर्वक मुस्लिम बनाये गये हिन्दुओं का पुनरुद्धार का कार्य आरम्भ किया। तीर्थाटन के साथ-साथ इस प्रकार धर्मसंस्थापन का महती कार्य करके स्वामी रामानन्द समाज एवं संस्कृति को एक नयी दिशा दिखाकर सनातन धर्म बचाने का अभियान शुरू करने में तत्पर हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वत्र सत्संग एवं धर्मकार्य चलता रहा। जमात के स्वामी रामानन्दजी का प्रभाव सर्वत्र अधिक रहा। शुक्ल वस्त्रधारी युवान संन्यासी का गौर-सुगठित श्रीअंग, उन्नत तेजोदीप्त भालप्रदेश, विशाल अरुणाभ नेत्र, कमलदल लोचन से प्रस्फुटित प्रेम एवं करुणा की अविरत धारा से अभिभूत जनता अपना दुःख-दर्द स्वतः भूल स्वामीजी की प्रेमधारा से परिप्लावित हो उठी थी। अनेक धर्मांतरित हिन्दू परिवार अपनी कथा सुनाकर स्वामीजी से पुनः हिन्दुत्व प्राप्त करते थे। सर्व-जन स्वामीजी से मिलने, उनके दर्शन करने तथा उनसे प्रेमवाणी सुनकर संतृप्त होने तत्पर रहते थे। जगद्गुरुजी श्री राघवानन्दाचार्य अपने प्रिय शिष्य का सर्वत्र प्रभाव देख प्रसन्न होते थे। प्रभु का अंशावतार लोगों के मन-मस्तिष्क में स्वतः ही अपना स्थान बनाये तो आश्चर्य क्या? परन्तु गुरु का अभिनय करना भी तो उनका एक कर्तव्य था।

अन्य सन्तों ने भी देखा कि स्वामी रामानन्दजी स्वतः स्वभावसिद्ध तापस थे। उनका अपरिग्रह, उनकी तितिक्षा, उनका यज्ञकार्य एवं नियम-संयम अद्वितीय थे। नित्य निष्काम ही रहते थे वे। अनेक धनी-सम्पन्न परिवार अपना वैभव इनके श्रीचरणों में रखकर धन्य होने की कामना रखते रहे, किन्तु उन्हें इस वैभव की क्या आवश्यकता? उनकी अतुलनीय प्रज्ञा, उनकी निर्भयता तथा निरभिमानता से सर्व सन्तजन स्वतः उनको आदर देने लग गये।

जगद्गुरुश्री ने गुरु का अभिनय करते हुए निज शिष्य को क्रियायोग में प्रवृत्त किया। योग भी प्रत्येक क्रियाओं से उन्हें विधिवत् अवगत कराया गया। अन्य सन्तों से परामर्श करते हुए स्वामी रामानन्दजी ने ज्ञान-भक्ति-योग एवं कर्म का सुभग समन्वय करने पर बल दिया।

यात्रा के समय स्वामीजी ने मानवीय अभिनय निभाते हुए देखा कि देश की इस संकटापन्न स्थिति में भी हिन्दू समाज स्वयं अपने आप पर वज्राघात कर रहा है। तथाकथित पण्डित एवं ब्राह्मण अपनी जड़ मान्यताओं से समाज को बलहीन एवं जड़ बना रहा था।

समाज में ऊँच-नीच का भेद अधिक दृढ़ हो गया था। सामान्य जनता को सदैव भयभीत रहना पड़ता। किंचित्मात्र यवन स्पर्श अथवा निम्न वर्ण के व्यक्ति का कार्य उन्हें तथा उनके परिवार को समाज से बहिष्कृत कर देता था। अनेक विनतियों के उपरान्त कदाचित् ही भारी प्रायश्चित करके उन्हें पुनः स्वीकृत किया जाता था। अपने ही समाज से बहिष्कृत उस व्यक्ति अथवा परिवार को अन्ततः मुस्लिम धर्म अंगीकार करना ही पड़ता था। इस परिस्थिति को जानते हुए सत्ता-धारी मुस्लिम प्रयत्नपूर्वक सदैव ऐसी ही चेष्टाएँ करते थे। फलस्वरूप अनेक हिन्दू बहिष्कृत होते रहे। ऐसे लोगों की कथा-व्यथा सुनकर उन्हें पुनः हिन्दुत्व प्रदान करने का जो प्रयत्न करता, समाज उन्हें भी बहिष्कृत घोषित कर देता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी रामानन्दजी ने प्रत्येक स्थान पर ऐसे लोगों को पुनः पवित्र संस्कार दिये। अपने एकाधिकार में विघ्न आने पर पण्डितों एवं ब्राह्मणों ने उनका विरोध भी किया, किन्तु प्रेम, सहृदयता अथवा शास्त्रार्थ से, तथा आवश्यकता पड़ने पर चमत्कार दिखाकर भी उन्होंने पण्डितों को परास्त किया। उन सबको समझाकर हिन्दू पुनरुद्धार के इसी कार्य में संलग्न रहने का अनुरोध किया। स्वामीजी के अलौकिक व्यक्तित्व से अनेक पण्डित स्वतः झुक गये। उनके दिव्य शंख के नाद से मस्त लोग सर्वस्व भुलाकर हजारों की संख्या में एकत्रित हो जाते थे। उनके दर्शन मात्र से त्रस्त एवं असहाय लोगों में आनन्द का अनन्त स्रोत इस प्रकार फूट पड़ता था जैसे किसी मरणासन्न प्राणी में जीवन का अपार प्रवाह अकस्मात् फूट पड़ा हो।

सर्वत्र परिभ्रमण करते हुए जमात बलिया पहुंची। बलिया नरेश ने जमात का भव्य स्वागत किया। उनकी प्रार्थना पर यहाँ श्रीरामकथा का आयोजन हुआ। स्वामीजी ने कथा में विश्वामित्र ऋषि के द्वारा भगवान श्रीराम एवं लक्ष्मण के विद्या ग्रहण करने वाले प्रसंग को लोगों को प्रत्यक्ष दिखाया। शनैः-शनैः कण्ठों से जयनाद गूंज उठा। सर्वत्र स्वामी रामानन्दजी का जयघोष होने लगा।

बलिया से जमात श्री अयोध्याजी—प्रभु की लीलाभूमि की ओर बढ़ने लगी। राजपरिवार ने भय से मुस्लिम धर्म अंगीकार कर लिया था। दिल्ली सुलतान की तरफ से शासन करने एक सरदार ऐननमुल्क को नियुक्त किया गया था। वह अपने सुल्तान की ही भाँति अत्यन्त निर्दय एवं कठोर व्यक्ति था। अनेक यातना देकर वह धर्म-परिवर्तन कराता था।

जमात भगवान श्री राघवेन्द्र की जन्मस्थली पर बने हुए चौरासी स्तम्भ वाले विशाल मन्दिर में पहुंची। प्रभु के दर्शन करके सब पुलकित हो उठे। विधिवत् पूजन-अर्चन किया गया। वहाँ के पुजारी एवं ब्राह्मणों ने सन्तों का यथोचित् आदर-सत्कार किया।

सायंकाल को मन्दिर के प्रांगण में विशाल सभा का आयोजन किया गया। स्वामी रामानन्दजी ने हिम्मतपूर्वक लोगों को विधर्मी आतंक का सामना एकजुट होकर करने का आह्वान दिया। 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' की गीता की बात भी दोहरायी। बलात् धर्म-परिवर्तन कराये गये हिन्दुओं ने स्वामीजी की प्रेरणा से पुनः धर्म-परिवर्तन कराने की घोषणा की। यह सुन सरदार ऐननमुल्क क्रोधित हुआ। उसने जमात सहित स्वामीजी को प्रताड़ित करने की अनेक युक्तियाँ प्रयोग कीं, किन्तु स्वामीजी के प्रभाव से वह कुछ न कर सका। अनेक लोगों को स्वामीजी की घोषणा से हिम्मत प्राप्त हुई। उन्होंने प्रशासकीय बल के विरुद्ध होकर पुनः हिन्दुत्व धारण किया। अधिकांश लोग पुनः हिन्दू बन गये। अधिकाधिक लोक-सम्पर्क करते हुए, जमात कानपुर की ओर प्रस्थान कर गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कानपुर में भी छल-बल से अनेक अत्याचार मुस्लिम धर्मांध सरदारों द्वारा किये गये थे। अनेक लोगों ने अपनी सम्पत्ति बचाने, अनेक स्त्रियों ने अपने शील बचाने तथा विवशतावश मुस्लिम धर्म अंगीकार कर लिया था। वहाँ भी लोगों का पुनरुद्धार किया गया। परिस्थिति का संगठित होकर हिम्मत एवं धैर्यपूर्वक सामना करते हुए स्वधर्म में ही रत रहने के लिए लोगों का आह्वान दिया गया। जहाँ स्वामीजी के प्रतिभा सम्पन्न अलौकिक तेजपूर्ण व्यक्तित्व एवं प्रेमपूर्ण प्रवचन से लोग एक नयी हिम्मत प्राप्त कर लेते थे वहीं अनेक ब्राह्मण एवं पण्डितों से देश एवं धर्म की सेवा में संलग्न होने के लिए अनुरोध किया गया।

कानपुर से वे लक्ष्मणपुर (लखनऊ) पहुँचे। अनेक स्थानों पर होते हुए जमात सीतापुर, रामपुर तथा नैमिषारण्य पहुँची। सर्वत्र लोक सम्पर्क करके हिम्मत एवं धैर्य प्रदान करके सत्संग चलता रहा। आतंक से पीड़ित हिन्दू समाज को इससे सम्बल प्राप्त हुआ। स्वामीजी का नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। जहाँ जमात पहुँचती हजारों की संख्या में लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ उमड़ पड़ते।

जमात मथुरा पहुँची। कर्मयोगी श्रीकृष्ण के जन्मस्थान पर बने विशाल मन्दिर में दर्शन-पूजनादि से निवृत्त होकर उसके विशाल प्रांगण में लोगों की प्रार्थना पर सत्संग रखा गया। स्वामीजी ने विधर्म तथा विधर्मियों का एक होकर श्रीकृष्ण की भाँति सामना करने का अनुरोध लिया।

मथुरा से वृन्दावन आदि अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए जमात चित्रकूट पहुँची। वहाँ कुछ काल निवास किया। तदनन्तर जमात भोजपाल (भोपाल) की ओर गयी। देवगिरी के निकट जंगलों में छिपे अनेक परिवारों को अपनी सम्पत्ति पर अधिकार लेने पुनः स्वस्थान जाने की प्रेरणा दी गयी। भोपाल नरेश ने जमात का भव्य स्वागत किया। स्वामीजी की कीर्ति उन्होंने बहुत सुनी थी। उनके प्रत्यक्ष दर्शन करके वे धन्य हुए। वहाँ कुछ काल सत्संग लाभ देकर जमात इन्दौर गयी। मालवीय पण्डितों के आग्रह से यहाँ श्रीराम महायज्ञ का आयोजन किया गया। जनता ने इस अमूल्य अवसर का बहुत लाभ लिया।

भगवान श्री महाकाल एवं ओंकारेश्वर के दर्शन से कृतार्थ जमात वहाँ कुछ काल रुकी। ओंकारेश्वर में यज्ञ में विघ्न करने कापालिक आदि आये तथा अपनी तमोगुणी साधना से जमात के सन्तों को पीड़ित करने लगे, किन्तु स्वामीजी ने अपनी दिव्य शंखध्वनि के द्वारा उनको शान्त एवं निष्क्रिय बना दिया। कुछ कापालिकों में श्रवण मात्र से ऐसा परिवर्तन आ गया कि अशुभ भेष का सदा के लिए परित्याग किया तथा स्वामीजी से प्रार्थनापूर्वक वैष्णवी दीक्षा लेकर लोक कल्याण में निरत हो गये।

यहाँ से जमात अमरकंटक पहुँची। सत्संग-प्रवचन आदि हुए। ओंकारेश्वर की घटना से क्रोधित कुछ वाममार्गी कापालिकों ने स्वामीजी को वहाँ घेर लिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा उनके ऊपर हड्डियों की वर्षा करने लगे। परन्तु स्वामीजी की दृष्टि पड़ते ही हड्डियाँ अदृश्य हो गयीं तथा फूलों की माला बन गयीं। वाममार्गियों के सरदार की साँस रुँधने पर वहीं मृत्यु हो गयी। अन्य साथियों ने स्वतः स्वामीजी की शरण स्वीकार करके क्षमायाचना की।

वहाँ से जमात अब पुनः प्रयाग की ओर आगे बढ़ी। प्रयाग के श्रद्धालु लोगों ने स्वामीजी एवं जगद्गुरु की शोभायात्रा निकाली। स्वामीजी के बाल्यकाल को जानने-सुनने वाले अनेक लोग यहाँ उपस्थित हो गये तथा शनैः-शनैः कण्ठों से जयध्वनि करने लगे। हिन्दुओं के पुनरुद्धारक के रूप में उनका नाम सर्वत्र गूंजने लगा।

सर्वत्र परिभ्रमण करते हुए जमात पुनः काशी पहुँच गयी। काशीनरेश एवं काशी की प्रजा ने अपने प्रिय स्वामीजी का अद्भुत स्वागत किया। राजकीय एवं धार्मिक संकट रूपी अन्धकार में डूबी हुई हताश एवं निराश जनता को, स्वामीजी के रूप में, एक नयी आशा एवं विश्वास की किरणों से देश एवं धर्म को आलोकित करने वाले एक विशिष्ट मार्तंड (सूर्य) का उदय दिखाई दिया। काशी के इस मार्तंड ने नयी आशा एवं हिम्मत के अनूठे प्रकाश से प्रजा के मन को आलोकित कर दिया था। धर्म-परिवर्तन करने के शासकों के प्रयत्नों में स्वामीजी एवं उनसे प्रेरणा प्राप्त कर प्रवृत्त हुए अनेक लोगों के आपसी प्रयत्नों से स्वतः रुकावट आ गयी।

जगद्गुरु श्री राघवानन्दजी कुछ समय काशी रुके। स्वामी रामानन्दजी सद्गुरुदेव की सेवा के साथ निज कुटीर में साधना में प्रवृत्त हुए। काशी के श्रद्धालु भक्तों ने जमात की सर्व प्रकार से सेवा की।

आश्रम में पुनः सत्संग का नित्यक्रम शुरू हो गया। जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी ने काशी के लोगों की अभिलाषा पूर्ण की।

(2)

अपनी साधना में निमग्न स्वामीजी कदाचित् ही आश्रम छोड़ बाहर जाते थे। परन्तु एक दिन महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर भगवान काशीविश्वनाथजी के मन्दिर में दर्शनार्थ जाने का निश्चय किया।

ब्रह्ममुहूर्त से पूर्व ही कमण्डल लेकर वे पंचगंगाघाट पर स्नानार्थ निकले। तारों ने नित्य की भाँति गगनमण्डल से ही उनकी चरणवन्दना की। स्नानादि से निवृत्त होकर कमण्डल में गंगाजल लिए ब्राह्मी वेला के पूर्व ही श्रीमठ छोड़ काशी की ओर वे चल दिये।

खेतों से होते हुए जब वे नगरी में पहुँचे तब वहाँ के रास्ते निर्जन थे। कहीं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं मात्र कुत्तों के स्वर सुनायी पड़ते थे। धीरे-धीरे वे भगवान के दिव्य मन्दिर तक पहुँच गये।

यहाँ उन्होंने देखा कि द्वार अभी तक बन्द थे तथा पुजारी एवं भक्तजन निद्राधीन थे। द्वार बन्द देखकर वे पुनः लौटने का विचार ही कर रहे थे कि मन्दिर के कपाट आप ही खुल गये तथा एक दिव्य प्रकाश वहाँ फैल गया। स्वामीजी मन ही मन समझ गये। प्रसन्न होकर उन्होंने मन्दिर में प्रवेश किया।

गर्भद्वार में प्रवेश करते ही गिरिजा-गिरीश ने स्वामीजी को साक्षात दर्शन दिये। स्वामीजी ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया; मस्तक पर चन्दन चढ़ाया, गले में हार पहनाया तथा चरणों पर अक्षत चढ़ाकर पुनः प्रणाम किया। गंगाजल से शिवलिंग पर अभिषेक भी किया।

देवों के देव महादेवजी ने परब्रह्म परमात्मा श्री रामजी के अंश रूप को मन्दिर में नतमस्तक देख स्वामीजी को हृदय से लगाया तथा आसन देकर सन्मानित किया। माता पार्वती इस दिव्य मिलन को प्रसन्नता से देखती रहीं। हर ओर हरि का ऐक्य ! एक तरफ मरणोन्मुख जीवों को उपदेश देकर परमधाम भेजने वाले भूतभावन शिवजी तो दूसरी तरफ जीवित व्यक्तियों को तारक मन्त्र देकर हरिसन्मुख कराने वाले संन्यासी रूप में रामजी। काशी का मन्दिर इस समय कैलाश का दिव्य भवन बन गया। माता भवानी ने स्वामीजी की सेवा में ऐसे-ऐसे दिव्य भोग उपस्थित किये, जिससे स्वामीजी सन्तुष्ट हो गये।

अवसर पाकर स्वामीजी ने भोलेनाथ को कलिराज से मिलन की चर्चा सुनायी। कलि के उदार आशय, विनयशीलता तथा सत्य परामर्श की चर्चा भी की। यह सुनकर भोले-भवानी दोनों प्रसन्न हो गये। भगवान आशुतोष ने कहा :

"हे स्वामीजी ! कलि से आपने उचित व्यवहार ही किया है। पाखण्डपति कलि की निष्ठा मात्र रामनाम में ही है; अतः आपने उपदेश देकर उसे जो कृतार्थ किया वह अच्छा ही हुआ। दुष्ट कलि ने व्यासजी से भी उपदेश लेना चाहा था, परन्तु महामुनि ने उसकी विनती अस्वीकार कर दी थी।

कलि का परामर्श भी उचित ही तो था, क्योंकि हमारे स्वामी श्री रामजी तो शीलनिधान हैं, दीनबन्धु हैं, फिर क्यों न हम भी उनका अनुकरण करें ? जिस प्रकार गंगाजल के अधिकारी सब हैं, तारक मन्त्र का अधिकार भी सबको समान रूप से होना ही चाहिए।

तदुपरान्त मन्त्र देकर आपने कलि को बाँध लिया वह अत्यन्त उत्तम हुआ, क्योंकि अब वह मन्त्र जपने वालों को बाधा नहीं पहुँचा सकेगा।"

स्वामीजी भगवान विश्वनाथ का सन्मान देख विनीत और संकुचित होकर कुछ न बोल सके। काशीपति पुनः बोले :

"हे यतिपति ! इस कलिकाल में एक बार भी श्रीराम नाम जपने वालों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी ईश्वरता भूलकर मैं तीन बार प्रणाम करता हूँ। परन्तु जब मेरे प्रभु श्रीराम स्वयं साक्षात मेरे समक्ष उपस्थित हो जायें, तो उनके सन्मान में मुझे क्या करना चाहिए यह मेरी समझ में नहीं आता।"

शिवजी का संकेत अपनी ओर देख स्वामीजी सकुचा गये। वे भगवान शम्भु एवं माता भवानी की स्तुति करने लगे :

"हे विश्वेश शम्भो ! हे जगदम्बे भवानी ! हम आपकी महिमा को नहीं जानते। परन्तु आपने हमें कृपापात्र बनाकर अपनी ही महानता का परिचय दिया है। हमें मात्र एक आशीर्वाद दीजिये कि 'श्रीराम' ही हमारी एकमात्र मति हो।"

भोले-भवानी प्रसन्न हो गये। माताजी ने गले का हार स्वामीजी को प्रसाद रूप दिया। भोलेनाथ बोले, "यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं (महेश) आपके विशुद्ध भाव की कल्पना भी नहीं कर सकते, तथापि इस लीलाभूमि में अवतरित होने से मैं वह आशीर्वाद तुम्हें देता हूँ।"

कुछ समय व्यतीत करके स्वामीजी पुनः श्रीमठ जाने को तैयार हुए। मन्दिर से गिरिजा-गिरीश अदृश्य हो गये। स्वामीजी मन्दिर के गर्भद्वार से बाहर आये।

मन्दिर के पुजारी तथा अन्य भक्त अभी निद्राधीन ही थे। बाहर आते ही स्वामीजी ने जोर से शंखनाद कर दिया तथा वहाँ से चल दिये।

शंखनाद सुनते ही मन्दिर के पुजारीगण तथा श्रद्धालु भक्तजन जाग्रत हो गये। मन्दिर का खुला हुआ पट देखकर पुजारी हल्ला करने लगे। चारों तरफ शोर होने लगा कि कहीं चोर तो नहीं आये। पुजारी कहते थे, मन्दिर के पट बन्द थे, किसने खोले ? कैसे खोले ? भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क होने लगे। विवेकी जनों ने पुजारियों को मन्दिर में जाकर देखने को कहा। जब देखा गया कि सब कुछ सुरक्षित था, तब हल्ला शान्त हुआ।

तब विवेकीजनों ने कहा, "अगर चोर आते तो अवश्य पट तोड़कर कुछ चुराकर ले जाते। परन्तु यहाँ न तो पल्ला टूटा है, न ही किसी वस्तु की चोरी हुई है। लगता है किसी सिद्ध पुरुष के आगमन से भगवान विश्वनाथ ने द्वार आप ही खोले हैं; अत. आने वाले व्यक्ति अवश्य कोई ऋषि, मुनि अथवा देवता ही होंगे। सुनो शंखध्वनि अब तक यहाँ गुंजारित हो रही है अतः आने वाले महात्मा अवश्य स्वामी श्री रामानन्दजी ही हो सकते हैं।"

सबको यह बात तर्कपूर्ण लगी। सब अपने-अपने स्नान, ध्यान, पूजन आदि में प्रवृत्त हो गये। बहुत लोग पछताने लगे कि निद्राधीन रहने से स्वामीजी के दुर्लभ दर्शन न पा सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(3)

ऐसे व्यक्तियों में एक थे विप्र श्री अभिराम शर्मा। ब्रह्ममुहूर्त में अमृतनाद कानों में प्रवेश होते ही विप्र ने सुधबुध गँवा दी। संयमी विप्र की विस्मृत पूर्वस्मृति जागृत हो गयी। उन्हें यह ज्ञान हुआ कि वे ब्रह्माजी के अंश हैं। अपने प्रभु चराचरपति श्री रामजी की आज्ञा प्राप्त होने पर उनकी सेवा हेतु पृथ्वी पर पधारे हैं।

विप्र अभिराम शर्मा का जन्म वि० सं० 1377 में कार्तिकी पूर्णिमा शनिवार को, श्री अयोध्याजी एवं सरयू नदी के पार महेशपुर नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री विश्वनाथ त्रिपाठी एवं माता पार्वतीदेवी अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के थे। बचपन में ही माता-पिता का देहान्त हो जाने से गाँव के एक पण्डित श्याम-किशोरजी ने उन्हें बड़ा किया। विप्र अभिराम शर्मा वेदविद्या में पारंगत एवं सामगान में निपुण थे। उनकी विद्वत्ता एवं सद्व्यवहार से गाँव के वे आदरणीय ब्राह्मण थे। परन्तु म्लेच्छों ने अयोध्या को अपने शासन में सम्मिलित कर दिया था। इस क्षेत्र में यवन उपद्रव भयंकर हो गया था। अयोध्या तथा समीपवर्ती प्रदेशों में असंख्य लोगों का बलात् धर्मपरिवर्तन किया गया था। असहिष्णु शासकों ने सामूहिक धर्मपरिवर्तन अथवा सामूहिक हत्या के दो विकल्प ही जनता के सामने रखे थे। महेशपुर गाँव में भी आततायियों ने अत्याचार का आतंक चलाकर अनेक ग्रामवासियों की निर्मम हत्या कर दी थी। इस भय से बचने के लिए विप्र ने गाँव छोड़कर भगवान काशीपति की शरण ग्रहण कर ली थी।

ब्रह्ममुहूर्त में शंखनाद सुनने के बाद अपने प्रभु के दर्शन के लिए विप्र लालायित हो गये। वे नित्य आश्रम जाते तथा पंचगंगाघाट पर स्वामीजी की कुटीर की परिक्रमा करके चले आते, परन्तु उन्हें पुनः दर्शन लाभ प्राप्त न हो सका। दर्शन की कठिनता से लालसा अत्यधिक हो गयी।

वे जानते थे कि स्वामीजी ब्रह्ममुहूर्त में घाट पर स्नानार्थ आते हैं। अतः एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में ही पंचगंगाघाट पहुँच गये तथा वहाँ बैठकर स्वामीजी की प्रतीक्षा करने लगे। गंगाजी कलकल करती बह रही थीं, पूर्णिमा की चाँदनी के धवल प्रकाश से गंगाजल चाँदी-सा चमकीला भासित हो रहा था। विप्र को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

थोड़ी ही देर में स्वामीजी कुटीर से बाहर आये तथा पंचगंगाघाट की ओर बढ़ने लगे। स्वामीजी के पास आते ही विप्र भुवनवंद्य के पावन पदों में प्रणत हो गये। उनके नेत्रों से टपकते अश्रु वारिधारा बन गये। रोम-रोम पुलकित हो गया तथा कण्ठ अवरुद्ध। स्वामीजी विप्र को देखते ही ब्रह्माजी के अंश को पहचान गये, परन्तु मानवीय अभिनय करते हुए प्रेमार्द्र स्वर से बोले, "क्या चाहते हो वत्स ?"

विप्र ने भावपूर्ण स्वर से कहा, "स्वामीजी ! इस दास को आपके चरणों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। कृपया मेरा अनुरोध स्वीकार कीजिये तथा मुझ अनाथ को सनाथ कीजिये।"

स्वामीजी ने स्वीकार करते हुए कहा, "अच्छा, विप्र ! सेवा ही चाहते हो तो आज से आश्रम स्वच्छ रखना (बुहारी लगाना) ही तुम्हारी सेवा है।"

कहते हुए स्वामीजी स्नानार्थ आगे बढ़े। विप्र प्रणाम करते हुए कुटीर की ओर चले गये।

वेदविद्या के धुरन्धर पण्डित तथा सामगान में निपुण अभिराम शर्मा अपने गाँव के प्रसिद्ध ज्ञानी पण्डित थे। परन्तु पण्डिताई छोड़कर गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके उसी दिन से नित्य आश्रम में झाड़ू लगाने की सेवा सहर्ष करने लगे। आश्रम में अनेक साधु-सन्त तथा अनेक भक्तजन नित्य आते-जाते थे। विप्र उन सबकी सेवा भी करते। जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी भी इस समय स्वामी रामानन्दजी के पास ही थे। वे विप्र से अति प्रसन्न हुए। आश्रम के प्रत्येक कार्य में सहयोगी होना तथा निम्न-से-निम्न सेवा भी स्वयं आप ही सहर्ष करना ही उनका नित्यक्रम बन गया था। विप्र जानते थे कि भगवत् प्राप्ति के लिए सक्षम सद्गुरु की शरण के उपरान्त शुद्ध अन्तःकरण भी परम आवश्यक है। सेवा से अन्तःकरण की शुद्धि शीघ्र होती है। व्यक्ति का अहंकार तथा कार्य के प्रति निम्न-महत मूल्यांकन करने की बुद्धि ही उसे सेवा करने से रोकती है। अतः वे सदैव मानहीन, क्रोधहीन तथा अनासक्त रहकर सबकी सेवा में निरत रहते थे।

जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी ने विप्र से सन्तुष्ट होकर एक दिन अपने प्रिय शिष्य स्वामी रामानन्दजी को विप्र को विरक्त दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान की। विप्र को तो त्रिलोक का साम्राज्य भी इसके सामने फीका लगा। शुभ दिन देख स्वामी रामानन्दजी ने विप्र अभिराम शर्मा को वैष्णवी विरक्त दीक्षा प्रदान की। पंचसंस्कार से उन्हें सुसंस्कृत करके पावन षडाक्षर तारक मन्त्र का उपदेश दिया। विप्र का विरक्त नाम 'अनन्तानन्द' रखा गया।

अनन्तानन्दजी की साधना अब अधिक सुदृढ़ हो गयी। वे जानते थे कि शिष्यत्व ग्रहण करने से उनका दायित्व अधिक हो गया है। गुरुआज्ञा ही अब उनकी परम साधना थी, गुरु सेवा ही परम धर्म था। सत्पात्र शिष्य को सक्षम सद्गुरु की शरण प्राप्त हो गयी। श्री तारक मन्त्र का तथा महामन्त्र 'श्रीराम' का अधिकाधिक जप करते हुए वे नित्य सेवाकार्य करते रहे।

सद्गुरु ने फिर भी शिष्य की परीक्षा ली। प्रकृति त्रधूटी ने अत्यन्त तेजस्वी मोहमयी सुन्दरी का रूप लिया तथा बत्तीसों आभूषण पहने, सुन्दर शृंगार करके नववयस्क ब्रह्मचारी को अपनी छटाओं से लुभाने लगी। परन्तु सद्गुरुदेव के शरणागत तथा अपनी निष्ठा पर दृढ़ शिष्य अनन्तानन्दजी तारक मन्त्र का जप तथा सद्गुरु का स्मरण करते रहे। सुन्दरी लजाकर चली गयी। स्वामीजी का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिष्य भी सत्पात्र ही निकला।

अनन्तानन्दजी अब स्वामीजी की असीम कृपा के पात्र हो गये। योग्य पात्र देख अल्प समय में ही स्वामीजी ने सम्पूर्ण विद्या उन्हें सिखा दी। सच्ची निष्ठा एवं शरणागति देखकर कुछ ही समय में उन्हें स्वामीजी ने निजसेवा में ले लिया।

अनन्तानन्दजी की दशा अब अपूर्व हो गयी। सद्गुरुदेव की कृपा से योगी, जति तथा मुनि भी जिस स्थिति को प्राप्त करने सदैव प्रयत्नशील रहते हैं, उस चतुर्थ अवस्था (तुरीयावस्था) को वे प्राप्त कर चुके। उनकी दृष्टि अब बदल गयी। संसार उनके लिए अब स्वप्न ही बन गया।

गुरुसेवा करते हुए अनन्तानन्दजी सदैव स्वामीजी की कुटीर के बाहर बैठकर महामन्त्र का जप करते थे। आगतों का परिचय पूछकर स्वामीजी को बताते। तदनुसार बन्द परदे के भीतर बैठे हुए स्वामीजी आगतों से यथोचित व्यवहार करते। स्वामी श्री रामानन्दजी ने अपने प्रिय शिष्य अनन्तानन्द को आवश्यकता पड़ने पर स्वतः उपदेश देने की स्वतन्त्रता भी प्रदान कर दी थी।

इस प्रकार पंचगगाघाट का स्थान धीरे-धीरे एक सुव्यवस्थित आश्रम में बदलता गया।

(4)

स्वामी रामानन्दजी के एक प्रेमी भक्त प्राज्ञमतेश्वरजी खेचरी मुद्रा का अभ्यास करके कुंडलिनी जाग्रत करने की साधना में लगे हुए थे।

न रागो भरणं तस्य न रोगेण लिप्यते न च कर्मभिः।
बाध्यते न च क्षेनापि यो मुद्रा वेत्ति खेचरीम् ॥

इस सिद्धान्त को दृढ़ता से मानते हुए वे नित्य खेचरी का अभ्यास करते रहे थे। परन्तु एक दिन अभ्यास करते-करते उनकी स्थिति विचित्र हो गयी। प्राण की ऊर्ध्वगति रुक गयी तथा श्वास का आना-जाना भी बन्द हो गया। विकल होकर स्वामी रामानन्दजी का वे स्मरण करने लगे। अंतःप्रेरणा से यह जानकर स्वामीजी आकाशमार्ग से रात्रि के तीसरे प्रहर प्राज्ञमतेश्वरजी के पास पहुँच गये।

खेचरी मुद्रा के अभ्यास में जो भूल उन्होंने की थी, उसे स्वामीजी ने सुधार दिया। खेचरी मुद्रा में उन्हें सम्भालकर चक्षुपटल खोल दिये। प्राज्ञमतेश्वरजी गगनमुद्रा में विचरण करके स्वस्थ हो गये तथा तुरन्त ही वे स्वामीजी के श्रीचरणों में गिर गये।

निराभिमानी प्राज्ञमतेश्वरजी को स्वामीजी ने योगस्थ करके सद्गुरु की प्रेरणा से महामन्त्र 'श्रीराम' नाम के दिव्य स्वरूपों के चमत्कार दिखाये। इससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभावित होकर उन्होंने हठयोग की साधना छोड़ महामन्त्र की सरल साधना को ही अपना साधन बनाया।

उन्हें रास्ता बताकर स्वामीजी आकाशमार्ग से पुनः आश्रम लौट रहे थे कि उनकी दृष्टि नक्षत्रों के समान प्रकाशित एक योगीमण्डल पर गयी। वह मण्डल देवताओं का था, जिनके प्रमुख इन्द्र थे। वे स्वामीजी के पास आये तथा करबद्ध होकर पृथ्वी पर उतरे।

देवराज ने स्वामीजी से कहा, "हे जगत्पति ! एक समस्या के निराकरणार्थ हम सब आपके पास आये हैं। भक्त शिरोमणि प्रह्लादजी को गर्भ में धारण करने वाली कोई माता पृथ्वी पर नहीं मिलती।"

स्वामीजी ने सस्मित प्रत्युत्तर दिया, "हे इन्द्र ! इस समस्या का निराकरण हो गया है। देवांगना प्रतीची उन्हें गर्भ में धारण करेंगी, तथा पृथ्वी पर जन्म देकर वह देवलोक चली जायेंगी।" यह सुनकर सिद्धमण्डल ने पुनः प्रणाम किया तथा आकाशमार्ग से चला गया। स्वामीजी पुन श्रीमठ में आ गये।

ब्रह्ममुहूर्त हो चुका था। अतः स्नानादि से निवृत्त होकर वे स्वसाधना में तत्पर हुए। उस समय उन्होंने शंखनाद किया।

शंखनाद सुनकर कई लोग जाग गये। उनमें एक गोपकन्या भी थी। आश्रम से दूर रहते हुए ग्वालों में, जागी हुई यह कन्या पागल-सी दौडती आश्रम आयी तथा बेहोश होकर गिर गयी। सुषुप्ति अवस्था में निष्प्राण जीव की तरह सूर्योदय तक वह बेहोश पड़ी रही।

जब अनन्तानन्दजी ने देखा तो जल छिड़ककर उसे सचेत करना चाहा। परन्तु कन्या की दशा चिन्मय हो चुकी थी। उसकी पुतलियाँ स्थिर हो गयी थीं। इस विषय में स्वामीजी से प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने कन्या को चरणामृत देने की आज्ञा प्रदान की। अनन्तानन्दजी ने वही किया। चरणामृत के छींटे ओष्ट पर गिरते ही कन्या सचेत हो गयी। हथेली पर चरणामृत लेकर पान किया, मस्तक पर भी चढ़ाया तथा स्वामीजी की जयजयकार करने लगी।

अचानक उसके आँचल से अग्नि उत्पन्न हुई। स्थूलता भस्म होकर दिव्यता निखर आयी। स्वामीजी की स्तुति करते हुए वह गोपकन्या सुरलोक को चली गयी।

(5)

आदिगुरु श्री शंकराचार्यजी द्वारा प्रस्थापित चार मठों में, हिमालय स्थित ज्योतिर्मठ (जोषीमठ) के अधिष्ठाता इस समय वीरानन्द स्वामी थे। वे सोऽहं की अखण्ड वृत्ति साधकर अपनी साधना में सदैव लीन रहते थे। पाँच तत्वों का ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने प्राप्त कर लिया था। अविद्या का नाश करने वाले कैवल्य प्रद की प्राप्ति अब अधिक दूर नहीं थी।

परन्तु देवराज इन्द्र की प्रेरणा से एक अघटित घटना घटी। प्रतीची नामक एक देवांगना ने वीरानन्द स्वामी को स्वप्न में आकर्षित और मोहित करके जगा दिया। जाग्रत होने पर प्रतीची वहाँ प्रकट हो गयी। चर्मचक्षु से देवांगना का रूप-यौवन देख स्वामी वीरानन्द स्वयं को न सम्भाल सके।

देवांगना के साथ वे द्यूतक्रीड़ा खेलने को तत्पर हुए। अपना धन, धाम तथा तन भी वे क्रीड़ा में हार गये। वे योगभ्रष्ट हो गये। देवांगना पर वे अपना सर्वस्व खो बैठे। इन्द्र का काम बन गया। देवांगना प्रतीची ने भक्तराज प्रह्लाद को गर्भ में धारण कर लिया।

ज्येष्ठि पूर्णिमा को भक्तराज प्रह्लाद को जन्म देकर प्रतीची ने नवजात शिशु को उसके पिता को सौंप दिया तथा स्वर्ग जाने के लिए तैयार हो गयी। अब वीरानन्द स्वामी की आँखें खुलीं। अपनी योगसिद्धि का नाश करने वाली अविद्या माया पर उन्हें अत्यन्त क्रोध आया। अब काशी जाकर देहत्याग करना ही उन्होंने उचित समझा।

काशी पहुँचकर ईश्वरीय प्रेरणा से आश्रम में स्वामी रामानन्दजी से मिलने आये। देवांगना प्रतीची भी वहाँ उपस्थित हो गयी। दोनों से वृत्तान्त सुनने पर स्वामीजी ने कहा :

"हे ज्ञानराशि ! विश्वनियंता तो सर्वसाक्षी परमात्मा ही हैं। वे कभी किसी का अहित नहीं करते। अगर किसी के पास परमात्मा प्रदत्त कोई विशिष्ट वस्तु होती है तो वह परमात्मा की ही देन है। किसी विशिष्ट कार्य के लिए परमात्मा जब चाहें उसे ले सकते हैं अतः ज्ञानी उसकी चिन्ता नहीं करते।

आप सोऽहं की साधना करते हैं वह अच्छा ही है। किन्तु जन्माजन्म से मनुष्य का मन व्यक्त सृष्टि का इतना अभ्यासी बन जाता है कि अव्यक्त की साधना अत्यन्त कठिन हो जाती है। निराकार साधना में ब्रह्माकार वृत्ति अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होती है। यदाकदा वृत्ति के अभाव में जीव का अस्तित्व भी बना रहता है, तथा शाब्दिक ज्ञान भी लुप्त नहीं होता। अतएव भेद बुद्धि भी बनी रहती है। अव्यक्त की आराधना में कोई सम्बल न होने के कारण पतन का भय नित्य बना रहता है। अत. कभी पथभ्रष्ट हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सगुण साकार की आराधना अत्यन्त सरल है। परमात्मा का आलम्बन होने से इन भयस्थानों से स्वयं परमात्मा ही जीव की रक्षा करते हैं।"

कहते हुए स्वामीजी ने शंखध्वनि की। इसे सुनते ही योगी समाधिस्थ हो गये। इसी अवस्था में स्वामी वीरानन्दजी ने देहत्याग किया। तदनन्तर दशनाम संन्यासियों की विधि से उनका अंत्येष्टि संस्कार सम्पन्न किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब प्रतीची के लिए विकट समस्या खड़ी हो गयी। उसने नवजात शिशु को काशी के पास लहरताला तालाब के बीच कमल के पत्ते पर रख दिया तथा स्वयं गुप्त रहकर उसकी रक्षा करने लगी।

विधिवश उस समय काशी का एक गरीब मुस्लिम जुलाहा नीरू उसकी बीवी नीमा के साथ वहाँ से निकला। दोनों ने दिव्य तेजस्वी शिशु को तालाब के बीच कमल के पत्ते पर देखा। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। विवाह के लम्बे समय तक उन्हें कोई सन्तान न होने से उस बालक को ही वे खुदा की देन समझने लगे।

नीरू जुलाहा तालाब में कूद गया तथा कमल के पत्ते पर से बालक को उठा लाया। परन्तु जुलाहे का स्पर्श होते ही बालक की कान्ति मलिन हो गयी। दोनों ने सत्य, दया और धर्म की राह लेकर लोकनिन्दा की चिन्ता न करते हुए बालक को स्वीकार किया। शिशु को लेकर वे काशी की ओर चल दिये। प्रतीची ने यह देखा और निश्चिन्त होकर वह स्वर्ग चली गयी।

बालक की मलिन कांति देख दोनों सीधे मौलवी के पास गये। नीरू मौलवी के पास गया तथा सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर मौलवी ने कहा :

"अरे जुलाहे ! तेरी तो तकदीर सिकन्दर है। जो बच्चा तुझे मिला है, वह किसी विधवा का त्यक्त बच्चा नहीं हो सकता क्योंकि गहरे तालाब के बीच कमल के पत्ते पर बच्चे को कोई नहीं लिटा सकता। वह अवश्य ही कोई परी का जाया है। जा, जल्दी बच्चे को मेरे पास लेकर आ।"

नीरू ने नीमा को भी अन्दर बुलाया। बच्चे को देख मौलवी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। बालक की ठुड्डी पकड़कर प्यार से पूछ बैठे, "कह दे रे ! तू किसका बेटा है ?"

इस पर चैतन्य होकर बच्चे ने कहा, "मैं वीरानन्द का औरस तथा दिव्या से जन्मा हुआ शिशु हूं।"

नवजात शिशु के मुख से यह बात सुनकर मौलवी आश्चर्यचकित हो उठे। बच्चे के दिव्य जन्म तथा कर्म के लिए उन्हें विश्वास हो गया। मौलवी ने पिता के नामानुसार अरबी भाषा की शब्दावली छान-बीनकर बच्चे का नाम 'कबीर' रखा।

बच्चे को लेकर दोनों घर पहुँचे। दिव्य बालक की चर्चा सर्वत्र फैल गयी थी। शिशु के दर्शनार्थ लोगों की भीड़ जुलाहे के घर जम गयी। झिर्गुली, वलय, किंकनी तथा नूपुर श्रद्धापूर्वक लोगों ने बालक को दिये। जुलाहे के घर आधी रात तक चहल-पहल रही।

पड़ोस में ही एक ब्राह्मणी स्त्री कर्माबाई रहती थी, जिसकी कन्या जन्म लेकर एक मास पूर्व ही मृत्यु का ग्रास हो गयी थी। उसने कबीर को दूध पिलाना स्वीकार किया। एक वैश्य ने ब्याई हुई गऊ दूध के लिए जुलाहे के घर भेज दी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु बच्चे ने किसी का दूध नहीं पिया। नीरू-नीमा अब चिन्तित हो गये।

स्वामी रामानन्दजी सर्व वृत्तान्त जानते थे। उन्होंने बच्चे की रक्षा करने तथा माता-पिता की चिन्ता दूर करने गुप्त रीति से अनन्तानन्दजी द्वारा 'सुधामुची' नामक जड़ी जुलाहे के घर भेज दी। बच्चे ने तुरन्त उसे स्वीकार किया, तथा मुँह में डालकर चूसने लगा। जड़ी मुँह में डालते ही बच्चे की कांति पूर्ववत् बन गयी। तदनन्तर बच्चे ने कर्मादेवी का तथा गऊ का दूध भी स्वीकार किया। वह जड़ी बाद में 'कबीर गुटी' के नाम से प्रख्यात हुई।

बालक कबीर धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। कर्मादेवी के संस्कारों से पले कबीर में हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्म का सुभग समन्वय बचपन से ही होने लगा। पिता के साथ वह मस्जिद भी जाता तथा कर्माबाई के साथ मन्दिर में भी। उसकी यह आस्था दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी।

(6)

समर्थ एवं प्रिय शिष्य श्री अनन्तानन्दजी के लिए सद्गुरुदेव की सेवा तथा साधना के बिना जीवन में और कोई ध्येय नहीं रह गया था। वे जानते थे कि शिष्यों की पात्रता के अनुरूप ही वे गुरुकृपा का अनुभव कर सकते हैं। अतः सदैव निष्ठा एवं प्रेमपूर्वक जाग्रत रहते हुए वे साधन-भजन करते रहते। सद्गुरुदेव से एक बात उन्होंने बहुत बार सुनी थी जो महर्षि वशिष्ठजी ने योगवशिष्ट में प्रभु श्री रामजी से कही थी। बलिराजा की वार्ता में मुनि ने कहा था कि गुरु में सम्पूर्ण शरणागति की भावना के उपरान्त विविध विषय-भोग के पदार्थों तथा स्वजन सहयोग से उत्पन्न दुःखों का नाश तो साधक को स्वयं संकल्प-बल तथा आत्मिक-बल से ही करना पड़ता है। अतः प्रयत्नपूर्वक जीव को बन्धन में रखने वाले षड्विकारों से उन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली थी। सद्गुरुदेव प्रिय शिष्य की श्रद्धा-निष्ठा एवं साधना-निष्ठ प्रयत्न को देखते हुए अत्यन्त प्रसन्न थे।

अनन्तानन्दजी को अब जीव की चौथी अवस्था—तुरीयावस्था का अनुभव होने लगा। उनके लिए दृश्य-अदृश्य का भेद समाप्त हो गया। लौकिक दृष्टि से अनुभव में आने वाले भूत-भविष्य तथा वर्तमान ब्रह्मरूप भासित होने लगे। दसों दिशाएँ, सर्व प्राणी-पदार्थ तथा सचराचर विश्व में दृष्टिगोचर प्रत्येक क्रिया भी श्रीराममय प्रतीत हुई। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर, जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था सर्व श्रीराममय भासित हुआ। तारक तेज चमक गया तब उन्हें मन्त्र रहस्य का अधिकारी समझ एक दिन महाप्रभु श्री रामानन्दजी ने प्रिय शिष्य को बुलाकर सानुग्रह कहा :

"प्रिय वत्स ! एक बार भगवान सदाशिव महर्षि अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिथि बनकर पधारे थे। उसी समय वहाँ महर्षि शांडिल्य पहुँच गये। भगवान सदाशिव को देख वे बहुत प्रसन्न हो उठे तथा भोलेनाथ को पूछा—'हे कैलाशपते! जहाँ वाणी की पहुँच नहीं, और जो मन से भी अप्राप्य है, वह कौन है? कौन सब ईश्वरों के ईश्वर हैं? कौन सगुण तथा निर्गुण दोनों से परे है? कौन कार्य एवं कारण दोनों से परे है? हे देवाधिदेव! कृपया यह भी बताइये कि किस मन्त्र में मुक्ति वास करती है?'

भगवान शिवजी ने महर्षि शांडिल्य का समाधान करते हुए कहा, 'हे मुनि-राज! जिनके नाम-रूप-लीला-धाम सब-कुछ चिन्मय है, जिनके प्रकाश को ही सनातन कहते हैं और जिनकी ख्याति नाम-रूप में विद्यमान है वे साकेतपति श्री रामजी ही परब्रह्म परमात्मा हैं।

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यञ्च रामेति कथ्यते॥

जिनके दक्षिणांश पर क्षीर सागर निवासी नारायण, हृदयांश पर नारायण, वामांश पर रमापति नारायण, और चरणांश पर नरनारायण हैं वे चराचरपति श्री रामजी ही हैं। जो नाम र-कार, म-कार से युक्त है, उस श्रीराम नाम की महिमा अपरम्पार है। क्योंकि:

रकार हेतु वैराग्यं परमं यञ्च कथ्यते।
अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकम्॥

र-कार वैराग्य का कारण है, अ-कार ज्ञान का और म-कार भक्ति का कारण है।

रकारोऽनलबीजं स्याद् ये सर्वे वाऽवादयः।
अकारो भानुबीजं स्याद् वेदशास्त्र प्रकाशकः।
मकारश्चन्द्रबीजं च सदम्बुपरिपुरणम्।

र-कार अग्नि का मूल है। इसी से मोहादि एवं शुभाशुभ कर्म भस्म होते हैं। अज्ञानता-पापादि का नाश होता है। अ-कार वेद शास्त्रादि का प्रकाश करके अविद्या का नाश करता है तथा म-कार त्रिताप हरकर शीतलता शान्ति देता है। अतः हे महर्षि:

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्॥

श्रीराम ही परब्रह्म हैं, श्रीराम ही श्रेष्ठ तप हैं, श्रीराम ही परम तत्व हैं तथा श्रीराम ही ब्रह्मतारक हैं।

हे ऋषिवर! र-कार बीज का स्थान शरीर के सप्तचक्रों में मणिपुर चक्र में है, वह अग्नि का मूल होने से निरन्तर श्रीराम नाम जपने वालों के हृदय में ज्ञानाग्नि का प्रागट्य होता है जिससे अन्तःकरण के मलविक्षेप जलकर नष्ट हो जाते हैं। अग्नि बीज से जन्माजन्म की संस्कार ग्रन्थि भी भस्म हो जाती है जिससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माया-मोह का नाश होता है। जिस प्रकार अग्नि के जलने से ऊष्मा आसपास भी फैलती है उसी प्रकार मन्त्र के उपासक स्वयं तो विशुद्ध होते ही हैं, साथ ही उनके हृदयाकाश से विशाल आकाश में आस्तिकता के, सत्य के, सात्विकता के तथा धार्मिक विचारो के प्रबल तरंगें उत्पन्न होते हैं, जिनसे समीपस्थ एवं दूरस्थ मनुष्यों में आप ही श्रद्धा, भक्ति तथा सद्विचार प्रस्फुटित हो जाया करते हैं।

भगवान श्रीराम के अनन्त मन्त्रों में तीन मन्त्र (षडाक्षर, चरम, द्वय) प्रधान हैं तथा अनन्त यन्त्रों में तीन यन्त्र प्रधान हैं। वे ही चतुर्वर्ग के दाता हैं।

परन्तु इसके वास्तविक अधिकारी वे ही हैं जो कर्म का त्याग न करके कर्मफल का त्याग करते हैं, जो सत्-रज-तम से परे हो गये हैं तथा जो स्वस्वरूप को जानते हैं। वे ही जगत ब्रह्म भूमा का अनुभव किया करते हैं। ऐसे अनुरागी भक्तजन गोदावरी के तट पर पंचवटी में त्रिमूर्ति के ध्यान में लीन होकर रहते हैं। अपने इष्ट में अनुरक्त होकर परमात्मा की माया रूपी नटी के खेल से सम्पूर्ण विरक्त होकर विचरते हैं। ऐसे भक्तों के हाथ ही त्रिभुवनपति श्री रामजी बिके हुए हैं।"

अनन्तानन्दजी परमानन्द में निमग्न सद्गुरुदेव के वचनामृत का पान कर रहे थे। गुरुकृपा से आप्लावित होते हुए वे परम धन्यता का अनुभव करने लगे। कुछ क्षण मौन रहकर यतिराज ने पुनः कहा

"प्रिय शिष्य ! मन्त्र में मन्त्रमूर्ति को प्रकट करने की शक्ति तो होती ही है तदुपरान्त उसमें सभी प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करने की शक्ति भी रहती है। मन्त्र स्वतः शक्तिस्वरूप है। मन्त्र में जितने शब्द होते हैं, उतने लक्ष मन्त्र जपने से मन्त्र सिद्ध होता है। तब वह चैतन्य मन्त्र साधक को प्रकर सामर्थ्य प्रदान करता है।

विश्व की उत्पत्ति नाद ब्रह्म से हुई है। शब्द या अक्षर का कभी नाश नहीं होता। अनन्त आकाश में ध्वनि संग्रहित होती है। चैतन्य मन्त्र जप से वह संग्रहित शक्ति साधक को अनन्त शक्ति व सिद्धि प्रदान करती है। मन्त्र आन्तरिक चेतना को आन्दोलित करके मन्त्र के प्रतीक देवता को भी प्रत्यक्ष करता है।

मन्त्र का पुनः पुनः उच्चार जप कहलाता है। मन्त्र की दिशा में बुद्धि का प्रयत्नपूर्वक वहन मन्त्र की शक्ति को ऐसे प्रकट करता है जैसे बीज से वृक्ष प्रकट होता है। इसलिए तैलधारावत् जप आवश्यक है।

जकारो जन्म विच्छेदः पकार पापनाशकः।
तस्माज्जप इति प्रोक्तो, जन्मपाप विनाशकः॥

तीन प्रकार के जप, चार प्रकार के अजपाजप, और आठ प्रकार के पराजप ब्रह्मादिक से ही ऋषियों को मिले। इस भूमण्डल पर युक्ति, यत्न तथा गुरुमुख से महर्षि वशिष्ठ द्वारा विस्तार पाकर प्रसिद्ध हुए।

हे अनन्तानन्द ! तारक मन्त्रराज के अधिकारी अ, उ, म ये तीन हैं। रजोगुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशिष्ट ब्रह्मा ही 'अ' है। सत्यगुण विशिष्ट विष्णु 'उ' है तथा तमोगुण विशिष्ट शिवजी 'म' है। 'ज, प, थ' से तात्पर्य उन चक्रों का है, जहाँ उनका अधिकरण है।

समष्टि में जिस प्रकार त्रिदेव हैं उसी प्रकार पृथ्वी तल पर मन्त्रराज के उपदेष्टा तीन हुए; श्री राघवेन्द्रगुरु महर्षि वशिष्ठ; दाक्षिणत्य गुरु महर्षि अगस्त्य मुनि तथा यादव श्रीकृष्ण के गुरु महर्षि अंगिरस। ये तीनों कभी मोह को प्राप्त नहीं हुए तथा न ही कभी स्वस्वरूप से विचलित हुए। वे भगवत् से अभिन्न भगवत् ही के समान हैं तथा गुरुणां गुरु हैं। इस रहस्य को प्राचीन समय के लोगों में से कोई-कोई ही जानते हैं। ये तीनों अब भी हैं और साधक को मिलते भी हैं।

प्रिय शिष्य ! जिस प्रकार कैलाशपति को काशीपुरी प्रिय है और वे अवश्य यहाँ रहते हैं, उसी प्रकार भगवान श्रीराम साकेतपति होते हुए भी अपने भक्तों के हृदय में निश्चय ही रहते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिसके हृदय में भगवान वास करते हैं, वही सच्चा भक्त है। वही गुणातीत, विरक्त तथा समर्थ हो सकता है और मन्त्रराज का द्रष्टा बनता है। वही शरीर को त्यागने पर महामन्त्र के आश्रय से सूर्यमण्डल को भेदकर उस पार निकल जाता है।

रसो: वै स:। रसज्ञ ही रस भोक्ता हो सकते हैं। ब्रह्मविद् ही अमृत तत्व को प्राप्त करते हैं। सत् और असत् उसी एकमात्र विभु के दो स्वरूप हैं। इसी प्रकार सगुण एवं निर्गुण भी तत्वत: एक ही है। निर्गुण की अभिव्यक्ति का ही नाम सगुण है तथा सगुण की अप्रकट अवस्था का ही नाम निर्गुण है। निराकार निर्गुण की अभिव्यक्ति सगुण साकार से ही सम्भव है। जब प्रकट तथा अप्रकट एकाकार हो जाते हैं, जब सगुण तथा निर्गुण एकरूप भासित होता है, तब पूर्ण सत्य का साक्षात्कार होता है। जब यह ज्ञान होता है तब निश्चय ही ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्व को प्राप्त कर लेता है।"

सद्गुरुदेव ने अपना वक्तव्य पूर्ण किया। अनन्तानन्दजी धन्य-धन्य हो गये। इस परम गोप्य रहस्य का चिन्तन-मनन करते हुए सद्गुरुदेव भगवान को पुन:-पुन: प्रणिपात करते हुए वे पुन: सेवाकार्य में निरत हो गये।

(7)

काशी में काशीनरेश के शासन में प्रजा निर्भय थी। किन्तु जब यवन प्रभाव अधिक हो जाता, तो यवन यहाँ एकत्रित होकर कुछ न कुछ आतंक मचाते थे। म्लेच्छों के अत्याचार से यवन शासित प्रदेश में हिन्दू प्रजा धार्मिक चिह्न लगाने से भी डरती थी। कई स्थान पर शंख बजाने पर भी रोक लगायी गयी थी। अनेक अत्याचारी नियमों ने हिन्दू प्रजा की मानसिक शक्ति क्षीण कर दी थी।

एक दिन बाहरी प्रदेश से कुछ यवन काशी में आये। काशी में विचरण करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय होने पर मस्जिद में नमाज अदा करने गये। मस्जिद के निकट एक ब्राह्मण का घर था, जो इसी समय पूजन करने बैठा था। संयोगवश उसने पूजन की समाप्ति पर शंखनाद किया। काशी के मुस्लिम अनिच्छा से भी इसे सह लेते थे, किन्तु भ्रांत चित्त वाले, मलिन अन्तःकरण वाले बाहरी यवन इसे सुनकर क्रोधोन्मत्त हो गये।

अपनी आदत के अनुसार वे शीघ्र ही उस ब्राह्मण के घर में गये तथा उसे पकड़कर घसीटते हुए मस्जिद में ले आये। शंख बजाने के अपराध से उसे मारने लगे। ब्राह्मण स्वामी रामानन्दजी का भक्त था, मृत्यु को निकट देख वह अत्यन्त व्याकुल हो गया तथा आर्तभाव से स्वामीजी का स्मरण करने लगा।

जैसे ही यह बात स्वामीजी को ज्ञात हुई, एक आश्चर्यकारक घटना घटी। लाखों-करोड़ों शंख उस मस्जिद में एक-साथ प्रकट हो गये तथा प्रलयकाल के समान भयंकर शब्द करने लगे। ब्राह्मण को सजा देने वाले यवन भयभीत हो गये। वे उसे मस्जिद में ही छोड़कर चले गये, तथा ब्राह्मण अपने घर चला गया।

मस्जिद में प्रलयकारी शंखनाद चालू ही रहा।

दूसरी बार नमाज अदा करने जब मुस्लिम मस्जिद में एकत्रित हुए तब यह शंखनाद सुनकर उन भ्रांतचित्त यवनों को इमाम ने उपदेश देकर उस ब्राह्मण से माफी माँगने के लिए भेज दिया। किन्तु वह शंखनाद बन्द नहीं हुआ। बहुत प्रयत्न करने पर भी सात दिन तक यवनों के हृदय को प्रलयकारी शंखनाद विदीर्ण करता रहा। इसके कारण नमाज भी जारी नहीं हो पाती थी।

अन्त में चिन्ता रूपी सर्पिणी के ग्रसे के समान होकर यवन पुनः ब्राह्मण के पास आये तथा उससे क्षमा माँगते हुए कहने लगे:

"हमसे गलती हो गयी है। इस वक्त हुजूर की जो मरजी हो, हमें कुबूल है। परन्तु मेहरबानी करके मस्जिद में यह शंखनाद बन्द कीजिये।"

अपने सद्गुरुदेव की शक्तियों से परिचित उस विप्र ने कहा, "आप लोग मेरे गुरुदेव स्वामी रामानन्दजी के पास जाओ। एकमात्र वे ही इस आपत्ति में आपकी सहायता कर सकते हैं।"

यवनों का संघ आश्रम में पहुँचा। सद्भाग्य से उस समय कुटीर का परदा खुला था। नष्ट प्रतिष्ठा वाले यवन कुटीर के बाहर ही 'माफ कीजिये, गुस्ताखी 'माफ कीजिये' कहते हुए बैठ गये तथा मस्जिद में शंखनाद रोकने की प्रार्थना करने लगे।

स्वामीजी ने यवनों से कहा, "तुम लोगों ने काशी में यह हिम्मत कैसे की? आज ही काशी छोड़कर निकल जाओ नहीं तो तालफल के समान गिरते हुए तुम्हारे मस्तक काशीवासियों द्वारा देखे जायेंगे।"

स्वामीजी की आज्ञा अनिच्छा से भी शिरोधार्य करके उस यवन समूह को उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन काशी छोड़ना पड़ा क्योंकि उनकी शक्तियों से वे परिचित हो चुके थे। प्रलय-कारी शंखनाद तदनन्तर मस्जिद में बन्द हो गया।

(8)

उज्जयिनी नगरी पवित्र सप्तपुरियों में से एक है। भगवान महाकालेश्वर साक्षात सदैव यहाँ विराजमान रहते हैं। अनेक विद्वान पण्डित एवं ब्राह्मण भगवान के समीप रहकर भाग्यवान बनने की आकांक्षा रखते हैं। त्रिपुरारी शर्मा नामक एक ब्राह्मण उज्जयिनी में रहते थे। उनका विवाह नर्मदा तट पर स्थित एक गाँव किरीटपुर के विप्र त्र्यबक शास्त्री की कन्या जांबवती से हुआ।

विवाह के लम्बे समय तक सन्तानहीन रहने के कारण जांबवती की सास ने दुर्व्यवहार शुरू कर दिया, जिससे तंग आकर वह अपने पिता के पास किरीटपुर चली गयी। यहाँ उसने भगवान शिवजी की घोर तपस्या आरम्भ की। शिवजी तो अत्यन्त भोले हैं। उनको प्रसन्न करने से विधि की वक्रता भी सुधारी जा सकती है। जांबवती की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने स्वप्न में उसे दर्शन दिया तथा आदेश दिया, "हे पुत्री ! अपूर्व निष्ठा एवं उग्र तप से तू दिव्य हो गयी है। अपने प्रारब्ध को भी तूने वश में कर लिया है, तथा अजन्मा को भी जन्म देने में समर्थ बन गयी है। मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ अतः वरदान माँग ले।"

जांबवती ने कहा, "ऐ भोलेनाथ ! मैं तो आपको ही पुत्र रूप में चाहती हूँ।"

भगवान ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "रेवा में तीन बार स्नान करके बालू का सेवन कर। मेरी ज्योति तेरे उदर में प्रतिष्ठित होगी।" इधर त्रिपुरारी शर्मा को भी शिवजी ने स्वप्न में नर्मदा तट पर बालू का सेवन करते हुए तपस्या करने का आदेश दिया।

पति-पत्नी दोनों ने नर्मदा तट पर निवास किया। नर्मदा के प्रत्येक कंकर एवं रजकणों में भगवान भूतभावन की भावना करते हुए उन्होंने उसका सेवन किया।

भगवान का वरदान फलीभूत हुआ। वैशाख शुक्ल नवमी शुक्रवार के दिन जांबवती को एक दिव्य पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। शिशु के ललाट में शिवजी का प्रतीक अर्धचन्द्राकार चिह्न था। माता-पिता की धार्मिक छत्रछाया तले बालक बड़ा होने लगा।

युवान होने पर एक दिन पानी में अपना मुँह देखा, ललाट पर अर्धचन्द्राकार चिह्न देखा, तब ध्यान आया कि उसका ध्येय संसार नहीं, संसार के सार परमात्मा की प्राप्ति है। अतः माता-पिता की आज्ञा लेकर वह युवक स्वामी श्री रमा-भारतीजी का शिष्य बन गया। गुरु ने वेद-वेदांग तथा योग-शास्त्र में शिष्य को निपुण बना दिया। योग की अनेक सिद्धि भी युवक को प्राप्त हुईं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यवन उपद्रव इस क्षेत्र में अब बढ़ने लगा था। मोहम्मद तुगलक ने हिन्दू राजा को डराकर अपना शासन वहाँ भी स्थापित कर दिया था। अतः गुरु अपने शिष्यों सहित परिभ्रमणार्थ निकल गये। युवक सर्वत्र अपनी सिद्धियों के चमत्मार से लोगों को प्रभावित करता था।

घूमते-घूमते वे काशी आ पहुँचे। नीची नामक एक उद्यान में युवक ने अपनी सिद्धियों का चमत्कार दिखाने को आसन जमाया। उसके आते ही उपवन बिना ऋतु के पुष्प व फलों से आच्छादित हो गया। यह देख वहाँ श्रद्धालुओं की भीड़ जमा हो गयी। प्रशंसा सुनकर सिद्ध युवक प्रसन्न होता रहा।

उद्यान में ऋचिक नामक एक प्राचीन ऋषि रहते थे। उन्होंने देखा कि इस युवक की आयु अब समाप्त होने वाली है परन्तु सिद्धियों के चक्कर में फँसकर वह अपने ध्येय से विमुख हो गया है। ऋषि सूक्ष्म रूप लेकर एक पुष्प में बैठ गये तथा बोले :

"सिद्धियों के घमण्ड में चूर हे युवक! तुझमें ज्ञान नहीं है कि चार दिन पश्चात् तू मृत्यु की अनन्त निद्रा में सोने वाला है। अब भी समय है। यदि बचना है तो अपने गुरु से पूछकर स्वामी श्री रामानन्दजी के पास पहुँच। नर रूप में वे नारायण ही हैं तथा वे ही तुझे जीवनदान दे सकते हैं।"

भविष्य सुनकर युवक अत्यन्त भयभीत हो गया। अपने गुरुदेव के पास गया। सर्ववृत्तान्त जानने पर स्वामी रमाभारतीजी स्वयं अपने शिष्य को लेकर आश्रम में स्वामीजी के पास पहुँच गये। स्वामी रमाभारती ने स्वयं स्वामी रामानन्दजी से अपने शिष्य को आयु प्रदान करने के लिए प्रार्थना की।

स्वामी रामानन्दजी ने अपनी दिव्य शक्ति से युवक को जीवनदान प्रदान किया।

युवक स्वामी रामानन्दजी के अलौकिक तेज तथा अनन्त करुणा से इतना अभिभूत हुआ कि अत्यन्त विनम्रतापूर्वक स्वामीजी के श्रीचरणों में प्रणत होते हुए शिष्य के रूप में स्वीकार करने की अनुनयपूर्वक उसने प्रार्थना की। अत्यन्त संकुचित हो उठे स्वामीजी! किन्तु स्वामी रमाभारतीजी ने स्वयं पुनः-पुनः आग्रह करते हुए स्वामी रामानन्दजी को प्रसन्न किया।

स्वामीजी ने युवक को शिवजी के अंशावतार के रूप में प्रथम ही जान लिया था। प्रसन्नतापूर्वक शुभ दिन देखकर स्वामी श्री रामानन्दजी ने युवक को पंच-संस्कारपूर्वक वैष्णवी विरक्त दीक्षा प्रदान की तथा युवक का नाम 'सुखानन्द' रखा गया।

श्री सुखानन्दजी अपनी गुरुभक्ति एवं श्रद्धा-निष्ठा से स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में गिने गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(9)

आश्रम में अब दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। नित्य प्रातःकाल एवं सायंकाल सत्संग होता था। लोकसमूह बढ़ जाने से एक वाटिका का निर्माण भी किया गया था। कभी स्वामी रामानन्दजी स्वयं सत्संग वाटिका में उपस्थित हो जाते थे, तो कभी अन्य सन्त-महात्माओं द्वारा निसृत ज्ञानगंगा एवं भक्तिरस का पान करके सत्संगी जन कृतकृत्य होते रहे। अब तो नित्य धुन-संकीर्तन का भी नियम बन चुका था।

एक दिन प्रातःकाल सत्संग के लिए लोग एकत्रित हो गये थे। कीर्तन भी शुरू हो गया था : 'श्रीराम जय राम जय जय राम।'

भक्तजन भक्तिभाव में सराबोर कीर्तन में लीन हो गये थे कि उन्होंने नूपुर की ध्वनि सुनी। सबका ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने देखा कि एक सन्त नूपुर बाँधकर नृत्य करते हुए सत्संग वाटिका की ओर बढ़ रहे थे। कुछ रुककर वे स्वामीजी की गुफा की ओर चले गये। वहाँ उपस्थित लोगों को इस विचित्र वर्तन पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनमें से कुछ लोग सन्त के पीछे स्वामीजी की कुटीर की ओर गये।

सन्त कुटीर के पास गये। वहाँ श्री अनन्तानन्दजी बैठे हुए थे, किन्तु सन्त ने न उनसे कुछ कहा, न पूछा। वे वहाँ नृत्य करने लगे। कुटीर का परदा बन्द था। अतः वे कुछ देर बाद बोले :

"हे स्वामीजी ! जाग्रत में, स्वप्न में, घर में, वन में, पूर्व में, पश्चिम में हर स्थान पर तो दर्शन देते हो, फिर यहाँ परदा क्यों ? कृपया परदा हटाइये और दर्शन देकर मुझे कृतार्थ कीजिये।"

स्वामीजी ने भीतर ही से आज्ञा दी, "हे महात्मन् ! दर्पण में अपना मुँह देख लो, तब हमारे दर्शन को आना।" इस आज्ञा के साथ शंखध्वनि हुई। यह सुनते ही नूपुर वाले सन्त की अवस्था अलौकिक हो गयी। सुधबुध गँवाकर वे पृथ्वी पर गिर गये तथा उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। परमानन्द की मस्ती में वे कुछ बोलने लगे। लोगों ने जब यह देखा, उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ।

उसी समय एक और आश्चर्य लोगों ने देखा। एक मगी पुरोहित (पारसी साधु) विचित्र पोशाक पहनकर हाथ में अग्नि का गोला लिए यहाँ पहुँचे। लोगों को पूछते हुए स्वामीजी की कुटीर के पास आये तथा बोले :

"हे स्वामीजी ! पश्चिम भारत के दयु द्वीप (दिव) के अग्निपूजक आर्यों (पारसी) के गुरु ने मुझे भेजा है। मैं तन-मन-वचन से निष्पाप हूँ इसका साक्षी मेरे हाथ के अग्निदेव हैं। हे भगवन् ! मैं परमार्थ की पहचान चाहता हूँ, इसीलिए मेरे गुरु ने यहाँ आने की आज्ञा की है। अब मुझ निष्पाप को परमार्थ की पहचान करायें।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले पधारे हुए नूपुर वाले सन्त अभी भी पृथ्वी पर पड़े हुए परमानन्द की मस्ती में मस्त थे। मगी पुरोहित को इस सन्त को देख कुछ आश्चर्य हुआ। परन्तु तभी कुटी के भीतर से स्वामीजी ने प्रत्युत्तर दिया :

"पुरोहित ! परमार्थ को पहचानने वाली बुद्धि तो उन्हें मिलती है जो निरभिमानी होते हैं। तुम्हें तो निष्पाप होने का भी अभिमान है। परन्तु करोंवियाजी (पारसी धर्मगुरु) ने भेजा है, अतः तुम्हें निराश नहीं होना पड़ेगा। तुम उस मस्त सन्त के चरण चूमो।"

मगी पुरोहित पहले तो विचारने लगे। क्या उस पृथ्वी पर पड़े हुए सन्त के चरण चूमने पड़ेंगे ? परन्तु जब स्वामीजी आज्ञा दे रहे हैं तो निःसन्देह वे महात्मा ही होंगे। उन्होंने आज्ञा शिरोधार्य की। वे पृथ्वी पर पड़े हुए सन्त के निकट गये तथा उनके चरण स्पर्श करने की चेष्टा करने लगे। किन्तु पास पहुँचते ही नूपुर वाले सन्त बैठ गये तथा मगी पुरोहित को हृदय से लगा लिया। मगी के हाथ में पकड़े हुए अग्नि के गोले को वो संन्त निगल गये।

मगी आश्चर्यचकित हो गये। पवित्राप तथा निष्पाप का सुन्दर मिलन हुआ। मगी का निष्पाप होने का अभिमान चूर हो गया। उन्होंने हृदयपूर्वक सन्त के चरण चूमने की भरपूर चेष्टा की, परन्तु सन्त मगी को हृदय से लगाकर अश्रुवारि का सिंचन करते रहे और चरण चूमने का अवसर ही नहीं दिया।

इस सम्मिलन से ऐसा प्रभाव हुआ कि दोनों के अन्तःकरण से अविद्या का परदा हट गया। दोनों परमार्थ परिचय के अधिकारी बन गये। तदनन्तर दोनों स्वामीजी की कुटीर के पास आये।

उनके आते ही स्वामीजी ने परदा खोल दिया। दोनों को अलौकिक दर्शन के साथ परमार्थ की ज्योति प्राप्त हुई। कुछ भी कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं रही। मूक भाषा में प्रश्नोत्तर हुआ, जिसका तात्पर्य कोई समझ न सका। पल्लव-कर जोड़कर हतप्रभ खड़े रहे कुछ समय दोनों।

कुछ क्षण पश्चात् उन्हें होश आया, तो शीघ्र ही भुवनवंद्य के चरणों में प्रणत हो गये तथा उनके अश्रुओं के अर्घ्य बार-बार उन महिमामय के श्रीचरणों को प्रक्षालित करते रहे।

स्वामीजी की अभिदृष्टि से दोनों के हृदय सन्तृप्त हो गये। मगी पुरोहित को स्वामीजी ने उनके गुरु करोंवियाजी के लिए यह शुभ सन्देश दिया कि वे आर्यभूमि में ही हैं। अपना देश ईरान छोड़ वे अपने घर आर्यों के देश में ही आये हैं। वे यहीं रहेंगे तथा फूलेंगे-फलेंगे। भारत में ही उनके अग्निदेव की स्थापना होगी।

मगी पुरोहित अत्यन्त प्रसन्न हो गये। स्वामीजी से विदा लेकर वे चले गये।

नूपुर वाले सन्त कुछ समय आश्रम में रुके तथा सत्संग लाभ लिया। स्वामीजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सान्निध्य में आश्रम के प्रत्येक निवासी, प्रत्येक कुटीरों को, वहाँ फैले हुए वृक्षों तथा उन पर झूमती हुई वल्लरियों को तथा धरित्री के कण-कण को सन्त ने अत्यन्त प्रफुल्लित एवं तेजस्वी पाया ! उन अनन्त महिमामय की महिमा को क्षण-प्रतिक्षण अनन्त में विचरते हुए देखा, तथा पुनः-पुनः अधिकाधिक वे नतमस्तक होते गये।

(10)

एक बार कनिष्ठ नाम का एक दुष्ट आश्रम पर आया। स्वामीजी की कीर्ति से वह अत्यन्त व्यथित था एवं द्वेष भाव से प्रेरित होकर वह अपनी दुष्टता दिखाने आया था। स्वामीजी को किसी प्रकार वह कलंकित करना चाहता था।

'यथा नामः तथा गुणः' को चरितार्थ करने वाला ये वास्तव में कनिष्ठ ही था। जब वह आश्रम पर पहुँचा, दोपहर का समय था। महाविष्णुस्वरूप स्वामी श्री रामानन्दजी निज कुटीर में विराजमान थे। अन्य सन्त-भक्त भी अपना कार्य पूर्ण करने की तैयारी में थे।

इस समय दुष्ट कनिष्ठ ने आकाश में जाकर स्वामीजी की परीक्षा हेतु रुधिर और मांस की वर्षा कुटीर के ऊपर की। अन्य शिष्यों ने आघातपूर्ण दृश्य देखा, परन्तु स्वामीजी के आदेश की प्रतीक्षा करने वाले अन्य वैष्णवों ने समर्थ होते हुए भी कोई उपाय नहीं किया। अत्यन्त व्याकुल होकर सभी वैष्णवजन समवेत स्वर से यतिराज की स्तुति करने लगे।

शिष्यों एवं भक्तों की स्तुति से स्वामीजी अपनी सहज समाधि से विरत हुए। परिस्थिति को देखकर तुरन्त ही दुष्ट मायावी की माया को नष्ट किया। कनिष्ठ के पेट में भयंकर पीड़ा हुई तथा भारी प्राणसंकट उपस्थित हो गया।

कनिष्ठ ने अनेक प्रयत्न किये इस पीड़ा से छूटने के। जब कोई उपाय सफल न हुआ तब निरुपाय बनकर अपमानित होकर तथा मिथ्याभिमान त्यागकर प्राण बचाने स्वामीजी की शरण में आया।

विनती करते हुए वह बोला, "हे भगवन् ! आपका महात्म्म बिना जाने ही मैंने यह अपराध किया है। प्रभो ! मुझे क्षमा कीजिये।"

करुणा-वरुणालय स्वामीजी कनिष्ठ की दशा देखकर द्रवित हो गये तथा उसे क्षमा प्रदान की। कनिष्ठ का दुःख दूर हुआ तथा उसने कभी दुष्कृत्य न करने का व्रत लिया। स्वामीजी ने सन्मार्ग का उपदेश देकर उसे कृतार्थ किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(11)

काशी में सुहावनी सन्ध्या उतर आयी थी। श्रद्धालु लोग अपने-अपने कार्य से निवृत्त होकर आश्रम की ओर सत्संग के लिए जा रहे थे।

सबके साथ आज एक सुन्दर युवान हाथ में वीणा लिए आश्रम की ओर आ रहा था। मधुरभाषी तथा विनम्र युवान के रूप तथा गुण से आकर्षित होकर बहुत बड़ा समूह उसके साथ-साथ चल रहा था। कभी-कभी वह कर्णप्रिय वीणा-वादन भी कर लेता था।

आश्रम पहुँचकर वह सीधा ही स्वामीजी की गुफा के पास गया। कुटीर का परदा बन्द था। लोग भी कुतूहल से सत्संग वाटिका में न जाकर उसके पीछे आये। अनन्तानन्दजी के पूछने पर युवक ने बताया कि वह दीपक राग से दीप प्रज्ज्वलित करना चाहता था।

युवक ने तेल व बत्ती से सज्जित पाँच दीपक कुटीर की चौखट पर रखे। कुछ दूर बैठकर उसने वीणा से मधुर आलाप छेड़ना शुरू किया। इस कर्णप्रिय वीणावादन से लोग इस प्रकार डोलने लगे, जैसे बीन की धुन से साँप डोलता है। युवक वीणा बजाता रहा, लोग स्थल-काल का भेद भूलकर सुनते रहे। गान की चरमसीमा पर दीपक राग की फलश्रुति स्वरूप पाँचों दीपक आप ही प्रज्ज्वलित हो गये। अत्यन्त हर्षित होकर लोगों ने गायक का अभिवादन किया। अपनी कला का कौशल बताकर गायक विश्राम करने लगा। लोगों के कानों में अब भी वह ध्वनि गूँजती थी।

उसी समय गुफा के भीतर से दिव्य शंख की मन्द-मन्द ध्वनि सुनायी देने लगी। लोगों का ध्यान वीणा के गुंजन से हटकर शंखध्वनि की ओर आकर्षित हुआ। ध्वनि क्रमशः मन्द से मध्यम तथा मध्यम से उच्च होती गयी। ऐसा मधुरतम अमृतनाद आज तक किसी ने नहीं सुना था। लोगों को प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ कि नादब्रह्म ही स्वयं शंख से निसरित हो रहा है। दीपक राग को सब भूल गये। जनता के साथ दीपक राग गाने वाला गायक भी डोलने लगा।

गायक की हृदयतन्त्री इस प्रकार प्रेरित हुई कि उसे अनाहत ध्वनि सुनायी दी। इस अलौकिक अनुभव से वह परम आनन्द में डूब गया। उसकी चेतना एकाकार हो गयी तथा ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करने लगी। धीरे-धीरे अमृत ध्वनि मन्द होती गयी तथा अन्त में बन्द हो गयी। सबने गगनमण्डल से पृथ्वी पर पुनः गिरने का अनुभव किया।

प्रसिद्ध गायक की स्थिति अवर्णनीय हो गयी। अश्रु बहाते हुए वह बोला, "हे नाथ ! कृपया एक बार पुनः वह अमृतनाद सुनाइये, अन्यथा यह सेवक मर जायेगा। कृपा कीजिये, नाथ ! कृपा कीजिये।"

बार-बार विनती करने पर भी शंखध्वनि न होने से गायक ऐसे छटपटाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

लगा, जैसे पानी के बिना मीन छटपटाती है। वह जमीन पर गिर गया तथा व्याकुल होकर अश्रु बहाने लगा। उसी अवस्था में उसे मूर्च्छा आ गयी। उसकी चेतना ऐसे प्रदेश में पहुँची, जहाँ न तारे थे न चन्द्रमा परन्तु जो पूर्णतः शीतल और प्रकाशमान था। वह प्रकाश आत्मज्ञान का था। अनन्तानन्दजी ने मन्त्रित जल सिंचन किया, जिससे गायक की मूर्च्छा भंग हुई।

उसी समय महामुनि ने कृपापूर्वक परदा खोल दिया। गायक को स्वामीजी के परम मनोहर दिव्य स्वरूप का दर्शन हुआ। दण्डवत् प्रणाम करते हुए गायक बोला :

"हे जगद्गुरु ! मैं पैखम देश का ब्राह्मण हूँ। बआणपुर (लखनौ) में वैशाख सुदी नवमी को मेरा जन्म हुआ था। बचपन में ही माता-पिता चल बसे थे। परन्तु गान की ओर आरम्भ से ही मेरी अत्यधिक रुचि रही है। मैं प्रसिद्ध वीणा-वादक हूँ।

प्रत्येक जन्मदिन पर मेरी दशा विक्षिप्त-सी हो जाया करती है। उस दिन नारायण नाम के कोई महात्मा दर्शन देकर बार-बार मुझे आपकी शरण में जाने का उपदेश देते हैं, इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम तो मायूण है, परन्तु वे महात्मा मुझे नारद कहते हैं।

हे स्वामीजी, सर्व प्रकार से दीन जानकर कृपया मुझे शरणागत कीजिये। मुझे यह बताइये कि महात्मा नारायण कौन हैं तथा बारम्बार दर्शन देकर मुझ अभागे पर क्यों अहैतुकी कृपा करते हैं ?"

स्वामीजी नारदजी के अंश गायक युवक को पहचान गये। उन्होंने प्रेमार्द्र वाणी एवं मन्द स्मित से कहा, "हे विप्र ! तुम्हारी तीव्र इच्छा होने से हम अवश्य तुम्हारा स्वीकार करेंगे। कुछ समय के बाद तुम स्वयम् उन महात्मा को जान जाओगे।"

गायक को आश्रम में रहने की आज्ञा हुई। कुछ समय बाद योग्य पात्रता प्राप्त करने पर सुरेश्वर गायक को पंच संस्कारपूर्वक वैष्णवी विरक्त दीक्षा प्रदान की गयी। दीक्षांतर नाम 'स्वरसुरानन्द' अथवा 'सुरसुरानन्द' रखा गया।

सुरसुरानन्दजी अपनी निष्ठा एवं साधना से आगे चलकर स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में गिने जाने लगे।

(12)

एक बार चन्द्रग्रहण के अवसर पर काशी में बहुत बड़ा समाज एकत्रित हुआ था। बड़े-बड़े आचार्य, कोविद, योगी, जती दूर-दूर से यहाँ आये हुए थे। स्वामीजी उस दिन समाधिस्थ थे अतः वे नहीं गये। समारोह की समाप्ति पर सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी के विख्यात स्वामीजी के दर्शनार्थ आश्रम में आये परन्तु परदा बन्द होने के कारण किसी को दर्शन लाभ नहीं मिला। विफल मनोरथ यज्ञकर्ता की भाँति निराश होकर वे पुनः लौट गये।

दूसरे दिन उनमें से कुछ लोग पुनः आश्रम पर आये। स्वामीजी ने उन सबको दर्शन देकर कृतार्थ किया। उनमें क्षीरेश्वर भट्ट नामक आस्तिक बुद्धि वाले तथा दृढ़ व्रतधारी विद्वान भी थे। उनकी निष्ठा देख आचार्यश्री ने उन्हें सत्संगजनित अपूर्व सुख भी दिया।

अपने संशय निवारणार्थ अभिवादन के अनन्तर उन्होंने जिज्ञासा की। उनको उत्तर देते हुए स्वामीजी ने कहा, "हे विप्र! अविद्या यदि मृत्यु का कारण मानी जाती है तो साथ ही उसे मृत्युसागर के उस पार जाने का यान भी समझना चाहिए। क्योंकि कारण ही प्रकारान्तर से कार्य है। कार्य-कारण परस्पर आश्रित हैं तथा यह सिद्धान्त सनातन सत्य है।

मृत्यु का कारण अविद्या ही है तथा प्रकृति की द्वन्द्वमयी चक्रगति का अनवरत नृत्य भी अविद्या का ही है। एक ही सरगम को छेड़ती हुई अविद्या जन्म-मरण के ध्रुव पर (एक ही जीवन में) सुख-दुःख, हर्ष-शोक, पाप-पुण्य आदि द्वन्द्वों की नाना प्रकार की कला को प्रकट करती है तथा एक अद्वितीय सम पर ताल देती है। वह ताल समत्व बुद्धि का है। अविद्या अपनी प्रत्येक कला से, अंगी-भंगी से, कटाक्ष-मूर्च्छना आदि से मानव मात्र को समत्व का उपदेश देती है जिसे मनुष्य प्रायः अनसुनी कर दिया करते हैं। परन्तु जो व्यक्ति अविद्या की द्वन्द्वमयी कला के समत्व के ताल को सुनकर सावधान हो जाते हैं, वे मृत्यु से पार हो जाते हैं। इस प्रकार अविद्या ही मृत्युसागर के पार जाने का यान भी है।"

उद्भट विद्वान श्रुति के जिस तात्पर्य को नहीं समझ पाये थे, वह श्रुति आज उन्हें दृष्टिगोचर हो गयी। वे कृतकृत्य हो गये। पुनः अविद्या के सरगम के विषय में यतिराज से उन्होंने प्रश्न किया। अतः महामुनि ने प्रत्युत्तर में कहा :

"हे पण्डित! परब्रह्म परमात्मा ही नृत्य नायक है। अविद्या सुन्दरी नृत्य नायक की परिचायिका है। वह नित्य यही सरगम आलापती है कि सर्वत्र ईश्वर का ही वास है। 'इशावास्यम् इदं सर्वम्' सम्पूर्ण विश्व उन्हीं का विकास है तथा वे सबके पास हैं। अपनी सरगम से वह यही कहती है कि त्रिलोक का अखिल विश्व ईश्वर का ही व्यक्त स्वरूप है। उसमें स्वशक्ति से ईश्वर विद्यमान है। भगवान के ही नियम-नियन्त्रण में सम्पूर्ण संसार है, वे ही जगत की चेतना हैं। अतः विश्वगत सब पदार्थ उन्हीं के हैं। परमात्मा की सृष्टि का तिरस्कार न करके भावनामय तथा समर्पणपूर्वक त्याग से सर्व पदार्थों का उपभोग करना चाहिए। समत्व में स्वयं को सदैव स्थित रखकर किसी प्रभाव-अभाव में बहकर अविद्या के नृत्य में नहीं फंसना चाहिए।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी के वचनामृत वेद-वेदान्त के ज्ञाता क्षीरेश्वर भट्ट सुनते रहे। उनकी वही दशा हुई जो यमराज के वचन से नचिकेता की हुई थी। विप्र जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के श्रीचरणों में गिरकर अबोध बालक की भाँति अश्रु बहाते रहे, तथा स्वामींजी के प्रेम एवं कृपा से आप्लावित होते रहे।

कुछ समय पश्चात् जगद्गुरु ने प्रेमाद्र स्वर से कहा, "हे विद्वान ! अमिय तत्व का उपभोग निश्चय ही विद्या द्वारा होता है। बिना विद्या उसकी अतीव प्राप्ति सम्भव नहीं है। विद्या का स्वरूप त्याग है। विश्व एवं तदनन्तरगत समस्त द्रव्य का उपभोग अनासक्त भाव से करना ही विद्या है, त्याग है। नाम-रूप पर मर-मिटने वाली वासना से जीव को पूर्ण रूप से मुक्त कर देना ही उस त्याग की महिमा है। विद्या-विनय सम्पन्न मनुष्य के हृदय में ही उस त्याग वृत्ति का अंकुर जमता है। जो भगवत्मय होकर शांडिल्य विद्या के प्रभाव से इच्छारहित हो जाते हैं तथा द्वन्द्व से परे हो जाते हैं, वे ही त्यागी हैं, वे ही विरागी हैं।

विद्या ही मनुष्य को समत्व प्रदान करती है। सृष्टि तथा उसके सर्जक सृष्टा के प्रति प्रेम प्रदान करती है। हे जिज्ञासु ! पूर्व युगों में कितने ही विद्या-विनय सम्पन्न त्यागी हुए हैं। अब भी हैं और आगे भी होंगे इसमें सन्देह नहीं है।

अनेक ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि इसी सिद्धान्त पर चले तथा ब्रह्मभूत हो गये। अपनी काया को पवित्र करके वे तन्मय तदाकार हो चुके हैं फिर भी उनकी सत्ता अब भी विश्व में विराजमान है।

विरक्त पुरुष त्रिगुणातीत ही होते हैं। परन्तु व्यवहार में जीवनयापन हेतु सत्वगुण का सहारा लेना ही पड़ता है। इसी से वे भगवत्मय भगवान स्वरूप हो सकते हैं तथा निकुंज बिहारी को आकर्षित करके उपदेश भी दे सकते हैं।

हे वत्स ! सर्ग उस ब्रह्म की स्वतः अवतारणा है। नास्ति के अस्तित्व में आने को सर्ग नहीं कहते। परब्रह्म की अवतारणा अपने स्वरूप में तथा सर्वभूतों में देखने से जो होता है वही सर्ग है।

आत्मतत्व की ब्रह्मरूपी ज्योति सर्वदा जगत में जाज्वल्यमान रहती है परन्तु अविद्या के आवरण से वह आच्छादित रहती है। जो अविद्या की सरगम-सन्देश सुनकर सावधान होकर समत्व प्राप्त करते हैं उनका आवरण दूर हो जाता है तथा भेद-बुद्धि नष्ट हो जाती है। ऐसा ज्ञानी कभी उस ज्योति को नहीं भूल सकता तथा प्रत्येक देश तथा काल में अपने अस्तित्व का परिचय देता है।"

विप्र सुनते-सुनते समाधिस्थ हो गये। बहुत समय इसी अवस्था में रहे। जब जाग्रत हुए तब उनकी दृष्टि ही बदल गयी। काशीपुरी में अब उन्हें परमात्मा का मधुर मंगलमय विलास दिखायी दिया। उसी भाव को दृढ़ करते हुए स्वामीजी को दण्डवत् प्रणाम किया। उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके सावधान होकर वे जंगल में चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(13)

दोपहर का समय था। अपने-अपने कार्य से निपटकर आश्रम में सब विश्राम कर रहे थे। उस समय अभिभावकों का एक समूह आश्रम पर आया। उनके साथ एक कोमल तथा सुन्दर पांच-सात वर्षीय बालक था।

सर्वप्रथम सब भगवान श्री सीतारामजी के मन्दिर में दर्शनार्थ गये। तदनन्तर स्वामीजी की कुटीर की ओर जाने लगे। कुटी से थोड़ी दूर एक वृक्ष के नीचे अनन्तानन्दजी बैठे हुए थे। उनको देख बालक स्वयं उनके पास गया तथा विनम्र स्वर में करबद्ध होकर बोला:

"भगवन्, मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरे सिर पर अपने करकमल रखिये, तथा सर्वतोभावेन मुझे अपना चरणसेवक बनाइये।"

बालक के साथ आये हुए अभिभावकों ने कहा, "हे महात्मा! विन्ध्याचल की पहाड़ियों में दिवौड़ा (दिधवारा) नामक स्थान में श्री महेश्वर मिश्र नामक एक सिद्ध विप्र महामाया अम्बिका देवी की वीरभाव से उपासना करते थे। तब उनके औरस तथा महामाया के गर्भ से वैसाख शुक्ल की तृतीया को इस दिव्य बालक का जन्म हुआ। परन्तु शिशु अवस्था में ही दोनों इसे छोड़कर चल बसे। तब से हम सब इसकी देखभाल कर रहे हैं। परन्तु अब इस बालक को हम आपके चरणों में अर्पण करते हैं। क्योंकि आप ही इसके वास्तविक पिता हैं।"

श्री अनन्तानन्दजी दिव्य बालक को पहचान गये थे। वे चकित हो गये। उन्हें आश्चर्य हुआ कि गुप्त रहस्य को अभिभावकगण कैसे जान गये। कि वे स्वयं ब्रह्माजी के अंश थे, तथा बालक ब्रह्माजी के पुत्र सनत्कुमार का अंश है। अनन्तानन्दजी ने हाथ जोड़ते हुए कहा:

"हे आदरणीय! आप सिद्ध तपस्वी लगते हैं, क्योंकि गुप्त रहस्य तथा यथार्थता को आपने जान लिया है। गुप्त रखने के उपरान्त भी आपसे कुछ नहीं छिप सका। परन्तु इस बालक को तथा आपके प्रस्ताव को श्री सद्गुरुदेव की आज्ञा के बिना न तो मैं स्वीकार कर सकता हूँ, न ही अस्वीकार!"

उसी समय गुफा से शंखनाद हुआ। दिव्य शंख की अमृतमय ध्वनि के श्रवण मात्र से परमपात्र बालक अपने साथियों सहित अवर्णनीय अवस्था को प्राप्त हुआ। बहुत दिनों के अपकर्षण के अनन्तर एक-एक मेघगर्जन को सुनकर मोर की जैसी दशा होती है वैसी ही दशा सबकी हो गयी। सब मूर्च्छित हो गये।

स्वामीजी ने अनन्तानन्दजी को बुलाकर कहा, "प्रिय वत्स! शंखध्वनि द्वारा हमने बालक को दिव्य दीक्षा देकर स्वीकार कर लिया है। अब लौकिक तथा वैदिक विधि-विधान सहित मन्त्रोपदेश देकर तुम उसकी प्रार्थना स्वीकार करो। यह दिव्य बालक नया नहीं, बहुत पुराना है। अतः अवस्था का विचार न करते हुए तुरन्त दीक्षा देना ही उचित रहेगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्तानन्दजी ने देखा कि सब आनन्द अवस्था में मूर्च्छित पड़े हुए हैं। उन्होंने जल-सिंचन करके प्रयत्नपूर्वक सबको चेतन किया तथा बालक की प्रार्थना और गुरुआज्ञा को स्वीकार किया।

कुछ दिन बाद शुभ मुहूर्त देखकर पंचसंस्कार सहित बालक को श्री वैष्णवी विरक्त दीक्षा श्री अनन्तानन्दजी द्वारा प्रदान की गयी। बालक का विरक्त नाम 'नरहर्यानन्द' रखा गया। बालक को लेकर पधारे हुए अभिभावकों ने भी चतुर्थ आश्रमी दीक्षा देने की स्वामीजी से प्रार्थना की। अतः उनके सन्तोषार्थ उन्हें भी विरक्त दीक्षा प्रदान की गयी।

कुछ समय सुखपूर्वक आश्रम में निवास करने के उपरान्त अभिभावकगण स्वस्थान चले गये। बालक नरहर्यानन्द अपने चातुर्य, विनयशीलता तथा निष्ठा से आश्रम में सबके प्रिय पात्र बन गये। आगे चलकर स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में उनकी गणना हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. पतितोद्धार

स्वामी श्री रामानन्दजी एक ऐसे युगदृष्टा थे जिन्होंने भारतीय सनातन संस्कृति का संरक्षण ऐसे समय में किया जब अनेक असहाय, उत्पीड़ित तथा त्रस्त लोग अपनी हिम्मत एवं धैर्य छोड़ धीरे-धीरे संस्कृति के प्रति गौरव की भावना छोड़ने लगे थे।

पतितोद्धार के लिए वे सदैव भगीरथ प्रयत्न करते रहे। जन्मपतित, कर्मपतित तथा धर्मपतित के उद्धारार्थ वे नित्य संलग्न रहे। निम्नकुल में उत्पन्न हिन्दुओं में आत्मसम्मान की भावना जाग्रत करके उनके लिए हरिसन्मुखता का द्वार खोलने वाले सर्वप्रथम पुरुषार्थी स्वामीजी ही बने। कर्मपतित हिन्दुओं में व्याप्त निष्कर्मण्यता, पाखड, भेदभाव, द्वेषभाव तथा मिथ्याभिमान दूर करके भक्ति का सरलतम मार्ग उन्होंने ही प्रदान किया। वे एक ऐसे युगपुरुष थे, जिनकी वाणी ही वेद तथा जीवन ही शास्त्र बन गये थे।

युग की आवश्यकता को देख स्वामीजी ने सत्संग मे अनेक बार श्रेष्ठता तथा हीनता के भाव को नैतिकता के विरुद्ध बताकर आदर्शमूर्ति श्रीराम की भाँति विषमता का परित्याग करके सर्वत्र प्रेम-सौहार्द की भावना करके रामराज्य की स्थापना करने का आह्वान किया। समाज में पतित माने गये वर्ण शूद्र को धार्मिक स्तर पर समान घोषित किया। चांडाल, चमार, शूद्र आदि कोई भी भगवतोन्मुखी तथा अध्यात्मपिपासु जीव चाहे तो परमात्मा श्रीराम की शरणागति स्वीकार करके परमार्थ की प्राप्ति कर सकता है—ऐसा बताकर भक्ति परम्परा में वर्णाश्रम-धर्म-निरपेक्षता और मानवीय उत्कर्ष की दिशा में वे प्रयत्नशील रहे। युग-युग से हीनताग्रस्त इस समाज के लिए ग्रंथिविमोचन का द्वार उन्मुक्त किया।

स्वामीजी कहते थे कि धर्म का मूल सिद्धान्त है मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करना। प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने मनुष्य की मूलभूत चार प्रकार की वृत्तियों को देख प्रत्येक प्रकार के मानव को गौरव प्रदान करने हेतु उनके व्यक्तिगत गुणों के उत्कर्ष के आधार पर सर्वोत्तम सामाजिक स्तर अधिगत करके मनुष्यों को आध्यात्मिक समानता देने का प्रयत्न चतुर्वर्ण की स्थापना करके किया।

प्रकृतिगत मनुष्य चार प्रकार के होते हैं। बुद्धिप्रधान मनुष्य ब्राह्मण कहे गये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो शम, दम, तप, पवित्रता, ज्ञान-विज्ञान तथा आस्तिकता के गुणों से विभूषित थे। समाज एवं संस्कृति के उत्थान हेतु अपनी योग्यता से कर्मनिष्ठ कहने वाला यह वर्ग सर्वाधिक पूजनीय था किन्तु तनिक भी दोष के लिए सर्वाधिक दण्डनीय भी यही वर्ग था। दूसरा वर्ग था शौर्यप्रधान क्षत्रियों का। शूरवीरता, धैर्य, तेज, चतुरता, तथा शासन करके समाज की रक्षा करना उनका कर्तव्य था। तीसरा वर्ग वैश्य का था जो कर्मप्रधान कुशल कारीगर था। खेती करना, व्यापार करना तथा कारीगरी से समाज की सेवा करना उनका कर्तव्य था। चौथा वर्ग सेवा-प्रधान था जो तीनों वर्ग की सेवा करके समाज को उपयोगी बनाता था।

चतुर्वर्ण के अन्तर्गत समाज के विभाजन को ईश्वर का अध्यादेश या आत्मा का विधान माना गया क्योंकि आध्यात्मिक विवेक, क्रियात्मक शक्ति, कुशल उत्पादन और नैष्ठिक सेवा किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अपरिहार्य तत्व हैं। लोक समृद्धि के निमित्त—लोकानां तु विवृद्धयर्थं—ही चतुर्वर्ण का विधान किया गया है। शास्त्र सम्मत यह वर्ण-व्यवस्था कर्तव्यभावना और मनुष्यों की प्रकृति और योग्यता के अनुसार अपने वर्ण से उच्चतर वर्ण में सम्मिलित होने की दिशा में प्रयत्नशील रहने को उत्साहित करती थी।

जिस प्रकार शरीर के अंगों का कार्य-विभाजन निश्चित होता है उसी प्रकार समाज में भी वर्ण-विभाजन से कार्यभेद द्वारा समाज को सन्तुलित एवं समृद्ध बनाने का प्रयास हुआ। शरीर का कोई अंग उच्च वा निम्न नहीं होता तथा किसी भी अंग के दुःख से सम्पूर्ण शरीर दुःखी होता है उसी प्रकार समाज का प्रत्येक वर्ण अनिवार्य रूप से आवश्यक एवं समान था। जिस प्रकार किसी भी अंग की उपेक्षा शरीर को असन्तुलित करती है उसी प्रकार किसी भी वर्ण की उपेक्षा समाज को असन्तुलित कर देती है। ब्राह्मण को शिर, क्षत्रियों को बाहु, वैश्य को उदर तथा शूद्र को पैर की उपमा दी गयी थी।

कर्म पर आधारित यह वर्ण-व्यवस्था कालांतर में 'कर्मणा' न रहते हुए 'जन्मना' बन गयी क्योंकि व्यवहार में देखा गया कि जिस परिस्थिति में बालक बड़ा होता है वही उसका स्वभाव बन जाता है तथा वही उसके उत्कर्ष में अधिक सहयोगी बनता है। कुशल कारीगर का बालक बचपन से ही कला हस्तगत कर लेता है, ब्राह्मण का बालक शैशवकाल से ही विद्या में निपुण बन जाता है। 'जन्मना' बनकर भी यह वर्ण-व्यवस्था समान स्तर पर रहती हुई युग-युग तक सुचारु रूप से समाज को अलंकृत एवं पुष्ट करती रही। इस वर्ण-व्यवस्था में यह क्षमता थी कि अज्ञात कुल का बालक जाबाल, क्षत्रिय कुल का विश्वामित्र तथा चांडाल कुल का मातंग ब्रह्मर्षि पद के भोक्ता बन सके। इसी व्यवस्था के बल पर भारतवर्ष विश्व में सर्वक्षेत्र में सिरमौर रहा।

परन्तु नियति के वशीभूत होकर वर्ण-व्यवस्था आदर्श न रहकर जातीयता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और साम्प्रदायिकता में बदलती गयी। धीरे-धीरे अनेक उपजातियाँ बनीं तथा उनमें परिवर्तन एवं विकृति आने लगीं। सर्ववर्ण समानता का मूलभूत सिद्धान्त भूलकर समाज ऊँच-नीच के महाभयंकर रोग का भोगी बन गया। जात-पाँत तथा छुआछूत के इस रोग ने समाज को इस प्रकार ग्रसित कर लिया कि वर्ण-व्यवस्था मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में सहयोगी बनने के बदले बाधक बनने लगी।

स्वामीजी ने देखा कि यदि इस सामाजिक दूषण को दूर न किया गया तो समाज का पतित वर्ग धर्म के प्रति आस्था छोड़ देगा तथा समाज पंगु हो जायेगा। सामाजिक स्तर पर वर्ण-व्यवस्था को सुचारु रूप से समादर स्वीकार करते हुए ऊँच-नीच के भ्रामक विचारों को दूर करने का स्वामीजी ने आह्वान किया। युग की आवश्यकतानुसार विघटनशील, मृतप्राय हिन्दू समाज का जीर्णोद्धार और पुनर्गठन करने में वे संलग्न हुए।

समाज ने परमात्मा श्रीराम की मर्यादा तथा श्रीकृष्ण के कर्मयोग का अद्भुत सम्मिश्रण काशी के स्वामीजी में देखा। एक बार सत्संग में घोषणा करते हुए स्वामीजी ने कहा :

"हे भगवत् प्रेमियो, भगवान श्रीराम के चरणों में अटूट अनुराग रखने वाले सभी व्यक्ति प्रपत्ति के नित्य अधिकारी हैं, चाहे वे समर्थ हों या असमर्थ। भगवत् शरणागति के लिए न तो श्रेष्ठ कुल की आवश्यकता है, न किसी प्रकार के बल की। वहाँ न उत्तम काल की आवश्यकता है, न कोई शुद्धि ही अपेक्षित है। प्राणी-मात्र सब समय शुचि-अशुचि, सभी अवस्था में परमात्मा की शरण ग्रहण कर सकता है।

हे भक्तजनो! प्रपत्ति के अधिकारी स्त्री-पुरुष, स्वधर्मी-विधर्मी, ऊँच-नीच, सब कोई हैं। उनकी शरण में जाने का अधिकार सर्व जीवमात्र को समान रूप से है।

"सर्वे प्रपत्तिरधिकारीणः सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्यभि।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो चापि कालो न च शुद्धिता॥"

स्वामीजी की इस घोषणा का प्रभाव तत्कालीन रूढ़िग्रस्त ब्राह्मण, पण्डित एवं समाज पर पड़ा। सबके लिए यह एक क्रान्तिकारी विचार था। उन्होंने विरोध भी किया किन्तु महामहिम स्वामीजी के प्रभाव से वे स्वयं धीरे-धीरे शान्त होने लगे। भारत में भक्तिक्षेत्र में वर्ण-व्यवस्था के चक्रव्यूह को तोड़ने का सर्वप्रथम साहस स्वामी रामानन्दजी ने किया।

इतिहास में स्वामीजी की इस घोषणा को स्वर्णाक्षरों में लिपिबद्ध किया गया। इस घोषणा के फलस्वरूप अनेक शूद्र, पतित धार्मिक व्यक्ति आश्रम में सत्संग में आने की हिम्मत करने लगे। काशी के इस मार्तण्ड ने छुआछूत का भूत मिटाकर जाति-पाँति के भेदभाव को दूर करके भक्तिप्रधान हृदयों में प्रपत्ति का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलौकिक आलोक प्रसरित कर अज्ञान अन्धकार का नाश करने का बीड़ा उठा लिया था।

बालक रविदास भी अब बड़ा हो गया था। प्रकृति की प्रेरणा एवं पूर्वजन्मों के संस्कार से वह बचपन से ही धार्मिक था। धार्मिक माता-पिता ने बालक को सुसंस्कारों से अलंकृत किया था। किन्तु 13-14 वर्षीय रविदास का सन्तों के प्रति अधिक आकर्षण देख पिता चिन्तित थे। रविदास अपना व्यापारिक तथा व्यावहारिक लाभ छोड़कर निःशुल्क सन्तसेवा करता रहता था।

पंचगंगाघाट के स्वामीजी के प्रति उसका आकर्षण अत्यधिक था। किन्तु रविदास था चमार। एक अस्पृस्य नीच वर्ण का व्यक्ति। हिन्दुओं के सर्वोच्च गुरु के पास जाने की उसमें हिम्मत भी नहीं थी। आजकल सर्वत्र स्वामीजी की ही चर्चा सुनायी दे रही थी। रविदास प्रत्येक सन्त से आश्रम के सत्संग की पृच्छा करता था। सन्त भी उसके सेवा एवं निर्मल प्रेम से प्रसन्न हो उसे आश्रम में जाकर स्वयं सत्संग सुनने की हिम्मत दे रहे थे।

एक दिन वह सायंकाल सत्संग में गया। दूर ही से स्वामीजी की अलौकिक सूरत का दर्शन करके पावन हो गया वह। हिमाच्छादित श्वेत गिरिशिखर मानो चन्द्रमा के धवल प्रकाश से सुशोभित हो—वैसे ही गौर वर्ण के स्वामीजी श्वेत वस्त्रों में देदीप्यमान हो रहे थे। उनका तेजोदीप्त भालप्रदेश, सघन कृष्ण जयकलाप, प्रलम्ब भुजाएँ तथा सुगठित श्रीअंग—जैसे पुराणकाल के भव्य महर्षि।

स्वामीजी की करुणा एवं प्रेमवारि से परिप्लावित अभिदृष्टि ने रविदास को आत्मविस्मृत कर दिया। रोम-रोम पुलकित हो गया तथा नेत्र निर्झर बन गये उनके। स्वामीजी ने एक बार रविदास की ओर दृष्टि की, उनके दृगों से ऐसा दिव्य तेजपुंज प्रादुर्भूत हुआ कि रविदास आत्मतृप्त होकर झूम उठे। युग-युग से भटकती हुई उनकी आत्मा को परम प्रिय प्राणाधार मिल गये। दर्शन मात्र से परम शान्ति महसूस हुई रविदास को।

स्वामीजी ने क्या कहा, कुछ पता नहीं। उनके प्राण उनके नेत्र द्वारा स्वामीजी के पास रुके हुए थे। उनके श्रवणों में मात्र इतना आया कि भगवान श्रीराम परम कृपालु हैं, भक्तवत्सल हैं, दयालु हैं। उनके श्रीचरणों में जाने का अधिकार प्राणी मात्र को है। जब जीव अनन्य निष्ठा से एवं विश्वास से परमात्मा के पास जाता है तब वे अवश्य उसको स्वीकार करते हैं। सत्संग समाप्त हुआ। रविदास घर आया। परन्तु यही बात उसके मन में गूंजती रही। क्या स्वामीजी उसे अपना शिष्य बनायेंगे? सत्संग में जाने का रविदास का नित्यक्रम बन गया।

पिता रघूमल ने पुत्र पर चढ़ता भक्ति का रंग देख उसे कारोबार में लगाया तथा उसका विवाह भी कर दिया। उसे अलग घर देकर आर्थिक व्यवस्था भी स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने का आदेश दे दिया। परन्तु भाग्यवश रविदास की पत्नी लोनी भी पतिव्रता एवं भक्त स्त्री थी। अब दोनों सत्संग में आने लगे।

एक दिन रविदास हिम्मत करके दोपहर को आश्रम में आये। स्वामीजी की कुटीर से थोड़ी दूर एक वृक्ष के निकट वे मौन बैठ गये। उनका अन्तःकरण आर्त-भाव से स्वामीजी को पुकारने लगा। अन्तर्यामी स्वामीजी यमराज के अंशरूप रविदास को कब से पहचान गये थे। अन्तःकरण की करुण पुकार सुन स्वामीजी निजकुटीर से परदा खोल बाहर आये तथा प्रसन्नवदन देखा रविदास को। खड़े हो गये रविदास तथा दूर ही से प्रणाम करते हुए अश्रु बहाते रहे। कण्ठ अवरुद्ध था तथा गात्र शिथिल।

स्वामीजी प्रसन्नवदन उनके निकट गये तथा पूछा, "क्या चाहते हो, वत्स ?"

रविदास स्वामीजी के श्रीचरणों में गिर गये। रुदन इतना हो गया कि कुछ भी बोलने में वे असमर्थ रहे। स्वामीजी ने उन्हें उठाने को हाथ बढ़ाया तो दूर हटते हुए रविदास बोले :

"स्वामीजी, यह आपने क्या किया ? मैं तो एक अस्पृश्य चमार हूँ। आपके दर्शन की लालसा से यहाँ आने की धृष्टता की है मैंने। मुझे क्षमा कीजिये महाराज !"

स्मित बिखेरते हुए करुणानिधान पुनः रविदास के निकट गये तथा उनके मस्तिष्क पर हाथ फेरते हुए कहा :

"रैदास ! हम तुम्हें जानते हैं। जो श्रीराम नाम का अनुरागी है, वह अस्पृश्य कैसे हो सकता है ? जन्म से जीव कुछ भी हो, वह परमात्मा का अनुरागी है, वही हमारे लिए पर्याप्त है। कहो, क्या चाहते हो ?"

स्तब्ध हो गये रविदास। स्वामीजी व्यक्तिगत रूप से भी उन्हें जानते थे··· परम सौभाग्य उनका। हिम्मत बढ़ गयी उनकी। करबद्ध होते हुए क्षीण स्वर से बोले :

"प्रभु ! आपकी शरन···अगर आपका शिष्य बनने का सौभाग्य मिले···मेरा स्वीकार करो, प्रभु !"

शब्द ही न निकले आगे। प्राण श्रवणों में आ गये। क्या उत्तर देंगे स्वामीजी। परन्तु स्वामीजी की दिव्य मूर्ति अधिक देदीप्यमान एवं प्रसन्न दिखायी दी। आशा बँधी रविदास को।

"अवश्य, वत्स ! कुछ दिन पश्चात शुभ दिन देख तुम्हारी इच्छा पूर्ण की जायेगी। अब तो प्रसन्न हो न ?"

"प्रभु ! मुझ जैसा इस भूमण्डल पर अब कोई भाग्यशाली नहीं है।"

और एक दिन रविदास को विधिवत् शिष्य बनाया गया। पण्डितों एवं रूढ़ि-ग्रस्त ब्राह्मणों ने जब यह सुना, बहुत विरोध किया। परन्तु देश-काल के असरों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो परे हों तथा निज-चेतना से जो युग को आलोकित कर रहे हों उन पर इस विरोध का क्या प्रभाव पड़ना था। विरोध करने वाले स्वयं लज्जित होकर चुप हो गये।

रैदास अब पूर्णतः शरणागत हो चुके थे। निज व्यवसाय करते हुए वे श्रीराम नाम में रत रहने लगे। परम वैराग्य एवं भक्तिरस से विभूषित रैदास स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में माने गये।

(2)

धवलगिरि नामक पर्वत पर एक प्रसिद्ध योगी कृपाशंकर रहते थे। उनके आश्रम पर अनेक सन्त-महात्माओं का नित्य आवागमन रहता था। कुछ समय से योगी सबसे एक ही बात सुनते आ रहे थे, वह थी काशी के स्वामी श्री रामानन्दजी की स्तुति। कोई कहता कि वे अत्यन्त सिद्ध तपस्वी हैं, तो कोई कहते कि स्वयं भगवान श्रीराम ही के अंशावतार हैं। कोई कहता कि विधर्मियों की संहार लीला पर रोक लगाने तथा सनातन संस्कृति को बचाने परमात्मा स्वयं भूमण्डल पर पधारे हैं। सबसे एक ही बात सुनकर एक बार योगी ने स्वामीजी से प्रत्यक्ष भेंट करने का निश्चय कर लिया।

ग्रीष्म का समय था। दोपहर को योगी अपने शिष्य समुदाय के साथ योग-शक्ति से आकाशमार्ग से काशी जाने के लिए निकले। ग्रीष्म का सूर्य अपनी तेज किरणों से पृथ्वीतल को तप्त कर रहा था। गरमी के कारण पक्षी अपनी चोंच खोले पानी की तलाश में इधर-उधर उड़ते फिर रहे थे। पशु जोहड़-तालाब के समीप भागे हुए जा रहे थे। प्रखर किरणों के तेज के कारण वृक्षों के पल्लव कुम्हलाये हुए थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था।

ग्रीष्म की असह्य गरमी से बचने को आश्रमवासी अपनी-अपनी कुटीरों में विश्राम करके समय होने पर धीरे-धीरे अपने-अपने सेवाकार्य शुरू कर रहे थे। कुछ श्रद्धालु भक्त स्वामीजी के दर्शनार्थ दूर-दूर से आश्रम में आकर वृक्षों की छाँव में विश्राम कर रहे थे।

स्वामीजी ने प्रिय शिष्य अनन्तानन्दजी को बुलाकर कहा, "प्रिय वत्स! धवलगिरि के कृपाशंकर योगी जमात सहित आकाशमार्ग से यहाँ पधार रहे हैं। आकाश में ही उनके स्वागत-सत्कार की उचित व्यवस्था करो।"

कुछ ही समय में लोगों ने देखा कि इतनी तेज धूप में प्रचण्ड वायु के झोंके के साथ एक योगी आकाशमार्ग से स्वामीजी की कुटिया-गुफा के ऊपर आये। श्रद्धालु मानव उनके दर्शन करके उनकी योगशक्ति को आश्चर्य से देखते रहे। योगी आकाश से नीचे उतरने की चेष्टा कर ही रहे थे कि अनन्तानन्दजी ने उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वागतार्थ अधर ही में गलीचा बिछाया तथा धूप से बचने को ऊपर चंदोवा लगाया। योगी को ऐसा प्रतीत हुआ कि ग्रीष्म में हिमालय की शीतल हवा उनके अंग-प्रत्यंग का स्पर्श करके हिमालय के दिव्य ऋषियों की आध्यात्मिक ऊर्जा से उनको परिपूर्ण कर रही है। करवी में जल लेकर अनन्तानन्दजी ने योगी कृपाशंकर का पद-प्रक्षालन किया तथा करबद्ध खड़े हो गये।

योगी इस सत्कार से अत्यन्त प्रसन्न हो गये तथा बोले, "जैसा सुना था वैसा ही पाया। हे संन्यासी ! अब तुम्हारे गुरुदेव के दर्शन की इच्छा शेष है।"

श्री अनन्तानन्दजी ने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा, "हे महात्मन् ! जिस महाप्रभु ने आपके शुभागमन की बात पहले से ही जानकर तदनुरूप सेवा-सत्कार की आज्ञा की है, वे सर्वतन्त्र स्वामीजी दर्शन की व्यवस्था भी स्वयं करेंगे। सद्भाग्य से आपके हमें दर्शन हुए हैं शीघ्रता क्यों कर रहे हैं ? आप श्रमित हैं अतः विश्राम करें तथा इस सेवक को सेवा करने का अवसर दीजिये। इस शीतल श्रम-हारक अंकुररस का पान कीजिये।"

कहते हुए सबको उन्होंने मिट्टी के पात्र में शर्बत दिया। उसे पीकर मिट्टी के पात्र को फेंकते हुए योगीराज बोले :

"वाह ! ऐसा अमृतसमान,सुख और सन्तोषप्रद रस हमने पहली बार पिया। इसने तो कण्ठ से उदर में पहुंचते ही अपना प्रभाव दर्शाया। जैसे सिद्ध गुरु वैसे ही सिद्ध शिष्य !" योगी प्रसन्न हो गये।

उसी समय कुटीर का परदा खुला तथा दिव्य प्रकाश फैल गया। इससे प्रभावित होकर योगीराज अपने अनुयायियों सहित आसन छोड़ पृथ्वी पर आये तथा स्वामीजी की कुटी में जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। प्रेममूर्ति स्वामीजी ने उन्हें उठाया तथा हृदय से लगाकर पास बिठाया।

स्वामीजी की विनयशीलता से योगीराजजी संकुचित हो गये क्योंकि उन्हें प्रभावित करने ही वे आकाशमार्ग से यहाँ आये थे। उन्होंने स्वामीजी से सविनय कहा :

"हे जगद्गुरु ! मेरे अविनय को क्षमा कीजिये। हृदय की संतप्त अग्नि को शान्त कीजिये जिससे परमतत्व का साक्षात्कार हो जाये। मेरे सिर पर निज कर-कमल फेरिये।"

स्वामीजी सस्मित प्रेमार्द्र नेत्रों से योगीराज को देखते रहे। कुछ रुककर योगी कृपाशंकर बोले :

"हे कृपानिधान ! वेद की सहस्रों शाखाओं तथा शास्त्र के आड़ोलन से मेरे मन में सन्देह उत्पन्न हो गया है। इस सन्देह को कोई दूर नहीं कर पाया है अतः आप ही इसे निवृत्त कीजिये। हे ज्ञानराशि ! कृपा करके योगी, जंगम, यती और सती के गुप्त आध्यात्मिक भाव का स्पष्टीकरण करके मेरे सन्देह को दूर कीजिये।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरु ने उत्तर देते हुए कहा, "हे योगीराजजी ! आपका प्रश्न उत्तम है। अब आपके सन्देह का निवारण सुनिये।

योगी वह है जो संभूति और असंभूति इन दोनों को एक ही सत्ता में पर्यवसित जाने। 'स्वयं न सम्भवति, व्यक्तत्वं न प्राप्नोति, पराश्रिता परमेश्वर प्रेरणाऽपेक्षिता प्रकृतिः साऽसंभूतिः।' अर्थात् अपने आप ही विकसित न हो, प्रकट न हो तथा परमात्मा की प्रेरणा एवं परचेतना की प्रेरणा एवं अपेक्षा रखे वह प्रकृति ही असंभूति है। इसी प्रकार 'स्वयमेव संभवति, प्रकाशते, व्यक्तत्वं लभते, स्वाश्रितः, स्वतः प्रकाशमान आत्मा—इति संभूति' अर्थात् आप ही स्वसत्ता में स्थित है, प्रकट है, स्वयं आश्रित है तथा अपने आपसे ही प्रकाशमान है वह संभूति है। योगी संभूति तथा असंभूति को, पुरुष तथा प्रकृति को, एक ही में पर्यवसित जानता है। आत्मा को और कार्यकारण रूपा प्रकृति को जो एक साथ जानता है, प्रकृति-पुरुष का विवेक एक साथ प्राप्त कर लेता है तथा आत्मज्ञान और व्यवहार दोनों मिलाकर साधना करता है वह योगी है। वह परिवर्तनशील प्रकृति के विवेक से मृत्यु को पार करके आत्मज्ञान रूपी अमृत को प्राप्त कर लेता है।

संभूतिश्च विनाशञ्च यस्य द्वेदोमय ँ सह।
विनाशेन मृत्यु तीर्त्वा संभूत्यामृत मश्नुते॥

'जंगम' वो है जो सम्पूर्ण सृष्टि को जंगम अर्थात् परिवर्तनशील जानता है। सचराचर विश्व स्वतः परिवर्तनशील एवं क्षणिक भासमान है। विश्व का नित्यत्व केवल पुरावृत्ति के नित्यत्व से ही योगिक सम्बन्ध द्वारा प्रकट एक आभास मात्र ही है। इस बात को जो अनुभव कर लेता है वह 'जंगम' है।

अब 'यती' का आध्यात्मिक रहस्य सुनो। यती तीन प्रकार के होते हैं। सब कुछ छोड़कर भी वैचारिक अहंकार से जो कामिनी-कांचन का स्पर्श नहीं करता वह यती है। परन्तु एकदण्डी यती महत् बुद्धि से उन्हें स्पर्श करते हुए भी नहीं करते। त्रिदण्डी यती महत् मन और चित् से स्पर्श करते हुए भी नहीं करते।

'सती' उस बोधिता स्त्री को कहते हैं जो अपनी सत्ता पर सुदृढ़ रूप से स्वतन्त्र अधिकार रखती है। लज्जा तथा भय न रखते हुए पुरुष के तिल में तिल मिलाकर उनके सामने से न टलती हुई खुलकर खेलती है। बोधिता 'सती' के अद्भुत चरित्र को कोई लिख नहीं पाता।"

अपनी जिज्ञासा का अपूर्व समाधान तथा गूढ़ार्थ सुनकर कृपाशंकर योगी मुग्ध हो गये। महाज्ञानी महागुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की असीम कृपा से आत्मज्ञान रूपी निज ज्योति स्वरूप पर छाये हुए संशय और सन्देह रूपी बादल दूर हो गये। अत्यन्त कृतज्ञता के साथ वे आचार्यजी के चरणों में गिर गये।

जैसे ही उनका शीश पृथ्वी पर झुका तथा स्वामीजी की दिव्य अभिदृष्टि उन पर पड़ी, नमन के समय तत्क्षण बाहरी-भीतरी समर्पण को अंगीकार करती हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत् शक्ति अग्नि प्रकट हो गयी तथा योगीराज को सुगमतापूर्वक सुपथ पर खींच ले गयी। क्षणमात्र में योगी 'प्रणव' में परिणत हो गये।

परमकृपालु, परमदयालु स्वामीजी की दिव्य गुणसम्पन्न परमोत्कृष्ट दृष्टि से उन्हें ब्रह्मसन्निधि प्राप्त हो गयी। देखते-ही-देखते वे अदृश्य हो गये। उनके अनुयायी उन्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये परन्तु वे पुनः कभी नहीं मिले।

काशी में चर्चा होने लगी कि बड़े-बड़े चमत्कारी योगीजन भी स्वामीजी की शरण में आकर ही ब्रह्मसन्निधि प्राप्त कर सकते हैं अतः उनकी शरण में जाने से ही परमार्थ की प्राप्ति हो सकेगी।

(3)

काशी नगरी पुरातन काल से भारत की संस्कृति, धर्मविद्या एवं धर्म का प्रमुख केन्द्र रही है। संस्कृति के विकास में वाराणसी की देन अनुपम है। भारत-भर के विद्वान काशी के विद्वानों के मतानुसार चलते हैं परन्तु काशी इस समय एक पारलौकिक मार्तण्ड के दिव्य तेज से आलोकित हो रही थी अतः काशी के पण्डित काशी के मार्तण्ड को प्रमाणभूत मानते थे।

एक बार एक प्रसिद्ध कर्मकांडी पण्डित विसहास विश्वनाथ आश्रम पर आये। स्वामीजी के दर्शन एवं सत्संग से इस प्रकार प्रभावित हुए कि वे नित्य प्रातःकाल स्वामीजी के दर्शन-सत्संग में आने लगे। उनकी श्रद्धा-निष्ठा देख स्वामीजी ने उनके लिए झरोखा दर्शन की व्यवस्था कर दी थी।

अपनी कुछ शंकाओं के समाधान हेतु वे एकान्त में स्वामीजी से मिलना चाहते थे। इसलिए एक दिन सत्संग के पहले ही श्रीमठ में आये। सद्भाग्य से कुटीर का परदा खुला ही था तथा आचार्यश्री कुछ शिष्यों से चर्चा कर रहे थे।

पण्डित विश्वनाथ आचार्यश्री को प्रणाम करके बैठ गये। शिष्यों के जाने के बाद नम्रतापूर्वक यतिराज के श्रीचरणों में झुकते हुए अपने सन्देह निवारणार्थ कुछ प्रश्न पूछने की आज्ञा प्राप्त की।

पण्डित विश्वनाथ ने सविनय पूछा, "हे ज्ञानराशि ! मन्त्रशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण सबने श्रीराम नाम की और तद्बीज की अपूर्व महिमा गायी है। भिन्न-भिन्न मत रखते हुए भी इस कथन से सबमें समदर्शिता छायी है। भरनी-करनी—धरनी-भरनी और समस्त लौकिक व्यवहारों में इसकी ही प्रतिष्ठा है। इष्ट कोई भी देवता हो, उसकी सिद्धि श्रीराम नाम से ही होती है, यह प्रसिद्ध बात है। मानो सब देवता इसी में वास करते हैं।

हे जगद्गुरु ! भगवान शंकर भी परिवार सहित इसी नाम को जपते हैं तथा आप भी इसी का अनुष्ठान करते हैं। तो कृपानिधान ! कृपया यह समझाइये कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामनाम क्या है ? इसे हम किस प्रकार समझें जिससे प्रतीति हो, विश्वास उत्पन्न हो।"

आचार्यप्रवर ने सानुग्रह दृष्टि से, सहज स्नेहपूर्ण स्वरों में कहा :

"हे पण्डित ! आपका अन्वेषण, संकलन और प्रतिपादन सत्य है। परन्तु राम-नाम क्या है इस बात को मात्र योगी ही निश्चय रूप से जान सकते हैं। जो यह जानता है कि श्रीराम नाम क्या नहीं है, वही उसकी महिमा यथार्थ जानता है। क्योंकि परब्रह्म परमात्मा को शब्दों में व्यक्त करना अत्यन्त कठिन ही नहीं असम्भव है।

बुद्धि जब जड़ता से रहित होकर समत्व प्राप्त करती है, तभी प्रतीति प्रसव करने वाली विवेक बुद्धि का उदय होता है। तभी विश्वास होता है, तभी पात्रता मिलती है। पात्रता प्राप्त होने पर ही सद्गुरुदेव के प्रसाद से जीव महामन्त्र के रहस्य को समझने लगता है।

हे वत्स ! श्रीराम नाम रूपी रत्न तो हृदय रूपी थैली में ही है, परन्तु उस थैली को अहंता-ममता के दूषणों ने बन्द कर रखा है।—'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्य स्थापिहितं मुखम्।' सत्य को, तत्वज्ञान को लोभ के सुवर्णमय पात्र के द्वारा ढक दिया गया है। इसे देखने अन्तर्मुखी बनकर एकाग्र होना पड़ेगा। आँखों की पुतलियों की दोनों तरफ परमात्मा ने शीशा लगाया है। बाहर देखो तो सृष्टि, अन्दर देखो तो सृष्टा। हृदय रूपी थैली का हीरा श्रीराम नाम तो अन्दर देखने से ही प्राप्त हो सकता है।

जीवन में जाग्रतावस्था में, शयन में, स्वप्नावस्था में तथा आचार-विचार में जो प्रकृति के खेल होते हैं उसके मूल में जो सत्यता व्यापी हुई है वह श्रीराम नाम की ही है। उत्तम मीमांसक, उत्तम आश्रमी और उत्तम सद्गृहस्थ जिस किसी को किसी भी साधन से अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है वह र-कार म-कार की रमण क्रीड़ा को देख लेते हैं। जगतब्रह्म और शब्दब्रह्म के अभेद तत्व को समझ लेते हैं।

हे जिज्ञासु ! ओंकार का आदि अनादि रूप और उसका प्रत्यक्ष शृंगार तथा सोऽहं का आधार भी वही है। ध्वन्यात्मक प्रकरण में, गुणातीत दशा में, अविरल रूप से होने वाली अनाहत ध्वनि का वही सार है। जीव और शिव, प्रकृति और पुरुषोत्तम को घट-घट में प्रतिष्ठित करने वाली महिमामयी सत्ता श्रीराम नाम की ही है।

इस तत्व के सर्वाधिक ज्ञाता ईश्वर स्वयं ही हैं। वे सुषुप्ति के विभु हैं। देह-भान से रहित जीवात्मा को परमात्मा से मिलकर सुख और अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। जीवन यतन के लिए यह परम आवश्यक भी है।

हे विप्र ! श्रीराम नाम की महिमा समझने के लिए सरलतम उपाय 'श्रीराम' महामन्त्र का जप ही है। जब तक प्राणवायु संचरण में अखण्ड राम नाम की गूंजती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई ध्वनि सुनायी न दे तब तक तो वैखरी वाणी से राम-रटन अनिवार्य है। परम पुनीत र-कार म-कार से युक्त यह अनमोल रतन जब सन्त-सद्गुरु प्रसन्न होकर देते हैं, तभी उसकी प्राप्ति होती है। वह सबको सब प्रकार से कल्याणकारी ही सिद्ध होता है।"

विप्र विश्वनाथ के ज्ञान-चक्षु खुल गये। विद्वान पण्डित को स्वामीजी की कृपा से श्रीराम नाम की महिमा ज्ञात हुई तथा उनकी जिज्ञासा तृप्त हुई। इस पर पण्डित ने परमकृपालु सन्तशिरोमणि स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के श्रीचरणों में झुकते हुए राम-मन्त्र की याचना की। स्वामीजी ने कृपापूर्वक भिक्षा में पण्डित को वह रत्न प्रदान किया।

श्रद्धालु सत्संगी सत्संग-वाटिका में एकत्रित हो गये थे तथा सत्संग का समय हो गया था अतः स्वामीजी सत्संग-वाटिका में पधारे। विद्वान पण्डित उस दिव्य रत्न का स्मरण करते परम धन्यता का अनुभव करते हुए सत्संग में गये।

(4)

काशी को धार्मिक कर्मकांड करने के लिए धर्मशास्त्रों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। दूर-दूर से लोग विशेष क्रियाकांड के लिए काशी में आते हैं।

एक दिन एक जंगम स्वामी विपिन, विहार करते हुए काशी आ पहुँचे। अपनी जटा-जूट का विसर्जन करने के लिए वे गंगाजी के घाट पर एक नाई के पास पहुँचे। जंगम स्वामी के कहने पर नाई ने जटा का मुंडन करना आरम्भ किया।

नाई का नाम सेना था। वह एक चतुर तथा भला व्यक्ति था। वह जानता था कि पूरा मुंडन शास्त्राज्ञा के विरुद्ध है, अतः उसने जटा का विसर्जन करके शिखा रहने दी। जंगम स्वामी ने नाई को शिखा भी मूंडने का संकेत किया। इस पर सेना ने हाथ जोड़कर कहा :

"महाराज ! मैं एक संन्यासी को तुरक बनाने का पाप नहीं कर सकता। अतएव चुटिया का यह अंश किसी अज्ञानी नाई से कटवा लेना। मुझे आशीर्वाद दीजिये क्योंकि मुझे दूसरी जगह जजमानी करने जाना है।"

विवेकी संन्यासी धैर्य धारण करके बोले, "भाई ! किसी विवेकी पुरुष द्वारा निर्णय होने पर तुम जा सकते हो।"

नाई ने कहा, "स्वामीजी ! आप ही को मैं तो विवेकी पुरुष मानता हूँ। अतः आप ही शीघ्र निर्णय दीजिये जिससे मुझे सन्तोष हो जाय और यह कार्य भी पूर्ण हो जाय।"

जंगम स्वामी ने कहा, "सुनो भाई ! शिखा का विसर्जन संसार बन्धन से मुक्त होने का चिह्न है, तुरक होने का नहीं। क्योंकि तुरक भी चुटिया रखते ही हैं, शिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर नहीं तो चिबुक पर !"

"मुझे सन्तोष तो नहीं हुआ, परन्तु मैं चुटिया मूंडे देता हूँ। परन्तु स्नानादि से निवृत्त होने पर हम आश्रम में स्वामीजी के पास चलेंगे। वे आपकी बात भी समझेंगे तथा मेरे जैसे मूर्ख को भी समझा सकेंगे।" सेना नाई ने प्रत्युत्तर दिया।

जंगम स्वामी स्नानार्थ गये। नाई ने सोचा इसी बहाने आज आश्रम में स्वामीजी के भी दर्शन हो जायेंगे। कभी-कभी वह सत्संग में भी जाया करता था। स्वामीजी के प्रति उसे अत्यन्त आदर एवं स्नेह था।

जब जंगम स्वामी स्नान-ध्यान से निवृत्त हो गये, तब दोनों आश्रम पहुँच गये। मध्याह्न हो गया था। भगवत् प्रसाद पाने के लिए वहाँ पंगत बैठ गयी थी, अतः शिष्यों ने इन दोनों को भी प्रसाद दिया।

तदनन्तर दोनों स्वामीजी की कुटीर के पास गये। परन्तु कुटी का परदा बन्द था। बैठे-बैठे सायंकाल हो गया। सत्संग का समय हो गया और सत्संगी लोग भी आने लगे। बातचीत करते हुए बहुत से सत्संगियों के बीच शिखा का प्रश्न उठने पर वाद-प्रतिवाद होने लगा। पक्ष और विपक्ष के बीच घोर विवाद हुआ तथा अशान्ति अत्यन्त बढ़ गयी।

उस समय बन्द गुफा से शंखनाद हुआ। विवादियों के हृदय में शान्ति का संचार हुआ। दिव्य नाद कानों में पड़ते ही सब मोहांधकार से निकलकर ज्ञान की भूमिका पर आ गये। तब कुटीर का परदा खुला। सबको अलौकिक दर्शन हुआ।

स्वामीजी मधुर स्मित सहित बोले, "हे मुमुक्षुओ ! दृष्टा या कवि के प्रज्ञान में ज्ञान शिखा अनिवार्य है। शिखा ज्ञान का प्रतीक है, जिसे काटना निषेध है।

परन्तु मनीषी जब अथक प्रयत्नों से ब्रह्मलीन हो जाय, परम पद को प्राप्त कर ले, दृष्टा भाव से संसार से विभक्त तथा ब्रह्म से अविभक्त हो जाय, तब शिखा रखना उसके लिए अनिवार्य नहीं रहता है। पूर्णत्व प्राप्त करने पर शास्त्र उसे बन्धनमुक्त करते हैं। तदनन्तर लोक-संग्रह के लिए बन्धन निभाना अथवा छोड़ देना मनीषी की इच्छा पर अवलम्बित है। यही श्रुतिकार का तात्पर्य है।"

यह सुनते ही शिखा के आध्यात्मिक रहस्य का बोध दोनों को हो गया। दोनों ने स्वामीजी को दण्डवत प्रणाम किया। सेना नाई को स्वामीजी ने भीष्म के अंश-रूप में पहचान लिया था। सेना नाई भी उस दिन से आचार्य का परम भक्त बन गया। वह नित्य सत्संग में आने लगा।

कुछ समय पश्चात् आचार्यश्री से दीक्षा के लिए सेना ने प्रार्थना की क्योंकि पतित समाज का उद्धार करने को स्वामीजी ने एक चमार रैदास को शिष्य रूप में स्वीकार किया था। पतित समाज अब विनयपूर्वक अपने परम आराध्य प्रभु से याचना कर सकते थे। स्वामीजी के प्रेमार्द्र व्यवहार से उनका संकोच धीरे-धीरे कम होता जा रहा था। उन्होंने श्रीराम मन्त्र की दीक्षा सेना नाई को प्रदान की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीक्षा के बाद उसकी स्थिति अपूर्व हो गयी।

अपना व्यावसायिक कार्य करते हुए वह सबको यही कहते थे, "भाई ! हम तो प्रति बार बारीक हजामत बनाते हैं। लोगों को विवेक रूपी दर्पण दिखाते हैं, वैराग्य कैंची चलाते हैं, शिर पर शान्ति का उदक छिड़कते हैं और अहंकार की चुटिया घुमाकर बाँधते तथा काटते हैं। हम तो काम-क्रोध रूपी नाखून काटते हैं। चारों वर्ण की सेवा करते हैं और अपने राम की मस्ती में मस्त रहते हैं।"

सेवा भगत को साधु-सेवा का व्रत मिला था। अपनी निष्ठा एवं भक्ति से वे द्वादश महाभागवत के रूप में प्रसिद्ध हुए।

(5)

अधिकांश जनता माधवाचार्य को अब विद्यारण्य मुनि के नाम से ही पहचानने लगी थी। उनका देश-प्रेम, उनकी धर्मनिष्ठा एवं निरभिमानता ने लोगों के हृदय में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था।

स्वामीजी श्री रामानन्दाचार्यजी से प्रेरणा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने अत्याचारों से आतंकित जनता को धैर्य बँधाना तथा बलात् धर्म-परिवर्तन कराये गये लोगों को पण्डितों के विरोध के उपरान्त भी पुनः पवित्र संस्कार कराने का कार्य अविरत रूप से चालू ही रखा था। उनके तेज एवं प्रेमार्द्र वर्तन से अभिभूत लोग उन्हें स्वतः आदर देने लगे थे। उनके कई शिष्य भी हुए।

परिभ्रमण करते हुए वे अपने देश दक्षिण भारत में पहुँचे परन्तु वहाँ राजकीय परिस्थिति अत्यन्त दुखद थी। दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण भारत में भी आक्रमण शुरू कर दिये थे। तुंगभद्रा नदी के किनारे बसे हुए होयसेल वंश के राजाओं की राजधानी गूँदी पर उसने आक्रमण किया तथा उसे पराजित किया। राजा के दो प्रतापी तथा तेजस्वी मन्त्री थे हरिहर तथा बुक्काराय। दोनों को सुलतान ने वन्दी बनाया तथा बलात् दिल्ली ले गया। वहाँ उनका बलात् धर्म-परिवर्तन भी किया गया।

इधर गूँदी की प्रजा ने विद्रोह किया और सुलतान के सरदार उसे दबाने में असफल रहे। अतः सुलतान ने दोनों प्रतापी मन्त्रियों को विद्रोह दबाने पुनः गूँदी भेजा क्योंकि सुलतान जानता था कि हिन्दू प्रजा एक बार मुस्लिम बने हुए व्यक्ति का पुनः स्वीकार कभी नहीं करती।

परन्तु हिन्दुओं के सद्भाग्य एवं सुलतान के दुर्भाग्य से दोनों भाइयों की भेंट माधव विद्यारण्य से हो गयी। दोनों धर्म एवं राष्ट्र-प्रेमी थे। मुनि ने दोनों को देश को मुस्लिम शासकों से बचाकर मुक्त करने की प्रेरणा दी तथा उन्हें पुनः हिन्दू संस्कार देने का वचन दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों भाइयों ने राज्य-व्यवस्था पूर्णतः हस्तगत करके संवत् 1392 में स्वयं को दिल्ली सल्तनत से स्वतन्त्र घोषित कर दिया। एक बड़े समारोह में विद्यारण्य मुनि ने दोनों भाइयों को विधिपूर्वक पुनः हिन्दुत्व प्रदान किया।

इन दोनों ने विद्यारण्य मुनि को अपना राज्यगुरु नियुक्त किया तथा बड़े भाई हरिहरराय का राज्याभिषेक समारोह भी मनाया गया। मुनि ने अनेक प्रकार से सूचना देकर राज्य व्यवस्था को प्राचीन भारत की सुवर्ण कालीन संस्कृति का प्रतीक राज्य बनाने की प्रेरणा दी। दोनों प्रतापी भाइयों को शासन करने का अनुभव तो था ही अतः राज्य को सुव्यवस्थित हिन्दू राष्ट्र बना दिया।

विद्यारण्य मुनि अब आवश्यकता पर ही राज्यकार्य में रस लेते थे, क्योंकि अब वे वेद पर भाष्य लिखना चाहते थे। भाष्य वे अपने नाम से नहीं बल्कि अपने अग्रज शंकराचार्य भारतीतीर्थ के नाम से लिखना चाहते थे। अतः उन्होंने अपने प्रेरणामूर्ति स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के आशीर्वाद हेतु एक पत्र लिखकर अपने एक शिष्य के साथ काशी भेजा। उसमें लिखा था :

"भगवन् ! आपकी प्रेरणा से वेद भाष्य का कार्य हो रहा है। वेद भाष्य करके यशस्वी बनने का लोभ भी संवरण हो गया है क्योंकि भाष्य अग्रज के नाम से ही लिख रहा हूँ। परन्तु वेद का भाष्य करना कोई सरल कार्य तो है नहीं, क्योंकि वेदों में ईश्वरीय वाक्य ही हैं। ईश्वरीय बुद्धि के बिना इन वाक्यों का मर्म समझना असम्भव है अतः हे स्वामीजी ! कृपया मुझे ईश्वरीय बुद्धि प्रदान करें ताकि यह दुस्तर कार्य सम्पन्न हो जाय।"

पत्र लेकर शिष्य काशी में श्रीमठ पहुँच गया। स्वामीजी ने पत्र पढ़कर प्रसन्नता व्यक्त की तथा शीघ्र ही उस पत्र का उत्तर दिया, जिसमें लिखा था :

"प्रिय विद्यारण्य मुनि ! सरस्वती की अपेक्षा से विकल मनोरथ होकर आपने जो हमारा स्मरण किया और समाचार भेजा वह आनन्दवर्द्धक हुआ। उच्च पद पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों को मर्यादा का उल्लंघन न करना ही स्वाभाविक है।

हे वत्स ! वास्तव में आपने शिवत्व प्राप्त कर लिया है। आराधना के उपरान्त जब शिवजी प्रसन्न होते हैं, तब भक्तों को श्रीराम भक्ति का वरदान देते हैं। अतः भाष्य लिखने से पूर्व चराचरविभु श्री राघवेन्द्र के बाल स्वरूप का ध्यान कीजिये, सरस्वती स्वतः प्रकट होती रहेंगी। सरस्वती के वरदान से आपकी अन्तरात्मा में ईश्वरीय बुद्धि का अभ्युदय होगा, जिससे वेद वाक्यों के मर्म सरलतापूर्वक समझ सकोगे।

हे मुनि ! अब ईश्वरीय बुद्धि के चिह्न भी जान लो। ईश्वरीय बुद्धि उत्पन्न होने पर द्वन्द्वातीत अवस्था की प्राप्ति होती है। उस अवस्था में सर्वत्र एकमात्र सत्ता दृष्टिगोचर होती है। परब्रह्म परमेश्वर श्री रामजी तथा जगतजननी श्री जानकीजी एकरूप भासित होते हैं। पुरुषोत्तम और प्रकृति एक ही है, ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्यक्ष अनुभव में आता है।

पुरुषोत्तम की महिमा प्रकृति की रचना से ही है। अपनी महिमा के विकास हेतु वे अनन्त रूप उत्पन्न करते हैं, जिससे भिन्न-भिन्न देह में वे एक और अद्वितीय आत्मा के रूप में वास करें तथा भिन्न-भिन्न रूप से बहुरूप तथा बहुचरित्र का उपयोग कर अपनी ही महिमा का विकास कर सकें।

एक और बहु---दोनों सत्य हैं। तत्वतः दोनों एक ही हैं। इसका तात्पर्य यह है कि दृष्टिगोचर सम्पूर्ण विभव, एक अद्वितीय भव ही है। भव एक है और विभव अनेक, क्योंकि वे ही अपनी महिमा के विकास में स्वयं उपस्थित होकर रमणक्रीड़ा कर रहे हैं।

परमात्मा की सृष्टि के सम्पूर्ण विकास और वैभव का परमोत्कृष्ट भोग तथा बहुरूप की सत्यता और अनन्तता का सच्चा आनन्दोपभोग अव्यक्त त्याग पर ही अवलम्बित है। जगत का त्याग नहीं, परन्तु उन इच्छाओं का त्याग, जो सच्चिदानन्द की वैकारिक विकृति है। अभिमान रहित होकर उस एक विभु में सबकी एकता का अनुभव करना ही अमृततत्व का उपभोग है।

इन विवेक चिह्नों की प्रत्यक्ष अनुभूति होते ही जान जाइयेगा कि देव दुर्लभ ईश्वरीय बुद्धि उत्पन्न हो गयी है। प्रिय वत्स ! ऐसा ही हो, यह हमारी परमात्मा से प्रार्थना है।"

पत्र लेकर शिष्य शीघ्र ही पुनः विद्यारण्य मुनि के पास लौट गया। विद्यारण्य मुनि ने इस आशीर्वचन को शिरोधार्य किया तथा वेद भाष्य लिखना आरम्भ किया।

काशी के स्वामीजी को अब कुछ लोग आचार्यश्री, कुछ लोग यतिराज, तो कुछ लोग जगद्गुरु के नाम से सन्मानित करके अपनी भावना एवं आदर प्रदर्शित करते थे। यद्यपि स्वामीजी इन सब बातों से बहुत ऊँचे उठ चुके थे, उनको इससे कोई तात्पर्य नहीं था। किन्तु समाज अपने आदरणीय को, अपने प्रणम्य को अपनी भावना के प्रदर्शन हेतु कोई-न-कोई नाम तो देता ही है।

(6)

मुस्लिमों के भारत आक्रमण से भारतीय संस्कृति का अरब राज्यों में भी प्रचार होता गया। अनेक संस्कृति तथा अध्यात्म प्रेमी मुस्लिम भारत आकर विश्व की प्राचीनतम सनातन संस्कृति का अध्ययन करने लगे थे।

अफगान देश का नामबर नाम का एक तरुण अमीर भी अपनी ज्ञान-पिपासा के सन्तोषार्थ भारत आया। स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी की ख्याति सुनकर काशी जाने का उसने निश्चय किया।

नामबर की आयु बहुत कम थी, उसके दाढ़ी-मूंछ भी नहीं थे। इस आयु में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे वैराग्य हो गया था। वह नित्य धरती पर सोता तथा जौ की ही रोटी खाता था।

सत्यवचनधारी उस तरुण की आँखें भी निर्विकारी थीं।

अफगानिस्तान से घोड़े पर सवार होकर वह आया। भारत में देववाणी संस्कृत ही आचार्यगण अधिक प्रयोग में लेते हैं, यह बात सुनकर मार्ग में संस्कृत का अध्ययन भी वह करता रहा।

नामबर जब काशी आश्रम में पहुँचा, तब प्रातःकालीन सत्संग समाप्त हो चुका था। सिद्ध-महात्मा द्वारा उपदिष्ट वचनामृत का मनन करते हुए लोग अपने-अपने कार्य में रत होने लगे थे। पूछते हुए नामबर स्वामीजी की कुटीर के पास गया। श्री अनन्तानन्दजी वहीं थे, उन्होंने अमीर से सर्व वृत्तान्त सुना। परन्तु आचार्यप्रवर के कई दिनों से बाहर नहीं आने से उन्होंने नामबर को कहा, "हे अमीर ! स्वामीजी के दर्शन तो आपको नहीं मिल सकते। परन्तु शंखध्वनि सुनकर परमार्थ की जिज्ञासा शांत कर सकते हो।"

नामबर ने सोचा, परमार्थ की जिज्ञासा से ही तो इतनी दूर से आया हूँ। इतना लाभ भी कुछ कम नहीं है। एक परदेशी दर्शनार्थी को देख गुफा के पास अन्य लोग भी एकत्र हो गये।

उसी समय गुफा से शंखनाद हुआ। सर्व श्रोताओं को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार बहुत कुछ लाभ मिला। अमीर उस आनन्द में इतना निमग्न हुआ कि एक प्रहर के उपरान्त ही वह वास्तविक दशा में आया।

श्री अनन्तानन्दजी ने उसे प्रसाद के लिए बुलाया। सायंकालीन सत्संग का समय जब हुआ तब वह पुनः आचार्यश्री की कुटीर के पास गया। उपस्थित लोग भी वहाँ पहुँच गये।

अमीर ने अभ्यास की हुई वाणी का आश्रय लेकर प्रातःकाल जिसका अनुभव किया, उस परमानन्द की यथाशक्ति महिमा गायी। तदनन्तर उसने बाहर ही से प्रश्न पूछा :

"हे स्वामीजी ! उस महबूब हकीकी (सच्चे प्रेमी) के साथ तन्मयता प्राप्त करने का सरल उपाय क्या है ?"

भीतर से ही स्वामीजी ने उत्तर दिया, "हे भाई ! उस सच्चे प्रेमी के साथ तन्मयता सच्चे प्रेम से ही हो सकती है। पृथ्वी पर प्रेम ही परमात्मा का निकटतम अनुभव है। सम्पूर्ण शान्ति, अपार शक्ति तथा परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण तथा सगुण स्वरूप का, और सत् तथा चिद् का मिलन प्रेम में ही है। उस सत्-चिद् आनन्द स्वरूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति प्रेम ही है। अतः उसके साथ तन्मयता प्राप्त करने उससे प्रेम करना ही सरलतम उपाय है।

प्रेम एक नशा है, उन्माद है, दिव्य रस है। उसका जो पान करता है, वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिवाना, मतवाला बन जाता है। संसार रूपी विषमय सागर से निकलकर अमृत-सागर में डूब जाता है। प्रेम को प्रेमी प्रेमास्पद ही जान सकते हैं, उसे शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है।

वस्तुओं को प्रेमरस में भिगोकर प्रेम को व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु वह पूर्ण रूप से सार्थक नहीं हो सकता। प्रेम को समझने के लिए प्रेम ही करना चाहिए। सर्वनियंता ईश्वर से ही प्रेम करना चाहिए। प्रेमी अपने प्रेमास्पद से प्रेम के सिवाय अगर कुछ आशा करता है, तो वह प्रेम नहीं व्यापार हो जाता है। प्रेमी तो सर्वस्व अर्पण कर देता है। अपने अहंकार को, अपने अस्तित्व को भी अर्पण कर देता है, शेष रहते हैं मात्र परमात्मा।

सांसारिक व्यवहार में भी जहाँ-जहाँ तन्मयता की आवश्यकता होती है वहाँ मनुष्य इसी उपाय का अनुशीलन करता है। अतएव यह उपाय सबको ज्ञात है, तथा सबको इसमें विश्वास भी है। प्रपंच के मूल स्वरूप कामिनी तथा कांचन में, तन्मयता की अद्भुत छटा का दर्शन सभी करते हैं।"

नामबर अपने प्रश्न का सरल सारगर्भित उत्तर सुनकर प्रसन्न हो गया। वह बोला :

"माशाअल्लाह ! आफरीन ! हे आचार्यजी ! अब मेहरबानी करके यह बताइये कि भगवत् के सम्बन्ध में, जीव और ईश सम्बन्ध स्थापित करने में इस सरल उपाय का अनुशीलन कहाँ-कहाँ हुआ है ?"

इस पर आचार्यप्रवर ने उत्तर दिया, "हे अमीर ! इस उपाय का अनुशीलन सर्वत्र हुआ है, क्योंकि दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। परन्तु भारतवर्ष में इसका प्रभाव अधिक है। यहाँ भक्ति के रूप में उसका पूर्ण विकास हुआ है।"

अमीर समुचित उत्तर सुनकर आनन्दित हो गया। उसने भारत में ही बसने का निश्चय कर लिया। आश्रम में कुछ दिन रुकने की इच्छा से उसने पूछा, "हे महाराज ! आपकी छत्रछाया में कुछ दिन रहकर सत्संग लाभ ले सकता हूँ ?"

स्वामीजी ने कहा, "अवश्य, वत्स !"

नामबर कृतार्थ हो गया। वह कुछ दिन आश्रम में ही रुका। नित्य सत्संग लाभ लेने लगा। इसी बीच भाग्यवश उसे दर्शनलाभ भी मिला। अपना जीवन धन्य मानते हुए तदनन्तर उसने काशी में ही स्थायी होने का निर्णय कर लिया।

(7)

गुजरात के सिद्धपुर क्षेत्र में श्री मणिशंकर शास्त्री नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण के घर वैशाख सुदी नवमी को एक दिव्य बालक का जन्म हुआ था। बालक बचपन से ही शान्त, सरल तथा विद्या प्रेमी था। उसका नाम 'यज्ञेश' रखा गया। सांख्ययोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आचार्य कपिलजी के अंशावतार को विद्याध्ययन कराया गया। बालक की विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित लोगों ने उसे काशी विशिष्टाध्ययन के लिए भेजा।

यज्ञेश की योग्यता पर मुग्ध काशी के एक ब्राह्मण ने अपनी सुशील कन्या का उनसे विवाह किया और अपनी सर्व सम्पत्ति यज्ञेश को दे दी। यज्ञेश काशी के बाँसवाड़ा क्षेत्र में आकर रहने लगे। यहाँ भी यज्ञेशदत्त के नाम से प्रसिद्ध हुए। न्यायशास्त्र में उनका सामना कोई नहीं कर सकता था। उनकी जिह्वा पर सरस्वती नित्य क्रीड़ा करतीं तथा हृदय में सदैव पार्वती-शंकर की झाँकी सुशोभित रहती थी। योग साधना भी करते थे तथा कई सिद्धियाँ भी उन्हें उपलब्ध थीं।

लक्ष्मीजी की भी उन पर सदैव कृपा रहती थी। वे उदार हृदय थे। ब्राह्मण एवं साधुओं की नित्य सेवा करते थे। संसार में रहते हुए सर्व प्रकार से अनासक्त पण्डित को मात्र अपनी स्त्री में ही आसक्ति थी। उनकी स्त्री भी बहुत धार्मिक एवं पतिव्रता थी।

पण्डित यज्ञेशदत्त नित्य सिद्धासन पर बैठ शौच के लिए गंगापार जाया करते थे। एक दिन प्रातःकाल गंगापार जाते हुए विनोद में अपनी स्त्री से बोले :

"प्रिये ! गंगापार जा रहा हूँ, लौटकर नहीं आऊँगा।" पत्नी भी हँस दी, क्योंकि वह जानती थी कि पण्डित मात्र विनोद कर रहे हैं।

उस दिन गंगापार जाकर विप्र का मिलन एक सिद्ध सन्त से हो गया। ज्ञानी से मिलने पर ज्ञान चर्चा में ही पण्डित का सारा दिन व्यतीत हो गया।

जब समय का ज्ञान हुआ तब सायंकाल हो चुका था। अतः शीघ्र घर पहुँचे। इधर पति के आने में इतना विलम्ब हुआ देख पतिव्रता स्त्री को विनोद में कहे शब्द सत्य भासित हुए। बेचारी स्त्री प्रतीक्षा करते-करते थक गयी तथा पति के वचन को सत्य मानकर उसने प्राण त्याग दिये।

घर पहुँचते ही घर में अधिक व्यक्तियों की उपस्थिति देख पण्डित शंकातुर हुए। घर में प्रिय पत्नी का मृत देह देखा। सुबह किया हुआ विनोद जब याद आया तब अपने किये पर उन्हें बहुत पछतावा हुआ। विनोद में भी कभी असत्य भाषण नहीं करना चाहिए यह उन्हें भान हुआ। अत्यन्त भारी हृदय से प्राणप्रिय पत्नी का अन्त्येष्ठि संस्कार सम्पन्न किया।

अब पण्डितजी धैर्य तथा संयम खो बैठे। प्रिया का वियोग उन्हें असह्य हो गया। संसार असत्य भासित होने लगा। उनके हृदय में अपूर्व वैराग्य उत्पन्न हो गया। लोगों ने बहुत समझाया पर उन्होंने सर्व सांसारिक कार्यों से निवृत्ति ले ली। अपने इष्ट श्रीशंकर के ध्यान में वे तल्लीन हो गये।

कुछ ही समय में पण्डितजी का मन एकाग्र होने लगा। ध्यान में उन्हें अपने इष्ट भवानीशंकर के दर्शन हुए। अपनी प्राणप्रिया पत्नी को भी उन्होंने वहीं देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूतभावन भोलेनाथ ने पण्डितजी को आदेश दिया, "हे विप्र ! तुम स्वामी श्री रामानन्दजी की शरण में जाकर अपना जीवन कृतार्थ करो। मेरी भक्ति का यही फल है।"

इष्टदेव की आज्ञा प्राप्त होते ही पण्डित यज्ञेशदत्त तुरन्त आश्रम पहुँच गये। पहले भी कभी-कभी सत्संग के लिए वे आते थे। प्रात:काल का समय था अत: वे सीधे ही स्वामीजी की गुफा के पास पहुँच गये।

श्री अनन्तानन्दजी वहीं उपस्थित थे। पण्डितजी ने सर्व वृत्तान्त उनसे निवेदन किया। जब आचार्यश्री ने यह बात जानी तब उन्होंने विप्र को भीतर से ही आज्ञा दी, "वत्स ! सौ घड़ी एक ही पैर से खड़े रहना। देखो, पैर कांपने न पाये।"

पण्डित ने तुरन्त श्रीआज्ञा शिरोधार्य की। कई दिन से निराहारी रहने के उपरान्त बहुत देर एक ही पैर से खड़े रहे। परन्तु एक बार उनका पैर कांप गया। वे गिरने ही जा रहे थे कि श्री अनन्तानन्दजी ने उन्हें सम्भाल लिया।

सौ घड़ी पूर्ण करने के उपरान्त वे स्वामीजी के दर्शनार्थ गये। दिव्य दर्शन का अलौकिक आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ। पण्डित ने पैर कांपने का हाल नहीं छिपाया। अन्य सिद्ध सन्तों ने भी पण्डितजी की साक्षी दी।

स्वामीजी विप्र के सत्य वचन से सन्तुष्ट हुए। कपिल मुनि के अंशरूप विप्र को वे प्रथम से ही पहचान गये थे। उन्होंने कहा :

"हे पण्डित ! जिसने तुम्हें गिरते हुए सम्भाला है, उन्हीं को तुम प्रथम गुरु मानना। भगवान गौरीशंकर की आज्ञा एवं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण की जायेगी।"

तदनन्तर शुभ दिन देखकर पण्डित यज्ञेशदत्त को श्री वैष्णवी विरक्त दीक्षा प्रदान की गयी। उनका दीक्षांतर नाम 'योगानन्द' रखा गया। दीक्षा के समय पक्षियों का एक समूह विचित्र पुष्प चोंच में लिए आया तथा नवीन संन्यासी के सिर पर पुष्प वर्षा करके चला गया। उन्होंने कपिल मुनि का संन्यासी के रूप में स्वागत किया।

योगानन्दजी स्वामीजी के द्वादश महाभागवत् सिद्ध शिष्यों में से एक थे।

(8)

दोपहर का समय था। आश्रम में सन्त-महात्मा तथा भक्तों की पंगत लगी हुई थी। भोजन-प्रसादी पाकर सब उठ रहे थे कि उसी समय एक मुस्लिम कन्या आश्रम पर आयी। स्वामीजी अपनी गुफा में थे तथा परदा बन्द था। अनन्तानन्दजी कुटीर के पास बैठे हुए थे।

कन्या सीधी आचार्यश्री की कुटीर के पास पहुँची तथा बाहर ही से बोली,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"जो जानते हैं वे बोलते नहीं तथा जो बोलते हैं वो जानते नहीं।" इस वाक्य को दोहराया तथा लौटकर वह जाने लगी। परन्तु वहाँ उपस्थित सज्जनों ने उसे बुलाया। बुलाने पर वह आयी तथा स्वाभाविक शालीनता के साथ नमन करके बैठ गयी। लोगों ने उससे कई प्रश्न किये, परन्तु किसी के प्रश्न का उत्तर न देते हुए लोगों को वह विचित्र दृष्टि से देखने लगी, जिससे प्रश्नकर्ताओं के मुँह बन्द हो गये।

कुछ देर बाद अनन्तानन्दजी के कहने से वह कन्या कुटीर के पास गयी तथा बोली, "हे अल्लाह के फरिश्ते! मैं रसूल की कन्या फातिमा हूँ, तथा मेरे गुरु मौलाना जुनैद बगदादी की प्रेरणा से यहाँ आयी हूँ। वे पश्चिम-देश बगदाद में जंगल में रहते हैं तथा मन-वचत-कर्म से खुदा की इबादत करते हैं। मुसलमान धर्म की माता उनकी आराध्य देवी है। मौलाना बगदादी मतमतान्तरों के फेर में पड़ना नहीं जानते, चमत्कारों में उनका विश्वास नहीं है। वे तो परमार्थ को पहचानने वाली नूरानी ज्योति चाहते हैं। अतएव आपके पैरों की धूल को अपनी आँखों का सुरमा बनाना चाहते हैं।

उनके इस सन्देश को सौभाग्यसूचक समझ दर्शन लोभ से इस वेश में मैं यहाँ आयी हूँ। मुझ पर भी मेहरबानी कीजिये तथा मेरे यासीन पर भी नेक नजर कीजिये।"

स्वामीजी ने कृपापूर्वक परदा खोल दिया। फातिमा को अलौकिक दर्शन हुए। परम आनन्द में निमग्न फातिमा ने दर्शन लाभ से कुछ दिन आश्रम में रुकने की इजाजत माँगी। जगद्गुरु ने कृपापूर्वक स्वीकृति दी तथा अनन्तानन्दजी ने उसकी व्यवस्था की। फातिमा ने कुछ दिन सत्संग लाभ लिया। जब वह पुनः लौटने को तैयार हुई तथा स्वामीजी से अलविदा कहने गयी, तब जगद्गुरुश्री ने यासीन को वहीं दर्शन देने का वचन देकर उस देवी को विदा किया।

(9)

काशी के गरीब जुलाहे नीरू-नीमा के पास कबीर बड़े होते गये। कर्माबाई के साथ कई बार आश्रम में सत्संग के लिए आते थे। साधु-संग से रामनाम में उनकी निष्ठा सुदृढ़ हो गयी थी। परमात्म पथ पर बढ़ने के लिए वे भी सद्गुरुदेव की शरण लेना चाहते थे। मन-ही-मन उन्होंने श्री रामानन्दाचार्यजी को अपने गुरुदेव के रूप में स्वीकार कर लिया था। अन्य शिष्यों की तरह वे भी चाहते थे कि श्री सद्गुरुदेव से उन्हें प्रत्यक्ष दीक्षा मिले। परन्तु एक मुस्लिम जुलाहे को हिन्दुओं के सर्वोच्च जगद्गुरु कभी स्वीकार नहीं कर सकेंगे, ऐसा वे मानते थे।

जब उनकी इच्छा चरम सीमा पर पहुँची तो उन्होंने एक उपाय सोचा। वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानते थे कि स्वामीजी नित्य ब्रह्ममुहूर्त में पंचगंगाघाट पर स्नानार्थ जाते हैं। उन्होंने सोचा था कि अँधेरे में भूल से भी सद्गुरुदेव का स्पर्श हो जाय तो उनका जीवन धन्य बन जायेगा। यही एकमात्र उपाय था।

एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में अँधेरे में जाकर पंचगंगाघाट की सीढ़ियों पर बैठ गये। समय होने पर जगद्गुरु स्नानार्थ आये। अँधेरे में उनका पैर कबीर को लग गया। उनको ध्यान आया कि कोई व्यक्ति वहाँ बैठा हुआ है। मुख से सहज ही निकल गया, "श्रीराम···! राम-राम कहो भाई!" कहते हुए वे सीढ़ियाँ उतरकर स्नान करने के लिए चले गये।

कबीर की अभिलाषा पूर्ण हुई। इष्ट सद्गुरुदेव का स्पर्श होते ही सुधबुध गँवा बैठे, नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी, रोम-रोम पुलकित हुआ। वहाँ से उठकर जाने की सुधि भी उनमें न रही।

स्नानादि से निवृत्त होकर स्वामीजी पुनः आये तब उन्होंने मुस्लिम जुलाहे कबीर को भाव में अश्रु बहाते देखा। प्रह्लाद के अंश रूप होने से प्रथम से ही कबीर को वे जानते थे। परन्तु लोकमर्यादा निभाते हुए करुणानिधान ने रुदन का कारण जानना चाहा।

तब कबीर ने सर्व वृत्तान्त निवेदन करके दीक्षा लेने की अपनी इच्छा व्यक्त की। असम्भव इच्छा को पूर्ण करने के लिए की हुई धृष्टता के लिए उसने क्षमा माँगी। परन्तु जगद्गुरु ने सत्पात्र जानकर स्नेहपूर्ण स्वर से कबीर की इच्छा पूर्ण करने सविधि दीक्षा देना स्वीकार किया।

कबीर की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसे त्रिलोक का साम्राज्य मिल गया। माता-पिता ने भी कबीर की इच्छा स्वीकार की। जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने शुभ दिन देखकर कबीर को श्रीराम मन्त्र की वैष्णवी दीक्षा प्रदान की। कण्ठी, माला, तिलक तथा छाप धारण कराये गये। कबीर का जीवन धन्य बन गया।

आनन्द के अतिरेक में कबीर वैष्णवी चिह्नों को धारण करके काशी के राजमार्गों पर घूमने लगा। तत्कालीन रूढ़िग्रस्त पण्डित एवं समाज के लिए यह बात सनातन धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन थी। एक विधर्मी मुस्लिम जुलाहा वैष्णवों के परम आदरणीय चिह्न किस प्रकार धारण कर सकता है? उन्होंने कबीर को डाँटकर इन चिह्नों को छोड़ देने का आदेश दिया। परन्तु कबीर ने जब बताया कि यह चिह्न तो उसे श्री सद्गुरुदेव ने धारण कराये हैं तथा वह जगद्गुरु श्री रामानन्दजी का शिष्य है, तब पण्डितों पर वज्रपात हुआ। वे आपस में चर्चा करने लगे कि यह तो बहुत बड़ा अनर्थ हो गया।

जब अन्दर-अन्दर आक्रोश बहुत बढ़ गया, तब कुछ प्रतिष्ठित पण्डित स्वामीजी से मिलने आये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्यश्री की कुटीर का परदा बन्द था। श्री अनन्तानन्दजी बैठे हुए थे। पण्डितों ने उनके कहने पर बाहर ही से जगद्गुरुश्री को कहा :

"हे स्वामीजी ! मुस्लिम जुलाहे कबीर ने कण्ठी, माला, तिलक और छाप धारण किया है। वह कहता है कि वो आपका शिष्य है। क्या यह सच है ? यदि ऐसा है तो बहुत अनर्थ हो गया।"

भीतर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। परन्तु दिव्य शंखध्वनि गूंज उठी। वह नाद कानों में पहुंचते ही पण्डितों के अन्तःकरण की द्वेष रूपी आग बुझ गयी। उनका आक्रोश शान्त हो गया। पूर्वाग्रहों से मुक्त करके जगद्गुरु भीतर ही से बोले :

"हे पण्डितो ! आपने जो सुना है वह सत्य है। कबीर को हमने शिष्य रूप में स्वीकार किया है। क्योंकि भगवान सबके हैं तथा उनकी शरण में जाने का सबको समान अधिकार है। अगर कोई भगवान की शरणागति स्वीकार करता है तो भगवान अपनी कृपा से उसे क्यों वंचित रखेंगे ? परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। वे मानव मात्र के हैं, उन्हें सीमित दायरे में बांधना उचित नहीं है।

सम्पूर्ण विश्व परिवार परमात्मा का ही अंश है। प्राणी मात्र में जो चैतन्य रम रहा है, वही श्रीराम है। प्राणी मात्र को श्री रामजी से अर्थात् अपने आत्मा से प्रेम होना स्वाभाविक ही है। उसका यह अधिकार भी है। इसीलिए हे विप्रगण ! श्रीराम भक्ति से किसी को वंचित रखना महापाप है। कबीर भले मुस्लिम जुलाहा है, परन्तु उसका हृदय श्रीराममय है, यही उसकी दीक्षा के लिए पर्याप्त योग्यता है।"

उसी समय कबीर भी वहाँ आ पहुँचे। सद्गुरुदेव की प्राप्ति के बाद उनके मुख पर अनुपम प्रकाश छाया हुआ था। पण्डितगण कबीर से प्रभावित हो गये तथा अपनी क्षुद्रता से संकुचित भी हुए। स्वामीजी ने उसी समय कृपा करके परदा खोल दिया।

अलौकिक दिव्य दर्शन से पण्डितों के अन्तःकरण पवित्र और प्रकाशित हो गये। उन्होंने सोचा कि जो दिव्या से उत्पन्न हुआ और ब्रह्माजी का दूध पीकर बड़ा हुआ, हुसैनवंशी माता द्वारा सात्विक भोजन से पला तथा तकी के प्याले को अनिच्छापूर्वक लौटा दिया, उसे मात्र वस्त्र व्यवसाय तथा विधर्मी होने के कारण हेय दृष्टि से देखना मिथ्या अभिमान का ही काम है। कबीर ने शैशव अवस्था में ही अपने माता-पिता का परिचय दे दिया था, अतः उसे मोक्षमार्गीय दीक्षा से वंचित रखना किसी भी जगद्गुरु के लिए उचित कार्य नहीं है। स्वामीजी ने दीक्षा देकर उचित ही किया है।

विद्वानों के अन्तःकरण में जैसे ही यह बातें स्फुटित होने लगीं, उन्हें लगा कि व्यर्थ ही हमने महात्मा को कष्ट दिया है। वे लज्जित हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाथ जोड़ते हुए वे बोले, "हे जगद्गुरु ! हमें क्षमा कीजिये। असंयत बुद्धि के कारण हमारे मन में विकार उत्पन्न हो गया था। उससे उत्तेजित होकर हम सब यहाँ चले आये, परन्तु यहाँ की सात्विकता ने, राम नाम की रटन-क्रीड़ा ने हमारी व्यवसायिनी बुद्धि को ठिकाने लगा दिया है। हे महामुनि ! अब हमारे हृदय में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है, और न ही हिन्दू-मुसलमान होने का सन्देह ! अतएव हम सब आपसे क्षमायाचना करते हैं।"

पण्डितों में से कुछ पुनः काशी लौट गये तथा कुछ सत्संग का समय होने से वहीं रुके।

(10)

एक दिन किसी व्रतोत्सव निमित स्वामी श्री रामानन्दजी सूर्योदय के उपरान्त गंगास्नान करने पधारे। उस दिन स्नान करते हुए ध्यान में उन्हें बारम्बार एक व्याकुल व्यक्ति राम नाम की रट लगाते हुए दिखायी दिया।

स्नान के पश्चात् कुछ निर्णय करके स्वामीजी अपनी गुफा की ओर न जाते हुए काशी की ओर निकले। काशी नगरी के एक कोने में चमारगली थी। स्वामीजी सीधे चमारगली पहुँच गये। गरीब तथा पतित लोगों के बीच पधारने वाले ये प्रथम महात्मा थे। वहाँ के लोग धन्य-धन्य हो गये। स्वामीजी के पीछे-पीछे एक जन-समूह चलने लगा।

स्वामीजी एक निर्धन पुराने घर के पास रुक गये। कुछ व्यक्ति दौड़कर घर में गये तथा गृहस्वामी को खींचकर बाहर ले आये। वह था भाजन चमार। सीधा ही वह स्वामीजी के श्रीचरणों में गिर गया तथा फूट-फूटकर रोने लगा। वह बोला :

'हे भगवन् ! आपने इस चमार के लिए इतना कष्ट उठाया? मैं नित्य आश्रम में सत्संग में आता हूँ, नित्य आपके आदेशानुसार श्रीराम नाम का जप करता हूँ। किन्तु आज प्रातःकाल से ही मेरा मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा था। मैं बार-बार यही सोचकर रोता रहा कि मेरे प्रभु मुझ निर्धन के घर क्यों नहीं पधार सकते? अरे-रे···धिक्कार है मुझे। मैंने आपको कितना कष्ट दिया? मुझे क्षमा कर दो प्रभु !"

स्वामीजी का गौर तेजस्वी बदन करुणा एवं प्रेमरस से प्रदीप्त हो उठा। वे सस्मित बोले, "हे भाजन ! आज सूर्य नारायण को अर्घ्य देते समय हमें उनकी ज्योति के दर्शन हुए, परन्तु वही ज्योति तुम्हारे ललाट पर दिखायी देती है। अब हमारा स्नान पूर्ण हुआ।" कहते हुए स्वामीजी ने भाजन चमार को हृदय से लगा लिया।

चमारगली में तो मानो उत्सव छा गया। कोई कुछ लाता तो कोई कुछ। वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझ नहीं पाये कि इतने बड़े महात्मा का सत्कार कैसे किया जाय। जिसकी बुद्धि में जो आया, उसने वही किया तथा स्वामीजी ने सबके प्रेमभाव को प्रसन्नता से स्वीकार किया।

कुछ देर रुककर वे पुनः आश्रम की ओर चले गये। इस प्रकार अपने व्यवहार एवं उपदेश से आचार्यश्री ने छुआछूत दूर करके, ऊँच-नीच का भेद मिटाकर सब भगवत्-भक्तों को एक स्तर पर लाकर खड़ा किया।

(11)

एक दिन आचार्यप्रवर अपनी गुफा में नित्य नियम कर रहे थे। अचानक अन्तर्दृष्टि से उन्होंने देखा कि एक प्रेतात्मा आश्रम के चक्कर लगा रही है। ध्यान में पता चला कि वह उनको मिलना चाहती है, परन्तु आश्रम के पवित्र एवं सात्विक क्षेत्र में बिना आज्ञा प्रवेश करने में असमर्थ है। करुणानिधान को करुणा आ गयी।

अपना नियम पूरा करके उन्होंने प्रेतात्मा को बुलाया तथा आश्रम के चक्कर लगाने का कारण पूछा। प्रेतात्मा ने कहा, "हे पतितपावक ! मैं पूर्वजन्म का एशीमत का साधु अन्तोलिकी हूँ। भगवान के बालरूप का उपासक हूँ। पूर्वजीवन में एकान्त में रहकर भजन करता तथा इष्ट देवता को प्रत्यक्ष करके गोद में विराजमान करता था।

एक बार भ्रमण के लिए निकला परन्तु रास्ते में ही अस्वस्थ हो गया। शरीर की पीड़ा बढ़ने से गाड़ी में लादकर कुटीर में लाया गया। अत्यन्त पीड़ा के कारण जनलोकस्थ स्वामी के चिन्तन बिना ही देहान्त हो गया। तब से कष्टदायक प्रेत-योनि में घूम रहा हूँ। कहीं भी शान्ति न मिलने पर हिमालय की पवित्र कंदराओं में घूमता रहा।

वहाँ भाग्यवश महात्मा श्री रुकमांगदजी के दर्शन से कृतार्थ हुआ। मेरी दीन दशा पर दया करके उन्होंने मुझ सोते हुए को जगाया। प्रेत की हीन गति का भान कराया, और उद्धार के लिए आपकी सेवा में भेज दिया। हे कृपानिधान ! मुझ पर कृपा कीजिये तथा प्रेत योनि के दारुण कष्ट से छुड़ाकर मेरा उद्धार कीजिये, मैं आपकी शरण में हूँ।"

महाप्रभु के तेजस्वी मुखमण्डल पर करुणा छा गयी। प्रेमाद्र वाणी से उन्होंने कहा, "हे वत्स ! पूर्वकाल में कुछ समय के लिए भी तुमने भगवान की सेवा की थी। उसके फलस्वरूप ही तुम्हें श्री रुकमांगदजी के दर्शन हुए हैं। अतः अब चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

सन्तमिलन ही एकमात्र भगवत्कृपा की सूचना है, क्योंकि सन्तसमागम का फल तत्काल प्राप्त होता है। सन्त ही मोहनिन्द्रा से जगाते हुए नित्य कहते हैं कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत्-चरण से विमुख जीव को इहलोक तथा परलोक में नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। इसीलिए जीव को सदैव भगवत् आराधना करनी चाहिए। जिसने जीवन पर्यन्त प्रभुस्मरण नहीं किया है, वे सामान्यतः अन्त समय प्रभुचिन्तन नहीं कर सकते। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः॥

अन्तकाल में जीव जिसका स्मरण करता हुआ शरीरत्याग करता है, वही उसकी गति होती है।

वत्स ! सन्तों की वाणी से मोहनिद्रा छूटती है। संसारी जीव सत्संग से तामसी वृत्तियों को छोड़ अनायास ही सात्विक ज्योति प्रकाश में प्रवेश पाता है। घोड़े और हाथी पर चढ़कर स्वर्ग जाने वाले बहुत हुए। रथ पर चढ़कर केवल धर्मराज ही गये, परन्तु भूमाप्रकाश के राज में जाने वालों ने हजारों वर्ष मार्ग में ही गँवा दिये। प्राणोपलक्षी जीव ही भूमा है। निम्न वृत्तियों के आधीन जीव को अपने गम्य स्थान का भी पता नहीं है, तथा वे यह भी नहीं जानते कि वे कहाँ अवस्थित हैं। यह तो सन्तमिलन की महिमा है जो जीव को उसकी सच्ची दशा का भान कराते हैं।"

इस मार्मिक उपदेश के बाद स्वामीजी ने मार्जन का पवित्र जल छिड़का। जल के छींटे प्रेत के शिर पर पड़ते ही तत्क्षण अधोगति रूपी कष्टकूप से वह बाहर आया, प्रेत योनि से उद्धार हुआ। स्वामीजी के सुयश का गान गाता हुआ वह सिद्ध लोक को चला गया।

(12)

सत्संग पिपासुओं की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। आचार्यप्रवर के शब्दों से प्रेम-सत्संग का नशा-सा छा गया था काशीवासियों में। समय के पूर्व ही लोग एकत्रित होकर नित्य धुन-भजन-कीर्तन शुरू कर दिया करते थे। सत्संग समाप्त होते ही पुनः भजनों की तथा परस्पर चर्चा की रंगत जमती रही।

एक दिन सत्संग की समाप्ति पर महामुनि ने अपने प्रिय शिष्य कबीरदास एवं रैदास से मिलने की इच्छा प्रकट की। अनन्तानन्दजी ने दोनों को यतिराज की गुफा में भेजा।

कबीरदास एवं रैदास के नेत्र आनन्दाश्रु से पूरित हो गये। कुटीर में जाकर अपने आराध्य देव को प्रणिपात किया। वे जानते थे कि निम्न कुल में उत्पन्न दोनों को शिष्यत्व का सन्मान प्रदान करने का औदार्य उन महिमामय के सिवा और कौन कर सकता था ? कुछ क्षण वे सद्गुरुदेव के अमित प्रतिभासम्पन्न तेजस्वी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौर मुखारविन्द को देखते रहे। तेजोदीप्त भालप्रदेश, सुन्दर मनोहर जटाकलाप, अरुणाभ कमलदल विशाल दृग, रोम-रोम से जैसे प्रेम तथा करुणा का निर्झर बह रहा था। उसी प्रेम के निर्झर में वे मौन भावधारा में बहते गये।

आचार्यश्री ने अभिवादन के अनन्तर स्नेहसिक्त स्वरों में कहा, "प्रिय शिष्यो ! परमात्मा की प्राप्ति का अधिकार जीवमात्र को जन्म से ही होता है। वर्ण-व्यवस्था के दुरुपयोग से उत्पन्न ऊँच-नीच की भेद रेखा के कारण कुछ लोगों ने इस अधिकार को मर्यादित करने की चेष्टा की है। क्योंकि वे अभिमानी हैं। अभिमान ही जीव को परमात्मा से विमुख करता है।

परन्तु इस युग में, पहले के अनधिकारी ही वास्तविक अधिकारी हैं।

सन्तों ने इसीलिए कर्मभूमि में शान्तिपूर्वक भजन करने के लिए निम्न श्रेणी के मनुष्यों के यहाँ जन्म लेना उचित समझा है। हम देखते हैं कि निम्नकोटि की प्रजा में, सामान्य वृत्ति में सन्तजन स्थित हैं। उनकी आध्यात्मिक ज्ञान-पिपासा शान्त करने को उन्हें गुरुतत्व की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके अभाव में और कोई साधन न होने पर 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' की वृत्ति उनमें कैसे और कब तक टिक सकती है ? क्योंकि कुलीनों के गुरुओं के पास जाने की उनमें हिम्मत नहीं है तथा समाज से डरे हुए गुरु उन्हें उपदेश दे नहीं सकते।

हम चाहते हैं कि उन प्राणियों के लिए ऐसा सुगम पन्थ हो, जो उन्हें सरलता से परमात्मा के दिव्य धाम तक पहुँचा सके। उन्हें ऐसा वास्तविक आधार मिलना चाहिए, जिससे उनका कल्याण हो। उनकी आँखें खुलें तथा वे स्वयं परमार्थ पथ को देख सकें। यह कार्य आप दोनों को करना है। इसका सरलतम मार्ग हम बताते हैं।

आपको नाम-साधना के साथ सुरती शब्द 'श्रीराम' नाम का योगसाधन समाज में प्रचलित करना होगा। वैसे तो चारों युग में नाम-साधना का अमित प्रभाव देखा जाता है, परन्तु कलिकाल में 'नाम-साधना' के साथ सुरती शब्द श्रेष्ठ साधन है। एकमात्र नाम ही इस भीषण कलि में निःश्रेयस प्राप्ति का सर्वसुलभ एवं सरल सर्वोत्तम तथा सर्वथा उपयुक्त साधन है। क्योंकि सगुणोपासना अत्यन्त भावुक एवं सरस हृदय वाले हरिभक्त ही कर सकते हैं तथा निर्गुण तत्व का विवेक सामान्य जनसमूह की समझ से बाहर है, परन्तु 'सुरती' शब्द की साधना का बीच का मार्ग भगवान के सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपों का बोध कराने वाला है। इसके लिए यदि साधना में अवरोध वृत्ति बनी रहे तो गुरुमूर्ति का ध्यान प्रत्यक्ष प्रतीक का कार्य करेगा।"

स्तब्ध हो गये दोनों। कैसा अकल्पित आदेश दे रहे थे उनके आराध्य। गगन-गम्भीर स्वर पुन. गूंजा :

"भक्तिमान पुरुषों को लोकसंग्रह का पुण्य कार्य अवश्य करना चाहिए। अतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिय वत्स ! लोकसंग्रह के इस पवित्र कार्य में निवृत्त हो जाइये। यह भी भगवान का ही कार्य है। प्रवृत्ति अगर भगवत् धर्म से ओतप्रोत हो, तो सहज ही कल्याण-कारी बन जाती है। अतः पारिवारिक व्यवसाय के साथ-साथ भगवत् नाम का प्रचार करो तथा लोगों में आदर्श दृष्टान्त प्रस्थापित करो।

हे प्रेमियो ! विश्वजगत के इस विशाल क्षेत्र में हम क्या प्रवृत्ति करते हैं उसकी अगत्यता नहीं है परन्तु महत्व उस प्रवृत्ति के प्रति हमारा दृष्टिकोण तथा दक्षता के साथ हमारी वृत्ति और ध्येय का है। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति मात्र भगवान की ओर होनी चाहिए।

संस्कृत भाषा का प्रचलन अब जनसमूह के बीच क्षीण हो गया है। अतः लोक-भाषा हिन्दी में ही लोगों की आध्यात्मिक जिज्ञासा की तृप्ति हेतु परमात्मपरक पदों की रचना करने का समय अब आ चुका है। अतः संगीतमय गान से लोक-जागृति तथा संस्कृति के रक्षण का कार्य शुरू करो।"

कण्ठ गद्‌गद् हो गया दोनों का। स्वर अवरुद्ध हो गया। स्वेदाम्बुपुर तन, साश्रु नयन, पुनः-पुनः श्रीचरणों में प्रणत होते रहे वे। निम्न जाति के निम्न लोगों को महाप्रभु ने यह कैसा दायित्व दे दिया ? गुरु भगवान के आशीर्वाद की अपेक्षा से दोनों नतमस्तक हो गये।

जब इस बात को अनन्तानन्दजी सहित अन्य गुरु बन्धुओं ने सुना वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सदैव प्रोत्साहित करते रहे वे दोनों को। कबीरदास तथा रैदास सत्संग में सुनी हुई, मन में स्फुरित होती बातों को पद रचकर भजन के रूप में गाने लगे। समाज में प्रचलित दंभी रीति-रिवाजों का विरोध भी वे करने लगे। सद्‌गुरुदेव का आशीर्वाद तो साथ ही था अतः उन्हें इस कार्य में अधिक कठिनाई न हुई। आश्रम में उनकी उपस्थिति पर सत्संग के पूर्व या पश्चात् उनके भजन सुनने का नियम-सा बन गया।

जगद्‌गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने इस प्रकार समाज के दीन-हीन तथा तिरस्कृत वर्ग के लोगों को प्रेरणा देकर ऐसे उच्च स्थान पर पहुँचाया कि समाज के माननीय मार्गदर्शक बने। दोनों महाभागवन्तों ने महाप्रभु की शिक्षा शिरोधार्य करके भक्तिरस की—भजन की ऐसी गंगा बहाई जिससे अनेक जिज्ञासु एवं पिपासुओं को तृप्ति मिली। इससे धर्मपरिवर्तन रुक गया तथा त्रयी धर्म से तिरस्कृत, सब तरह से दीन, हीन तथा खिन्न प्राणियों को अविचल आधार मिला।

कई वर्ष व्यतीत होने पर कबीरदास एवं रैदास के दोहे एवं भजन आश्रम के उपरान्त काशी तथा अन्य नगरों में भी लोकप्रिय होने लगे। गुरुआज्ञा से दोनों ने पृथक्-पृथक् पंथ भी प्रस्थापित किये जो कबीर पंथ एवं रैदास पंथ के नाम से प्रख्यात हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5. प्रवर्त्तन

जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी का शरीर अब अत्यन्त वृद्ध हो गया था। वे निजआश्रम छोड़ भगवान काशीविश्वनाथ की शरण में काशी, पंचगंगाघाट पर ही आकर बस गये थे। स्वामी रामानन्दजी अत्यन्त प्रसन्न थे। अपनी साधना के साथ-साथ स्वामीजी अपने श्री सद्गुरुदेव की श्रद्धाभक्तिपूर्वक सेवा करने का सौभाग्य ले रहे थे। इस आश्रम को अब 'श्री मठ' अथवा 'श्री वैष्णव मठ' के नाम से भी लोग पहचानने लगे थे।

संवत् 1396 में जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी का साकेतवास हुआ। जगद्गुरु कृत श्रीरामधुन निरन्तर चलती रही :

"रघुपति राघव राजा राम
पतित पावन सीता राम।"

स्वामी श्री रामानन्दजी ने उनकी पुण्यस्मृति में श्रीमठ की ओर से अनेक गरीब, असहाय, दुःखी और असमर्थों को सहायता देना शुरू किया। छात्रों के लिए विद्यापीठ भी खोली गयी जहाँ हजारों विद्यार्थियों को अन्न, पालन, वस्त्र एवं विद्यादान नि शुल्क मिलने लगा। आश्रम में नियमित रूप से सत्संग होने लगा।

एक वर्ष पश्चात् संवत् 1397 में जगद्गुरुश्री की पुण्यतिथि पर स्वामी श्री रामानन्दजी ने एक विशाल शम्भुभोज का आयोजन किया। सर्व सम्प्रदाय के सन्त-महात्माओं को भोज में आमन्त्रित करके एकता लाने का कार्य सर्वप्रथम इस प्रकार हुआ। साम्प्रदायिक मतभेदों को दूर करके आग्रहपूर्वक सभी सन्त-महन्तों को एवं विद्वानों को आमन्त्रित किया गया।

भारत में इस समय अनेक सम्प्रदाय अस्तित्व में थे। वैष्णव, शैव, शाक्त, लिंगायत के साथ-साथ वाममार्गी कापालिकों का भी समाज पर प्रभुत्व था। प्राचीन समय से सनातन संस्कृति ने अनेकता में एकता का उच्चतम आदर्श प्रस्थापित किया है। विभिन्न उपास्य तथा भिन्न-भिन्न मतमतान्तर के कारण सम्प्रदाय भी अनेक वर्ग में विभाजित हो गये थे। समय के दुष्प्रभाव का असर सामाजिक एकत्व पर भी पड़ता रहा था, परन्तु युगधर्म को समझने वाले कुछ महापुरुषों के प्रयत्नों से समाज पुनः संगठित होता रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस युगकार्य को पूर्ण करने के लिए ही तो श्री रामजी अंशावतार लेकर भारत भूमि पर पधारे थे। बृहद् भंडारे के पश्चात् सत्संग-वाटिका में एकत्रित सन्त-महन्तों को सत्संग लाभ देने की प्रेरणा की गयी। असंख्य जनसंख्या इस विशाल सन्त-सम्मेलन को सुनने इस समय पंचगंगाघाट पर एकत्रित हो गयी। अनेक सम्प्रदाय के सन्तजन आज लम्बे समय बाद प्रथम बार एकत्रित हो रहे थे अतः उनका भिन्न-भिन्न भक्त समुदाय भी स्वयं यहाँ एकत्रित हो गया था।

सर्व सन्तों ने निज-निज सम्प्रदाय की विशिष्टता, परमात्मतत्व तथा ज्ञान, भक्ति, कर्म इत्यादि आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करके भक्त समुदाय को प्रसन्न कर दिया। सर्व जन अत्यन्त प्रसन्न थे। अन्तिम वक्तव्य स्वामी श्री रामानन्दजी का था।

मांडल में अनेक सन्तों के साथ विराजमान स्वामीजी का प्रभाव ही अनूठा था। उनका प्रभावशाली गौर श्रीअंग, विशाल कमलदल लोचन, प्राचीन महर्षिसम कपिश जटाकलाप तथा तेजोदीप्त उन्नत भाल प्रदेश से सुशोभित मनोहर मुखमुद्रा देख लोगों की अंजलि स्वतः ही बँध जाती थी। अनन्त करुणार्णव दृगों की प्रेमाद्र दृष्टि से परिप्लावित जन-समुदाय शनैः-शनैः कंठ से जयघोष करता रहा।

सर्व सन्तों ने मिलकर स्वामी श्री रामानन्दजी को सत्संग लाभ देने की प्रार्थना की। अतः त्रिभुवनमोहक स्मित सहित स्वामीजी ने उपस्थित महात्मागण एवं भगवत् प्रेमियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि उनका राष्ट्र एवं धर्म दोनों ही आज संकटापन्न स्थिति में हैं अतः आज संस्कृति प्रेमियों का सर्वप्रथम कर्तव्य संस्कृति के संरक्षण का हो गया है। उनके शब्द बहुत सन्तुलित, अर्थ-गौरवपूर्ण तथा अधिकारपूर्वक उच्चारित होते थे। उनके दीर्घ दृगों की दृष्टि हृदय के भीतर तक सीधे ही चली जाती थी। सौम्य, मृदु एवं प्रेमपूरित स्वर से वे बोले :

"भारतवर्ष का भूतकाल कितना उज्ज्वल था। प्राचीन काल से सर्व क्षेत्रों में भारत उद्गम स्थान रहा है। भारत में ही ज्ञानसूर्य का उदय हुआ तथा विश्व को सदैव आलोकित करता रहा है। हमें इस बात का गौरव होना चाहिए कि कितने महान, तेजस्वी एवं प्रतिभासम्पन्न ऋषि-महर्षियों की हम सन्तान हैं। उन्होंने अथक प्रयत्नों से भीषण जंगलों में, नगर-ग्रामों में सदैव परिभ्रमण करके ज्ञानसागर का मंथन करके अमृत हम सब तक पहुँचाया है। हमारा परम सौभाग्य है कि ऐसी गौरवान्वित संस्कृति के हम वर्तमान हैं।

परन्तु आज यदि वर्तमान समय की संकटापन्न स्थिति में राष्ट्र तथा संस्कृति के प्रति हमारे कर्तव्यों से हम उदासीन रहेंगे तो सर्वनाश अवश्यंभावी है। हमारे पूर्वज तथा हमारा भावी समाज इस उदासीनता के लिए हमें कभी क्षमा नहीं करेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम देख रहे हैं कि परदेशी विधर्मियों के शासन में हिन्दुओं पर अत्याचार की आँधी आ चुकी है। हमारी श्रद्धा एवं भक्ति के प्रतीक रूप मन्दिरों का विध्वंस हो रहा है। येन-केन-प्रकारेण .बर्बरतापूर्वक धर्मपरिवर्तन कराना ही यवनों का मुख्य उद्देश्य रहा है।

इस स्थिति के उत्पन्न होने का बहुत-कुछ दायित्व हमारा भी है। हमारे पतन का मुख्य कारण है राजाओं तथा विद्वानों का परस्पर कलह, संघशक्ति का अभाव, वर्णाश्रम व्यवस्था का दुरुपयोग, सामाजिक व सांस्कृतिक आचार-विचारों में जड़ता तथा धार्मिक संकीर्णता। यवन प्रभावित हिन्दू समाज भी अनेक प्रकार के पाखंडवाद से ग्रस्त हो चुका है। हमारे तथाकथित मनीषियों एवं चिन्तकों ने हेतुवाद, नास्तिकवाद तथा मायावाद की जो पृथक्-पृथक् धाराएँ प्रवाहित की हैं, उनके फलस्वरूप सिद्धान्तहीनता, दुराचारिता, अधार्मिकता तथा अकर्मण्यता ने हिन्दू समाज को ग्रसित कर लिया है। वर्गभेद, वर्णभेद, जातिभेद, इष्टभेद तथा उपासनाभेद से हमारा समाज विभाजित हो गया है। व्यक्तिगत साधना के लिए रुचिभेद होने से यह भेद आवश्यक है परन्तु साधना पद्धति में भेद होने से समाज विभाजित हो जाय, यह घटना सर्वथा अवांछनीय है।

यदि वर्तमान धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन नहीं लाया गया तो विश्व की अन्य ग्रीक, यूनानी आदि प्राचीन संस्कृतियों की भाँति हिन्दू सनातन संस्कृति का भी उन्मूलन हो सकता है।"

भक्त समुदाय एवं सन्त समुदाय पूर्णतः प्रभावित हो गये उनके शब्दों से। सर्वत्र निःशब्द शांति व्याप्त हो चुकी थी। सबके मुख परिस्थिति का वास्तविक स्वरूप याद करके म्लान हो गये। इसके निवारणार्थ क्या करना चाहिए? यह प्रश्न सबके मस्तिष्क में घूमने लगा। कुछ क्षणों के लिए रुकते हुए महामहिम स्वामीजी ने कहा:

"सांप्रत समस्या के निवारणार्थ सर्वप्रथम आवश्यकता हमारी एकता की है। इन समस्याओं से बचने साधु एवं विद्वानों को शास्त्रबल तथा क्षत्रियों एवं राजाओं को शस्त्रबल से एक होना चाहिए।

हमारे विद्वान एवं चिन्तक मनीषी आज यह भूल चुके हैं कि भिन्न-भिन्न इष्ट, सिद्धान्त तथा सम्प्रदायों के उपरांत भी हम सब एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं। श्रुति-स्मृति-वेद-पुराण ही तो हम सबका आधार हैं। इष्ट-भेद हो सकते हैं, सिद्धान्त-भेद हो सकते हैं, आचार-विचार-भेद हो सकते हैं, भाषा-भेद हो सकता है, परन्तु भिन्नता को देख पारस्परिक द्वेष एवं वितंडावाद में ग्रस्त रहने से विधर्मियों का कार्य अत्यन्त सरल हो गया है। पारस्परिक कलह से हम अपने ही आधार को जर्जरित कर रहे हैं। अगर वृक्ष ही न रहा हो शाखाएँ कैसे रहेंगी?

सनातन संस्कृति के संरक्षण के साथ ही सर्वधर्म सहिष्णुता भी अत्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवश्यक है। हमारी संस्कृति मानवमात्र से प्रेम-सौहार्द की सीख देती है। हमें किसी से दुश्मनी भी नहीं रखनी चाहिए। सर्वधर्म समान रूप से आदरणीय हैं। परन्तु मुस्लिम शासकों की आक्रामक नीति से, उनकी धार्मिक हठधर्मिता तथा नृशंसता के कारण हिन्दू प्रजा भारत में असहिष्णु हो गयी है। अन्यथा हिन्दू प्रजा की सहिष्णुता बेजोड़ है और रहेगी। खुदा के सच्चे बन्दे कभी किसी को अपमानित नहीं करते, अत्याचार नहीं करते, अन्य धर्मावलम्बियों से अदावट नहीं रखते।

हमारे कर्तव्यों की परिपूर्ति हेतु इस आपद्कालीन परिस्थिति में हमें कुछ सर्वतोमुखी योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्यान्वित करना ही पड़ेगा।

(1) विशाल-भव्य मन्दिरों तथा उनकी सम्पत्ति को नष्ट कर दिया गया है; अतः विभिन्न स्थानों पर छोटे-छोटे मन्दिर बनाकर लोगों की श्रद्धा एवं धर्मभावना को जाग्रत करना होगा।

(2) मन्दिरों की सम्पत्ति से अनेक असहाय, निराधार, अपंग व्यक्तियों को सहायता मिलती रही थी। वह व्यवस्था अब नष्ट होती जा रही है अतः समाज के ऐसे लोगों के लिए दूसरी व्यवस्था करनी होगी।

(3) अनेक स्थान पर मठ, साधुस्थान, आचार्यपीठ आदि की स्थापना करके धार्मिक व सामाजिक सेवाकार्य आरम्भ करने होंगे। रोगियों की चिकित्सा, बच्चों की शिक्षा, व्रतोत्सव निमित्त कथा-कीर्तन का आयोजन करके सांस्कृतिक समूह भावना जीवंत रखनी होगी।

(4) हमारी युवा शक्ति को संगठित एवं सशक्त बनाना होगा। इसके लिए अखाड़ों आदि का निर्माण करना होगा। युवानों को शास्त्र तथा शस्त्र, दोनों की शिक्षा देनी होगी।

(5) वर्णाश्रम व्यवस्था के दुरुपयोग से जो ऊँच-नीच का भेद समाज में उत्पन्न हो गया है उसे दूर करना होगा। हम तो श्रीराम मन्त्र के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष—जो भी श्रद्धाभाव रखते हैं उनको बिना भेदभाव दीक्षा देने के समर्थक हैं। इससे समाज को एकता प्राप्त होगी तथा प्रत्येक योग्य व्यक्ति परमार्थ पथ पर प्रगति कर सकेगा।

(6) राजाओं को राजनैतिक परामर्श तथा मार्गदर्शन देना होगा। प्राचीन महर्षि स्वकल्याण के साथ-साथ समाज-कल्याण हेतु राज्यकार्य में भी रस लेते रहे थे—आज भी पुनः वह समय आ गया है।

(7) धार्मिक संकीर्णता का त्याग करके तथा कर्मकांड की जटिल पद्धतियों को छोड़ सरल उपासना पद्धति प्रत्येक जनसाधारण तक पहुँचानी होगी।

(8) संस्कृत भाषा साधारण समाज की समझ से अत्यन्त दूर हो चुकी है अतः उपासना में तथा धर्म-प्रचार-प्रसार कार्य में भी लोकभाषा हिन्दी का प्रयोग करना ही उपयुक्त होगा।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उक्त योजनाओं को मूर्त रूप देने हेतु स्वामीजी ने धीर-गम्भीर स्वर में सन्त समाज एवं विद्वानों का आह्वान किया तथा कहा कि यदि इस समय वे जाग्रत नहीं होंगे तो विश्व से हिन्दू संस्कृति का नाम-निशान सदा के लिए नष्ट हो जायेगा।

उन्होंने कहा कि सच्ची निष्ठा एवं विश्वास के साथ प्रभु श्री राघवेन्द्र के आदर्शों का अनुसरण करते हुए यदि सेवाकार्य किया जाय तो स्वयं परमात्मा उनके योगक्षेम का वहन करने हेतु वचनबद्ध हैं।

स्वामीजी के सम्बोधन के बाद सभा विसर्जन हुई। धरा और गगन गूंज उठे स्वामीजी के जयनाद से। उनके शब्दों ने लोगों में एक नयी जागृति पैदा कर दी, एक नयी दिशा मिली सबको। एक होकर सन्मार्ग में आगे बढ़ने के लिए यति सम्राट के शब्दों का असर तत्काल पड़ा।

कुछ ही समय में साधु-सन्तों ने मिलकर योजनाओं को कार्यान्वित करने हेतु स्वामीजी से परामर्श किया तथा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके समस्त भारतवर्ष में फैल गये। सिद्ध-विरक्त महात्माओं ने अनेक स्थानों पर द्वारपीठों की स्थापना की, मन्दिरों का निर्माण कराया; मठ, आचार्यपीठ तथा अखाड़ों का निर्माण किया गया। छात्रों की शिक्षा हेतु शास्त्रज्ञ पंडित, शस्त्र विद्या के लिए युद्ध विशारद तथा रोगियों की सेवा के लिए रुग्णालयों में वैदकीय शिक्षा प्राप्त वैद्यों को नियुक्त किया गया। मन्दिरों में ब्राह्मणों को पुजारी के रूप में रखा गया जिससे सर्व ब्राह्मणोचित कर्म अध्ययन-अध्यापन, भगवत् पूजन तथा मानव-सेवा निर्बाध रूप से चलती रहे। इन मठों एवं पीठों का निस्वार्थ सेवाभाव एवं धर्म-प्रेम देख लोग श्रद्धा से प्रेरित होकर पुष्कल मात्रा में धन, जमीन, अन्न इत्यादि भेंट करते रहे, जिससे संस्थानों की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ बनती गयी। उसी धनराशि से अधिकाधिक अखाड़ों, मठों, जमात आदि के योगक्षेम की व्यवस्था होती रही।

पंडितों एवं विद्वानों ने एकमत से स्वामीजी को अपनी एकमात्र प्रेरणामूर्ति के रूप में स्वीकार किया। अनेक बृहद् एवं सघन योजनाओं के कारण श्रीराम भक्ति का प्रचार-प्रसार भी विपुल रूप में हुआ। बलात् धर्मपरिवर्तन कराये गये अनेक परिवारों के श्रीराम मन्त्र से पवित्र संस्कार सम्पन्न कराये गये।

अस्तित्व की इस लड़ाई में हिन्दू प्रजा दम घुट-घुटकर मरने के बदले एक नयी शक्ति व एकता के साथ नवजीवन को प्राप्त हुई। राजकीय तथा आर्थिक अस्थिरता, अत्याचारों की आतंकलीला तथा धार्मिक वितंडावाद से त्रस्त दिशा-विहीन प्रजा को नयी चेतना मिली। परिस्थिति से संतप्त प्रजा को अनेक अस्थिरताओं के बीच सुदृढ़ मानसिक स्थिरता मिली। विधर्मी आतंक तथा स्वधर्मी जड़ नीति-रीतियों तथा कर्मकांडों से त्रस्त लोगों को प्रशांत स्वामीजी का सबल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधार मिला। उपासना की सरल पद्धति नामस्मरण एवं प्रार्थना को जटिल क्रियाकांडों के बदले लोगों ने सहर्ष स्वीकार किया।

समय की आवश्यकता को देख इस युगपुरुष ने प्रचलित विधि-विधान, कर्मकांड, वर्णाश्रम मर्यादा तथा धर्म के संस्कृत प्रयोग के विधानों में समूल परिवर्तन किया। अनुष्ठानों के स्थान पर इष्टदेव के भजनों का प्रचार किया। संस्कृत के स्थान पर, उपदेश का माध्यम लोकभाषा हिन्दी की प्रतिष्ठा की तथा भक्ति क्षेत्र में वर्णाश्रम मर्यादाओं को हटाकर प्रभुप्राप्ति का मार्ग सर्वसाधारण जन के लिए सुलभ कर दिया। इस प्रकार ज्ञान तथा भक्ति का सरस समन्वय करके भगवान को एक वर्णविशेष का न रखते हुए जनसाधारण का उपास्य बना दिया। भव-अंधकार में उलझे हुए अनेक प्राणियों को काशी के इस सूर्य ने ज्ञान का प्रकाश बिना किसी भेदभाव के देकर अनेकों जीवन आलोकित कर दिये।

उपदेश का माध्यम हिन्दी होने से जनसमूह का हृदय विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। हिन्दी को स्वीकार करने से आशातीत लाभ हुए। अध्यात्म मार्ग जनसाधारण तक के लिए खुल गया तथा मध्यकालीन धार्मिक क्रांति तथा आन्दोलन का माध्यम हिन्दी होने से धार्मिक जगत में भी संस्कृत के स्थान पर सर्वत्र समभावेन हिन्दी भाषा सत्कृत हुई और सार्वभौम तथा सार्वजनीन भाषा बिना किसी प्रयत्न ही बन गयी। इसके फलस्वरूप हिन्दू समाज में एकत्व की भावना के साथ-साथ धार्मिक संगठन भी हुआ जिससे संस्कृति को बचाने में अमूल्य योगदान प्राप्त हुआ।

स्वामीजी ने बाह्य आडम्बर तथा जटिल पद्धतियों को छोड़ प्रेम, श्रद्धा, सौहार्द से जीवमात्र को बिना किसी भेदभाव श्रीराम भक्ति की उपासना और भक्ति का अधिकारी घोषित किया। रघुकुलभूषण श्री राघवेन्द्र की ही भाँति संसार के प्राणियों के उद्धार हेतु स्वामीजी ने भक्ति रूपी सेतु का निर्माण करके जो भी संसर्ग में आया, उन सबको पार लगा दिया।

स्वामीजी की बहुलक्षी, सर्वतोमुखी योजनाओं द्वारा; उनकी प्रतिभा, कार्यशैली तथा राष्ट्रप्रेम, धर्मप्रेम एवं लोकप्रेम से भारतीय जनसमुदाय इतना प्रभावित हुआ कि भगवान श्री सीतारामजी को इष्ट मानने वाले 'रामावत' अथवा 'श्रीसम्प्रदाय' के प्रमुख प्रवर्तक स्वामी रामानन्दजी को सर्व सन्त समुदाय, विद्वान् समुदाय तथा जनसमुदाय ने एक मन से 'जगद्गुरु' के गौरवपूर्ण पद से सन्मानित किया। उनके प्रभाव से 'रामावत' अथवा श्रीसम्प्रदाय' अब अधिकांश प्रजा के लिए 'रामानन्दी सम्प्रदाय' ही बन गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(2)

सम्प्रदाय के वृहद् विस्तार से सम्प्रदाय के विषय में अनेक लोगों की जिज्ञासा बढ़ रही थी। अतः उन सबकी जिज्ञासा के सन्तोषार्थ एक दिन श्री अनन्तानन्दजी ने सत्संग में जगद्गुरु से करबद्ध कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति माँगी।

अनन्त करुणासागर जगद्गुरु के प्रसन्नता से अनुमति देते ही अत्यन्त श्रद्धा-पूरित वाणी से सविनय उन्होंने पूछा :

"हे आनन्दघनराशि ! समस्त सृष्टि तथा अनेकानेक ब्रह्मांडों का सर्जन, पालन एवं विवाश परब्रह्म परमात्मा श्री रामजी कर रहे हैं, ऐसा प्राग्वैदिक काल से ऋषि-महर्षि कहते आये हैं। ऋग्वेद में भी 'राम सत्यं परंब्रह्म' कहकर श्रीराम-भक्ति का स्पष्ट निर्देश मिलता है। उत्तर वैदिक काल में सनत्कुमार संहिता 'सूर्यमंडल मध्यस्थं रोमंसीता समन्वितम्' कहते हुए श्रीराम परत्व का दुदुंभि घोष करती है। इसके उपरांत भी अनेक संहिता-पुराणों में श्रीराम भक्ति का उल्लेख मिलता है। परन्तु हे गुरुदेव ! दशरथपुत्र श्रीराम तो त्रेतायुग में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं, तो इसके पहले किसने सर्वप्रथम श्रीरामजी का दर्शन किया था ?"

आचार्यश्री कुछ क्षण मौन रहने के उपरांत मन्द मधुर हास्य सहित स्नेहार्द्र वाणी से बोले :

"प्रिय वत्स ! आदिकाल में श्री स्वयंभुव आदि मनु की पुत्री देवहुती तथा उनके पति कर्दम प्रजापति के व्योमव्योहार में सनातन दिव्य दम्पति की परम मोहिनी छटा झलक गयी। देवहुती आत्मतत्व को भलीभाँति जानती थी। एक दिव्य ज्योति माता के अपूर्व ज्ञान के लिए आविर्भूत हुई। पुत्र कपिल ने तत्वविचार की सीमाओं को सांख्य ज्ञान से प्रदर्शित किया तथा सृष्टि का सम्पूर्ण भेद खोल दिया।

आदि मनु ने अपने नाती कपिल से यह अपूर्व ज्ञान सुना तथा स्वयं अपनी पुत्री देवहुति को उसकी प्रेरक जाना, तब उन्होंने निश्चय किया कि सृष्टि के सर्जनहार सनातन दिव्य दम्पति का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहिए।

तदनन्तर श्री स्वयंभुव मनु तथा उनकी पत्नी शतरूपा ने नैमिषारण्य में गोमती के तट पर निवास करके उग्र तपश्चर्या आरम्भ की। शनैः-शनैः सब कुछ त्यागकर मात्र वायु के आधार पर शरीर को धारण किया। दोनों की उग्र तपस्या से द्रवीभूत होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ने प्रत्यक्ष होकर वर माँगने के लिए बारम्बार प्रलोभित किया, परन्तु परम धैर्यवान दम्पति विचलित न हुए। अपने व्रत पर अटल उन्होंने यही निश्चय किया कि वेद जिनका नेति-नेति कहकर निरूपण करते हैं, जिनके अंश मात्र से अनेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न होते हैं वे परब्रह्म परमात्मा भक्तों के प्रेमवश लीला-शरीर धारण करते हैं, उसी युगल छवि का दर्शन करेंगे। यह श्रुतिवचन यदि सत्य है तो हमारी उत्कट अभिलाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवश्य पूर्ण होगी।

उनके दृढ़ विश्वास एवं निष्ठा से परमधाम निवासी, सर्वव्यापक सर्वज्ञ प्रभु द्रवीभूत हो गये। आकाशवाणी से अव्यक्त परमात्मा ने वरदान माँगने के लिए आज्ञा दी। परम आनन्द से प्रफुल्लित दोनों ने कहा :

'हे चराचर नायक ! हे विधि हरिहर सेव्य ! जो स्वरूप शिवजी के मन में नित्य रहता है, जिस स्वरूप को पाने मुनिगण हमेशा यत्नशील रहते हैं उसी स्वरूप में हमें दर्शन दीजिये।'

दम्पति के प्रेमपूरित, नम्र तथा मधुर वचन सुनकर भक्तवत्सल, विश्व-व्यापक प्रभु श्री हरिहर सेव्य श्री रामचन्द्र श्री सीताजी सहित प्रकट हुए। हर्ष से विवश, देहभान रहित दोनों प्रभु के श्रीचरणों में गिर गये। परम मनोहर सुन्दर स्वरूप वरदान देकर पुनः अदृश्य हो जायेगा इस विचार से वे विकल हो गये। वियोगजनित दुख का स्मरण करते हुए चिर-संयोग के लिए उपाय करते हुए दोनों ने कहा, 'हे प्रभु ! हम आपको ही पुत्र रूप में चाहते हैं।'

परमकृपालु परमात्मा ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि जब त्रेतायुग में वे दोनों पृथ्वी पर अवध नृपति दशरथ तथा कौशल्या के रूप में जन्म लेंगे तब उनकी यह अभिलाषा पूर्ण होगी।

कालांतर में पृथ्वी के भूपाल बनकर महाराज दशरथ के रूप में मनुजी तथा कौशल्या के रूप में शतरूपा आये तब आनन्दसिंधु सुखराशि परब्रह्म श्रीराम ने स्वयं को कौशल्या की गोद में अव्यक्त से व्यक्त बना दिया। साथ ही त्रिदेवगत् विष्णु भरतजी के रूप में, ब्रह्मा शत्रुघ्न के रूप में तथा रुद्र लक्ष्मणजी के रूप में परब्रह्म की सेवा में उपस्थित हुए।

इस प्रकार आदि मनु के प्रेमवश त्रिदेव वंदित परमदेव ने प्रकट होकर अपनी संतान मानवमात्र को कृतार्थ कर दिया। प्रकट परमात्मा ने वात्सल्य, क्षमा, दया, सर्वज्ञता तथा सर्वनियामकत्व आदि समस्त ईश्वरीय दिव्य गुणों के साथ लोकधर्म की मर्यादाओं का आदर्श उदाहरण चरितार्थ कर दिखाया।

भावी जनता के लिए ऐसा सुदृढ़ सेतु निर्माण किया जिसमें सप्तभंगी ज्ञान, चतुर्विज्ञान, त्रिविध कर्म, एकादशी भक्ति एवं त्रयोदश त्याग का राजमार्ग अंकित हो गया। परमज्ञानी विरक्त मुनि घोर अंगिरस, सुतीक्षण, श्रुतिपरम तथा शांडिल्य आदि भागवंत इस अमृत का पान करके तृप्त हो गये। इस तरह चौरानवे उत्तम कोटि के श्रीराम भक्त ऋषि हुए, जिन्होंने शंकरजी के समान शिवपद को प्राप्त किया।"

इतना कहकर आचार्यश्री मौन हो गये। अतः श्री अनन्तानन्दजी ने पुनः हाथ जोड़ते हुए पूछा :

"हे महाप्रभु ! परब्रह्म परमात्मा श्री राघवेन्द्र की उपासना एवं ज्ञानगंगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम सब तक किस प्रकार अवतीर्ण हुई ? 'रामावत सम्प्रदाय' अथवा 'श्रीसम्प्रदाय' परम्परा के विषय में जानने के लिए हम सब उत्सुक हैं।"

जगद्गुरु सबकी अमाप जिज्ञासा देख प्रसन्न हुए। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा

"सीतानाथ समारम्भाम् बोधायनाय मध्यमाम्।
राघवानन्द गुर्वन्ताम्, वन्दे गुरु परंपराम्॥

हे प्रेमियो ! निर्गुण निराकार, सगुण साकार तथा दोनों से परे परात्पर ब्रह्म श्री रामजी के स्वरूप में त्रेता युग में भक्तों के प्रेमवश महाराज दशरथ तथा कौशल्याजी के पुत्र रूप में प्रकट हुए। प्रकट होकर विविध लीला करते हुए लंकादिक विजय के उपरांत श्रीअवध की राजगद्दी पर उनका राज्याभिषेक हुआ। उनकी सेवा में नित्य उपस्थित भक्त शिरोमणि हनुमानजी सदैव अपने स्वामी का ही चिन्तन करते थे। उनके रोम-रोम में श्रीराम बसे हुए थे। हृदय में नित्य श्री सीतारामजी की परम मनोहर छवि विराजमान रहती थी। वे एक ही कामना रखते थे :

स्नेहो मे परमो राजन्स्त्वयि निष्ठतु नित्यदा।
भक्तिश्च नियतावीर भावो नान्यत्र गच्छतु॥

आद्यशक्ति श्री सीताजी हनुमानजी की निष्काम, अखंड भक्ति से प्रसन्न थीं।

एक दिन राजभवन में प्रभु श्रीराम एवं जगदंबा श्री जानकीजी सिंहासन पर विराजमान थे। भक्तराज हनुमान परम श्रद्धा से प्रेरित होकर वहाँ आये तथा उनके श्रीचरणों में बैठ गये। तब जिनके भृकुटि विलास मात्र से सृष्टि की रचना होती है तथा जिनके अंश से अगणित त्रिदेव की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उन जगत्माता सीताजी ने प्रसन्न होकर अपनी संतान मानवमात्र को श्रेय मार्ग में प्रवृत्त कराने के लिए परम आह्लादक एवं परमप्रकाश प्रदान करने वाले श्री तारक मन्त्र का उपदेश देकर हनुमानजी को कृतार्थ किया। जगत को भ्रूभंगी पर नचाने वाली वेदमाता तथा उत्पत्ति, स्थिति एवं लय करने वाली आद्यशक्ति ने मन्त्रराज की दीक्षा देते हुए हनुमानजी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हुए कहा :

'प्रिय हनुमान ! परात्पर प्रभु श्रीराम ही साक्षात अद्वितीय सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं। वे निरुपाधि, अनन्त, त्रिगुणातीत, निर्विकार, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश, सर्वान्तरयामी, सर्वज्ञ हैं। वे नित्य आनन्दस्वरूप, अविचल तथा परिणामहीन हैं। वे न तो चलते हैं न रुकते हैं, न शोक करते हैं न अन्य कोई क्रिया करते हैं।

हे पुत्र ! मैं संसार की आद्यशक्ति हूँ। विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने वाली आदि प्रकृति मैं ही हूँ। श्रीराम के केवल निकट रहकर मैं विश्व की रचना करती हूँ, परन्तु उनकी समीपता से तात्पर्य, बुद्धिहीन लोग माया के गुणों के अधिष्ठान में, श्रीराम को ही विविध क्रिया करते हुए देखते हैं। हे वत्स !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीराम ने ही दिव्यलोक में सविधि यह उपदेश तारक मन्त्र सहित मुझे दिया था। मायाबन्धन तोड़कर भवसागर से पार करने की कल्याणकारी इच्छा से मैंने वह मन्त्र तुम्हें दिया है।' कहते हुए मन्त्ररहस्य का अनुभव कराया।

हनुमानजी यह सुनते ही आनन्दविभोर हो गये। शिवजी जिस हेतु से हर से हनुमान हुए थे, वह हेतु अनायास ही पूर्ण हो गया। उनकी दशा अलौकिक हो गयी। तारक मन्त्र रूपी दिव्य अनुपम रत्न पाकर वे पूर्णकाम हो गये।

ब्रह्माजी को ध्यान में इस बात का पता चला। वे सृष्टि का सर्जन एवं संचालन करने के असमंजस में पड़े थे। अतः बटुक रूप लेकर भगवान के चिन्मय-धाम अयोध्या में जाकर विचरने लगे तथा पवनकुमार से भेंट करने का अवसर ढूंढने लगे। श्रीअवधेश की सेवा में नित्य तत्पर अंजनिपुत्र से मिलना अत्यन्त कठिन था। परन्तु एक दिन सरयू तट पर भेंट हो ही गयी। बटुक रूप में ब्रह्माजी ने अपना परिचय दिया तथा हनुमानजी से स्तवन करते हुए तत्व की जिज्ञासा करने लगे। आंजनेय ने मन्त्रराज रत्न छिपाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु ब्रह्माजी की पुनः-पुनः प्रार्थना से द्रवीभूत होकर तथा अपने स्वामी श्री रामजी की प्रेरणा समझकर अन्त में मन्त्र देकर मन्त्र रहस्य का अनुभव कराया। ब्रह्माजी प्रसन्न होकर सत्यलोक चले गये।

ब्रह्माजी के मानसपुत्रों को श्री तारक मन्त्र रूपी कस्तूरी की सुगन्ध आ गयी। वे भी पितामह के पीछे पड़े। परन्तु ब्रह्माजी ने संकोच सहित मानसपुत्रों में से मात्र पाँच को मन्त्रोपदेश देकर अजर-अमर कर दिया। वे पाँच पुत्र श्री वशिष्ठ-जी, श्री सनकजी, श्री सनन्दनजी, श्री सनातनजी तथा श्री सनत्कुमार थे। ब्रह्माजी द्वारा उसी भक्ति का निर्देश वेदों में स्पष्ट है।

श्री वशिष्ठजी के द्वारा साम्प्रदायिक श्रीराम भक्ति का पदार्पण पृथ्वी पर हुआ। ऋग्वेद के 10वें मंडल के मन्त्रदृष्टा महर्षि वशिष्ठजी ने मन्त्र रहस्य अपने पौत्र पराशरजी को दिया। भगवान पराशरजी ने परम्परा से वह मन्त्र महर्षि बादरायण व्यास को दिया, जिन्होंने वेदों का वर्गीकरण एवं ब्रह्मसूत्रों की रचना की। वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेवजी को श्रीराम भक्ति का रहस्य बताया। यह परम्परा चिरंजीवी है। आज भी सच्चा साधक या भक्त इन जीवनमुक्तों का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है। परब्रह्म श्री रामजी की उपासना करने से यह सम्प्रदाय 'रामावत सम्प्रदाय' अथवा माता श्री सीताजी से मन्त्र रहस्य का प्रवर्तन होने से 'श्रीसम्प्रदाय' कहा जाता है।

विक्रम पूर्व 569 में पाटलिपुत्र के सम्राट नन्दीवर्धन के समय कुशल राजनीतिज्ञ चाणक्य के समकालीन महाविद्वान वेदान्ताचार्य बोधायन हुए। उनको दृश्यमान जगत में किसी उपर्युक्त गुरु की प्राप्ति न होने पर—'जीवनमुक्तं सदा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यायत् नित्यं त्वं विचरिष्यसि' के अनुसार शुक्रदेवजी के ध्यान में लीन हो गये। उनके तप से प्रसन्न होकर शुक्राचार्य ने अपने गुरु भगवान बादरायण व्यास सहित साक्षात दर्शन दिये तथा श्री वैष्णवी विरक्त दीक्षा तारक मन्त्र रहस्य सहित प्रदान की। व्यासजी की प्रेरणा से बोधायनजी ने वेदान्त पर सर्वप्रथम वृत्ति लिखी, जो बोधायन वृत्ति के रूप में प्रकाशित हुई। तदनन्तर बोधायन शिष्य सारण ने बोधायन दर्शन या रामावत दर्शन पर भाष्य लिखा, जो आध्यात्मिक विचार एवं व्यवहार में तारतम्यता एवं सत्यता प्रदान करता हुआ, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत का मध्यवर्ती भाष्य माना गया। भाष्यकार सारण ने मन्त्र रहस्य अपने शिष्य पुरुषोत्तमाचार्य को प्रदान किया।

उस समय सनातन धर्म का ह्रास होने लगा था अतः पुरुषोत्तमाचार्यजी ने जगन्नाथधाम में वैष्णवों का संगठन बनाया तथा अवैदिक जैन एवं बौद्ध धर्म को परास्त कर उड़ीसा एवं अन्य क्षेत्रों में सनातन धर्म का प्रचार-प्रसार किया। जगन्नाथजी के राजा ने सम्प्रदाय की प्रधान पीठ वहाँ बनाकर पुरुषोत्तमाचार्यजी को जगद्गुरु के नाम से सन्मानित किया। उसके पश्चात् परम्परा से गंगाधराचार्य एवं सदानन्दाचार्यजी को मन्त्र रहस्य प्राप्त हुआ। वे महर्षि पतंजलि के समकालीन थे। उन्होंने श्रीराम महायज्ञ पर प्रसिद्ध कृति लिखी तथा तत्कालीन समय में श्रीराम भक्ति का बहुत प्रचार किया। उनके शिष्य श्री रामेश्वरानन्दाचार्यजी 'श्रीसम्प्रदाय' के 14वें आचार्य हुए। यवनों (शक-हूण) के समय वे द्वारिका भी गये। उन्होंने मन्त्र रहस्य अपने सिद्ध शिष्य श्री द्वारानन्दाचार्यजी को प्रदान किया।

गुप्तवंशीय राजाओं के समय श्रीराम भक्ति का व्यापारी सम्बन्धों द्वारा दूर-दूर तक प्रचार करने में जगद्गुरु श्री श्यामानन्दाचार्यजी ने अथक प्रयत्न किये। तदनन्तर उनके शिष्य तथा सम्प्रदाय के 17वें आचार्य जगद्गुरु श्री श्रुतानन्दाचार्यजी ने समाज में बढ़ते हुए बौद्ध धर्म से टक्कर लेने का निरन्तर प्रयत्न किया। उन्होंने श्री रामभक्ति का रहस्य अपने शिष्य श्री चिदानन्दाचार्यजी को दिया। वे आदिगुरु श्री शंकराचार्यजी के समकालीन थे।

उनके शिष्य सिद्ध जगद्गुरु श्री पूर्णानन्दाचार्यजी हुए। इस समय तक इस्लामी सत्ता भारत में पदार्पण कर चुकी थी। उनके आतंक तथा धर्म असहिष्णुता के भय से कई विद्वान दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान कर गये परन्तु जगद्गुरु श्री पूर्णानन्दाचार्यजी मुस्लिम धर्मांधता से टक्कर लेते रहे। उन्होंने गुरुपरम्परा प्राप्त सिद्ध तारक मन्त्र अपने शिष्य श्री श्रियानन्दाचार्यजी को दिया। वे श्री रामानुजाचार्यजी के समकालीन थे।

तदनन्तर सम्प्रदाय के 22वें आचार्य जगद्गुरु श्री हर्यानन्दाचार्यजी हुए। उन्होंने श्रीराम भक्ति का बहुत प्रचार किया तथा सिद्ध मन्त्रराज रहस्य अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिय सिद्ध शिष्य तथा हमारे श्री सद्गुरुदेव जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी को दिया। वे 'श्रीसम्प्रदाय' के 23वें आचार्य बने। जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी सनातन धर्म का प्रसार करते हुए विश्वनाथ की नगरी काशी में पधारे तथा अपार करुणा कर हमें वैष्णवी दीक्षा के उपयुक्त बनाया। उन्होंने ही हम सबको श्री तारक मन्त्र देकर कृतार्थ किया।

उपरोक्त सभी महापुरुष मन्त्रराज की उपासना करते हुए श्रीराम भक्ति के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ जीव के परम ध्येय प्रेमाभक्ति में सराबोर हो गये तथा उनके सम्पर्क में आये सभी व्यक्तियों को प्रेमाभक्ति का रसास्वादन कराया।

हे भगवत् प्रेमियो ! यह सुनिश्चित है कि ज्ञान और वैराग्य भक्ति के ही अधीन हैं अतः बिना भक्ति ज्ञान-वैराग्य आप्तकाम कैसे हो सकते हैं? सम्पूर्ण ज्ञानी अद्वैतवादी श्री शंकराचार्यजी को भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए भक्ति का आलंबन लेना पड़ा था।

इस प्रकार श्री रामजी की भक्तिरूपी भगीरथी श्रीसम्प्रदाय के महान सिद्ध आचार्यों द्वारा हम तक अवतीर्ण हुई है।"

जगद्गुरुश्री ने वाणी को विराम दिया। सबने उनकी जयजयकार मनायी। कुछ भक्त स्वामीजी की चरणरज लेने आगे बढ़े। कुछ भक्तों ने कीर्तन शुरू किया। थोड़ी देर बाद आचार्यप्रवर उठकर निजगुफा में चले गये।

(3)

दक्षिण देश के विद्यारण्य मुनि भी जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी की पुण्यतिथि पर किये गये भंडारे में उपस्थित थे। उस समय वे उत्तर भारत में विचरण करते हुए काशी पधारे थे। सर्वसम्प्रदाय के सन्तों को एकत्रित देख उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ था। सबके द्वारा निःसृत ज्ञानगंगा में सराबोर होने का सौभाग्य भी उन्हें प्राप्त हुआ था। स्वामी रामानन्दजी द्वारा प्राचीन महर्षियों का राज्यकार्य में मार्गदर्शन देने का उदाहरण देने पर उन्होंने भी पुनः विचारणा शुरू की।

अपने देश पहुंचने पर उन्होंने पुनः राज्यकार्य में रस लेना शुरू किया। गूंदी के राजा हरिहर राय को समझाकर उन्होंने निकटवर्ती हिन्दू राजाओं को एकत्र करने की प्रेरणा दी, क्योंकि छोटे-छोटे राज्यों को मुस्लिम सत्ता सरलता से जीत सकती थी। वारंगल के काकतीय राजा प्रतापरुद्र के पुत्र कृष्णनायक द्वारसमुद्र के होयसल राजा वीर बल्लाल तथा कोंडवीडू के सरदार प्रोलयवेम ने एकत्र होकर संवत् 1400 में मुस्लिम सत्ता का विरोध करते हुए एक मित्रसंघ की स्थापना की। उन सबने मिलकर कोरोमंडल तथा आसपास के समुद्र किनारे को मुस्लिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शासन से मुक्त किया।

संवत् 1404 में होयसल राजा वीर बल्लाल वंश का शासन समाप्त होने पर हरिहर राय ने अपनी सत्ता अधिक सुदृढ़ बनायी। एक विशाल हिन्दू राज्य अस्तित्व में आया। अपने राज्यगुरु श्री विद्यारण्य मुनि के प्रति श्रद्धा रखते हुए राज्य का नाम भी 'विद्यानगर' अथवा 'विजयनगर' रखा गया।

इस प्रकार स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी की प्रेरणा से दक्षिण भारत में एक विशाल और वैभवपूर्ण हिन्दू साम्राज्य की स्थापना हुई। उत्तर भारत में होते मुस्लिम आक्रमणों से बचाने में भी इस राज्य ने अमूल्य योगदान दिया। धार्मिक भावनाओं पर दृढ़ इस साम्राज्य ने सनातन संस्कृति का अद्भुत संरक्षण किया। अनेक विशाल मन्दिर-मठों की रचना होती गयी, राजाओं के आश्रयतले अनेक-विध सांस्कृतिक साहित्य का सर्जन भी हुआ।

इस प्रकार मध्ययुगीन इतिहास ने पुरातन हिन्दू युग का वैभव, विशालता एवं धर्मप्रेम देखा। समुद्र पार से आये अनेक परदेसियों ने भी इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

(4)

दक्षिण भारत में तिरुचिनापल्ली के पास निरुभरी नामक एक गाँव था। वहाँ कमला नामक एक प्रतिव्रता स्त्री अपने पति के साथ जगत्जननी जगदम्बा की नित्य आराधना करती थी। दम्पति अत्यन्त निष्ठापूर्वक जगदम्बा की स्तुति करते हुए कालक्षेप करते थे। उनका मन कभी भी अपनी इष्ट देवी से विमुख नहीं होता था।

एक दिन प्रातःकाल जब वे अपने पूजाघर में गये, उन्होंने इष्ट देवी के समीप दिव्य आकृति वाला एक कमल का फूल देखा। उसकी दिव्य मन्द सुगन्ध ने दोनों का ध्यान सहज ही आकृष्ट कर लिया। कमला के स्पर्श मात्र से पुष्प ऐसे सम्पुटित हो गया, जैसे चन्द्रमा के कर-स्पर्श से पंकज की पंखुड़ियाँ संकुचित एवं सम्पुटित हो जाती हैं। अतएव कमला ने उस पुष्प को पूजाघर में ही छोड़ दिया।

एक मास पश्चात् दिव्य पुष्प अदृश्य होकर उससे एक दिव्य कन्या उत्पन्न हुई। युक्तिपूर्वक उस दम्पति ने इस रहस्य को गुप्त ही रखा, तथा कन्या को अपना औरस ही प्रकट किया। पद्म से उत्पन्न उस कन्या का नाम पद्मावती रखा गया।

दक्षिण भारत के श्यामकाय नर-नारियों के बीच वह कांचनवर्णी गौर कन्या देवी-सी अद्भुत लगती थी। अलौकिक मधुर बाललीलाओं से वह सबकी प्रीति-पात्र बन गयी थी। माता-पिता के वात्सल्य में पलती हुई वह बड़ी होती गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्वितीय सुन्दरता तथा तीव्र बुद्धि प्रतिभा से वह सहज ही लोक आकर्षण का केन्द्र बनती गयी।

कन्या के तरुण होने पर माता-पिता उसका विवाह करने की चिन्ता करने लगे। उस समय दक्षिण देश की प्रथा के विरुद्ध साड़ी के पल्लू से सिर को ढककर पद्मावती ने अपने माता-पिता से सविनय कहा :

"मैं साक्षात सीताजी का ही अंश हूँ। आपके भक्तिभाव से प्रसन्न होकर यहाँ प्रकट हुई हूँ। इस पृथ्वी लोक में भोग करने नहीं, मैं तो तप करने की इच्छा से तथा मेरे पति चराचरपति श्री रामजी की इच्छा से स्त्रियों में आदर्श प्रस्थापित करने ही भूतल पर आयी हूँ। काशी में परमात्मा श्रीराम के अंशावतार मुक्ति का सदाव्रत खोलकर बैठे हैं। अतः मुझे काशी ले चलो।"

माता-पिता को आनन्द एवं आश्चर्य हुआ। इष्ट देवी की अमित कृपा से वे धन्य हुए। पुत्री को साथ लेकर वे काशी जाने को तैयार हुए।

काशी पहुँचकर गंगाजी में स्नानादि से निवृत्त होकर तीनों श्रीमठ पहुँच गये। उनके पहुँचने पर स्वामीजी ने आप ही परदा खोल दिया। पद्मावती सहित माता-पिता ने जगद्गुरुश्री को पुनः-पुनः प्रणिपात किया। स्वामीजी पद्मावती को पहचान गये।

पद्मावती ने करबद्ध कहा, "हे स्वामीजी! परमार्थ की दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ कीजिये।" आचार्यश्री ने प्रसन्नता से स्वीकृति दे दी। कुछ समय आश्रम में रुकने की आज्ञा हुई।

पद्मावती की परम तेजमयी तथा शांत मुखमुद्रा देख आश्रमवासी शांतरस में डूबते रहे। परम विदुषी ने अपने सद्व्यवहार तथा शालीन स्वभाव से सबके मन में आदर-स्थान बना लिया। तीव्र वैराग्य से विभूषित पद्मावती को शुभ मुहूर्त में वैष्णवी दीक्षा प्रदान की गयी।

भक्ति रूपा होकर वह संन्यासिनी बनी। पुत्री को निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होते देख माता-पिता को ग्लानि तो हुई, परन्तु वे उसके मार्ग में अवरोध बनना नहीं चाहते थे। माता-पिता ने भी आग्रहपूर्वक श्रीराम मन्त्र दीक्षा प्राप्त की। कुछ समय श्रीमठ में रुककर वे पुनः अपने देश लौट गये।

पद्मावती अपने सद्गुरुदेव की आज्ञा से गंगातट पर एक संकीर्ण गुफा में रहकर भजन करने चली गयी। पद्मावती अत्यन्त बुद्धिमान; रूप, शील व गुण में असाधारण थी। उसने तीव्र विरक्त भावना एवं दृढ़ मनोबल से कठिन योग साधना सिद्ध की थी तथा समय-समय पर अत्यन्त दक्षता से सद्गुरुदेव की सेवा करती थी।

एक दिन गंगा स्नान के उपरांत वह लौट रही थी। रास्ते में एक मरा हुआ हाथी पड़ा था। लोगों की वहाँ भीड़ लगी थी। तपोनिधि साध्वी को देख लोगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने सन्मानपूर्वक रास्ता दे दिया और करबद्ध होते हुए कहा :

"माताजी, मरा हुआ हाथी पड़ा है।"

पद्मावती हाथी के निकट पहुँच गयी। उसके शरीर पर हस्त फेरते हुए हँसते-हँसते कहा, "हाथी तो पूरा-पूरा यहाँ पड़ा हुआ है, इसका क्या मर गया है ?"

कहते हुए वह चल दी। उसके विनोद से सब हँसने लगे परन्तु तभी एक आश्चर्यकारक घटना घटी। मृत हाथी में पुनः जीवनसंचार हुआ तथा वह धीरे से उठकर खड़ा हो गया।

लोगों ने पद्मावतीजी का जयघोष किया। परन्तु विरक्त तपस्विनी तो दूर कदाचित् अपनी गुफा में पहुंच चुकी थी।

(5)

एक दिन एक पीनर व्यापारी अपने कुटुंब सहित नाव में काशी आये। घाट पर लोग स्नान कर रहे थे। व्यापारी की कन्या के हाथ के पिंजड़े में एक मैना थी, जो वेदनापूर्वक रट लगा रही थी, "जय स्वामी रामानन्दजी, जय स्वामी रामानन्दजी।" इस विचित्र करुणाजनक ध्वनि से लोगों के मन में भी दया आयी। व्यापारी से पूछने पर उसने बताया कि मैना की क्षोभजनित वाणी से उद्विग्न होकर स्वामी रामानन्दजी को ढूंढते हुए वे यहाँ तक पहुँचे हैं।

कुछ लोग पीनर व्यापारी को लेकर श्रीमठ आये। सत्संग वाटिका में कीर्तन-भजन चल रहा था। व्यापारी आचार्यश्री की कुटी के पास पहुँचे। द्वार पर परदा लगा हुआ था। अतः पीनर व्यापारी ने अपनी व्यथा अनन्तानन्दजी से कही। अनन्तानन्दजी के कहने पर वे कुटी के पास आये तथा बाहर ही से बोले :

"हे महाराज ! मैं पीनर व्यापारी हूँ। व्यापारार्थ कामरूप देश के बीहड़ वनों से जाते हुए एक सारिका मुझे मिली थी। मेरी कन्या ने बिना प्रयास ही उसे पकड़ लिया। वह केवल जाउर खाती है तथा करुणाजनक स्वर से नित्य आपके नाम की रट लगाती है।"

जगद्गुरुश्री ने भीतर से ही आज्ञा दी, "हे वत्स ! उस मैना को पिंजड़े से मुक्त कर दो।"

व्यापारी ने आज्ञा का पालन किया। मैना उड़कर गुफा की चौखट पर बैठ गयी। उसी समय करुणानिधान ने शंखनाद किया, जिसे सुनते ही मैना एक अत्यन्त रूपवान स्त्री में बदल गयी। वह सुन्दर स्त्री अब करुणाजनक स्वर के बदले मधुर स्वर से जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की स्तुति करने लगी।

यह चमत्कार देख सब आश्चर्यचकित हो गये। कुछ देर बाद वह रमणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोली, "हे देव ! हे पुरुषोत्तम ! हे पातक हरण ! हे पुण्य दर्शन ! आपकी जय हो। आज आपकी अमित कृपा उषी किन्नरी पर हुई। मैं क्षीण-पुण्य, खग योनि में जन्म लेने वाले मेरे प्रियतय गौतम को सारिका का रूप धारण करके ढूँढती थी। कामरूप देश के बीहड़ वन से निकलते समय एक तान्त्रिक के मन्त्रप्रभाव से क्षेत्र-बद्ध होकर आकाश से वन में पतित हुई।

उस बीहड़ वन में परमकृपालु परमात्मा ने आपके शुभ नाम का रट लगाने का आदेश दिया। हे महाप्रभु ! उषी किन्नरी की रक्षा करने का उपदेश देने वाले, सेठ कन्या को आकर्षित करने वाले, तथा आपकी इस चौखट तक पहुँचाने वाले परमात्मा आप ही तो हैं। हे दीनदयाल ! दर्शन दीजिये। शक्ति एवं भक्ति दीजिये।"

करुणानिधान ने शीघ्र पट खोल दिया। दर्शन मिलते ही उषी किन्नरी को दिव्य शक्ति प्राप्त हो गयी। पीनर व्यापारी भी अपने कुटुम्ब सहित शुभदर्शन के भागी बने। महाप्रभु ने उषी किन्नरी को कहा :

"हे किन्नरी ! तू जिसे ढूंढती है, वह तेरा प्रियतम गौतम तुझे ध्रुवलोक में मिलेगा।" यह सुनते ही किन्नरी स्वामीजी के श्रीचरणों में गिर गयी। पुनः-पुनः उनके गुणगान गाने लगी तथा अदृश्य हो गयी।

पीनर व्यापारी यह देख बहुत प्रभावित हुए। आश्रम के सात्विक वातावरण का प्रभाव उन पर भी पड़ा। उन्होंने स्वामीजी से परमार्थ की दीक्षा माँगी। स्वामीजी ने कुछ दिन आश्रम में रुकने की आज्ञा प्रदान की। तदनन्तर श्रीराम मन्त्र की दीक्षा लेकर वह सुखपूर्वक अपने देश जाने के लिए विदा हुए।

(6)

जगद्गुरु के कुछ भक्त एक बार तीर्थाटन के लिए निकले थे। वहाँ उनकी भेंट श्री वैष्णव सम्प्रदाय के कुछ अनुयायियों से हुई। वे नितांत भिन्न आचार-विचार के थे। भक्तों को बहुत आश्चर्य हुआ।

पुनः काशी लौटने पर अपनी शंकाओं का समाधान आचार्यश्री से करने का विचार किया। बहुत समय प्रतीक्षा करने पर भी बहुत दिनों तक जगद्गुरुश्री सत्संग के लिए नहीं पधारे। अतः एक दिन उन्होंने श्री अनन्तानन्दजी को ही पूछ लिया।

भक्तों ने कहा, "हे महाराज ! क्या दूसरा भी कोई श्रीसम्प्रदाय है, जो हमारे सम्प्रदाय के आचार-विचारों से भिन्न है ? इस यात्रा में हमारी भेंट श्रीसम्प्रदाय के ऐसे अनुयायियों से हुई, जो बिल्कुल भिन्न आचारी थे।"

भक्तों के प्रश्नों का समाधान करते हुए श्री अनन्तानन्दजी ने कहा :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"भाइयो ! आपका अनुमान सत्य है। जिस प्रकार जगत्जननी श्री जानकीजी से प्रवर्तित हमारा 'श्रीसम्प्रदाय' है, उसी प्रकार जगत्माता श्री लक्ष्मीजी द्वारा प्रवर्तित 'श्री लक्ष्मी सम्प्रदाय' भी है जो 'श्री वैष्णव सम्प्रदाय' के नाम से भी प्रख्यात है। महान आचार्य श्री रामानुजाचार्य के नाम से इस सम्प्रदाय को 'श्री रामानुजी सम्प्रदाय' भी कहते हैं। उनके अनुयायी-आचारी वैष्णव कहे जाते हैं।

दोनों सम्प्रदायों में साम्यता भी है और भिन्नता भी। दोनों के सिद्धान्तों को आचार्यों ने अपने ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है।

दोनों वैष्णव सम्प्रदाय हैं, दोनों ऊर्ध्वपुंडधारी हैं। परन्तु इष्ट-भेद, आचार-भेद तथा मान्यता-भद से दोनों सम्प्रदाय भिन्न ही हैं। दोनों की भिन्नता इस प्रकार है :

(1) हमारे उपास्य परब्रह्म परमात्मा श्री रामजी हैं। वे ही हमारे ध्येय, गेय, तथा ज्ञेय हैं। हमारा गेय ग्रन्थ आदिकाव्य श्री वाल्मीकि रामायण है, तथा मुक्ति प्राप्ति के निमित्त साम्प्रदायिक श्री वैष्णवों को गुरु परम्परा से श्रीराम षडाक्षरी तारक मन्त्र की दीक्षा प्रदान की जाती है। परन्तु श्री रामानुजी सम्प्रदाय के उपास्य श्री नारायण हैं। वे ही मुक्त प्राप्य परब्रह्म माने जाते हैं। वहाँ श्री वैष्णवों को मूलमन्त्र अष्टाक्षर श्री नारायण मन्त्र दिया जाता है।

(2) हमारे मन्दिरों में परमात्मा श्री रामजी तथा जगदम्बा श्री जानकीजी के साथ श्री हनुमानजी रहते हैं, परन्तु उनके मन्दिरों में श्री नारायण के साथ माता लक्ष्मीजी तथा गरुड़ रहते हैं। वे शठकोप की मूर्ति का ही प्रसाद ग्रहण करते हैं, परन्तु हम सभी वैष्णव स्थान पर परमात्मा श्री रामजी का वास समझकर प्रसाद एवं चरणामृत ग्रहण करते हैं।

(3) रामानुजी वैष्णव अपने मन्दिरों में गंगाजल को विष्णु का पादोदक मानकर भगवान के स्नान-पूजन में अथवा ठाकुरजी का भोग-भोजन बनाने में उसका प्रयोग नहीं करते। मन्दिरों के अन्दर खोदे गये कूप से ही भगवान की पूजा, अर्चा, भोगराग आदि होता है। पुजारी का भोजन भी परदे के अन्दर ही होता है। परन्तु हमारे यहाँ गंगाजल को पवित्र मानकर भगवान का स्नान, पूजन, प्रसाद उसी से बनता है।

(4) हम श्री सरयूजी की परिक्रमा को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे लोग श्री गोदावरी की परिक्रमा को मोक्षदायी मानते हैं।

(5) हमारे श्रीसम्प्रदाय में श्रीराम महायज्ञ, श्रीसीता यज्ञ आदि करते हैं, परन्तु वहाँ मात्र श्री महाविष्णु यज्ञ करते हैं। यज्ञ की सामग्री एवं विधि सर्वथा भिन्न हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम पशुहिंसा को अवैध तथा अनुचित मानते हैं, परन्तु वे इसे वैध तथा श्रेष्ठ कर्म मानते हैं। यज्ञावशेष को अथवा हवनावशेष को हम पवित्र मानकर धारण करते हैं, परन्तु वे भस्म को अग्नि की विष्ठा कहकर अपवित्र मानते हैं।

(6) मन्त्र दीक्षा विधि तथा संन्यास विधि में भी भेद हैं। पंचसंस्कार में हम तुलसीमाला सतत धारण करते हैं, धनुर्बाण का चिह्न अंकित करते हैं, तथा गोपीचन्दन, रामरज आदि किसी भी पवित्र स्थान की मृत्तिका का तिलक करते हैं।

श्री रामानुजी सम्प्रदाय में तुलसीमाला मात्र विशेष समय पर ही धारण की जाती है, शंखचक्र के चिह्न धारण किये जाते हैं तथा मात्र भेलकोटा का श्वेत तिलक ही मान्य किया जाता है।

(7) परमात्मा श्रीराम के अनन्य उपासक होने पर भी हम श्रीकृष्ण, विष्णु, आदि का आदर करते हैं। 'वैष्णवानां यथा शंभु.' आदि से शिवजी का भी सत्कार करते हैं। परन्तु अनन्यता के नाम पर श्रीराम मन्त्र, श्रीकृष्ण मन्त्र आदि मन्त्रों की निन्दा भी किसी श्री रामानुजी वैष्णव द्वारा की गयी है। वे पूर्णतः शैवद्वेषी हैं।

(8) हम शंख को भगवान के सेवार्चन में प्रयोग में लेते हैं, परन्तु वे शंख को सेवार्चन में नहीं लेते।

यह भिन्नता मात्र जानने के लिए ही है। हमें तो बिना किसी भेदभाव से परमात्मा के प्रत्येक प्रेमी को प्रेम ही करना है। यही हमारे सद्गुरुदेव हमेशा हम सबसे कहते हैं।"

श्री अनन्तानन्दजी के उत्तर से भक्तों को पूर्ण सन्तोष हो गया। सत्संग के पश्चात् भजन-कीर्तन शुरू हुआ। सबके आग्रह पर आज रैदासजी ने स्वरचित भजन सुनाया :

सतगुरु हमहु लषाई बाट !
जनम पाछले पाप नसाने, मिटिगो सबु संताप।
बाहरि पोजत जनम गँवाएँ, उनमनि ध्यान रहे घट आप।
सबद अनाहद बाजत घर मँह, अगम ग्यानि मौ गुइ परताप।
धन-दारा महँ रहियो मगन नित, गुन्यो न भिचुको ताप।
कहि रविदास गुरु रह दिपावई, तृषा बुझी मिट मन संताप।

भजन सुनकर भक्तगण प्रसन्न हो गये। धीरे-धीरे लोग अपने-अपने स्वस्थान को जाने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(7)

मुस्लिमों के आतंक से राजपूत राजाओं ने अपने शौर्य एवं देशप्रेम से अपने प्रदेश को स्वतन्त्र रखा था। मुहम्मद तुगलक के अनेक आक्रमणों के बावजूद भी क्षत्रियों ने उसे जीतने नहीं दिया था। अनेक छोटे-छोटे राज्यों के राजा एकत्रित होकर यवनों का विरोध करके उत्तर हिन्दुस्तान के पश्चिमी भाग (राजस्थान एवं म० प्र०) को मुस्लिम शासकों से स्वतन्त्र रखने में सफल रहे थे। उन स्वतन्त्र राज्यों में मध्यप्रदेश तथा राजस्थान की सीमा पर छोटा-सा गांगरौनगढ़ नामक राज्य था। भक्तवत्सल तथा नीतिनिपुण राजा पीपाराव प्रतिष्ठित राजवंश के मुकुट बनकर राजगद्दी को शोभायमान कर रहे थे। राजा के प्रति प्रेम से गढ़ को रावगढ़ भी कहते थे।

राजा पीपाजी माता जगदम्बा के अनन्य उपासक थे। धीरे-धीरे सात्विक भावना उनमें इस प्रकार प्रदीप्त हुई कि राज्य कार्य अपनी विदुषी रानी सीताजी एवं कुशल एवं धार्मिक मन्त्रियों पर छोड़ नित्य साधना में लग गये।

उनकी अखण्ड निष्ठा तथा आराधना से प्रसन्न होकर माता जगदम्बा प्रकट हुई तथा राजा को वरदान माँगने के लिए कहा। राजा पीपाजी ने हाथ जोड़कर कहा, "हे माता ! आपके दर्शन मात्र से मैं धन्य-धन्य हो गया। आपकी असीम कृपा से समस्त प-वर्ग से मैं सन्तुष्ट हूँ। प्रकृति के प्रत्येक भोग्य पदार्थ एवं ऐश्वर्य मुझे सहज ही प्राप्त हैं। अब तो आप ऐसा वरदान दीजिये कि मेरी अपवर्ग की कामना सन्तुष्ट हो जाय।"

जगन्माता ने प्रसन्नता से कहा, "हे राजन् ! तेरा मनोरथ अवश्य सफल होगा। परन्तु अपवर्ग की प्राप्ति—परमार्थ की प्राप्ति—भगवान शेषशायी की आराधना की अपेक्षा रखती है। अतः तू चक्र पर स्थित काशी में जा। वहाँ परब्रह्म परमात्मा श्री राघवेन्द्र नर शरीर धारण करके मुक्ति का सदाव्रत क्षेत्र खोलकर बैठे हैं। श्रीमठ के स्वामी रामानन्दजी के द्वार से कोई खाली नहीं जाता। वे ही वास्तव में तेरे इष्टदेव हैं, अतः तू वहीं पहुँच। मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है।"

कहते हुए देवी अन्तर्ध्यान हो गयीं। राजा भी भुक्ति को छोड़कर मुक्ति के मार्ग पर जाने के लिए लालायित हुए। परन्तु केतुग्रह के उदय के समान राजसी वैभव उनके आड़े आ गया। उनकी वृत्ति पुनः कुमार्ग सेवी हो गयी।

माता जगदम्बा ने देखा कि राजसी वैभव का मोह राजा को परमार्थ पथ पर प्रयाण करने से रोक रहा है, तो उन्होंने एक उपाय किया। वैष्णवी माया प्रेरित एक प्रेत राजा को प्रताड़ने लगा, जिससे राजा सजग और सचेत हो गये। उनका विश्वास-भानु पुनः उदयाचल पर पहुँच गया। राजसी वैभव छोड़कर सब-कुछ रानी तथा मन्त्रियों को सौंप वे काशी जाने के लिए तैयार हुए।

काशी पहुँचने पर राजा पीपाजी ने गंगाजी में स्नान किया। स्नानादि से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवृत्त होकर श्रीमठ पहुँचे। जगद्गुरु की कुटीर का परदा बन्द था। अनन्तानन्दजी के कहने पर राजा ने बाहर ही से आर्त स्वर में प्रार्थना की :

"हे मुनिश्रेष्ठ ! घोर संसार सागर में पड़े हुए मुझ दीन की रक्षा कीजिये। परमार्थ पथ की दीक्षा देकर मेरा जीवन कृतार्थ कीजिये।"

स्वामीजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रतीक्षा करते-करते कितने ही दिन बीत गये। राजा पीपाजी श्रीमठ में ही रुके और गुरुआज्ञा की प्रतीक्षा करते रहे। उनके अहंकार तथा मोह का विसर्जन हो गया था।

जब अनन्तानन्दजी से नहीं रहा गया तब उन्होंने सद्गुरुदेव से प्रार्थना की। इस पर स्वामीजी ने कहा, "उस राजा को कह दो, कि कुएँ में कूद पड़े।"

गुरुवाक्य में श्रद्धावान अनन्तानन्दजी ने गुरुआज्ञा राजा को सुनायी। पीपाजी अब तक पूर्णतः असंग तथा गुरुचरण में प्रीतिवान बन चुके थे। प्राणों की चिन्ता न करते हुए, सद्गुरुदेव के वाक्यों को ब्रह्मवाक्य मानकर, सत्शिष्य के लक्षणों से आभूषित पीपाजी सुनते ही दौड़ते हुए आश्रम से थोड़ी दूर एक कुएँ में कूद गये।

आश्रम में हाहाकार मच गया। लोग कूप की ओर दौड़े तथा जगत पर चढ़कर झाँकने लगे। परन्तु जिसने भी देखा, सबको भिन्न-भिन्न दृश्य दिखायी दिये। इस चमत्कार को कोई न समझ सका, न ही वर्णन करने में समर्थ हुआ।

कुछ ही क्षणों में लोगों ने एक अधिक आश्चर्य देखा। राजा पीपाजी कुएँ से अधर ही बाहर आये। यह चरम दीक्षा नहीं, तो परम दीक्षा अवश्य थी। आँखों में अश्रु लिए राजा पीपाजी सद्गुरुदेव की कुटी की ओर गये। जगद्गुरु गुफा के बाहर ही मधुर मनोहर स्मित करते हुए खड़े थे।

दौड़कर राजा उनके श्रीचरणों में गिर गये तथा अश्रुवारि से पाद-प्रक्षालन करने लगे। आचार्यजी प्रसन्नतापूर्वक राजा के मस्तक पर हाथ फेरते रहे।

महाराज मनु के अंशी पीपाजी को कुछ दिन आश्रम में रहकर सेवा करने का आदेश दिया गया। शुभ दिन देखकर उन्हें वैष्णवी दीक्षा प्रदान की गयी। सद्गुरुदेव की अमित कृपा से राजा अब अपवर्ग की प्राप्ति के अधिकारी बन गये थे।

आश्रम में सद्गुरुदेव एवं साधु-सन्तों की सेवा का कुछ समय वे आनन्द लूटते रहे। परन्तु जगद्गुरु ने तदनन्तर स्वगृह जाकर राजसेवा, लोकसेवा तथा साधुसेवा करने का आदेश देकर पुनः गांगरौनगढ़ भेज दिया।

राजऋषि पीपाजी समय-समय पर श्रीमठ में आते तथा सद्गुरुदेव के दर्शन एवं सत्संग का लाभ लेते थे। कई बार उन्होंने अपने श्री सद्गुरुदेव को राज्य में पधारकर उसे पवित्र करने की प्रार्थना भी की। जगद्गुरु ने भी प्रार्थना का स्वीकार करते हुए यही कहा कि समय आने पर वे अवश्य गांगरौनगढ़ पधारेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी निष्ठा, भक्ति तथा सेवा से पीपाजी जगद्गुरुश्री के प्रमुख शिष्यों में गिने गये।

(8)

दक्षिण भारत में बहुत वर्षों से शैव तथा वैष्णवों में घोर विद्वेष फैला हुआ था। शिव के उपासक वैष्णवों को तथा विष्णु के उपासक शैवों की हेय दृष्टि से देखकर देवासुर संग्राम की तरह मार-काट करते रहते थे। वहाँ वैष्णवों की संख्या कम तथा शैवों की संख्या अधिक थी।

शिव उपासकों की प्रताड़ना से तंग आकर वैष्णव उत्तर देश में चले आये। परन्तु उत्तर भारत में भी वैष्णवों की पुरियाँ शैवों के हाथों में थीं तथा उनकी संख्या अधिक थी। यहाँ वैष्णव 'एकांतिक' नाम से प्रसिद्ध हुए।

उत्तर भारत में पाशुपत्य लिंगायत वीर शैवों का पंथ था। उन्होंने पांचरात्रिक, चक्रधारी तथा वीर वैष्णवों को सर्वत्र परास्त किया तथा उनके हृदय में आतंक जगा दिया। अघोरपंथी वाममार्गियों ने भी अपने दुराचार से वैष्णवों को बहुत त्रस्त किया। कामरूप, कुलाचारी, पंचमकारी, चामुंडी तथा भैरवी अघोरपंथियों के अत्याचार से वैष्णव त्राहि-त्राहि पुकारने लगे थे।

उन्होंने वैष्णव शिरोमणि जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की शरण ग्रहण की। वैष्णवों की दीन दशा देख स्वामीजी ने उन्हें रक्षण दिया। अतः बड़े-बड़े तामसी सिद्ध अघोरी एकत्र होकर काशी आये।

तामसी अघोरियों ने अपनी मायावी शक्ति से सुन्दर स्त्रियाँ उत्पन्न कर गुफा के भीतर प्रकट कर दीं। जगद्गुरु गुफा में समाधिस्थ थे। अघोरियों ने आचार्यश्री की निन्दा हेतु लोगों को वहाँ बुलाया।

अधिक लोग एकत्रित होने से कोलाहल होने लगा। स्वामीजी का ध्यान टूटा। उन्होंने तुरन्त परिस्थिति को समझ लिया। परदा खोलकर अधर में अवस्थित होकर ध्यानमग्न हो गये। सात्विक शक्ति के प्राबल्य से तामसी शक्ति द्वारा उत्पन्न ललनाएँ गुफा में प्रकट होते ही पत्थर की हो गयीं। जब लोगों ने यह देखा तो तामसियों को फटकारा।

उपस्थित लोगों ने जगद्गुरु को इस प्रकार तंग करने वाले अघोरियों के सिरों पर गुरुदेव द्वारा बनायी गयी पत्थर की ललनाएँ पटक-पटक मारा। वाममार्गी लज्जित होकर चले गये। काशी में उनकी कुछ न चली, मात्र अपमान ही हुआ।

काशी से वे पुनः दक्षिण देश जाने को तैयार हुए। रास्ते में दण्डपाणि भैरवजी ने परब्रह्म के अंशावतार से ऐसा कुकृत्य करने पर भारी दण्ड दिया तथा सबके शिर काट दिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके जाने के बाद लोगों ने जगद्गुरुश्री से गुफा में पूर्ववत् विराजने की प्रार्थना की। जगद्गुरुश्री ने मायावी शक्ति से दूषित गुफा को परिष्कृत करने की आज्ञा दी।

श्री अनन्तानन्दजी से आज्ञा लेकर बड़े-बड़े पण्डितों ने श्रद्धापूर्वक लीप-पोत-कर हवन किया। तदनन्तर श्री महाराजजी अन्दर विराजमान हुए।

दक्षिण भारत में वैष्णव-शैव द्रोह की विस्फोटक परिस्थिति एवं हिन्दू प्रजा में बढ़ते हुए वैमनस्य ने स्वामीजी को इस विषय में विचारने पर विवश किया। परमात्मा की प्रेरणा उन्हें पुनः-पुनः दक्षिण में यात्रा करके इस परिस्थिति में परि-वर्तन लाने के लिए प्रोत्साहित करती रही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6. भारत-दिग्विजय

आदिकाल से ऋषि-महर्षियों ने संन्यासियों के लिए सनातन आचार बनाया है कि उन्हें साधना के साथ-साथ समय-समय पर विचरण करके आध्यात्मिक साधना का लाभ सर्वसाधारण जनता को भी देना चाहिए।

आदि परम्परा की रक्षा एवं तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने वि० स० 1415 में चारों धाम सहित सम्पूर्ण भारतवर्ष की यात्रा करने का निश्चय किया।

राजनैतिक बल विधर्मियों के हाथ में था। इस समय अगर सामाजिक रूप से हिन्दुओं में एकत्व न आ सके तो सनातन संस्कृति समूल उन्मूलित हो सकती थी। हिन्दुओं में वैष्णव-शैव द्रोह, ऊँच-नीच का भेदभाव तथा जटिल कर्मकाण्डों की विविधता से समाज में अस्थिरता फैली हुई थी। दिल्ली में शासन का सूत्रधार अब बदल गया था। मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् वि० स० 1407 में फिरोजशाह तुगलक ने सत्ता हस्तगत कर ली थी। वह था तो राजपूत माता का बेटा, परन्तु मुस्लिमों की आँखों में उच्च सिद्ध होने से हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार करता था। वह अत्यन्त धर्म-असहिष्णु व्यक्ति था। इस परिस्थिति में जगद्गुरुश्री ने भक्ति के बल पर लोगों को एकत्रित करने का विचार किया।

श्रीमठ से यात्रा के विषय में घोषणा सुनते ही अनेक श्रद्धालु एवं साधु-सन्तों ने जमात के साथ चलने की अनुमति माँगी। पैदल यात्रा भीषण जंगलों एवं वनों से होकर होनी थी अतः जमात के साथ यात्रा करना अति उत्तम था। साथ ही भगवान स्वयं उपस्थित हों तो उस यात्रा को कैसे छोड़ दें? कौन ऐसा सुवर्ण अवसर जाने देगा?

यात्रा की प्रस्तुति में व्यस्त हो गया था पूरा आश्रम। दूर-सुदूर से अनेक साधु-सन्त यात्रा में सम्मिलित होने आश्रम में आते रहे। अनेक भक्तजन भी साथ चलने की तैयारी में लग गये। चारों धाम की यात्रा···न जाने कितना समय लगेगा। पैदल ही यात्रा होगी। अनेक कष्टों को सहना होगा, परन्तु प्राणाधार तो साथ ही थे फिर कष्ट किस बात का?

यात्रा का निर्धारित दिन ज्यों-ज्यों निकट आता गया त्यों-त्यों श्रीमठ में भीड़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बढ़ती गयी। कुछ शिष्यों को श्री सद्गुरुदेव के साथ चलने का तो कुछ शिष्यों को आश्रम में रुकने का आदेश मिला था। अनुल्लंघनीय था श्रीआदेश।

शुभ दिन का मंगल मुहूर्त आ गया। यात्रा में जाने वाले आनन्दित एवं न जाने वाले उदासीन हो गये। स्वस्तिवाचन हुआ। काशी के नर-नारी श्रद्धालु यात्रियों को विदाई देने प्रातःकाल से ही आश्रम में उपस्थित हो गये। शत-शत कण्ठों से उद्भूत जयनाद से धरा और गगन कम्पित हो उठे। भगवान श्री सीता-रामजी, जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी एवं सनातन धर्म के जयघोष से जंगल प्रतिध्वनित होने लगा।

समय होने पर महामहिमामय जगद्गुरु निज गुफा से बाहर आये। हजारों अंजलि स्वतः बँध गयीं। मस्तक झुक गये प्रणम्य के दर्शन मात्र से। आचार्यप्रवर एक वन्द पीनस में विराजमान हुए। श्री अनन्तानन्दाचार्यजी एवं श्री नरहरा-नन्दाचार्यजी चमर लिए पास ही खड़े थे। कुछ क्षणों में ही बन्द पीनस से शंखध्वनि गुंजरित हुई। पुनः जयघोष गूंज उठा और यात्रा प्रारम्भ हो गयी।

श्रद्धालु लोग 'श्रीराम जय राम जय जय राम' की धुन सहित दूर तक जमात के साथ उन्हें छोड़ने गये। जमात में कितने ब्राह्मण, साधु, भक्त, गृहस्थ तथा संन्यासी थे यह कोई गिन न सका। प्रिय सद्गुरुदेव के वियोगजनित दुखों का स्मरण करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से काशी के लोग वापिस लौट गये।

जमात आगे बढ़ती रही। सर्वप्रथम राजा पीपाजी के आग्रह से गांगरौनगढ़ की ओर जमात बढ़ी। रास्ते में अनेक नगर-ग्राम आये। जहाँ-जहाँ से जमात निकली, बड़ी श्रद्धा से लोगों ने जमात का स्वागत किया, मुकाम की व्यवस्था की तथा जगद्गुरुश्री का जयघोष किया। श्रद्धालु जनता के आग्रहवश सत्संग भी होता रहा। कई स्थानों पर विधर्मी आतंक एवं अत्याचारों की चर्चा भी हुई। जमात के सन्तों ने एवं भक्तों ने लोगों को धैर्य एवं हिम्मत प्रदान की। जगद्गुरु के दर्शन मात्र से अभिभूत जनता अपना सर्व दुःख-क्लेश भूल प्रेम प्रवाह में बहकर आनन्दित हो उठती थी। उनके वात्सल्यमय, अनन्त करुणार्णव त्रिभुवन वन्दनीय व्यवहार से आतंकित जनता के हृदय में एक नया आत्मविश्वास, नयी उमंगें स्वयं अंकुरित हो उठती थीं। भगवान श्रीकृष्ण का गीता वचन अब अवश्य पूर्ण होगा यह प्रेरणा अनन्त अन्तर से उठती थी।

जमात अपनी मस्ती में बढ़ती रही। जमात के भजनानन्दी महात्माओं के साथ-साथ ठाकुरजी भी चल रहे थे। दोपहर एवं रात्रि में जहाँ पहुँचते वहीं रुक-कर ठाकुरजी के लिए भोग बनता तथा प्रसाद ग्रहण होता था। अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर संध्या-उपासना करके जमात आगे बढ़ती। भिन्न-भिन्न समूह अपने-अपने आनन्द में चलते जा रहे थे। कोई कीर्तन, कोई ज्ञान-चर्चा तो कोई भगवत्-चर्चा करते थे। कोई निजानन्द में अकेला ही चल रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सायंकाल कबीरजी एवं रैदासजी के साथ अन्य भक्तों का भजन-कीर्तन का कार्य-क्रम होता था। प्रसंगानुसार तात्कालिक पद की रचना करने की सद्गुरुदेव प्रदत्त उनकी क्षमता पर अनेक लोग मुग्ध थे। उनकी रचनाएँ सर्वत्र प्रसिद्ध होती जा रही थीं।

धर्मोपदेश देते हुए जमात एक ग्राम में पहुँची। देवी के मन्दिर के पास बड़ी-सी भीड़ मेले के रूप में दिखायी दी। तदनन्तर पता चला कि देवी का उत्सव होने से यहाँ बलि चढ़ाने पशु लेकर दूर-दूर से लोग आये थे। यह सुनते ही स्वामीजी ने अपनी यात्रा रोक दी। भीड़ को चीरते जगद्गुरुश्री स्वयं मन्दिर में पहुँचे।

उन्होंने देखा कि कज्जलगिरि से एक भीमकाय शाक्त संन्यासी के तत्वावधान में बड़े-बड़े ब्राह्मणगण पूजन-हवन कर रहे थे। कुछ लोग झाँझ, ढोल, खंजरी आदि बजाते हुए देवी के आगे नृत्य कर रहे थे। मदिरा की दुर्गन्धि से उबलते हुए शाक्त संन्यासी भैरवनाथ से स्वामीजी ने यह बलिदान बन्द करने की विनती की तथा लोगों को हिंसापूर्ण कार्य से दूर रहने का आदेश दिया। स्वामीजी के तेजस्वी मुखमण्डल तथा प्रतिभावन्त गगन-गम्भीर स्वर से सब रुक गये। अतः भैरवनाथ अत्यन्त क्रोधित हुआ। अपने कार्य की सत्यता सिद्ध करने को उसने बलिदान को वैदिक क्रिया बताकर शास्त्रार्थ किया। परन्तु स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी ने शास्त्रों के अनेक उदाहरण देकर भैरवनाथ को चुप कर दिया। उन्होंने कहा कि जगदम्बा के नाम पर जगदम्बा की अबोल-मूक सन्तानों की हत्या करने वालों को जगदम्बा कभी क्षमा नहीं करती। पद्मपुराण का पद्मोत्तर खण्ड का पार्वतीजी का वचन याद दिलाया :

ये ममार्चनमित्युक्त्वा प्राणिहिंसन तत्पराः।
तत्पूजनं ममभिष्यं यद्दोषातद्धोगतिः॥
मदर्थे शिव ! कुर्वन्ति तामसा जीवधातनम्।
आकल्पकोटि निरये तेषां वासो न संशयः॥

अर्थात् हे शिवजी ! जो लोग मेरी पूजा के नाम से प्राणी की हिंसा करते हैं, उनकी यह पूजा अपवित्र है। ऐसी पूजा के दोष से मनुष्य अधोगति को प्राप्त होता है। तामसी प्रकृति के जो लोग मेरे लिए पशुवध करते हैं, निश्चय ही उन्हें कोटि कल्प तक नर्क में रहना पड़ता है।

इस चर्चा से प्रभावित होकर भैरवनाथ के शिष्यों ने तमाम पशुओं को बन्धन से मुक्त कर दिया तथा अपनी भूल के लिए क्षमायाचना करने लगे।

अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा हेतु भैरवनाथ ने क्रोधित होकर मुनिराज के ऊपर यज्ञकुंड की अग्नि फेंकी परन्तु वह पुष्पांजलि के रूप में स्वामीजी के श्रीचरणों में अलंकृत हुई। निष्फल भैरवनाथ ने पशुवध करने का शस्त्र (गंडासा) स्वामीजी की ओर फेंका, परन्तु योगबल के संकेत मात्र से गंडासा भैरवनाथ की गर्दन पर ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ा तथा उसका शिर कटकर यज्ञकुंड में जा गिरा। उपस्थित जनता ने स्वामीजी के जयनाद से दिशाएँ गुंजित कर दीं। स्वामीजी का अद्भुत चमत्कार देख उनके प्रति लोगों की श्रद्धा अत्यन्त बढ़ गयी। उन्होंने आग्रहपूर्वक स्वामीजी को अपना अतिथि बनाया तथा अर्चन-वन्दन किया। स्वामीजी ने अहिंसा के पक्ष में उन्हें उपदेश दिया। सर्व हिन्दुओं को एकत्रित होकर विधर्मियों का विरोध करने की प्रेरणा दी। अनन्त प्राणियों की श्रद्धा प्राप्त करके, एक रात्रि वहाँ रुककर, आगे प्रस्थान के लिए जमात प्रस्तुत हुई। मार्ग में देशप्रेम एवं धर्मप्रेम से एकत्व रखने के उपदेश सहित अनेक ग्रामजनों को कृतार्थ किया। इस प्रकार जमात ने मालवा की सुहावनी भूमि पर पदार्पण किया।

गांगरौनगढ़ के नरेश राजा पीपाजी को प्राणप्रिय आराध्यदेव के आगमन की सूचना मिलते ही वे अपने मन्त्रियों, विद्वान मण्डली एवं प्रतिष्ठित नागरिकजनों के साथ सद्गुरुदेव भगवान के स्वागतार्थ राजधानी की सीमा से आगे आये। उन्होंने अपनी नगरी को पूर्णतः सजा रखा था। नगर की जनता भी किसी उत्सव का आनन्द मना रही थी। धर्मप्रिय राजा के चमत्कारी सद्गुरुदेव के दर्शन से कृतकृत्य होते हुए सब प्रसन्न हो रहे थे। प्रत्येक भवन पर पताकाएं फहरा रही थीं। नगर के गवाक्षों से और भवनों से अगरु धूम्र उठ रहा था। राजपथ के दोनों ओर भारी जन-समूह स्वामीजी के दर्शनार्थ खड़ा था।

रत्नजड़ित रथ पर विराजमान राजा नीचे उतर आये। उत्तुंग गजों पर आरूढ़ मन्त्रीगण भी उतरे। जैसे ही सद्गुरुदेव की पीनस के दर्शन हुए, राजा आतुर गति से इस प्रकार दौड़े जैसे प्यासा किसी जलाशय की ओर जाता है। पूरा देह स्वेद से स्नान कर चुका, नेत्र निर्झर बन गये। दर्शनोत्सुक आँखें कैसे तृप्त होतीं क्योंकि भाव के अतिरेक में नेत्र के अश्रु अर्घ्य के रूप में वारिधारा बनकर बार-बार उन महिमामय के श्रीचरणों को प्रक्षालित करने लगे। उनका रोम-रोम पुलकित हुआ, स्वर गद्गद् हुआ और मन? मन तो अपनी भावधारा में ऐसे अन्तर्हित हो गया कि शत सहस्र कण्ठों ने किस प्रकार दिशाओं को जगद्गुरुश्री के जयघोष से गुंजित किया वह भी ज्ञात न रहा।

बहुत समय से आमन्त्रित करते रहे थे वे सद्गुरुदेव को। आज पीपाजी को परम प्रतीक्षा तथा उत्कट अभीप्सा का फल प्राप्त हुआ। अन्तर के असीम उल्लास तथा प्रेमावेश से रोमांचित शरीर पीपल-पत्र की भाँति काँप रहा था। आग्रहपूर्वक सद्गुरुदेव की पीनस राजा ने अपने कन्धों पर उठा ली। भगवान ने स्वयं आज भक्त का घर पावन किया था। नंगे पैर राजा पीनस उठाकर राज-मार्गों पर होते हुए आगे बढ़े। जनता ने पुष्प-वर्षा करके जगद्गुरु एवं जमात का स्वागत करके अपना आनन्द व्यक्त किया। अभिभूत हो गये नगरवासी जगद्गुरुश्री के दर्शन करके। समस्त उपमाओं को गौरव प्रदान करने वाला तपोमय तेजस्वी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखारविन्द, पौराणिक ऋषि-महर्षियों की स्मृति सजीवन करता हुआ जटाकलाप तथा शुक्ल वस्त्र की शुक्लता को भी निखारने वाला गौर सुदृढ़ श्रीअंग। महामुनि को लक्षित करके स्वतः जुड़ गयीं लक्ष-लक्ष अंजलियाँ, श्रद्धावनत हो गया मस्तक तथा जयनाद लहराता हुआ बढ़ता गया—बढ़ता ही रहा। सच्ची श्रद्धा एवं सच्चा अनुराग था उसमें।

एक विशाल उद्यान में जमात के मुकाम की व्यवस्था की गयी थी। श्री गुरुदेव के लिए एक पर्णकुटी बनाकर द्वार पर परदा लगाया गया था। यहाँ पहुँचते ही राजा-रानी ने गुरुदेव का पाद-प्रक्षालन किया। अर्घ्य-पाद्यादि निवेदित किया गया अन्य प्रिय अतिथियों को भी। षोडशोपचार से स्वामीजी का पूजन किया। सबने प्रसाद, चरणामृत लिया और श्रम-श्रांत जमात को विश्राम कराया। स्नान-ध्यान आदि से निवृत्त होकर ठाकुरजी को भोग लगाया गया। राजभवन से दिव्य सामग्रियों से बनी पायस ठाकुरजी के लिए आयी। सन्तमण्डली सहित स्वामीजी ने पायस प्रसादी ग्रहण की तथा समय होने पर शयन के लिए निज कुटीर में चले गये।

प्रातःकाल स्नान, संध्या, पूजनादि से निवृत्त होकर कोटि-कोटि सूर्य के समान तेजपूर्ण जगद्गुरु सत्संग पिपासु जनता के सन्मुख आये। राजा पीपाजी ने गुरुदेव का श्रद्धावनत हो पूजन किया। असंख्य जनता भी वहाँ उपस्थित थी, उनका मस्तक भी झुक गया। जयध्वनि स्वतः शत-शत कण्ठों से स्फुटित हुई जिससे धरा और गगन गुंजारित हो उठे। महामुनि ने प्रजा को सम्बोधित करते हुए कहा :

"प्रेमियो ! परमात्मा की अहैतुकी कृपा से साधना का धाम, मोक्ष का द्वार मानव तन मिला है। इसे व्यर्थ न गँवाकर आत्म-उद्धार करना चाहिए। अल्पज्ञ, अल्पशक्ति जीव कितना भी विद्वान, कर्मठ अथवा सर्वसाधन सम्पन्न होने पर भी अपने पुरुषार्थ से संसार समुद्र को पार नहीं कर सकता। संसार में स्वकृत कर्मों के द्वारा मानव नाना प्रकार के सुख-दुःख, हानि-लाभ, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों की प्राप्ति करता है।

भवसागर से पार उतरने के लिए एकमात्र परमात्मा के चरणकमल ही सुदृढ़ जहाज हैं। संसार से जिस दिन वैराग्य हो वही शुभ दिन है। सबसे बड़ा पुरुषार्थ सांसारिक पदार्थों, सम्बन्ध, मान तथा बढ़ाई का त्याग करके परमात्मा की शरण में जाना है। सबसे बड़ी तपस्या मानसिक त्याग है।

जो व्यक्ति परमात्मा को ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष अथवा अन्य सांसारिक वासनाओं की पूर्ति हेतु भजते हैं, प्रभु उसे उसका अभीष्ट प्रदान कर देते हैं। जो इन सबको न चाहकर मात्र परमात्मा को चाहता है, उसे प्रभु अपने समीप रख लेते हैं एवं अपनी प्रेमसुधा का पान कराते हैं। जो परमात्मा को प्रेम करते हैं वे ही चतुर हैं; संसार को प्रेम करने वाले तो माया के द्वारा ठगे गये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपको पवित्र भारत भूमि पर मानव तन देकर परमात्मा ने आपसे बहुत अपेक्षा रखी है। आप सबको कटिबद्ध होकर राष्ट्र, धर्म तथा समाज के उत्थान के लिए कार्यरत होना है। व्यक्तिगत अथवा साम्प्रदायिक भेदभाव मिटाकर समाज को, धर्म को, संस्कृति को छिन्न-भिन्न होने से बचाना है। अपनी अन्तरात्मा को संकुचित न करते हुए विशाल बनाना है।

साधना हेतु अन्तरात्मा को इतना विशाल बनाना है कि अखिल विश्व को अपनी आत्मा में तथा अपनी आत्मा को अखिल विश्व में देखें। अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाओ। क्या आप सब जानते हो कि आपकी बहिर्मुखता ने ही आपको अपने प्रियतम परमात्मा से दूर रखा है? जीवन के नाना प्रकार के क्लेप व्यक्ति को बहिर्मुख कर देते हैं परन्तु उनको क्लेप, दु:ख, सुख आदि न मानते हुए जीवन साधना में परमात्मा प्रदत्त परीक्षा ही मानना चाहिए। क्योंकि परिस्थिति को अनुकूल या प्रतिकूल मानना ही भ्रमणा है, जिससे मन बहिर्गामी बनता है। अत: अपने कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र तथा धर्म के प्रति कर्तव्य का पालन करते हुए व्यक्तिगत साधना में भी निरत हो जाइये।"

एक श्रद्धालु ने करबद्ध पूछा, "हे भगवन्! अन्तरात्मा को विशाल बनाने तथा इस उपदेश को चरितार्थ एवं फलितार्थ करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?"

कमलदल विशाल दृगों से प्रेमवारि करते हुए महाप्रभु ने पूर्व परिचित मधुर स्मित से प्रत्युत्तर दिया, "चन्द्रमा की त्रिवेणी में स्नान करते जाओ और महामन्त्र का जाप करते रहो। हे वत्स! चन्द्रमा मन का अधिष्ठाता देव है। मानव शरीर में चेतन तत्व को प्रवाहित करने वाली तीन मुख्य नाड़ियाँ इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना का संगम स्थान त्रिवेणी भृकुटि के मध्य में होता है। साधक को चाहिए कि मनरूपी चन्द्रमा को भृकुटि में एकाग्र करे तथा महामन्त्र 'श्रीराम' का जाप करता रहे। सतत जाप से मन की प्रचण्ड शक्तियों का व्यय न होकर एकाग्र होती रहेंगी। जन्माजन्म के मलिन संस्कारों का अन्धकार भगवान प्रकाश से दूर होता जायेगा तथा संस्कार-बन्धन से मुक्त हृदय विशाल बनता जायेगा।"

सत्संग की पूर्णाहुति पर जगद्गुरु कुटिया में चले गये। राजा पीपाजी ने प्रिय गुरुभाई कबीरदासजी से भजन सुनाकर जनता को लाभान्वित करने का आग्रह किया। कबीरजी ने गाया :

भाग्य बड़े जहाँ सन्त पधारे।
ये सन्तन हैं पर उपकारी, शरण आय को लेन उबारी॥
आवत सन्त को आदर दीजै, चरण धोइ चरणामृत लीजै॥
साहब का घर सन्तन माँहि, सन्त-साहब कछु अन्तर नाँहि॥
कहहिं कबीर सन्त भले पधारे, युग युगन के काज सँवारे॥

प्रसन्न हो गयी गांगरौनगढ़ की प्रजा। जगद्गुरुश्री ने पीपाजी के आग्रह से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ चतुर्मास निवास करने का आदेश दिया था। नित्य सत्संग होता रहा। दूर-दूर से हजारों की संख्या में श्रद्धालु यहाँ आते तथा सत्संग लाभ लेते रहे। वर्षा ऋतु का आरम्भ भी हो चुका था। राजा पीपाजी ने जमात को सर्व प्रकार से सुविधा दी। सन्तों ने अपने-अपने व्रत-नियम निभाये। सायंकाल को भजन-कीर्तन होता रहा।

गांगरौनगढ़ का पूरा राज्य ही राजा सहित पहले शाक्त मतावलम्बी था। परन्तु जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के धर्मोपदेश के प्रभाव से अब घर-घर में वैष्णव धर्म की पताका फहराने लगी। अनेक लोगों ने वैष्णव धर्म अंगीकार किया। राज्य-पण्डित कार्तिकेय चरण भी शाक्त मतवादी थे। वे धर्मप्रेमी एवं विद्वान थे। उन्होंने आचार्यश्री से शास्त्रार्थ करने की इच्छा व्यक्त की। अतः जगद्गुरु ने वैष्णव सिद्धान्त पर उपदेश देकर उन्हें कृतार्थ किया। कुछ समय चिन्तन-मनन करने के उपरान्त वे स्वयं श्री वैष्णवी दीक्षा लेने को समुत्सुक हो गये। चतुर्मास पूर्ण होते-होते सर्वत्र वैष्णव धर्म व्याप्त हो गया। गुरुभक्त राजा ने पूर्णरूपेण समर्पित भाव से सद्गुरुदेव के साथ जमात की सेवा की। पीपाजी के साथ रानी सीताजी को भी अब मानसिक वैराग्य हो गया था। संसार में वैराग्य ही एकमात्र विरल अनुभूति है, जो मात्र सद्गुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त होती है।

चतुर्मास पूर्ण होने पर आगे प्रस्थान के लिए जमात तैयार हो गयी। राजा पीपाजी एवं रानी सीताजी ने भी सद्गुरुदेव के साथ चलने का निश्चय किया। राज्यकार्य धार्मिक मन्त्री एवं युवराज को सौंपकर सद्गुरु की अनुमति लेकर वे भी यात्रा की तैयारी में लग गये। नगर के प्रजाजनों ने भावभरी विदाई दी। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की साक्षात प्रतिकृति, आत्माराम, आप्तकाम, नित्यतृप्त महा-मुनि की उपस्थिति से चतुर्मास किस प्रकार व्यतीत हुए यह ज्ञात भी न रहा। इतना समय कहीं कोई कलुष, कोई प्रमाद, कोई अव्यवस्था, कोई विकृति या ह्रास उनमें प्रवेश ही न कर पाये। नगर में सर्वत्र सौन्दर्य, शुचिता तथा सुमंगल ही दृष्टिगोचर होता रहा। सब-के-सब निर्मल बन प्रभु की सेवा करके सार्थक होकर अनुदिन अभ्युदय प्राप्त करने के सद्भागी बने। अब चैतन्यदाता यहाँ से प्रस्थान कर रहे थे। उनकी प्रत्येक स्मृति नगरजनों को आत्म-विस्मृत कर देती थी।

प्रस्थान का समय आ गया। पूजन-अर्चन के अनन्तर गम्भीर शंखनाद गूंज उठा। साथ ही सहस्र कण्ठों से जयघोष भी स्वयं उद्भूत हुआ। शिथिल स्वरों में भी यतिराज को विदाई देने पुनः-पुनः जयनाद गुंजारित कर रहे थे लोग। जमात ने वहाँ से प्रस्थान किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(2)

अब जमात कलकत्ता की ओर बढ़ने लगी। अभी-अभी वर्षा ऋतु समाप्त हुई थी। सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो गयी थीं, मेघों ने गगन छोड़ दिया था। नितान्त दिशाएँ, निर्मल स्वच्छ आकाश। गगन ही नहीं धरा तक धुल गयी थी। सरिताओं और सरोवरों में सागर के समान नीलमणि जैसा अमल वारि झलमल करता था। शीतल-मन्द सुरभि-संयुत वायु चलती थी। जहाँ जमात पहुँचती, प्रकृति मानो सोलह कलाओं सहित निखर उठती थी। प्राणियों के मन में आह्लाद उमड़ पड़ता था। अखिल सृष्टि के प्राणाधार अंश रूप में ही सही---पधार रहे थे। स्वागत के लिए क्या-क्या किया जाय? बल्लरियों पर पुष्प झूमने लगे थे। वृक्ष फलों से आच्छादित हो उठे थे।

जहाँ मुकाम हुआ सत्संग, भजन, कीर्तन चलता रहा। विधर्मी अत्याचार से त्रस्त प्रजा को नूतन हिम्मत एवं आश्वासन दिया गया। स्वधर्म में रत रहने की सूचना भी दी गयी। इस प्रकार जमात कलकत्ता पहुँची। वहाँ लोगों को धर्मप्रेम एवं धर्मोपदेश देकर नौका से वे गंगासागर पहुँचे। यह प्राचीन गुप्त तीर्थ था जिसकी महिमा क्षीण हो गयी थी। आचार्यप्रवर ने यहाँ पधारकर उसकी महिमा पुनः स्थापित की। यहीं महाराजा सगर के 60 हजार पुत्रों का उद्धार महाराजा भगीरथ ने किया था। महर्षि कपिल की वहीं तपोभूमि थी। यतिराज द्वारा लोगों को इसकी महिमा के विषय में जानकारी मिलने से पुनः वहाँ प्रतिवर्ष मकर-संक्रान्ति पर मेला लगना शुरू हुआ।

गंगासागर का उद्धार करके सन्त मण्डली एवं जमात सहित स्वामीजी महाराज पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी) की ओर बढ़ने लगे। हिन्दुओं को परस्पर द्वेष न करते हुए एक होकर विधर्मी अत्याचारों का सामना करने का आदेश दिया गया। बलात् मुस्लिम बनाये लोगों को कृपापूर्वक स्वामीजी ने पुन हिन्दुत्व प्रदान किया।

जमात के आगमन का समाचार मिलते ही पुरी के राजा जमात के स्वागतार्थ आये। पूजन-अर्चनादि के उपरान्त समारोहपूर्वक जमात ने नगर में प्रवेश किया। जैसे ही जमात ने मन्दिर के शिखर का दर्शन किया, साधु-सन्तों ने भगवान जगन्नाथ के जयघोष से दिशाएँ आन्दोलित कर दीं। पुरी के लोगों को जमात के आगमन की सूचना मिल गयी। धर्माचार्य, धर्म प्रतिपालक जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के दर्शनार्थ अनेक जन एकत्रित होने लगे। भगवान जगन्नाथ स्वयं बटुक रूप में आतपत्र लेकर जगद्गुरु के स्वागतार्थ आये। स्वामीजी ने उन्हें पहचाना तथा प्रणाम किया। इस रहस्य को कोई नहीं जान सका।

विशाल मन्दिर के निकट पहुँचते ही पीनस से बाहर आकर जगद्गुरु मन्दिर में प्रविष्ट हुए। पुजारीगण ने आचार्यश्री का पूजन किया। जगद्गुरु के दर्शन से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धन्य बनी जनता ने पुनः-पुनः जयनाद किया। मन्दिर में सुभद्राजी एवं बलरामजी सहित प्रभु का भव्य श्रीविग्रह देखते ही आचार्यश्री के विशाल कमलदल लोचन श्रद्धा से छलक उठे। भावातिरेक में अंजलि अपने आप बँध गयी। जगन्नाथजी का पूजन-अर्चन विधिपूर्वक किया गया।

तदनन्तर कुछ समय मन्दिर के विशाल प्रांगण में यतिराज उत्सुक जनता के सन्तोषार्थ विराजमान हुए। अनेक भक्तों ने दर्शन लाभ लिया। राजा के अति आग्रह पर भी राजभवन में मुकाम करने के लिए सविनय अस्वीकार करके जमात ने मन्दिर के पास ही समुद्र किनारे मुकाम किया। अथाह जलराशि समुद्र भी अपार गर्जना करके अपने स्वामी के वन्दनार्थ उनके चरण चूमना चाहता था। मन्दिर से ही सबके लिए प्रसाद आया। ठाकुरजी के लिए पायस भी आया। धीरे-धीरे भक्तों की भीड़ कम होने लगी।

रात्रि होने पर थके हुए लोग समुद्र किनारे निद्राधीन होने लगे। इधर चराचरपति के पाद-प्रक्षालन हेतु समुद्र की तीव्रता बढ़ गयी। शनैः-शनैः जल आगे बढ़ता रहा। स्थानीय लोगों ने जमात को अन्य सुरक्षित स्थान पर मुकाम करने की सूचना दी। यह बात कबीर साहब ने सुनी। श्रमित भक्तों के विश्राम में अवरोध होते वे नहीं देख सके। उन्होंने आगे बढ़ते समुद्र को रोकने को अपने गुरुदेव का नाम लेकर एक चीमटा तट पर गाढ़ दिया। अपने स्वामीजी की दुहाई सुनकर समुद्र को भी रुक जाना पड़ा। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वामीजी के विषय में जो चमत्कारिक चर्चाएँ उन्होंने सुनी थीं, उसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। सबने वहीं सुखपूर्वक रात्रि विश्राम किया। परमपूज्य श्री स्वामीजी एवं कबीर साहब की स्मृतियों को स्थायी करता हुआ वह चीमटा आज भी वहाँ है।

प्रातःकाल महाप्रभु ने स्वयं समुद्र की इच्छापूर्ति की। वहीं स्नानादि के पश्चात् नित्यनियम हुआ। समुद्र स्तम्भन की बात कर्णोपकर्ण नगर-भर में व्याप्त हो गयी। अनेक लोग जगद्गुरुश्री एवं कबीरसाब के दर्शनार्थ वहाँ एकत्रित होने लगे। दोपहर को सन्त-समुदाय पुरी के अन्य पवित्र स्थानों के दर्शन के लिए गया। पुरी में एक सूखा चन्दन तालाब था। जल प्राप्ति की आशा से वहाँ के लोगों ने तालाब का जीर्णोद्धार भी किया था, परन्तु जल का स्रोत नहीं फूटा था। प्रभु के प्रेमियों को जल के विषय में चिन्तित देख समर्थ शिष्य श्री योगानन्दजी समर्थ सद्गुरुदेव का नाम लेकर तालाब के भीतर प्रवेश कर गये तथा समाधिस्थ हो गये। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि देखते-ही-देखते तालाब में इतना जल भर गया कि श्री योगानन्दजी तैरने लगे। पानी से बाहर आकर उन्होंने अपने गुरुदेव के जयजयकार के नारे लगाये।

इन दो घटनाओं से नगर की जनता जमात के प्रति विशेष आकर्षित हुई। अधिकाधिक लोग निष्ठापूर्वक साधु-सेवा में लगने लगे। भगवान जगन्नाथजी ने भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानो अपने कोशपतियों से कहकर दिव्य भोग की सर्व व्यवस्था कर दी। उनकी कृपा से तथा प्रेमियों की भावना से जमात ने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि उन्हें किसी प्रकार का अभाव न रहा। सुगन्धित द्रव्यों से पूरित दिव्य हविष का ठीक समय पर ठाकुरजी को भोग लगता रहा एवं स्वामीजी को पहुँचता रहा।

स्वामीजी एवं जमात के प्रेम से आप्लावित अनेक लोगों ने श्रीराम मन्त्र की दीक्षा लेने की इच्छा व्यक्त की। लोगों की इच्छा पूर्ति करके स्वामीजी ने उनका जीवन धन्य बना दिया। जितने दिन जमात रुकी, नित्य सत्संग होता रहा। एक दिन जगद्गुरुश्री ने कहा :

"तीर्थ-भ्रमण या तीर्थ में निवास करने से हृदय में भक्ति का भाव जाग्रत होता है। भूमि का अद्भुत प्रभाव, जल का अद्भुत तेज अथवा मुनियों का अधिष्ठान होने से तीर्थ पुण्यभूमि बनते हैं। यहाँ का आध्यात्मिक वायु-मण्डल स्थूल जगत का मोह छोड़कर परमात्मा की ओर आकर्षित करता है। हे नगरजनो! आप सब भाग्यशाली हो जो तीर्थ में बसते हो तथा भगवान एवं भागवतों की भक्तिपूर्वक सेवा का अमूल्य लाभ लेते हो।"

एक दिन एक साँवला बटुक हाथ में पायस लेकर स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसके पीछे ही नित्य का पायस भी आया। स्वामीजी ने जमात के सामने ही उस बटुक महाराज की पूजा की तथा खीर का प्रसाद दिया। इस प्रकार कुछ दिन सुखपूर्ण निवास करके जमात श्रीआज्ञा से दक्षिण की ओर बढ़ने को तैयार हो गयी। वहाँ के राजा एवं प्रजा ने दुःखपूर्ण हृदय से जमात को विदाई दी। भगवान जगन्नाथजी की कृपा से जमात को दिव्य हाथों से पायस एवं सामग्री नित्य पहुँचते रहे।

(3)

रास्ते में अनेक स्थान पर मुकाम हुआ। लोगों का प्रेम एवं सन्मान स्वीकारते हुए जमात आगे बढ़ती रही। सत्संग, भजन, कीर्तन भी लोगों के आग्रह से होता गया। इस प्रकार जमात राजामुद्री पहुँची। आन्ध्रवासियों द्वारा जगदगुरुश्री का भव्य स्वागत हुआ। आचार्यश्री ने लोगों से धार्मिक संकीर्णता दूर करने का अनुरोध किया। तदनन्तर वे विजयवाड़ा पहुँचे। यहाँ श्री सदानन्दाचार्यकृत पद्धति के अनुसार श्रीराम महायज्ञ का आयोजन हुआ। अनेक शैव-वैष्णवों ने अपनी संकीर्णता का सदा के लिए परित्याग किया। कृष्णा नदी के किनारे मुकाम करके जमात पन्ना नरसिंह के दर्शनार्थ पहुँची। भगवान को पन्ना निवेदित किया गया। यहाँ दस दिन जमात रुकी। अनेक बार सत्संग-भजन हुआ। यहाँ से श्रीआज्ञा से जमात गुंटूर पहुँची। मार्ग में अनेकानेक सभाओं को सम्बोधित करते हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरुश्री ने वैदिक धर्म एवं भक्ति का प्रचार किया। अब जमात विजयनगर के प्रभावशाली हिन्दू राज्य में थी, जिसकी स्थापना विद्यारण्य मुनि की प्रेरणा से हुई थी।

जैसे ही विजयनगर के राजा बुक्काराय एवं राज्यमन्त्री विद्यारण्य मुनि को जमात के आगमन की सूचना मिली, उन्होंने सद्गुरुदेव को जमात सहित विजयनगर पधारने का आग्रहपूर्वक आमन्त्रण भेजा। जगद्गुरुश्री ने प्रसन्नतापूर्वक विजयनगर जाने की स्वीकृति दे दी। अतः जमात अब विजयनगर की ओर बढ़ने लगी।

दूत ने जगद्गुरु के आगमन की सूचना जैसे ही राजा को दी, राजा एवं मुनि विद्यारण्य अत्यन्त प्रसन्न होकर जमात के स्वागत की तैयारी करने लगे। यह बात वायुवेग से सारे नगर में फैल गयी। अतः धर्मप्रेमी जनता ने भी उत्साहित होकर राजमार्गों को धजा-पताका एवं वन्दनवार से सजा दिया। विजयनगर के निकट पहुँचने का समाचार जैसे ही नगर में व्याप्त हुआ, राजा एवं मन्त्रीगण जगद्गुरुश्री के स्वागतार्थ दूर तक गये। उत्साहित जनता राजमार्ग पर एकत्रित हो गयी।

राजा बुक्काराय एवं विद्यारण्य मुनि के जमात के पास पहुँचते ही जमात ने सनातन धर्म की एवं जगद्गुरुश्री की जयजयकार के नारों से सर्वत्र आनन्द फैला दिया। जमात सहित लोग नगर के सुशोभित द्वार पर पहुँचे। हजारों की संख्या में उपस्थित भाविकजनों ने जगद्गुरुश्री की, हिन्दू धर्म की तथा अपने राजा की जयनाद पुकारी। आचार्यश्री लोगों का धर्मप्रेम देखकर प्रसन्न हुए। बन्द पीनस से वे विद्यारण्य मुनि की प्रार्थना पर बाहर आये। राजा एवं विद्यारण्य मुनि ने यतिराज का पाद-प्रक्षालन करने का सद्भाग्य प्राप्त किया। रानी ने उनकी आरती उतारी। लोगों ने पुष्पों की वर्षा की। चारों तरफ आनन्द-ही-आनन्द छा गया। अन्य मन्त्रियों ने जमात के सिद्ध-सन्तों के पाद-प्रक्षालन किये। भारत के एक विशाल हिन्दू राज्य के नागरिक धर्मप्रेम एवं गर्व से अपने राजा, उनके प्रेरणादाता विद्यारण्य मुनि तथा मुनि के प्रेरणामूर्ति जगद्गुरुश्री का हर्षोल्लास से जयघोष करते रहे। विद्यारण्य मुनि के नेत्र आनन्दवारि से छलक उठे। स्वामीजी की ही प्रेरणा के फलस्वरूप इस हिन्दू राज्य में स्वामीजी के आगमन पर उनके आनन्द की सीमा न रही। बारम्बार वे अपनी प्रेरणामूर्ति एवं परम कृपालु परमात्मा को सादर नमन करते रहे।

राजा बुक्काराय ने तथा विद्यारण्य मुनि ने आग्रहपूर्वक जगद्गुरुश्री की पीनस को कन्धा दिया। साथ-साथ शिष्य समुदाय भी श्रद्धान्वित होते हुए राजा के भक्तिभाव की प्रशंसा करने लगा। नगे पैर राजा पीनस सहित राजमार्गों पर होते हुए राजमहल की ओर बढ़ने लगे। जनता ने नारे लगाते हुए पुष्प-वर्षा करके जमात का अद्भुत स्वागत किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजमहल के पास एक रमणीय उद्यान में जमात के रुकने की व्यवस्था की गयी थी। एक सरोवर के पास सुन्दर पर्णकुटी स्वामीजी के लिए बनायी गयी थी। जमात सुखपूर्वक नव दिन यहाँ रुकी। राजा के आग्रह पर स्वामीजी के निर्देशन में श्रीराम महायज्ञ का आयोजन भी किया गया। असंख्य लोग नित्य दर्शनार्थ आते रहे। राज्य की ओर से कई बार भण्डारा हुआ। अनेक लोगों ने बिना भेद-भाव प्रसाद ग्रहण किया। नित्य भिन्न-भिन्न महात्माओं द्वारा सत्संग होता रहा। रात्रि होने पर धुन-भजन-कीर्तन का कार्यक्रम होता था। शैव एवं वैष्णवपंथी स्वामीजी के प्रभाव से आपसी वैमनस्य दूर करते रहे।

ठाकुरजी के पूजन के लिए एवं पायस के लिए दिव्य सामग्री नित्यप्रति श्रद्धा एवं पवित्रतापूर्वक राजमहल से आती रही। राजा-रानी स्वामीजी का पायस-प्रसाद नित्य ग्रहण करते रहे। प्रसाद-सेवन से राजा का पुराना हृदय-रोग नष्ट हो गया। राजा एवं प्रजा आनन्दित हो गये।

एक दिन यति सम्राट ने राजा को कृपापूर्वक अपनी कुटी में बुलाकर कहा, "हे राजन्! परमात्मा ने अपनी कृपा से जिस महत्वपूर्ण कार्य में आपको निमित्त बनाया है, उसे भलीभाँति निभाना चाहिए। संस्कृति के संरक्षण के रूप में जो राजयोग आपको मिला है, उसमें भोग निपट हानिकारक है। जहाँ राजा भोग-विलास में लिप्त हुआ कि राज्य वंश सहित नष्ट हो जाता है। अतः प्रजारंजन रूपी प्राणायाम को यम-नियमपूर्वक साधकर राजा को सदैव संयम से रहना चाहिए। यही परमात्मा की पूजा है।"

राजा ने इस उपदेश को हृदयंगम किया। एक स्वर्णपत्र पर अंकित करके इस उपदेश को राजभवन में प्रतिष्ठित कर दिया, जिससे भविष्य में उनके उत्तराधिकारी भी जीवन में उसे चरितार्थ कर सकें। एक भुर्ज पर लिखवाकर सोने के पत्र से मढ़ाकर सुन्दर अंगर के रूप में उपदेश को धारण किया। प्रस्थान के समय जनता ने जगद्गुरुश्री का स्तवन करके अश्रुपूर्ण नेत्रों से जयघोष सहित उन्हें विदा किया।

श्रीआज्ञा मिलने पर अब जमात भगवान तिरुपति के दर्शनार्थ आगे बढ़ी। राज्य की ओर से पूरा प्रबन्ध करने के लिए राज्य के मन्त्री भी जमात के साथ-साथ गये। बहुत दूर तक विद्यारण्य मुनि जमात को छोड़ने गये तथा कांची में पुनः स्वामीजी के दर्शनार्थ पहुँचने की बात कहकर विजयनगर लौट गये। राज्य के मन्त्री कबीर साहब की भाँति एशीमत के ही थे अतः दोनों में अधिक आत्मीयता हो गयी।

विजयनगर से निकलकर जमात नैलूर की ओर आगे बढ़ी। लोगों ने नैलूर में आग्रहपूर्वक जमात को रोका तथा सत्संग लाभ लिया। तदनन्तर भगवान श्री वेंकटेश्वर के दर्शनार्थ तिरुपति पहुँचे। मन्दिर के पुजारियों ने तथा स्थानीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों ने जगद्गुरुश्री का भावपूर्वक स्वागत किया। कुछ दिन जमात वहाँ रुकी। भगवान का सविधि पूजन हुआ। जगद्गुरुश्री के दर्शनार्थ बहुत लोग आये। कुछ दिन पश्चात् जमात चिटुर होते हुए आर्कोणम् पहुँची। आर्कोणम् में तैलंग स्वामियों द्वारा आचार्यश्री की भव्य शोभायात्रा निकाली गयी। उन्हें उपदेश देते हुए यतिराज ने एकता के सूत्र में देश को बाँधने का आग्रह किया।

आर्कोणम् से पंछीतीर्थ के लिए जमात गयी। यहाँ वेदगिरि नामक पर्वत की परिक्रमा की गयी। पर्वत पर भगवान भोलेनाथ का दर्शन किया। तदनन्तर पंछी भगवान को स्वामीजी ने अपने करकमल से हविष-पायस खिलाया। यह देखकर सब आनन्दित हो गये। भक्तों के पूछने पर स्वामीजी ने बताया कि ब्रह्मा के आठ मानस पुत्र शिवजी के श्राप से गीध पक्षी बन गये थे। उनमें से दो सत्ययुग के अन्त में, दो त्रेता के अन्त में, दो द्वापर के अन्त में मुक्त हो गये। बाकी के दो पंछी कलि के अन्त में मुक्ति पाने के लिए चित्रकूट में तपस्या करते हैं, प्रयाग त्रिवेणी में स्नान करके भगवान बद्रीनाथजी के दर्शनार्थ जाते हैं तथा वहाँ से मध्याह्न होने पर यहाँ प्रसाद ग्रहण करने आते हैं। यह कथा सुनते ही भक्तों ने प्रेमपूर्वक पंछी देवता को प्रणाम किया। जमात यहाँ से आगे बढ़ी।

(4)

रास्ते में अनेक स्थानों पर महाप्रभु ने हिन्दू धर्म में एकता लाने के लिए शैव-वैष्णव द्रोह का खण्डन किया। दक्षिण भारत में बहुत वर्षों से शैव-वैष्णवों में भारी विद्रोह चला आ रहा था। शिवोपासक तथा विष्णु के उपासक द्वेषी बनकर परस्पर प्रताड़ना करते रहे थे। स्वामीजी ने अपने उपदेश में सर्वत्र यही कहा कि शिवजी तथा विष्णु एक ही परमात्मा के दो स्वरूप हैं अतः शिवजी के उपासक विष्णु की निन्दा करके स्वयं शिवजी के अपराधी बनते हैं तथा विष्णु के उपासक शिवजी की निन्दा करके स्वयं विष्णु भगवान के द्रोही बनते हैं। स्वामीजी के उपदेश से प्रजा में द्वेषभाव कुछ कम होने लगा। कट्टरपंथी ब्राह्मणों के उपदेश के विपरीत स्वामीजी की बात लोगों को अधिक रुचिकर लगी।

लोगों की धार्मिक कट्टरता के कारण ही दक्षिण भारत का पवित्र तीर्थ कांचीपुरम दो भागों में विभाजित हो गया था—विष्णुकांची तथा शिवकांची। जगद्गुरुश्री एवं जमात के आगमन की सूचना कांची में भी मिल गयी थी। उनके उपदेश एवं प्रभाव की बातें सुनकर कांची के मन्दिर के अध्यक्ष ने कठोर निर्णय ले लिया। शिवकांची के मन्दिर के अध्यक्ष ने भगवान शिवजी के प्रति अनन्य भक्ति तथा हठधर्मिता के कारण एवं अनेक शिवोपासकों का जगद्गुरुश्री के प्रति आकर्षण देखकर नगर में घोषणा कर दी कि जमात के स्वागतार्थ कोई नागरिक नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जायेगा तथा भोजन की व्यवस्था भी कोई नहीं करेगा। विष्णु मन्दिर के अध्यक्ष ने जमात के साथ मुस्लिम, शूद्र आदि की उपस्थिति के कारण जमात के प्रति दुर्लक्ष्य किया। दक्षिण भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था ने विषमय स्वरूप लेकर समाज को जर्जरित कर दिया था। स्वामीजी को यह भली-भाँति ज्ञात था, इसीलिए वे प्रेमामृत रूपी औषधि से रुग्ण समाज को स्वस्थ करना चाहते थे।

जब जमात कांचीपुरम पहुँची तब सायंकाल का समय था। भगवान भोलेनाथ एवं विष्णुजी की जयजयकार के नारों से पुरी के लोगों को जमात के आगमन की सूचना मिल गयी। इच्छा होने पर भी विरोधियों के प्राबल्य से श्रद्धालु एवं ज्ञानी भक्तजन डर से घरों में बैठकर अपने दुर्भाग्य पर रोते हुए भगवान से क्षमा माँगते रहे।

मन्दिर के अध्यक्षों की घोषणा के बारे में जानकर स्वामीजी ने नगर के बाहर ही पूर्व में मुकाम किया। दुष्ट लोग छिपकर देखने लगे कि जमात की व्यवस्था कौन करता है। परन्तु आश्चर्य से उन्होंने देखा कि मूलप्रेम नाम के एक विद्याधर प्रजेश ने जमात को आमन्त्रित किया तथा विचित्र अन्न के ढेर लगा दिये। वह अपनी पत्नी के साथ हाथ में दिव्य पायस का थाल लेकर आया तथा पुजारी योगानन्दजी को देकर चला गया। ठाकुरजी को भोग लगा, स्वामीजी ने पायस प्रसादी ग्रहण की तथा अन्य लोगों ने भी भोजन प्रसादी प्रेम से पायी। दुष्ट लोग हैरान हो गये क्योंकि ऐसा कोई विद्याधर आज तक उन्होंने वहाँ नहीं देखा था। काशी के स्वामीजी की अनेक चमत्कारिक चर्चाएँ उन्होंने सुनी थीं परन्तु आज प्रत्यक्ष देखी।

यह सूचना जब मन्दिर के अध्यक्ष को मिली, उन्होंने मन्दिर के पास पहरेदार नियुक्त कर दिये जिससे कोई वैष्णव शिव मन्दिर को भ्रष्ट न कर सके। भगवान विष्णु के मन्दिर के अध्यक्ष भी सतर्क हो गये।

प्रात:काल नित्य नियम से निवृत्त होकर सूर्योदय के उपरान्त जमात भगवान विष्णु की तथा वैदिक धर्म की जयजयकार के नारे पुकारती हुई पुरी में प्रविष्ट हुई। लोगों ने छुप-छुपकर अनेक सिद्धों के दर्शन किये। विष्णु मन्दिर के निकट पहुँचने पर वहाँ के पुजारी एवं अध्यक्ष जमात के सामने आये। जगद्गुरु को प्रणाम करते हुए उन्होंने निम्न वर्ण के लोगों एवं मुस्लिमों को मन्दिर प्रवेश कराना अस्वीकार कर दिया। जगद्गुरुश्री ने प्रेमपूर्वक उन्हें समझाने की चेष्टा की परन्तु जब वे हठ पर उतर आये तो स्वामीजी ने दिव्य शंखनाद किया जिससे विरोधियों का विरोध मन्द हो गया। अतः भगवान नारायण की जय पुकारते हुए सबने मन्दिर में प्रवेश किया।

भगवान नारायण के श्यामवर्ण के चतुर्भुज श्रीविग्रह का दर्शन हुआ। पश्चिम में श्री लक्ष्मीजी का भी दर्शन किया। पास ही सरोवर में सबने स्नानादि किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तों ने देखा कि भगवान नारायण का श्रीविग्रह यहाँ पश्चिमाभिमुख है अतः पूछने पर स्वामीजी ने उन्हें ब्रह्मपुराण की कथा सुनायी। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति के समय गंगा किनारे तप किया। तदनन्तर सत्यव्रत क्षेत्र (कांची) में एक यज्ञ किया। उस वेदी से सहस्र सूर्य समान कांतिमान देवराज अथवा वरदराज स्वरूप में भगवान नारायण प्रकट हुए। ब्रह्मा की विनती पर भक्तों को दर्शन देने पवित्र स्थान में निरन्तर निवास करना उन्होंने स्वीकार किया। ब्रह्मा पूर्वोन्मुख बैठ यज्ञ करते थे अतः विष्णु भगवान पश्चिमाभिमुख हैं। पास ही पवित्र अनन्त सारस सरोवर में सरस्वती स्वयं वेत्रवती के रूप में विराजमान हैं। देवाधिराज की मूर्ति पुण्यकोटि विमान में सदैव सरोवर में ही रहती है, परन्तु प्रत्येक बीस वर्ष पर उत्सव के साथ वह बाहर लायी जाती है।

मन्दिर के पुजारी सहित स्थानीय भक्तों को भी आख्यान सुनने का अपूर्व लाभ मिला। अध्यक्ष ने स्वामीजी से क्षमा माँगी। सायंकाल हो गया अतः जमात पुनः मुकाम की ओर गयी। परन्तु कट्टरपंथी विरोधियों ने अपशब्द कहना शुरू किया।

दूसरे दिन शिवकांची में एक्रामेश्वर शिवजी के दर्शनार्थ जमात जाने लगी। छुप-छुपकर लोग पीछे-पीछे जाने लगे। नारे लगाती हुई जमात जब मन्दिर के निकट पहुँची तब पहरेदारों ने उन्हें आगे बढ़ने से रोका। उनके हाथों में शस्त्र देखकर जमात रुक गयी अतः यतिराज बन्द पीनस से बाहर आये तथा अमृतनाद गुंजारित कर दिया। पुजारी, अध्यक्ष सहित पहरेदार सब मन्त्रमुग्ध हो गये। स्वामीजी ने जमात को आगे बढ़ने का संकेत किया। यह देख पुनः पुजारियों ने तथा पहरेदारों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी वे अपने स्थान से हिल भी नहीं पाये।

जगद्गुरु आगे बढ़े तथा शिष्यों एवं सन्तों के साथ मन्दिर में प्रवेश किया। मुख्य मन्दिर में भगवान एक्रामेश्वर महादेव की श्याम लिंगमूर्ति का दर्शन किया। वह पार्वतीजी द्वारा निर्मित बालुका (रेती) का लिंग होने से वहाँ जल चढ़ाया नहीं जाता है अतः स्वामीजी ने चमेली के सुगन्धयुक्त तेल से शिवलिंग पर अभिषेक किया। परिक्रमा में अनेक देवी-देवताओं का दर्शन किया। प्रांगण में पुराने आम्र-वृक्ष के नीचे माता पार्वती ने कामाक्षी के रूप में तपस्या की थी अतः उनके श्रीविग्रह का दर्शन किया। पास ही सर्वतीर्थ सरोवर तथा शिवगंगा सरोवर थे। यहाँ का पवित्र जल शिरोधार्य किया। भगवान सुब्रह्मण्यम् स्वामी का भी दर्शन किया। उनके पीछे-पीछे समस्त जमात ने दर्शन का लाभ लिया। अनेक वर्षों के बाद प्रेमी वैष्णवों के आगमन से शिवजी प्रसन्न हो गये।

पुजारी एवं अध्यक्ष तथा द्वार पर नियुक्त किये गये पहरेदार सहित सब विवश होकर देखते रहे तथा अपने असामर्थ्य पर क्रोधित होते रहे। जब प्रत्येक ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्शन लाभ ले लिया तब भगवान भोलेनाथ के तथा जगद्गुरु के नारे लगाती हुई जमात वहाँ से प्रस्थान कर गयी।

अब पुजारियों एवं अध्यक्षों को सुधि आयी। क्रोधित होकर वे परस्पर दोषारोपण करने लगे तथा स्वामीजी एवं भक्तों को अपशब्द बोलने लगे। कुश को घास तथा गौ को पशु न कहने की शास्त्राज्ञा को भी वे भूल चुके तथा रैदासजी को चर्मकार तथा कबीर साहब को म्लेच्छ कहते हुए घृणित शब्दों का उपयोग करने लगे। दुर्वचन रूपी बाण चलाते हुए बहुत दूर तक वे जमात के पीछे गये। जब मुकाम पर जमात पहुँची तो दुष्टों ने देखा कि यहाँ तो अन्नागार तथा वस्त्रागार भरे पड़े हैं तथा जमात को किसी वस्तु की कमी नहीं है। यह देख जलते हुए वे पुनः लौट गये।

महाप्रभु की आज्ञा से जमात यहीं कुछ दिन रुकने वाली थी। परन्तु लोगों के दुर्व्यवहार से तथा स्वामीजी पर चलाये गये दुर्वचन रूपी बाणों से अनेक सन्त-भक्त व्यग्र हो गये। जितने दिन जमात कांचीपुरम् रुकी, लोगों ने कुछ-न-कुछ उपद्रव जरूर किया। आसपास के देवी-देवताओं के दर्शनार्थ जब सन्त-भक्त जाते तब उनका पीछा करते हुए दुष्टजन अपनी सामर्थ्य का पूरा-पूरा प्रयोग करते रहे। नित्य नये-नये असहनीय व्यंग्य बाणों से उन्हें व्यग्र करने की चेष्टा करते रहे। सबको शान्त करने को कबीर ने एक रात उन्हें भजन सुनाया :

तू तो राम सुमर, जग लड़ने दे।
कोरा कागज, काली स्याही, लिखत-पढ़त वा को पढ़ने दे॥
हाथी चलत है अपनी गत में, कूतर भूँकत वा को भूँकने दे॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नरक पचत वा को पचने दे॥

सबके भावों को जानते हुए भी जगद्गुरुश्री वहीं रुके रहे। गुरुवाक्यों में श्रद्धावान शिष्य-भक्त भी रुके रहे। एक दिन एक घटना घटी।

एक दिन राजा पीपाजी पुरी में दर्शनार्थ गये। बहुत समय बीतने पर भी वे नहीं लौटे तो उनकी सहधर्मिणी रानी सीताजी उन्हें ढूँढ़ती हुई पुरी में विचरने लगीं। दुष्टों को सुन्दर समय मिल गया। शिवमन्दिर के मुख्य पुजारी तथा परम विदुषी चन्द्रमुखी गोदादेवी ने भी सीताजी को देखा। दोनों ने परामर्श करके उपाय सोचा, तदनन्तर गोदादेवी सीताजी के पीछे अपशब्द बोलते हुए लोगों के पास गयी तथा व्यंग्य करती हुई बोली :

"हे नगरजनो ! बच के जाना, इसे छूना नहीं। यह तो जुलाहे की जोय जा रही है।"

पीछे आया दुष्टों का समूह ठहाका मारकर हँसने लगा। म्लेच्छ जुलाहे कबीरजी की पत्नी कहकर लोग सीताजी पर व्यंग्य करने लगे। चरित्र का अपमान कोई भी स्त्री नहीं सह सकती, फिर भी सीताजी ने मौन धारण किया तथा आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बढ़ने लगीं। अतः लोगों की हिम्मत बढ़ गयी। गोदादेवी ने पुन. वही शब्द दोहराये। कठिन रगड़ से चन्दन में भी आग उत्पन्न हो जाती है। अब सीताजी के हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ।

वे वहीं रुकीं तथा पीछे आती गोदादेवी से बोलीं, "हे विदुषी ! तू जानती नहीं है कि इस भागवत् अपराध के कारण देश में क्या आपत्ति आयेगी, म्लेच्छ जुलाहा कहकर भक्तराज कबीरजी का आप सब अपमान कर रहे हो इसी के कारण देश से वस्त्र निर्माण करने के उपकरण नष्ट हो जायेंगे। मूर्खों के अपराध से विद्वानों का अपराध अधिक दण्डनीय होता है। तू और तेरे समान ये सब पापी म्लेच्छ योनि में पतित होंगे तथा दरिद्र बनेंगे। नक्षत्र तिलमिलाते हुए विषैली वायु बहेगी। अगर मेरा कथन सत्य है तो पृथ्वी फटे और तू खटे।"

तत्क्षण पृथ्वी फटी तथा गोदादेवी उसमें समा गयी। सारे नगर में हाहाकार मच गया। अब लोग डरने लगे। क्रोधित सीताजी भी अपने शब्दों पर पश्चात्ताप करती हुई पुनः मुकाम पर आ गयीं। पीपाजी भी आ गये थे। सीताजी ने पूरा वृत्तान्त सबको सुनाया। जमात के सभी सन्त-भक्तों ने सीताजी का समर्थन किया कि अधर्मियों को सजा देने को धर्म का दण्ड चलाना ही पड़ता है।

परन्तु सीताजी का मन उद्विग्न हो गया था। वे राजा के साथ गुरुदेव की कुटी में गयीं तथा पश्चात्ताप करने लगीं। स्वामीजी की मधुर मनोहर स्मित देखकर पीपाजी को लगा कि वे प्रथम से ही इस घटना को जानते थे। सद्गुरुदेव ने सीताजी को आश्वासन दिया कि विधि का विधान फलितार्थ करने को कोई भी निमित्त बनाया जा सकता है। उनके जाने के बाद पुरी के दुष्टों को सन्मार्ग पर लाने के लिए स्वामीजी ने विचार किया।

सायंकाल हो गया। लोगों को एक दूसरी अप्रिय घटना का सामना करना पड़ा। सबके घरों में रसोई बनकर तैयार हुई तथा भोजन के लिए लोग बैठने लगे तब सबके चौके में कबीरदास प्रकट दिखायी दिये। म्लेच्छ को देखकर लोग भोजन छोड़कर उठ गये। चूल्हा-चौका करके पुनः भोजन बना, पुनः वही हाल। घर से बाहर आये तो पता चला कि सबके घरों में यही हाल है। इसी प्रकार दो दिन तथा एक रात व्यतीत हो गये। परन्तु किसी को भोजन प्राप्त नहीं हुआ।

अब उनके सिर से अभिमान का भूत उतरा। सब मिलकर कुछ उपाय सोचने लगे।

इसी समय विजयनगर को सुरक्षित करके विद्यारण्य मुनि अपने शिष्यों व मन्त्रियों के साथ कांचीपुरम् पहुँच गये। लोगों को एकत्रित एवं व्यग्र देखकर उन्होंने सर्व समाचार प्राप्त किये। लोगों ने जगद्गुरु के रूप में स्वयं भगवान का कितना भयंकर अपराध किया है तथा उनके साथ दुर्व्यवहार करके कितनी बड़ी आपत्ति मोल ली है यह समझाया। तीन दिन से त्रस्त, दीन और शरणागत लोगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को सांत्वना देकर उन्हें क्षमायाचना के लिए स्वामीजी के पास लेकर गये।

स्वामीजी के पास जाकर मुनि ने शापमुक्ति के लिए प्रार्थना की अतः जगद्गुरु बोले, "सबको कहो कि अन्न ग्रहण करें, अब कोई दृश्य नहीं दिखायी देगा।" लोग आश्वस्त होकर पुनः लौट गये।

तदनन्तर मुनि पुनः स्वामीजी के पास गये तथा प्रणाम करके बैठ गये। सीताजी के श्राप के विषय में दुखी होकर पूछने पर यतिराज ने बताया :

"हे मुनि ! यह घटना अवश्य अप्रिय है तथा उससे दुखी होना स्वाभाविक है। परन्तु अप्रिय घटना सुयोग पाकर दैव की प्रेरणा एवं ईश्वर की आज्ञा से ही होती है। और इसमें तो असमंजस की बात यह है कि पतिव्रता का श्राप कभी व्यर्थ नहीं जाता। उसे भगवान भी नहीं टाल सकते। इस श्राप का फल अवश्य दुःखदायी होगा। द्वेष तथा संकीर्णता रूपी विषवृक्ष जब फलेगा तब देशवासी बहुत कष्ट में पड़ेंगे।

श्राप के प्रभाव से दक्षिण भारत के पश्चिम किनारे से ही गोरा व्यापारी समाज आयेगा। देश-भर से करघा तथा चरखा नष्ट करके सर्व व्यवसाय हस्तगत कर लेगा और देश को महा कंगाल बना देगा। धर्मग्लानि जब अत्यन्त बढ़ जायेगी तथा श्राप का अन्त निकट आयेगा तब जुलाहे कबीरदास की ज्योति बणिक कुल में मोहनदास के नाम से उतरेगी। मोहनदास पुनः चरखे का एवं श्रीराम नाम का प्रचार करेंगे तथा उसका प्रताप दिखायेंगे। परदेशी शासन से मोहनदास ही देश को मुक्त करायेंगे।"

भयंकर भविष्यवाणी सुनकर विद्यारण्य मुनि कांप उठे। वे सोचने लगे कांची के लोगों की दुष्टता का परिणाम समस्त देश को क्यों आपत्ति में डाल रहा है? यह कैसा भविष्य निर्माण हुआ है? यह भी दैव की प्रेरणा तथा ईश्वर की ही इच्छा है। द्वन्द्वमयी परिवर्तनशील प्रकृति के लिए उत्थान-पतन भी आवश्यक अंग ही है। पूरे भारतवर्ष में परिवर्तन जरूरी है। सब अपने निहित स्वार्थ में डूबे हैं। राजकीय रूप से देश टूट चुका है, सामाजिक परिस्थिति भी विकट है। साम्प्रदायिक कलह, वर्ण-भेद, अभिमान, द्वेष के कारण हिन्दू समाज रुग्ण हो गया है। वे सोचने लगे कि सीताजी तथा गोदादेवी तो मात्र निमित्त थीं। उन्होंने सविनय प्रश्न किया :

"हे महामुनि ! दरिद्रता तो सद्गुण का नाश तथा दुर्गुण की वृद्धि करती है। तो क्या कंगालियत के उस कठिन समय में अमर्याद धर्मग्लानि को रोकने को कर्म-सूत्रधार की ओर से कोई विशेष आयोजन भी है?"

विद्यारण्य मुनि का देश एवं संस्कृति-प्रेम देखकर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। पूर्व परिचित मधुर स्मित सहित उन्होंने कहा, "हे वत्स ! यद्यपि भविष्य कथन उचित नहीं परन्तु आपकी निष्ठा एवं प्रेम से विवश हो हमें कहना पड़ता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसे अपने तक ही सीमित रखना।

हे विद्यारण्य ! परमात्मा की वाणी कभी भी निष्प्रयोजन नहीं होती। गीता में दिये अपने वचनों को निभाने, इस धर्मग्लानि को रोकने का आयोजन अवश्य हुआ है। धर्म संस्थापन हेतु चारों दिशा में व्यवस्था की गयी है :

गुरुनानक (ई० स० 1469--1538)

चैतन्य महाप्रभु (ई० स० 1485--1534)

गोस्वामी तुलसीदास (ई० स० 1527--1623)

समर्थ रामदास (ई० स० 1608--1682)

पंजाब में विदेह जनक की ज्योति लेकर महापुरुष नानक उत्पन्न होंगे, जो रामनाम के प्रताप को पुनः जाग्रत करेंगे। वे हिन्दू-मुस्लिम द्वेष को भी कम करने का प्रयत्न करेंगे। तदनन्तर कर्मसूत्रधार गीताचार्य भगवान श्रीकृष्ण स्वयं राधाजी के परम प्रेम का मर्म बताने चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण होंगे। कुछ समय पश्चात् पुराणकाल में दिये हनुमानजी के श्राप के प्रभाव से महामुनि वाल्मीकि सन्त तुलसीदास के रूप में रामनाम की गंगा से सबको आप्लावित करेंगे। तदनन्तर हनुमानजी स्वयं दक्षिण भारत में समर्थ रामदास के रूप में हिन्दू संस्कृति के रक्षण का कार्य करेंगे।"

विद्यारण्य मुनि की उद्विग्नता शान्त हो गयी। परम सन्तोष सहित उन्होंने पूछा :

"हे कृपानिधि ! यह भविष्य अवश्य गोपनीय ही रहेगा। परन्तु कृपया मुझे यह बताइये कि श्राप निवारण के समय देश को मुक्त करने परमात्मा मेरे द्वारा किस प्रकार सेवा स्वीकार करेंगे ?"

महाप्रभु ने पास पड़ा एक पुष्प मुनि के हाथ में दिया तथा कहा कि इसके दलों पर एकाग्र मन से देखने पर उनका तथा अन्यों का प्रतिबिम्ब आप ही दिखायी देगा। विद्यारण्य मुनि ने दिव्य पुष्प रूपी दर्पण में भविष्य के गर्भ को देखा। अपने साथ उन्हें सबकी आकृतियाँ दीख पड़ीं। अपने भावी दायित्व को देख परम सन्तोष से उन्होंने स्वामीजी को दण्डवत् किया और विदा लेकर स्वस्थान चले गये। स्वामीजी पुनः ध्यानस्थ हो गये। कांची के लोगों की आँखें खुलीं। पश्चात्ताप से वे विकल हो उठे। इन वात्सल्यमय, अनन्त करुणार्णव, त्रिभुवन वन्दनीय को कितनी पीड़ा दी, कितनी भर्त्सना की उनकी, कितना तर्जन-त्रास दिया--पश्चात्ताप ने उनके अन्तर को विचूर्ण करके द्रव बना दिया। हिम्मत ही न कर पाये पुनः स्वामीजी के सामने उपस्थित होने की।

कुछ दिन पश्चात् स्वामीजी ने जमात को प्रस्थान के लिए आज्ञा प्रदान की। महाबलीपुरम् की ओर जमात बढ़ने लगी। समुद्र के किनारे-किनारे श्रीफल के वनों को देख प्रसन्न होते हुए सब बढ़ते रहे। नीचे हरी-भरी वनश्री, ऊपर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीला आकाश तथा एक तरफ समुद्र की लहरों को निहारते परमात्मा की सरस सृष्टि का पान करते वे महावलीपुरम् पहुँचे। शिला से बनाये पांडवों के पंचरथ का दर्शन किया तदनन्तर भगवान शिवजी के स्थलशयन मन्दिर में दर्शनार्थ गये।

यहाँ से तिरुवण्णमलै की ओर आगे बढ़े। यह अरुणाचल पर्वत पर बसा है। अरुणाचलेश्वर भगवान के दर्शन करते हुए स्वामीजी ने बताया कि दक्षिण भारत के पंचतत्व लिंगों में अरुणाचलम् में अग्निलिंग है। भगवान शिवजी स्वयम् पर्वत रूप में प्रकट हुए हैं। श्रद्धा कुसुम चढ़ाकर जमात चिदम्बरम् की ओर बढ़ने लगी। वहाँ पहुँचते ही सबने मन्दिर में सुवर्ण जड़ित सिंहासन पर तांडवनृत्य की मुद्रा में भगवान शिवजी का नटराज रूप में दर्शन लाभ लिया। यहाँ आकाश तत्व लिंग माना जाता है। बाहर पार्वती मन्दिर में भी दर्शन हुआ। सुब्रह्मण्यम् स्वामी तथा गोविन्दराज भगवान विष्णुजी के दर्शन भी किये। परम आनन्द में परिप्लावित जमात के सन्त-भक्त कांचीपुरम् की अप्रिय घटना को भी भूल चुके थे।

अब जमात कुंभकोनम् की ओर बढ़ने लगी। वहाँ पहुँचकर कुंभेश्वर मन्दिर में कुंभाकार शिवलिंग का दर्शन किया। वह जलतत्व का बना स्वयंभू लिंग है। साथ ही मंगलाम्बिका पार्वतीजी का भी दर्शन किया।

तदनन्तर त्रिचिनापल्ली पहुंचे। वहाँ भी वैष्णवों ने जमात का प्रेमपूर्वक स्वागत किया एवं सत्संग लाभ लिया। यहाँ से श्रीरंगम् की ओर जमात गयी। श्रीरंगम् में श्री रामानुजीय पुजारियों द्वारा मन्दिर प्रवेश में बाधा पहुँचाने पर स्वामीजी ने सबको शास्त्रार्थ करके हराया तथा अपने अनुयायियों सहित मन्दिर में प्रवेश किया। जगद्गुरुश्री का प्रभाव दक्षिण में बहुत बढ़ गया।

जमात मदुराई पहुँची। यहाँ मीनाक्षी मन्दिर में भगवान सुन्दरेश्वर एवं मीनाक्षी के दर्शन किये। शिवमन्दिरों में अनिच्छा से भी पुजारियों ने वैष्णवों को प्रवेश दे दिया और स्वामीजी के प्रभाव से उनका द्वेषभाव भी मन्द हो गया। अब जमात दक्षिण भारत के प्रधान तीर्थ रामेश्वरम् की ओर आगे बढ़ी।

(5)

जगद्गुरुश्री के अलौकिक प्रभाव के समाचार रामेश्वरम् भी पहुँच गये थे। कट्टर शिवपंथियों ने यहाँ भी वैष्णवों के लिए मन्दिर प्रवेश निषेध घोषित किया था। परन्तु स्वामीजी के प्रभाव से डरे हुए मन्दिर के पुजारी एवं अध्यक्षों ने सोचा कि यदि अब हम अपनी सर्वोपरिता सिद्ध नहीं करेंगे तो सभी शैव्य वैष्णव बन जायेंगे। इस प्रकार शिवजी के प्रति अनन्य भक्तिभाव से उन्होंने कांची से अधिक पहरेदार नियुक्त कर दिये। साथ ही मन्दिर के द्वार भी बन्द कर दिये।

जब जमात जयजयकार के नारे लगाती हुई मन्दिर की ओर जाने लगी तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक लोग उत्सुक होकर पीछे जाने लगे। स्वामीजी के चमत्कारों की चर्चा सुनी थी अतः यहाँ क्या होता है यह देखने मन्दिर के पुजारियों सहित असंख्य जनता मन्दिर के प्रांगण में एकत्रित हो गयी।

जब पहरेदारों ने जमात को रोका तब आचार्यश्री ने पुनः दिव्य शंख से अमृतनाद गुंजारित कर दिया। उपस्थित जनता को अमूल्य दर्शन एवं दिव्य शंख-नाद से इतना आनन्द मिला कि उनके मुख से सहज ही 'स्वामी रामानन्द की जय' के नारे निकलने लगे। पहरेदार एवं पुजारीगण मन्त्रमुग्ध होकर कुछ न कर सके। पहरेदारों ने आप ही जमात को रास्ता दे दिया। परन्तु उन्हें विश्वास था कि मन्दिर के भीतर स्वामीजी नहीं जा पायेंगे क्योंकि कपाट ही बन्द थे।

सबको प्रेमाद्र नेत्रों से आप्लावित करते तथा विरोधियों को भी मनमोहक स्मित से जीतते हुए यतिराज मन्दिर के द्वार तक पहुँच गये। परन्तु द्वार पर ताले लगाये हुए थे। अब उत्सुकतावश लोग एकाग्र बन गये। बन्द द्वार को स्वामीजी ने अपने योगबल से खोला या द्वार स्वयम् रामेश्वर भगवान ने खोल दिये इस रहस्य को कोई नहीं जान सका। स्वामीजी अपने शिष्यों सहित प्रवेश करके मन्दिर के गर्भद्वार तक पहुँच गये। गंगाजल से भगवान शिवजी के ज्योतिर्लिंग का अभिषेक हुआ। सबने भगवान के दर्शन किये। स्वामीजी की शिवजी के प्रति श्रद्धा देख जनता की उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति और बढ़ गयी। दर्शन-पूजन से निवृत्त होकर जमात पुनः अपने मुकाम पर प्रस्थान कर गयी।

अब अधिकारियों को सुधि आयी। वैष्णव स्पर्श से अपवित्र शिवजी को उन्होंने शुद्ध करना चाहा। इससे कुपित होकर शिवजी ने द्वार पुनः बन्द कर दिये। सबने द्वार खोलने के भिन्न-भिन्न उपाय किये परन्तु सब प्रयास व्यर्थ गये।

एक अपरिचित वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आया तथा पुजारियों से कहा कि शिवजी के कोप का निवारण मात्र स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी की शरण में जाने से ही हो सकता है। पुजारीगण अब पश्चात्ताप करने लगे। विवश होकर सब स्वामीजी की शरण में जाकर क्षमायाचना करने लगे।

करुणानिधान ने सबका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया तथा तुरन्त क्षमा प्रदान की। शिव-विष्णु के ऐक्य के तात्विक एवं व्यावहारिक स्वरूप का बोध कराने अपने शिष्य श्री योगानन्दजी को भेजकर मन्दिर के कपाट खोल दिये। यह चमत्कार देख पुजारीगण सहित सब आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने स्वामी श्री रामानन्दा-चार्यजी एवं भगवान रामेश्वर से क्षमायाचना की।

दूसरे दिन उन्होंने स्वयं जमात को आमन्त्रित करके सन्मान दिया। स्वामीश्री पुनः अपने शिष्यों सहित पधारे। सबने माधवतीर्थ सरोवर में स्नान किया। तदनन्तर मन्दिर के प्रांगण में गंधमादनतीर्थ, गवाक्षतीर्थ, गवथतीर्थ, नलनीर्थ तथा नीलतीर्थ नामक कुएँ में स्नान किया। आगे चलकर विमोचनतीर्थ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, गंगातीर्थ, यमुनातीर्थ तथा गयातीर्थ नामक कुंड में भी स्नानादि हुआ। तदनन्तर श्री विश्वनाथ (हनुमदीश्वर) मन्दिर में शिवजी का दर्शन किया। इसकी कथा बताते हुए स्वामीजी ने कहा कि भगवान रामजी ने लंका की ओर जाते समय रामेश्वर की स्थापनार्थ लिंग लेने हनुमानजी को कैलाश भेजा था। परन्तु मुहूर्त बीत जाने पर उन्होंने बालुका लिंग बनाकर उसकी प्रतिष्ठा कर दी। जब हनुमानजी आये तब उस लिंग की प्रतिष्ठा रामेश्वर के पास करके उसे विश्वनाथ का नाम दिया तथा प्रथमतः उनके दर्शन करने के बाद श्री रामेश्वर के दर्शन होंगे ऐसा वचन दिया। सभी ने भक्तिभावपूर्वक भगवान विश्वनाथ के दर्शन किये। तदनन्तर श्री रामेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन किये। पुनः रुद्राभिषेक किया। शिष्यों ने देखा कि सद्गुरुदेव का स्वरूप अलौकिक हो गया था। वारि-पूरित अपलक लोचन, अधीर भंगिमा, अनुरोध-आकुलता से पूर्ण मुख महाप्रभु भावमग्न हो गये तथा सौम्य, श्रद्धापूरित स्वर से सहज ही बोल उठे:

शिव हरे शिवराम सखे ! प्रभो ! त्रिविधि ताप निवारक हे विभो।
अज जनेश्वर यादव पाहिमाम शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥
कमल लोचन राम दयानिधे ! हर गुरो गजरक्षक गोपते।
शिव तनोभव शंकर ! पाहिमाम्, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
सुजन रंजन मंगलं मन्दिर भजति ते पुरुषः परमं पदम्।
भवति तस्य सुखं परं अद्भुतं, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
जय युधिष्ठिर ! वल्लभ भूपते ! जय जयार्जित पुण्य पयोनिधे।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तुते ! शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
भव विमोचन माधव मापते, सुक विमानस हंस शिवारते।
जनक जारत राघव रक्षमाम्, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
अवनि मंडल मंगल मापते, जल सुन्दर राम रमापते।
निगम कीर्ति गुणार्णव गोपते, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
पतित पावन नाममयी लता, तव यसो विमल नरिगीयते।
तदपि माधव माम् किमुपेक्षसे, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
अमरता पर देव रमापते ! विजयत स्तव नामद्यनोपमा।
मथिकथं करुणार्णव जायते, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
हनुमतः प्रिय, चापकर प्रभो ! सुर सरिद् धृत शेखर हे गुरो।
मम् विमोकिमु विस्मरणं कृतं, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥
अहर हर्जन रंजन सुंदर पठयियः, शिव रामकृतं रतवम्।
विशति राम-रमा चरणाम्बुजे, शिव हरे ! विजयं कुरु मे वरम् ॥

सन्त भक्तजन स्वामीजी के अमित तेजस्वी तथा प्रतिभा सम्पन्न मुखारविन्द को चित्रलिखे-से बनकर निहारते रहे। वे समझ गये कि परम आचार्य शिवजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं रामजी की एकता सिद्ध करने के लिए परमात्मा शिवजी से विजय की याचना कर रहे थे। लोगों के हृदय में द्वेष रूपी अन्धकार के ऊपर प्रेम रूपी प्रकाश की विजय माँग रहे थे, अज्ञान पर ज्ञान की विजय की कामना कर रहे थे। जब स्वामीजी के कमलपुष्प समान नेत्र खुले तो उन्होंने देखा कि शिष्यों की आँखों से अश्रुधारा वह रही थी।

स्वामीजी तदनन्तर गर्भ-मन्दिर से बाहर आये। अन्य अनेक देवी-देवताओं को प्रणाम करते हुए जगद्गुरु मन्दिर के पूर्वद्वार की ओर समुद्रतट पर पधारे।

अपार गर्जना करते हुए विराट रत्नाकर के दर्शन करके यतिराज ने बताया कि यह क्षेत्र गंधमादन के नाम से प्रख्यात था। अपने परम प्रिय आराध्य प्रभु श्री रामचन्द्रजी की लीला भूमि पर जगद्गुरु इस प्रकार भाव-विभोर हुए जैसे इसी समय वे परमात्मा श्री रामचन्द्रजी को अपने सैन्य सहित लंका की ओर कूच करते देख रहे हों।

अध्यक्षों ने जगद्गुरुश्री का श्रद्धापूर्वक स्वागत किया। वहाँ स्वामीजी का सत्संग भी हुआ। नगर में आनन्द एवं उत्साह फैल गया। सत्संग के लिए भारी भीड़ जमा हो गयी थी। स्वामीजी ने कहा :

"हे भगवत्-प्रेमियो ! भगवान रामेश्वर की छत्रछाया में जो सौभाग्य आपको मिला है उसे हृदय की संकीर्णता तथा भक्तों की उपेक्षा से नष्ट नहीं करना चाहिए।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥

आप सबको किंचित् भी मर्यादा, शास्त्र तथा धर्म के विरुद्ध चेष्टा नहीं करनी चाहिए। भगवान शिव और विष्णु एक ही तत्व के दो स्वरूप हैं। हम जैसे जड़ जीवों के उदाहरणार्थ दोनों एक-दूसरे की उपासना करते हैं। आप जानते हैं कि भगवान शिवजी भी निरन्तर श्रीराम नाम जपते हैं तथा हनुमानजी के रूप में उन्होंने भगवान रामचन्द्रजी की अनन्य सेवा भी की है। श्रीमद्भागवत में लिखा है 'वैष्णवानाम् यथा शंभू' अर्थात् भगवान शिव के समान कोई वैष्णव नहीं है। तो वैष्णवों का शिव मन्दिर में प्रवेश निषेध किस प्रकार उचित है ? शैव-वैष्णव द्रोह करके स्वयं अपने आराध्य प्रभु से द्रोह क्यों करते हो ?

भगवान रामेश्वर का पवित्र धाम प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी का स्थान है। आपका सौभाग्य है कि श्रीराम नाम निरन्तर जपने वाले शिवजी की पूजा-सेवा का अधिकार शैवों के पास है, परन्तु यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि परमात्मा को श्रद्धा-सुमन चढ़ाने का अधिकार प्रत्येक श्रद्धालु को है। उन कृतज्ञ के प्रति कृतज्ञता का प्रकाशन करने के लिए पूजन तो मात्र एक लघुचिह्न है अतः किसी श्रद्धालु को पूजन से रोकना महापाप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे ज्ञानियो ! प्रतिमान की बातें प्रतिमान जानते हैं तथा भक्तिमान की बातें भक्तिमान ही जानते हैं। परन्तु एक बात तो सभी मर्मज्ञों को स्वीकार करनी ही पड़ती है कि हृदय की विशालता तथा अन्तःकरण की शुद्धि ही जगत में एकमात्र प्रमाण है। जीवनपर्यंत पूजन-अर्चन करने पर भी अगर हम इससे वंचित हैं तो सब कुछ व्यर्थ ही है। स्कंद पुराण कहता है---

ज्ञानतीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थं मुदाहृतम्।
तीर्थनामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥

तीर्थों में निवास तो पुण्यदायी है ही, परन्तु इससे अधिक पुण्यदायी तीर्थ ज्ञान, धैर्य तथा तप है। सर्वोत्तम तीर्थ तो अन्तःकरण की आत्यंतिक शुद्धि ही है।"

जगद्गुरु की वाणी सुनकर सब गद्गद् हो गये। वहाँ स्वामीजी ने भंडारा भी किया। कुछ दिन जमात सुखपूर्वक रामेश्वरम् रुकी।

एक बार कबीरजी अन्य शिष्य समुदाय के साथ प्रत्येक कूप में स्नान, मार्जन, तर्पण आदि करते थे तब कुछ ब्राह्मणों का रुक्ष व्यवहार देखकर उनके मुख से निकल गया :

"जिन आप को जोया नहीं, मन मैल को धोया नहीं,
दिल-दाग को खोया नहीं, अस्नान किया तो क्या हुआ ?
काया करम की ठाठ को, ममता त्रिया से बाँधकर,
भेद-बुद्धि से झगड़ा किया, हर-हर किया तो क्या हुआ ?
पण्डित से तो झगड़ा भला, क्या मूर्ख से मुख बोलना ?
कहै कबीर चंपा भला, कटनैर क्या गजभार क्या ?"

ब्राह्मणों को ग्लानि हुई। इस प्रकार सन्त-भक्तजन नित्य दर्शन-स्नानादि करते रहे। शैव-वैष्णव द्रोह शान्त करने कुछ समय के लिए पुजारी योगानन्दजी को रामेश्वरम छोड़ने का परामर्श किया गया।

तदनन्तर दिव्य शंख की अमृतध्वनि तथा जयजयकार के नारे सहित जमात ने रामेश्वरम् से प्रस्थान किया। श्रद्धालु जनता ने सजल नेत्रों से स्वामीजी की जयनाद करते हुए जमात को विदा किया। हिन्दुओं की संकीर्ण मान्यताओं का मूलोच्छेदन करने वाले महान जगद्गुरु को जनता ने बहुत समय तक याद किया।

अब जमात ने कन्याकुमारी की ओर प्रस्थान किया। स्वामीजी ने रास्ते में जमात को बताया कि बाणासुर राक्षस ने उग्र तप करके भगवान शिव को प्रसन्न करके वरदान माँगा कि वह सब योद्धाओं से अजय रहे। तदनन्तर उसने त्रैलोक्य में उत्पात मचाना शुरू किया। अतः देवता भगवान विष्णु की शरण में गये। भगवान के यज्ञ करने की आज्ञा देने पर देवताओं ने यज्ञ किया, तब अग्नि में से दुर्गाजी अपने अंश रूप में प्रगट हुईं।

बाणासुर उनके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनने पर देवी के पास गया तथा उनसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रणय याचना करने लगा। इससे देवी के साथ उसका युद्ध हुआ तथा देवी ने कुमारी कन्या के रूप में उसका वध किया। उसके बाद देवी ने शिवजी को तप करके पाणिग्रहण के लिए प्रसन्न किया। परन्तु नारदजी ने शिवजी को शुचिभ्रम में रोक लिया तथा मुहूर्त बीत गया। अतः देवी ने कंकु तथा अक्षत समुद्र में फेंक दिये तथा आजन्म कौमार्य स्वीकार किया।

जमात कन्याकुमारी पहुँच गयी। तीन समुद्र का मिलन देखकर सबके मन प्रफुल्लित हो गये। स्नानादि से निवृत्त होकर सब माताजी के मन्दिर में दर्शनार्थ गये। भावमयी मुद्रा के स्वरूप में माँ भवानी का दर्शन करके सब कृतार्थ हुए। यहाँ जनता ने सप्रेम जमात का स्वागत करके कुछ दिन सत्संग का लाभ लिया। तत्पश्चात् जमात त्रिवेन्द्रम् पहुँची।

त्रिवेन्द्रम् में भी दक्षिण के मुख्य मन्दिरों की तरह दर्शन के लिए ब्राह्मणेतर जातियों पर रोक लगायी गयी थी। जगद्गुरु ने पुजारियों को वाद-विवाद एवं शास्त्रार्थ करके समझाया तथा शास्त्रों के उदाहरण देकर प्रतिपादित किया कि शूद्रों को भी मन्दिर प्रवेश तथा श्रीहरि के दर्शन का पूर्ण अधिकार है। परन्तु तब भी पुजारी नहीं माने, तो स्वामीजी ने प्रिय शिष्य श्री पीपाजी, श्री रैदासजी, श्री कबीरजी आदि को एक रूप से मन्दिर में भेजकर दर्शन कराया तथा अपनी योग शक्ति से एक रूप में उन्हें पुजारियों के सामने ही उपस्थित रखा। यह देखकर पुजारीगण लज्जित हो गये तथा क्षमायाचना करने लगे। तदनन्तर सबने साथ जाकर पुनः भगवान पद्मनाभ का दर्शन किया। अनन्त शयन की मुद्रा में भगवान नारायण के विराट श्रीविग्रह का दर्शन हुआ। उनके चरणों में श्रीदेवी तथा भूदेवी तथा नाभि में ब्रह्माजी का भी दर्शन किया। सबने मिलकर यहाँ विष्णु सहस्र नाम का पाठ किया। कुछ दिन रुककर जमात ने प्रस्थान किया।

समुद्र के किनारे-किनारे नारियल के वृक्ष तथा हरे-भरे बगीचों एवं खेतों से होते हुए जमात बढ़ती रही। सुविस्तृत पुलित और उसके पीछे नारिकेल एवं सुपारी के सघन सफल वृक्षों की सघन पंक्तियाँ···। नीलगिरि की श्रेणियाँ जहाँ तक दृष्टि जाय—शोभित हो रही थीं। रास्ते में स्थानीय गरीब प्रजा को प्रेमदान एवं धर्मविषयक उपदेश देते हुए वे जनार्दन भगवान के दर्शनार्थ पहुँचे। यहाँ प्रजा ने जमात का स्वागत किया एवं कुछ समय सत्संग लाभ लिया।

जमात अब एलेप्पी होकर मैसूर (महिषासुर) की ओर आगे बढ़ने लगी। एक अद्वैतवादी की शंका का समाधान करके तथा उनकी प्रार्थना पर उसे श्रीराम मन्त्र की दीक्षा दी गयी तथा उसका नाम सुरेश्वरानन्द रखा गया। मैसूर में चामुंडा पर्वत पर चामुंडा माता के दर्शनार्थ सब गये। महिषासुर नामक राक्षस का यहाँ वध हुआ था, अतः यह स्थान महिषासुर (मैसूर) के नाम से प्रख्यात हुआ। कुछ दिन धार्मिक जनता को सत्संग लाभ देकर जमात उत्तर दिशा में बढ़ने लगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब रास्ता पहाड़ी था। सह्याद्रि पर्वतमाला के घने जंगलों से होते हुए अपनी मस्ती में मस्त सत्संग-भजन करते हुए जमात बढ़ती रही। अनेक स्थान पर सूर्य-प्रकाश भी न पहुँच सके ऐसा घना जंगल था। तुंगभद्रा के किनारे एक नगर में जमात रुकी। लोगों के आग्रह पर श्रीराम महायज्ञ का आयोजन भी हुआ। यहाँ सुप्रसिद्ध नैयायिक विद्वान श्री महेश्वरम् द्वारा शास्त्रार्थ के लिए आह्वान करने पर, जगद्गुरुश्री के आदेशानुसार श्री अनन्तानन्दजी ने उनसे शास्त्रार्थ किया तथा हराया। उनके आग्रह पर उन्हें श्री अनन्तानन्दजी का विरक्त शिष्य बनाकर महेश्वरानन्द नाम रखा गया। कुछ काल पश्चात् उन्होंने श्री रामभक्ति का खूब प्रचार किया तथा अति सरल संक्षिप्त 'वैशेषिक वृत्ति' लिखी जो महेश्वरी वृत्ति के नाम से भी प्रसिद्ध हुई।

सह्याद्रि पर्वत को पार करते हुए जमात किष्किंधा पहुँची। वहाँ प्रवर्षण गिरि, स्फटिक शिला में भगवान राघवेन्द्र के दर्शन करके सब कृतार्थ हुए। अपने प्रियतम रघुकुलभूषण रामचन्द्र का स्मरण करते हुए सबने पंपा सरोवर, अंजनि गुफा आदि का दर्शन किया। ऋष्यमूक पर्वत की उत्तुंग प्रवर्षणगिरि सब पहुँचे जहाँ आंजनेय का मिलन भगवान रामचन्द्रजी से हुआ था। यहाँ भक्तों को उपदेश देते हुए स्वामीजी ने कहा कि परमात्मा को छल-कपट-दुराव अच्छा नहीं लगता है। जीव जिस भी रूप में है, चाहे दुर्गुणों का भण्डार हो या सद्गुणों से सम्पन्न हो, जब परमात्मा की शरण में पहुँचता है तो परमात्मा अवश्य उसको स्वीकार करते हैं। परमात्मा ने अभयवचन देते हुए कहा है :

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मिति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददामि व्रतिव्रतम् मम्॥

भक्त-सन्त अलौकिक मस्ती में आ गये। अपने प्रियतम की लीलाभूमि में कुछ दिन रुके। यहाँ श्रीराम महायज्ञ किया गया तथा गरीब प्रजा के लिए भंडारा कराया गया। कुछ दिन के बाद जमात ने प्रस्थान आरम्भ किया।

कृष्णा नदी के किनारे-किनारे बढ़ते हुए, शोलापुर होकर आगे बढ़े। एक बार एक घने जंगल में जमात ने मुकाम किया था। जगद्गुरु दूर एक पेड़ के नीचे समाधिस्थ हो गये थे। सब मिलकर ठाकुरजी के लिए भोग तैयार कर रहे थे। सेवा करते-करते सन्तों ने कबीर साहब से एक भजन सुनाने का आग्रह किया। अत. कबीरजी ने शुरू किया :

"बोलो सन्तो अमृतबानी, बरसै कम्बल भींजै पानी।
आज जले चूल्हा गरमाये, पाने वाले को रोटी खाये।
सिथिर मुसाफिर थाके बाटा, सोने वाले के ऊपर खाटा।
लूटे कूत्ता, भूंके चोरा, मरे चमार घसीटे ढोरा।
कहे कबीर यह अमृतबानी, माखी के पेट से हथिनी बियानी॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकांश को इसका मर्म समझ में नहीं आया। वे कहने लगे, "कबीरसा'ब कैसी उल्टी बानी बोल रहे हैं!" परन्तु उन सबको एक सन्त ने रोका तथा उसका गूढ़ार्थ बताते हुए कहा, "कबीरसा'ब कहते हैं, हे सन्तो! जीवों को अमृतबानी से सन्मार्ग पर लगाओ। क्योंकि इस देह पर अवस्था रूपी कम्बल, (बाल, युवा, प्रौढ़ा, वृद्धा) बरसते ही रहते हैं तथा अधोगामी पानी स्वरूप जीव उससे भीगता अर्थात पीड़ित होता रहता है। इस पीड़ा की निवृत्ति हेतु मन सकाम अथवा निषिद्ध कर्म करने में प्रवृत्त होता है जिससे अग्नितुल्य जीवात्मा जलता है, दुखी होता है तथा उसका आश्रय स्वरूप देह रूपी चूल्हा तापयुक्त बनता है। देह के ताप निवारणार्थ मनुष्य विषय रूपी रोटी खाता है, परन्तु विषयरोटी स्वयं अज्ञानी जीव का भक्षण कर लेती है। इस चक्र से थककर अनन्त यात्रा का मुसाफिर जीवात्मा सन्तों का उपदेश सुनकर विवेकपूर्ण स्थिरता प्राप्त नहीं करता तो मोहनिद्रा में सोने वालों के ऊपर ही वासना रूपी खाट चढ़ जाती है। कुवासनायुक्त कुत्तातुल्य अशुद्ध मन, जीव की शान्ति को लूटता है तथा काम-क्रोधादि चोर उसके सामने निरन्तर भूंकते रहते हैं। उससे ग्रसित देहाभिमान से चूर चमारतुल्य मनुष्य बारम्बार मरता है तथा ढोर रूपी निर्दय काल देह को घसीटकर ले जाता है। कबीरजी कहते हैं कि यह कैसी अद्भुत लीला है जिसमें दुर्बुद्धियुक्त वासनाग्रस्त सूक्ष्म मन रूपी माखी से पार न आने वाली माया रूपी हथिनी जन्म लेती है।"

कबीर साहब सहित सब प्रसन्न हो गये। ठाकुरजी को भोग लग चुका था अतः सबने प्रसादी पायी तथा सद्गुरुदेव की जय पुकारते हुए जमात आगे बढ़ी। अनेक स्थान पर मुकाम करते तथा भजन-कीर्तन-सत्संग करते हुए जमात अब महाबलेश्वर की ओर बढ़ गयी। स्वामीजी ने बताया कि रावण ने तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न करके आत्मतत्व लिंग प्राप्त किया था। परन्तु देवता उससे चिन्तित हो गये। संध्या के समय देवताओं की प्रार्थना से गणपति ब्रह्मचारी के रूप में रावण के पास उपस्थित हुए। रावण ने संध्यादि कर्म के लिए लिंगविग्रह ब्रह्मचारी को दे दिया। लिंगविग्रह बहुत भारी हो गया, ब्रह्मचारी ने रावण को पुकारा परन्तु उसे देर लगने पर विग्रह पृथ्वी पर रख दिया। रावण बहुत परिश्रम करने पर भी उसे न उठा पाया तथा क्रोधित होकर ब्रह्मचारी को मारकर चला गया। गणपति व्यथित हो गये। पाताल में तपस्या करते हुए रुद्र भगवान गौरूप-धारिणी पृथ्वी के कर्णरन्ध्र से यहाँ प्रकट हुए इससे इसे गोकर्ण तथा आत्मतत्व लिंग का नाम महाबलेश्वर होने से गोकर्ण महाबलेश्वर के नाम से यह स्थान प्रख्यात हुआ।

सब गोकर्ण महाबलेश्वर पहुँचे तथा गौ-कर्ण के-से आकार वाले जलाधारी आत्मतत्व लिंग महाबलेश्वर के दर्शन करके भाग्यशाली बने।

यहाँ से वे गोदावरी की ओर बढ़ने लगे। मार्ग में स्थानीय लोगों ने काशी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रख्यात जगद्गुरुश्री का जमात सहित भव्य स्वागत किया। अनेक स्थान पर जमात को आग्रहपूर्वक रोका गया तथा लोगों ने सत्संग लाभ लिया। अनेकों को श्रीराम मन्त्र की दीक्षा देते हुए जमात तपस्वी रामजी की लीलाभूमि नासिक पहुँची।

नासिक की धर्मप्रेमी जनता ने जमात का भव्य स्वागत किया। गोदावरी के तट पर पंचवटी में जमात ने मुकाम किया। परमात्मा के पुनीत श्रीचरणों से पावन इस भूमि पर आते ही सब प्रसन्न हो गये। लक्ष्मणजी ने यहाँ पंचवटी में शूर्पणखा की नाक काट दी थी, अतः नाशिक भी कहा गया। आचार्यश्री के दर्शन-सत्संग के लिए भारी भीड़ जमा होने लगी। लोगों का प्रेम एवं आग्रह देख जमात ने एक मास तक यहाँ निवास किया। राघवेन्द्र सरकार की लीलाभूमि में कथा कहते हुए स्वामीजी ने सबको उनका प्रत्यक्ष दर्शन कराया। माँ भगवती श्री सीताजी एवं लक्ष्मणजी के साथ तपस्वी रामजी को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए सबके नेत्र अश्रु-वारि से छलक उठे। एक बार वृहद् भंडारे का भी आयोजन किया गया। अनेक बौद्ध एवं अद्वैतवादियों के असत् सिद्धान्तों का खण्डन हुआ। नित्य भिन्न-भिन्न सन्तों के द्वारा सत्संग तथा भजन-कीर्तन चलता रहा। एक मास पश्चात् जमात प्रस्थान करने को तैयार हुई तब लोगों ने भारी हृदय से उन्हें विदाई दी। उन्हें लगा कि स्वयं भगवान रामचन्द्र ही इस स्थान को छोड़कर जा रहे हैं। यहाँ के मुस्लिम शासन से त्रस्त प्रजाजनों को भी स्वामीजी ने हिम्मत एवं धैर्य प्रदान किया। महर्षि गौतम ने तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न करके गोदावरी को प्रकट किया, उस स्थान त्र्यंबकेश्वर जमात पहुँची। मन्दिर के गर्भगृह में त्रिनेत्र-रूप स्वयंभू ज्योतिर्लिंग का दर्शन लाभ लेकर जमात आगे बढ़ी।

तापी के तट पर राम्प्रदाय के आदिगुरु श्री पुरुषोत्तमाचार्य बोधायन के नाम से सुप्रसिद्ध बोढाण गाँव की ओर अब जमात बढ़ने लगी। वहाँ पहुँचकर बोधायनजी की पादुकाओं का शोडपोपचार पूजन किया तथा श्री बोधायन पंचक का पाठ करके भावुक जनों को श्री बोधायन चरितामृत का पान कराया। आदि-गुरुश्री की स्मृति में वृहद् भण्डारा भी किया गया। कुछ दिन जनता को धर्मलाभ देते हुए जमात नर्मदा नदी की ओर बढ़ने लगी। भरुच पहुँचकर यहाँ की जनता के आग्रह पर जमात रुकी। मध्यम परिमाणवादियों का भरपूर खण्डन हुआ। लोगों को सत्संग लाभ देते हुए जमात सौराष्ट्र की ओर बढ़ने लगी।

सौराष्ट्र का प्रदेश मुस्लिम शासन से स्वतन्त्र था। यहाँ अनेक राजाओं ने स्थान-स्थान पर जगद्गुरुश्री का स्वागत किया तथा सत्संग लाभ लिया। जूनागढ़ नरेश ने हिन्दू संस्कृति के रक्षक महान धर्माचार्य का भव्य स्वागत किया। स्वामीजी ने नरेश की प्रार्थना से गिरनार में मुकाम किया तथा श्री सीताराम महायज्ञ किया। जहाँ स्वामीजी ने विश्राम किया था, वहाँ राजा ने स्वामीजी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरणपादुका प्रस्थापित कीं। (जो आज भी उपस्थित हैं) गिरनार पर्वत के आस-पास अघोरियों का भारी उपद्रव था। वाममार्गी अघोरियों के आचरण से सामान्य जनता में सदैव भय का साम्राज्य फैला रहता था। लोगों का जगद्गुरु के प्रति प्रेम एवं आदर देख एक औघड़ ने आचार्यश्री पर हड्डी एवं अग्निवर्षा की। परन्तु कमण्डल से जल छिड़कने पर अग्नि शान्त हो गयी तथा हड्डी स्वयं औघड़ के ऊपर गिरीं तथा उसका शरीर जलने लगा। तत्काल वह स्वामीजी की शरण में आया तब उसकी जलन शान्त हुई। परन्तु कुछ ही समय में अपनी मायावी शक्ति से उसने जमात के चारों तरफ अन्धकार किया तथा पिशाची गर्जना करना आरम्भ किया। यतिराज की योगिक दृष्टि के तेज से अन्धकार का नाश हुआ तथा पुनः औघड़ के शरीर में जलन पैदा हुई। कोई उपाय न देख विवश होकर औघड़ पुनः शरण में आया तथा क्षमायाचना करने लगा। करुणानिधान ने उसे क्षमा प्रदान की तथा उससे अघोर मार्ग का त्याग कराया। उसने प्रार्थनापूर्वक श्री वैष्णवी दीक्षा ली।

तदनन्तर जमात प्रभास पाटन पहुँची। पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु श्रीकृष्ण के देहोत्सर्ग की पवित्र भूमि को प्रणाम करते हुए कमलदल लोचन सजल हो गये। भाव-विभोर महामुनि के साथ जमात का यहाँ की भावुक जनता ने भव्य स्वागत किया। समुद्र किनारे जमात का मुकाम हुआ। अनेक प्राचीन मन्दिरों के साथ देहोत्सर्ग स्थान पर सबने श्रद्धाकुसुम चढ़ाये। कुछ दिन रुकने के उपरान्त जमात ने सोमनाथ की ओर प्रस्थान किया।

(6)

सोमनाथ की धर्मप्रेमी जनता ने हृदयपूर्वक जमात का स्वागत किया। भगवान सोमनाथ के भव्य मन्दिर के भग्नावशेष को जगद्गुरुश्री ने मलिनमुख भीगी आँखों से देखा। मन्दिर के भग्न शिखर को देखकर हिन्दू जाति की निर्बलता पर वे व्याकुल हो गये। उनके श्री मुख से सहज ही निकल गया :

"हाय ! भारत देश से हिन्दुत्व चला गया। देश के सुन्दर कर्म करने के दिन चले गये। अहो ! भगवदेच्छा प्रबल है। क्या सचमुच तुम्हारे पूर्वजों का रक्त तुम्हारे शरीरों में सूख गया है ? नहीं तो हिन्दुओं के पूज्य सोमनाथ की यह दशा होती ! हिन्दू जाति में दिन-प्रतिदिन निर्बलता की वृद्धि ही होती जा रही है। यदि निर्बलता रूप यह दोष नष्ट नहीं हुआ तो हिन्दू जाति का नाम भी नष्ट हो जायेगा।"

स्वामीजी ने गंगाजल से भगवान सोमनाथ को सप्रेम श्रद्धावनत हो अभिषेक किया। महारुद्राभिषेक भी किया गया। बिल्व पत्र से पूजन हुआ। धार्मिक जनता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को सत्संग लाभ देते हुए जमात द्वारिका की ओर गयी।

मार्ग में कई पण्डितों द्वारा शास्त्रार्थ हुए, कई पाखण्डियों ने पाखण्ड भी किये परन्तु महाप्रभु के आगे उनकी एक न चली। सबने हारकर प्रार्थनापूर्वक शरणागति स्वीकार की।

द्वारिका पहुँचने पर वहाँ के अधिकारियों द्वारा जगद्गुरुश्री की भव्य शोभायात्रा निकाली गयी। फूलवर्षा करते हुए लोगों ने हर्षोल्लास से अपना प्रेम एवं आदर प्रदर्शित किया। भगवान श्रीकृष्ण की राजधानी में द्वारिकाधीश के त्रैलोक्य-सुन्दर मन्दिर में दर्शन करने गये। तब स्वामीजी ने भक्तों को बताया कि परीक्षित के समकालीन भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र राजा वज्रनाथ ने उद्धवजी से श्रीमद्भागवत कथा का श्रवण किया तथा अपने दैवी प्रपितामह की पुण्यस्मृति में उन्होंने हरिग्रह बाँधकर परमात्मा श्रीकृष्ण के स्वरूप का सम्प्रतिष्ठापन किया था। तब से हजारों वर्षों मे विशाल समुद्र के किनारे यह मन्दिर द्वारिकाधीश का स्थान बना हुआ है। भगवान के श्रीविग्रह एवं समृद्धि के दर्शन करते हुए सब अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

जमात ने मन्दिर के पास ही समुद्र किनारे मुकाम रखा। यहाँ भाविक नर-नारियों की भीड़ लगने लगी। राजा पीपाजी एवं रानी सीताजी की दशा अलौकिक हो गयी थी। पीपाजी ने एक पद रचकर शयन के समय भगवान द्वारिकाधीश को सुनाया :

"पौढ़ो स्वामी द्वारिका, रनछोर !
द्वारिका में झालर बाजे, शंखन की घनघोर।
रुकमनी के रंगमहल में, दीपक लाख करोर।
थे पौढ़या थारा सेवक पौढ़े, पौढ़े पुरी का सारा लोग।
दास पीपो सरन थारी, गावे छे दोनुं कर जोरि।"

भावावेश में दोनों रात-रात तक जागते रहते थे। एक रात्रि भाव के आवेश में ही दोनों समुद्र में प्रवेश कर गये। जमात में हाहाकार हो गया। परन्तु स्वामीजी सहज शांत अवस्था में पूर्वपरिचित मधुर स्मित से सबको आश्वासन देते रहे।

इधर भक्त पीपाजी एवं सीताजी को समुद्र में सोने की द्वारिका सहित भगवान श्रीकृष्ण एवं राधारानी सहित जगद्गुरुश्री के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। श्रीकृष्ण ने निजरानी सहित दम्पति का सत्कार किया। भगवान के प्रेम समुद्र में डूबा हुआ प्राणी स्थूल सिन्धु में डूब नहीं सकता इस बात को प्रमाणित करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने शंखचक्र की छाप देकर दोनों को किनारे पहुँचा दिया।

ढूँढते हुए लोगों ने उन्हें देखा तथा होश में आने पर सब सद्गुरुदेव के पास आये। पति-पत्नी दोनों गुरुदेव के श्रीचरणों में अनुगृहीत होकर गिर गये। जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों को वृतान्त पता चला तब सबने जगद्गुरुश्री के जयघोष से द्वारिका गुंजित कर दी।

द्वारिका के लोगों के आग्रह पर श्रीराम यज्ञ भी सम्पन्न हुआ जिसमें राजा सहित अनेक श्रद्धालु एवं विद्वानों ने भाग लिया। अमित प्रतिभासम्पन्न जगद्गुरुश्री के अलौकिक अपार्थिव तेजोमय मुखारविन्द के दर्शन मात्र से लोग प्रभावित होते रहे। स्वामीजी ने बृहद् भंडारे का आयोजन किया। श्रद्धालुओं को उनकी प्रार्थना पर श्रीराम मन्त्र की दीक्षा दी गयी। अब प्रस्तुति का समय हो गया था अतः जमात ने अरवली की ओर प्रयाण किया। लोगों ने भावभरी विदाई दी।

(7)

अरवली की गिरिकन्दराओं को खूंदते हुए जमात अर्बुदाचल पहुँची। प्राचीन सुप्रसिद्ध श्री वशिष्ठ आश्रम एवं अन्य आश्रम के दर्शन किये। नक्की तालाब पर मुकाम हुआ। आसपास की जनता यहाँ सत्संग लाभ लेने आने लगी। करुणा एवं प्रेम की साक्षात मूर्ति स्वामीजी के दर्शन कर प्रेमरस में आप्लावित होती रही। गुरुशिखर पर भगवान दत्तात्रेय के दर्शनादि किये। वहाँ के सुप्रसिद्ध मलिन्दसुत मुनि द्वारा सुपूजित सर्वेश्वर श्री रामजी की अलौकिक प्रतिमा देख जगद्गुरु भाव-विह्वल हो गये। मुनि के प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने नक्की तालाब पर भव्य मन्दिर निर्माण का देवताओं को आदेश दिया। निर्माण होने पर आनन्दोत्सव सहित सर्वेश्वर श्री रामजी को यतिराज द्वारा मन्दिर में प्रस्थापित किया गया। लोगों की प्रार्थना पर श्रीराम महायज्ञ का आयोजन भी हुआ।

एक दिन कुछ शिष्यों व सन्तों सहित जगद्गुरुश्री परिभ्रमणार्थ निकले। नयनरम्य गिरिगुहाओं का अवलोकन करते हुए एकांत स्थान पर विश्राम के लिए मंडली बैठी। अति उत्तम समय देख सर्वसन्तों ने मिलकर श्री सुरसुरानन्दजी को सबकी जिज्ञासा परिपूर्ण करने कुछ प्रश्न पूछने को प्रोत्साहित किया। अतः सौम्य, श्रद्धायुक्त वाणी से करबद्ध होते हुए श्री सुरसुरानन्दजी ने सुशोभित शुभ्र वस्त्रांवर धारण करके ऐसे ही आसन पर विराजमान तेजपुंज स्वरूप अपने आराध्य से प्रश्न किया :

"हे भगवन्! हम सबकी इच्छा आपके श्रीमुख से श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्त के विषय में उपदेश प्राप्त करने की है। परन्तु लोगों की भीड़ एवं प्रेम देख हम नहीं पूछ सके। आज इस स्थान पर हे प्रभो! हमारी पिपासा तृप्त कीजिये।"

जगद्गुरुश्री के सुप्रसन्न होकर अनुमति देने पर श्री सुरसुरानन्दजी ने पूछा :

"गुरुदेव! (1) इस संसार में तत्व क्या है? (2) श्रीवैष्णवों को किस मन्त्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का जप करना चाहिए ? (3) किसका ध्यान करना चाहिए ? (4) मुक्ति का श्रेष्ठ साधन क्या है ? (5) सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन है ? (6) वैष्णवों के प्रकार कितने हैं ? (7) वैष्णवों के लक्षण क्या हैं ? (8) उन्हें कहाँ निवास करना चाहिए ? (9) किस प्रकार कालक्षेप करना चाहिए ? (10) मोक्ष के लिए किस साधन की प्राप्ति करनी चाहिए ?"

अपने प्रिय शिष्य सुरसुरानन्दजी द्वारा महात्माओं की जिज्ञासा सुनकर प्रसन्न हो गये स्वामीजी ! कुछ क्षणों में उनका धीर गम्भीर करुणा से परिप्लावित स्वर गूँज उठा :

"प्रिय वत्स ! आपने ठीक ही वेद प्रतिपादित सर्वमनुष्यों के हितकारी प्रश्न पूछे हैं। उनका उत्तर सावधान होकर सुनो। तत्वों को भलीभाँति जानने वाले हमारे पूर्वाचार्यों ने परब्रह्म अनादि तत्व श्री सीतारामजी को स्वीकार करके उनकी अभिव्यक्ति रूप तीन तत्वों को बताया है। अचित् अर्थात् जड़ प्रकृति या माया, चिद् अर्थात् जीव तथा परमात्मा अर्थात् सर्वव्यापक तत्व।

ब्रह्म परमतत्व है, वह तीनों तत्वों के रूप में साथ ही रहता है। नाम-भेद से चिद्, अचित् तथा ब्रह्म संज्ञावाला कहलाता है। अचित्, मायातत्व है उससे विश्व उत्पन्न होता है। वह एक है, नित्य है, शुभ है, जड़ है, ज्ञान शून्य तथा विकार रहित है। उसे सत्-रज-तम मिश्रित अनेक वर्ण वाली प्रकृति भी कहते हैं। स्वयं तो वह व्यापार शून्य है किन्तु भगवान के अधीन रहकर सृष्टि की रचना भी करती है। अहंकार और महततत्व भी उसी से उत्पन्न होता है। कहीं-कहीं उसे अव्यक्त और प्रधान भी कहते हैं। यह अचित् तत्व का स्वरूप है।

हे श्रीराम के चरणों में प्रेम रखने वाले सुरसुरानन्द ! जो नित्य है, एकरस है, अज है, चेतन है, पर सर्वज्ञ नहीं है; भगवान के अधीन है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है तथा प्रति शरीर में है वह चिद् है तथा नित्य मुक्त और बद्ध आदि भेदों से तीन प्रकार का है। भगवान के साथ व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध से सदैव रहता है। कर्मफल भोक्ता है; मैं कर्ता, मैं भोक्ता, यह अभिमान रखने वाला है। इस प्रकार जो जिज्ञासुओं के जानने योग्य है उसे विद्वान लोग चिद् (जीव) तत्व कहते हैं।

जिस परमात्मा से यह सर्वजगत उत्पन्न हुआ, जिससे पालित है और जिसमें लीन हो जाता है, जिसके तेज से चन्द्र और सूर्य रात-दिन के विभाग से समस्त विश्व को प्रकाशित करते हैं, जिसके भय से पवन चलता है और पृथ्वी पाताल नहीं चली जाती, जो सर्वज्ञ, सबके कर्मों के साक्षी, सर्वव्यापक, सर्वगुण सम्पन्न, अद्वितीय, अविनाशी और जो सारे भूमंडल का स्वामी है उसे ब्रह्म कहते हैं।

अब हे प्रिय शिष्य ! वैष्णवों के लिए जाप्य मन्त्र के विषय में सुनो। अनेक मन्त्रों में से हमारे पूर्वाचार्यों ने तीन मुख्य मन्त्रों को श्रीवैष्णवों के लिए परम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाप्य बताया है; तारक मन्त्र, मन्त्रद्वय तथा चरम मन्त्र ।

हे वत्स ! तारक मन्त्र को व्यापक तथा अव्यापक सर्वमन्त्रों में सर्वोत्तम मोक्षदायी तथा प्रधान मन्त्र बताया गया है। श्री सद्गुरुदेव कृपा करके अपने शिष्यों को यह मन्त्र रत्न प्रदान करते हैं। ऋषियों द्वारा षडव्याप्ति भेद वाला यह षडाक्षरी मन्त्र यश-स्वरूप की व्यापकता वाला तथा सकल वेद तथा शास्त्रों का सार है। उसका प्रथम अक्षर सर्ववेदार्थ गर्भित तथा सम्पूर्ण जगत के उत्कृष्ट आधार रूप में बीजाक्षर है। रेफारूढ़ में त्रिमूर्ति ब्रह्मा-विष्णु-महेश की महाशक्ति समाहित है। आकारांत पद से सर्वेश्वर श्री सीतापति राघवेन्द्र का, सकल जगत का संरक्षक तथा कल्याणकारी गुणों के आश्रय स्थान का निर्देशन मिलता है। बीज के अन्तिम वर्ण में सर्वकारण श्री रामजी से सर्वदेवों में जीव की व्यावृत्ति का प्रतिपादन किया गया है। द्वितीय अक्षर रेफ के रक्षावाचक होने से स्थावर-जंगम सकल जगत का श्री रामजी से रक्ष-रक्षक भाव, पिता-पुत्र भाव प्रस्थापित होता है। लुप्त चतुर्थी विभक्ति से जीव समुदाय से शेष-शेषी भाव, आ-कार से अनन्य अर्हत्व भार्या-भर्तृत्व सम्बन्ध प्रतिपादित होता है। चतुर्थ अक्षर म-कार से स्व-स्वामिभाव दृढ़ होता है। चतुर्थी विभक्ति से जीव तथा ईश्वर में सेव्य-सेवक भाव बोधित होता है। अखंड पद नमः—से जीव ईश्वर में आत्मीय तथा शरणागति का भाव प्रकट होता है। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा का परमात्मा से शेष-शेषी भाव का अनुसन्धान करते हुए इस मन्त्र को निरन्तर जपना चाहिए।

अब हे वत्स ! मन्त्रद्वय सुनो—

श्रीरामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये ।
श्रीमते रामचन्द्राय नमः ॥

दो वाक्य, छः पद तथा पचीस वर्णों से युक्त इस अद्भुत मन्त्र सहित परमात्मा में मन लगाने से यह सर्वफलप्रद बनता है। प्रथम पद 'श्री' सीताजी के स्वरूप का वर्णन है। परमात्मा श्री रामजी की प्राप्ति में पुरुषार्थ कराने वाली जानकीजी का नित्य सम्बन्ध 'श्रीरामचन्द्र' शब्द से प्रस्थापित होता है। चरणौ पद से वात्सल्यादिक अनन्त गुण तथा अनन्त जीवों के आश्रय स्थान श्री रामजी के दिव्य विग्रह का प्रतिपादन है। शरणं पद से श्री कौशलेन्द्र प्रभु की शरणागति भाव से प्राप्ति का उपाय बताया गया है। प्रपद्ये—भगवत् विग्रह का स्वरूपानुचिन्तन पूर्णतः प्रपन्न भाव से करना जीव का कर्तव्य है, इस ज्ञान को प्रदर्शित किया है। द्वितीय वाक्य के प्रथम पद श्रीमते से श्री सीताराम युगल मूर्ति के चिन्तन स्वरूप को प्राप्य बताया है। रामचन्द्र पद से श्रीरामजी में सर्वजीव निरूपित स्वामिभाव प्रदिपादित है। आय विभक्ति पद से सर्वशेषी भगवान तथा शेष जीवसमुदाय के व्यापार का निर्देशन है। नमः पद से परमात्मा की प्राप्ति में विरोधी अहंता-ममता के अभाव का प्रतिपादन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब चरम मन्त्र का रहस्य सुनो—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मिति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामिनि व्रतं मम्॥

उपरोक्त दो मन्त्रों से परमात्मा श्री सीतारामजी के श्रीचरणों में कैंकर्य प्राप्त प्रपन्न जीवों को इस मन्त्र द्वारा प्रभु ने अभयवचन दिया है। बत्तीस वर्ण के इस मन्त्र में दो खंड हैं। सकृत् पद से प्रपत्ति भिन्न अन्य उपायों से निवृत्ति प्रतिपादन की गयी है तथा एव पद से अन्य देवोपासना का निरपेक्षत्व बताया गया है। प्रपन्नाय पद से पराभक्ति सहित शरणागत के परमात्मा की शरण में जाने का कथन है। अस्मि शब्द से सर्वेश्वर श्रीरामजी की शरणागति के अतिरिक्त अन्य उपायों का निषेध बताया गया है। इति—शरणागति की अनन्यता प्रतिपादित करता है तथा च-कार कायिक, वाचिक प्रपत्ति का प्रतिपादन है। याचते पद तीनों प्रपत्ति की याचना करने वाले जीवों को निर्देशित करता है। अभयम् पद परमात्मा श्रीराम की प्राप्ति में प्रतिबेधक काम-क्रोधादि के निवारण का दर्शन कराता है। सर्वभूतेभ्यो शब्द भगवत् प्राप्ति में प्रतिबन्धक आसुरी वृत्तियुक्त सर्वभूत या प्राणी से जीव का अभय तथा रक्षण का बोध कराता है। ददामि परमात्मा के सर्वशक्ति तत्व से युक्त स्वरूप का वर्णन है। एतद् अर्थात् उपरोक्त सर्वप्रतिपाद्य विषय में संशय का अभाव प्रतिपादन किया है। व्रतम् से पूर्वकथित सकल विषय की दृढ़ता तथा निश्चय का भाव निर्देशित किया है। मामेति शब्द से परमात्मा पर निर्भरत्व अर्थात् विश्वास रखने को कहा गया है। श्लोक का तात्पर्य यही है कि भगवान श्री राघवेन्द्र प्रभु एवं श्री सीताजी के स्वरूप का निरूपण करते हुए शरणागति का आलंबन करना चाहिए। शरणागत जीवों को सर्वप्रकार के भय से रक्षण देने के लिए शरणागतपाल श्री रामचन्द्र वचनबद्ध हैं।

हे सुरसुरानन्द! अब वैष्णवों को किसका ध्यान करना चाहिए यह सुनो: श्रीराम भक्तों को तैलधारा के समान सर्वशक्तिमान द्विभुज धनुषधारी निखिलेश्वर श्री रामजी का श्री जानकीजी सहित ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय हृदय में यह भाव होना चाहिए कि—खिले हुए कमल के समान विशाल नेत्र वाले, मुनियों के मनरूपी सुन्दर भंवर से आस्वादित मकरन्द से सुशोभित कमल के समान चरण वाले, लावण्ययुक्त विकसित कमल के समान प्रसन्न मुखारविन्द वाले, दिव्य धनुषबाणों से सुशोभित लम्बी भुजाओं वाले, नये मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, कमलकेसर के समान पीतवस्त्र धारण करने वाले कौस्तुभादि दिव्य आभूषणों से अलंकृत, कृपा के सागर अनन्त दिव्य गुण वाले, ब्रह्मादिक देवता तथा ऋषि-मुनियों के मन को हरने वाले, भक्तों के हृदय मन्दिर में सदा निवास करने वाले श्री जानकीजी सहित प्रसन्न स्वरूप भगवान श्री रामजी का मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यान करता हूँ। वे मेरा अवश्य कल्याण करेंगे। इस ध्यान का फल निश्चय मोक्ष देने वाला है।

प्रिय आत्मन् ! अब मुक्ति के श्रेष्ठ साधन के विषय में सुनो ! जन्म कर्मादि बन्धन की मुक्ति हेतु वैष्णवों को शास्त्रज्ञ, सदाचारी, निग्रह एवं अनुग्रह में समर्थ सुबुद्धिमान गुरु की शरण में जाना चाहिए। गुरुसेवा करते हुए गुरुदेव को प्रसन्न करके विरक्त दीक्षा पंचसंस्कारपूर्वक ग्रहण करनी चाहिए। भुजामूल पर तप्त धनुषबाण अंकन, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, दासता सूचक नाम, श्रीराम मन्त्र तथा तुलसीकंडी को विधिपूर्वक सद्गुरुदेव से श्रद्धापूर्वक प्राप्त करना चाहिए। प्रातः, मध्यान तथा सायंकाले शौचादिक क्रियाओं से निवृत्त होकर विदेहजा श्री जानकी-जी युक्त श्रेष्ठ श्यामल दयानिधि के अर्चावतार की 'यथा देहे तथा देवे' की भावना से सेवा-उपासना करनी चाहिए। श्रीराम मन्त्र का नित्य जप करना चाहिए। व्रततत्पर, श्रद्धावान, सच्चरित्र, विनयशील, जितेन्द्रिय तथा भक्तिनिष्ठ रहते हुए श्रीराम की नवधा प्रकार से भक्ति करनी चाहिए। एकादशी, श्रीराम नवमी, श्री जानकी नवमी, हनुमान जयंती, नृसिंह जयंती, श्रीकृष्ण जयंती, वामन द्वादशी का व्रत करना चाहिए। रथयात्रा तथा दोलोत्सव आदि उत्सवों को अधिक उत्साह से मनाते हुए परमात्मा श्री रामजी की अनन्य कृपा पर विश्वास रखना चाहिए। जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति का लक्ष्य उन्हीं को बनाकर अहर्निश साधना में मन लगाकर मुमुक्षु इच्छित लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

हे जिज्ञासु ! सर्वोत्तम धर्म का तत्व सुनो। 'अहिंसा परमो धर्मः।' जिस प्रकार ऊँचे-नीचे बहती नदियाँ अन्त में अगाध जलराशि समुद्र का ही आश्रय लेती हैं उसी प्रकार संसार के सभी धर्मों का आश्रय अहिंसा में है। हिंसाहीन व्यक्ति में सर्वधर्म आश्रय लेते हैं। मन, वाणी तथा कर्म से अहिंसक रहना यह सर्वश्रेष्ठ सनातन धर्म है। अतः हम वैष्णवों को जल-स्थल में उत्पन्न किसी भी प्राणी की हत्या से प्राप्त मांसादि का भक्षण त्याज्य है। शुभकर्मों को भगवान को अर्पण करके उनका प्रसाद नित्य ग्रहण करना चाहिए।

प्रिय शिष्य ! अब वैष्णवों के प्रकार अर्थात् जीवों के प्रकार सुनो। चिद् तत्व, जीव तत्व को दो प्रकार से हमारे महर्षियों ने विभाजित किया है—मुक्त तथा बद्ध। अनादिकाल से संचित शुभाशुभ कर्मों के प्रभाव से जन्म लेने वाले देहाभिमानी जीवों को बद्ध जीव तथा तीनों काल में कदापि गर्भावास तथा जन्म-मरणादि दुःखों का अनुभव नहीं किया हो उन्हें मुक्त जीव कहा गया है।

मुक्त जीव को नित्य मुक्त तथा कदाचित् मुक्त में बाँट दिया गया है। कदाचित् मुक्त प्राकृतिक बन्धनों से विमुक्त तथा स्वकीय जीव स्वरूप में अवस्थित रहकर परमात्मा के प्रिय भक्तों में सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। हनुमान आदि को परिजन तथा सेवकों को परिकर कहा गया है। कदाचित् मुक्त भागवत् और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैवल—दो प्रकार के होते हैं। परब्रह्म श्री सीतारामजी में ही निष्ठावान बनकर उनका सेवन, साक्षात्कार तथा चरणों में संलग्न रहने वाले भागवत् हैं तथा स्वानुभूति में संलग्न कैवल हैं।

बद्ध जीव बुभुक्षु तथा मुमुक्षु होते हैं। अविद्या बढ़ाने वाले सकाम कर्म करके उसमें आसक्ति रखते हुए सांसारिक भोगों की कामना वाले बद्ध जीवों को बुभुक्षु तथा परमात्मा की अहैतुकी कृपाबल के सहारे अविद्याजनित संसार सागर से पार उतरने की कामना वाले बद्ध जीव मुमुक्षु कहे गये हैं। बुभुक्षु वासना से मुक्त होने, मोक्ष प्राप्ति के लिए भगवत् कृपादृष्टि प्राप्त करने वाले अखंड पुरुषार्थ कर स्वप्रयत्न से ध्यान, पूजा, पुरश्चरण में विश्वास रखते हैं। दूसरे मात्र भगवत् कीर्तन, स्मरण, वंदनादि में निष्ठा वाले होते हैं।

प्रपन्न उन्हें कहते हैं जो एकमात्र भगवान श्री रामजी को ही प्राप्य हैं और उनको ही कल्याण का उपाय समझकर उनमें चित्त को संलग्न रखते हैं। आचार्य (गुरुदेव) में भगवान की भावना रखकर अनन्यतापूर्वक जो गुरुसेवा करते हैं, वे भी प्रपन्न ही हैं। प्रपन्न दो प्रकार के हैं—आर्त और दप्त। आर्त संसार रूपी बड़वानल को एक क्षण के लिए भी असह्य मानते हुए भगवत् दर्शन के लिए अत्यन्त विरह भावना से शीघ्रता करते हैं किन्तु दप्त स्वकर्मानुसार प्राप्त सुख दुखादिक को शरीर से यहाँ भोगते हुए श्रद्धा और विश्वास के साथ मोक्ष सिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं। शुद्ध भक्त निष्काम होते हैं। उन्हें न मुक्ति चाहिए न बन्धन। वे भगवत् भजन को ही अपना चरम लक्ष्य मानते हैं और चाहते हैं कि कर्माधीन कोई भी योनि में जन्म मिले, परन्तु भगवान की भक्ति एक क्षण के लिए भी हृदय से दूर न हो। ये उत्तम भक्त हैं।

हे भगवत् चरणानुरागी ! अब वैष्णवों के लक्षण सुनो ! वैष्णव वही है जो पंचसंस्कारों से युक्त होकर सदा आत्मनिष्ठ, सदाचारी, नम्र, आत्मपरायण रहता है। सद्गुणों का भंडार श्रीवैष्णव सदैव बाह्य तथा आंतर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुए पवित्र मन से सदाकाल भगवान के नामों का उच्चारण करता है, भगवान की कथा-कीर्तन में दृढ़ सत्ता रखता है। सन्तजनों को देखकर प्रसन्न होता है तथा उनका पूजन, सेवा, सत्कार करता है। अभेदभाव से सबकी हित-कामना करता है तथा निर्विकारी होकर संसार में विचरता है। ऐसे वैष्णव तीर्थ को तीर्थ, कर्म को सुकर्म बनाते हैं, शास्त्र को सद्शास्त्र बनाते हैं। उनके पूजन से, चरणामृत से, सत्संग से और उच्छिष्ट भोजन से करोड़ों जन्म के पाप नष्ट होते हैं।

अब आपके आठवें प्रश्न का उत्तर सुनो। भगवान ने आविर्भूत होकर जिन-जिन स्थानों को पवित्र किया वहाँ श्रीवैष्णवों को शांत, निष्काम और जितेन्द्रिय होकर, अपने इष्ट का अनन्यतापूर्वक स्मरण, पूजा और ध्यान करते हुए अयोध्या,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रकूट, नेमिषारण्य, बद्रिकाश्रम, हरिहरक्षेत्र, हरिद्वार, प्रयाग, काशी, मथुरा, वृन्दावन, नासिक, कांची आदि तीर्थस्थानों में अथवा गंगाजी, सरयूजी, नर्मदाजी आदि श्रेष्ठ गंगाओं के तट पर रहना चाहिए। तीर्थों का आश्रय श्रीवैष्णवों को कभी छोड़ना नहीं चाहिए।

हे सुरसुरानन्द ! अब कालक्षेप के विषय में शास्त्रविधान सुनो ! भगवत् परायण वैष्णवों को त्रिकाल संध्यादि कर्म करके भगवान श्री रामजी का पूजन-अर्चन करके अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य के तथा रामायण, गीता, महाभारत आदि के पठन-पाठन के द्वारा कालक्षेप करना चाहिए। अशक्त व्यक्ति पवित्र वैष्णवों के मुख से इन ग्रन्थों का श्रवण करे तथा भगवन्नाम का कीर्तन एवं श्रीराम मन्त्र के जप द्वारा काल व्यतीत करे।

जिसे भगवत्कैंकर्य में अनुराग हो, वह अयोध्या, चित्रकूटादि दिव्य देशों में रहकर भगवत्कैंकर्य करते हुए भगवत् कथा श्रवण-मनन करता हुआ समय व्यतीत करे। अथवा अन्य किसी स्थान पर कुटिया बनाकर ममता-अहंकारादि से हीन होकर श्रीराम मन्त्र का प्रेमपूर्वक जप करते हुए कालक्षेप करे। भगवान की पूजा के लिए तुलसी-पुष्पादिक की वाटिका लगाकर या मन्दिर में लेपन, पार्षद, मंजन, भोगादिक सामग्री शुद्ध करने की सेवा लेकर भगवत् स्मरणपूर्वक अथवा सन्तसेवा में कालक्षेप करे।

हे वत्स ! अब तुम्हारे अन्तिम प्रश्न का उत्तर सुनो। मोक्ष के लिए और किसी साधन की आवश्यकता नहीं है। प्राप्य की प्राप्ति ही सर्वसिद्धि को देने वाली है। श्रीपदवाच्य श्री जानकीजी से नित्ययुक्त, वात्सल्यादि दिव्य गुणों के सागर, प्राणी मात्र को शरण देने वाले, जगत् के कारण स्वरूप, इन्द्रादि समस्त देवताओं के स्वामी, सूर्य चन्द्र तारा अग्नि विद्युत सबके प्रकाशक, सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान, ब्रह्मादिक के कर्ता सृष्टिनायक, पवित्र योगियों के ध्यान करने योग्य, नित्य सत्यस्वरूप भगवान श्री रामजी ही मुमुक्षु जनों के प्राप्य हैं।

सदाचार परायण मुमुक्षु वैष्णव को अपने इष्ट भगवान की प्राप्ति के लिए अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाले ज्ञान रूपी सूर्य श्रीगुरु महाराज की शरण लेनी चाहिए। जीव तदनन्तर गुरुकृपा के प्रभाव से सांसारिक पदार्थों से निस्पृह होकर भगवान की शरणागति स्वीकार करके, प्रारब्ध कर्मों का उपभोग तथा वर्तमान कर्मों का नाश करके श्रीभगवान के अनुग्रह द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के द्वार से निकलकर अर्चिरादि मार्ग को प्राप्त होता है। मार्ग में दिनाभिमानी, शुक्ल-पक्षाभिमानी, उत्तरायण षडमासाभिमानी, सूर्य, चन्द्र, विद्युताभिमानी आदि देवताओं से पूजित सम्मानित होकर ब्रह्ममार्ग से परमात्मा श्री रामजी के सनातन सर्वोत्कृष्ट साकेत लोक को प्राप्त होता है। वहाँ सायुज्य गति से भगवान श्री रामजी के साथ निरन्तर आनन्द विहार करता है और वहाँ से लौटता नहीं है। उन प्राप्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को प्राप्त कर लेने के पश्चात मुमुक्षु को फिर कुछ भी पाना-जानना शेष नहीं रह जाता। वह निश्चय दिव्य साकेत लोक को प्राप्त होता है।"

महिमामय महामुनि की वाक्धारा में बहती हुई समस्त सन्त-मंडली को समय का तभी भान हुआ जब स्वामीजी ने वाणी को विश्राम दिया। सद्गुरुदेव से प्राप्त इस ज्ञान को तदनन्तर उस मंडली ने संग्रहित करके श्री रामार्चन पद्धति परिशिष्ट के साथ 'श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर' नाम से लिपिबद्ध किया। (जो आज भी प्राप्य है।) इस एकांत स्थान पर एक गुहा में स्वामीजी ने कुछ काल साधना की। सन्त मंडली पुनः मुकाम पर पहुँच गयी। अर्बुदाचल पर अब भीड़ बढ़ने लगी थी। सर्वेश्वर श्री रामजी के मन्दिर में भक्त अनन्य श्रद्धाभक्ति से आने लगे। यहाँ के राजा ने उस एकांत स्थान पर जगद्गुरु के सम्मानार्थ उनकी स्मृति चिह्न रूप पादुकाएँ प्रस्थापित कीं। आसपास के आतंक से त्रस्त प्रजा को सांत्वना एवं हिम्मत देते हुए जमात ने एक मास पर्यंत अर्बुदाचल पर मुकाम किया तदनन्तर आगे प्रस्थान किया।

राजपूताना के अनेक राजपूत राजाओं के आमन्त्रण को स्वीकार करके उनको देशभक्ति तथा धर्मप्रेम का सन्देश देते हुए जमात बढ़ती रही। मुस्लिम शासन की बर्बरता भूलकर प्रतिभासम्पन्न के दर्शन से अभिभूत होकर जनता कृतकृत्य होती रही। मार्ग में जहाँ जमात मुकाम करती, मानवमेदनी तेजस्वी महात्मा के दर्शनार्थ उमड़ पड़ती। स्थान-स्थान पर धर्मोपदेश द्वारा हिन्दुओं में जागृति प्रसार करते हुए स्वामीजी पुष्कर पहुँचे।

सर्व राजपूत राजाओं को वर्तमान स्थिति का अन्त करने के लिए संगठित होने का सन्देश दिया। राजपूत राजाओं ने मुस्लिम शासन से मुक्त होकर स्वतन्त्र राजपूताना विस्तार बनाया।

जगद्गुरुश्री को आमेर नरेश ने आमन्त्रित किया। धर्म के इस संस्थापक को जनता ने हर्षोल्लास सहित सन्मान दिया। महामुनि का प्रलम्ब गौर शरीर पौराणिक महर्षि की स्मृति जाग्रत करती हुई जटाजूट, भव्य भाल, दीर्घ दृग, विशाल बाहु—सम्पूर्ण आकृति परम आदरभाव पहली दृष्टि में ही उत्पन्न कर देती थी। उन्हीं के धैर्य एवं प्रयत्नों से राजपूत राज्यों ने मुस्लिम आधिपत्य न स्वीकार कर स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना करने की हिम्मत की थी। आमेर नरेश सूर्यवंशी राजा थे। उन्होंने श्री रामजी के ही समान प्रतापी एवं धर्म प्रेमी स्वामीजी से सच्चे क्षात्रधर्म तथा प्रजा में धार्मिक भावों के विकास हेतु शिक्षा ली। हिन्दू प्रजा अपनी संस्कृति से, अपने गौरव से, अपनी आदर्श भावना से उत्तरोत्तर क्षीण तथा सत्वहीन क्यों होने लगी—इस विषय में चर्चा हुई।

आमेर से यतिराज जमात सहित चित्तौड़ पधारे। राजपूतों के स्वदेशप्रेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं स्वप्रेम की रक्षा के लिए रक्त बहाकर भी संस्कृति का रक्षण करने का आदेश दिया। म्लेच्छों से पीड़ित धर्मप्रेमी जनता को आश्वासन एवं हिम्मत प्रदान करने राजाओं से परामर्श किया। चित्तौड़ के राजा ने बहुमूल्य पट, पीताम्बर तथा रत्नजड़ित छत्र, चंवरादिक की भेंट स्वामीजी के चरणों में अर्पण की। स्वामीजी ने सदा की भाँति उन चीजों को दीन-दुखियों में बाँट दिया।

धर्मप्रचार एवं धर्मरक्षा करते हुए जमात धीरे-धीरे श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा पहुँच गयी। यहाँ यवन आतंक अधिक था। परन्तु जगद्गुरुश्री की उपस्थिति ने ही उनके हृदय को विदीर्ण कर दिया। लोगों ने अपने धर्माचार्य का भव्य स्वागत किया। श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर बने विशाल मन्दिर के प्रांगण में हजारों की संख्या में भावुक भक्तजन उपस्थित हो गये। आचार्यप्रवर ने प्रजा को महान कर्मयोगी श्रीकृष्ण के जीवन को चरितार्थ करने का उपदेश दिया तथा अधर्म एवं अधर्मियों का एक होकर सामना करने का अनुरोध किया। अधर्मियों के अत्याचार के उपरांत भी स्वधर्म में ही रत रहने का आदेश दिया। नित्य रात्रि को भजन-कीर्तन का कार्यक्रम होता रहा। रैदासजी तथा कबीरसा'ब अपनी रचनाओं को सुरीले कंठ से सुनाकर लोगों को मुग्ध करते रहे। मथुरा की प्रजा तेजपूर्ण महात्मा तथा उनके प्रतिभावान शिष्यों से अभिभूत होती रही। गीता में दिये अपने वचनानुसार परमात्मा धर्मसंस्थापन का कार्य जगद्गुरुश्री द्वारा पूर्ण करेंगे ऐसा विश्वास उनमें जाग्रत हो गया। अत्याचार की आँधियों से फैले निराशा रूपी अँधेरे को काशी का यह प्रचंड सूर्य अवश्य दूर करेगा यह निश्चय उनको हो गया। श्रद्धालुओं का मन अनूठे आनन्द से भर गया। कुछ दिन मथुरा रुककर जमात वृन्दावन गयी।

वृन्दावन में यतिराज के प्रिय शिष्य श्री योगानन्दजी गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके द्वारपीठ की स्थापना करके लोक एवं धर्मसेवा का कार्य कर रहे थे। श्री सद्गुरुदेव के साथ यात्रा में जाने के बाद उन्हें श्रीआज्ञा से श्री रामेश्वरम् में ही रुकना पड़ा था। अपना कार्य परिपूर्ण करके जमात के पूर्व ही वे वृन्दावन पहुँच चुके थे। जब जमात वृन्दावन पधारी तब श्रद्धालु एवं धर्मप्रेमी जनता के साथ योगानन्दजी ने श्री सद्गुरुदेव का भव्य स्वागत किया। जमुना के किनारे योगानन्दजी ने गुरुदेव के लिए पर्णकुटीर बनायी थी। यहाँ लोक-आग्रह पर श्रीराम महायज्ञ का आयोजन हुआ। यवनों द्वारा विघ्न करने का प्रयत्न किया गया परन्तु वे निष्फल हुए। प्रतिदिन सत्संग में अनेक श्रद्धालु आने लगे। कुछ दिन लोगों के श्रद्धा-विश्वास को दृढ़ करके जमात आगे बढ़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(8)

अब जमात की चौथे धाम बद्रीनाथजी की यात्रा शेष रही थी। अतः वृन्दावन धाम से हरिद्वार की ओर वे आगे बढ़े। हरिद्वार की धर्मप्रेमी ज़नता ने जगद्गुरुश्री का स्वागत किया। माता भगीरथी के पवित्र तट पर मुकाम हुआ। जगद्गुरुश्री के लिए नित्य की भाँति यहाँ भी एक पर्णकुटीर बनायी गयी। नित्य सत्संग होने लगा। जनता ने अनेक उपहारों से अपना प्रेम व्यक्त किया। ब्रह्मकुंड में स्नान तथा कनखल दक्षमन्दिर तथा अन्य पौराणिक मन्दिरों में श्रद्धा-भक्ति से दर्शन-पूजन हुआ।

एक दिन दो लम्बे डीलडौल वाले तपस्वी आचार्यश्री की कुटी के समीप लोगों ने देखे। श्री अनन्तानन्दजी एवं अन्य शिष्यों ने भिक्षा देकर उन्हें विदा करना चाहा, परन्तु वे कुछ विचित्र भिक्षा स्वयं स्वामीजी से ही लेना चाहते थे। उन्हें,मात्र तीन पेड़ के फल, पाँच अन्न के दाने तथा सात प्रकार का मृगमद भिक्षा में स्वीकार्य था। वे उत्तम संस्कृत भाषा बोलते थे। परन्तु उनकी बड़ी-बड़ी आँखें कभी खुलती थीं तो कभी बन्द ही रहती थीं। शिष्यों को यह देख आश्चर्य हो रहा था। दोनों के लम्बे तपस्वियों के रूप-रंग एक ही प्रकार के थे।

कुछ समय पश्चात् एक ने अपना दंड आकाश में घुमाया कि पर्णकुटी से दिव्य शंखनाद हुआ। उस मधुर अमृतमय नाद से खिले हुए कमल पुष्प के समान उनके नेत्र इस प्रकार बन्द हो गये कि वे खड़े-खड़े सुषुप्ति का आनन्द लेते रहे।

बहुत समय बीतने पर भी उनकी आँखें जब नहीं खुलीं तब शिष्यों को बहुत आश्चर्य हुआ। उसी समय बादल हटाकर निकले हुए प्रभाकर की भाँति स्वामीजी स्वयं कुटी के बाहर आये तथा सुमधुर ध्वनि से बोले, "स्वागतम्, करुणानिधो !"

तत्क्षण तपस्वियों के विशाल नेत्र खुल गये तथा स्वामीजी के दर्शनामृत का दोनों पान करने लगे। जगद्गुरुश्री ने दोनों तपस्वियों को इस प्रकार हृदय से लगाया, जिस प्रकार श्री रामजी ने चित्रकूट में भरतजी को। उपस्थित सन्त-भक्त इस अपूर्व दृश्य को देखते रह गये।

महाप्रभु ने उनके भिक्षा पात्र में उनकी मनोकामना पूर्ण करते हुए भिक्षा दी। तीन पेड़ के फल मानस पूजा रूपी रसाल फल, योग रूपी पाकड़ फल तथा ध्यान रूपी पीपल फल दिये। पंच प्राण के गुप्तरस रूपी पाँच अन्न के दाने तथा जीवात्मा की सप्त भूमिका रूपी सात मृगमद से उनका भिक्षा पात्र भर दिया। दोनों तपस्वी प्रसन्न होकर बोले :

"हे परम पूजनीय ! आपने पहचान ही लिया कि हम दोनों नर एवं नारायण हैं। आप जमात सहित बद्रीनाथ दर्शनार्थ जा रहे हैं, परन्तु कठिन मार्ग के कष्ट से जमात सहित आपको बचाने हम स्वयं यहाँ आये हैं। आपके स्वागत एवं मधुर वचन से हम प्रसन्न हैं। परन्तु अभी मौसम बहुत खराब है, जमात भी श्रमित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है तथा मार्ग भी विकट है। इतने बड़े समुदाय के लिए ऋतु बहुत प्रतिकूल है। अतः यहीं से पुनः पधारें।"

कहते हुए दोनों अदृश्य हो गये। उपस्थित शिष्य समुदाय ने भगवान बद्रीनाथ एवं सद्गुरुदेव की जयजयकार पुकारी।

स्वयं नारायण भगवान की आज्ञा होने पर उसे शिरोधार्य करते हुए जमात हरिद्वार से बद्रीनाथ न जाते हुए पुनः वृन्दावन पधारी। पुनः लोग प्रसन्न हो उठे। वृन्दावन की पवित्र भूमि के कण-कण में नटखट माखनचोर छिपा हुआ है जो आज भी भाविक भक्तों को दर्शन देता है। मुरलीधर यहीं पर मुरली की धुन पर गोपियों को बावरी बनाता रहा था। जगद्गुरु ने नटखट कन्हैया की मधुर स्मृति में सभी जाति के कुमारों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। योगानन्द-जी अपने शिष्यों एवं सन्त-भक्त सहित व्यवस्था में लग गये।

दोपहर को गौरवर्ण की एक सुन्दर कन्या यमुना जल का कलश लिए आयी। कलश पुजारी योगानन्दजी को दिया तथा कहने लगी, "पुजारीजी! यह कैसा अन्याय है? कुमार भोजन करेंगे तो कुमारियाँ कहाँ जायेंगी?" कहती हुई वह अदृश्य हो गयी। यह वृत्तान्त जगद्गुरु को ज्ञात होने पर उन्होंने कुमारियों को भी भोजन के लिए आमन्त्रित किया।

धूमधाम से तैयारी होने लगी। षड्रस से युक्त छत्तीस प्रकार के व्यंजन तैयार किये गये। अनेक प्रकार के मिष्ठान्न तथा पकवान्न भी बनाये गये। नगर के लोग भोजन देखने आये।

एक तरफ कुमार एवं एक तरफ कन्याओं की पंक्ति बैठ गयी। सुमधुर सुगन्ध युक्त भोजन परोसा गया। उस समय आठ वर्ष का एक इन्दीवर सदृश श्यामवर्ण सुन्दर लड़का तथा नौ वर्ष की गौर कांतिमान कन्या हाथ पकड़कर आये। दोनों अलौकिक एवं दिव्य तेज से परिपूर्ण थे। दर्शकों का चित्त सहज ही उनकी ओर आकर्षित हुआ। सब सोचने लगे कि यही वो नटखट नन्दकिशोर तथा वृषभानु पुत्री राधिका हैं। दोनों अपनी-अपनी पंक्ति में बैठ गये।

उसी समय महाप्रभु परदा खोलकर कुटी से बाहर आये तथा योगानन्दजी के साथ प्रत्येक पंक्ति में घूमते हुए बालविनोद देखने लगे। जब वे इन्दीवर बालक के पास पहुँचे तो उसने नटखट मुद्रा में कहा, "बाबाजी! वह पायस तो खिलाओ, जो आप पाते हो।" स्वामीजी प्रसन्नता से स्वयं कुटी से पायस लाये तथा दोनों को पायस दी। तदनन्तर अन्य कुमार-कन्याओं को पायस देने बढ़े ही थे कि वे दोनों बालक प्रसादी पाकर अदृश्य हो गये। सबको विश्वास हो गया कि वो ही यशोदानन्दन कन्हैया तथा भक्तिमहारानी श्री राधारानी थे।

कुछ दिन जमात वृन्दावन में रुकी। एक दिन वृहद् भंडारा भी हुआ। नित्य सत्संग, भजन-कीर्तन चलते रहे। कबीर साहब एवं रैदासजी नित्य नये-नये भजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंगानुसार भक्त मडली को सुनाते रहे। अनेक भक्तों ने श्री वैष्णवी दीक्षा भी ग्रहण की।

(9)

जमात यहाँ से चित्रकूट की ओर आगे बढ़ी। मार्ग में अनेक श्रद्धालुओं ने प्रेमपूर्वक स्वागत-सत्कार करते हुए सत्संग लाभ लिया। परमात्मा के प्रेमी भक्तों ने चित्रकूट में जब सुना कि भगवत् अंशावतार जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी महाराज संसार के अविद्यारूपी अजेय शत्रुओं को परास्त करके श्रीराम नाम के मार्ग को प्रशस्त करते हुए चित्रकूट पधार रहे हैं, तो वे बहुत प्रसन्न हो गये। प्रकृति ने भी अपने स्वामी चराचरपति श्री रामजी के स्वागत में शृंगार करके वसुधा को पुष्पों से आच्छादित कर दिया।

चित्रकूट पहुँचने पर वहाँ के साधु-सन्त एवं प्रेमी भक्तों ने जमात का भव्य स्वागत किया। लोगों ने आचार्यश्री की आरती उतारी एवं पाद-प्रक्षालन किया। स्थानाधिपति आशुतोष ने स्वागत के लिए चन्द्रमा को दिव्य फलों के उपहार के साथ स्वामीजी की सेवा में भेजा तथा स्वयं पायस लेकर यतिरूप में उपस्थित हो गये। जमात ने भगवती मन्दाकिनी तथा पवित्र कामतागिरि के बीच मुकाम किया। भगवान भोलेनाथ के दोनों कुमार कार्तिकेय तथा गणेशजी ब्रह्मचारी के रूप में पिता के साथ स्वामीजी की सेवा में लगे। अपने गणों को भी किरात के रूप में जमात की हर प्रकार की सेवा के लिए शिवजी ने भेज दिया।

चित्रकूट तो ज्ञान-वैराग्य तथा भक्ति की जन्मभूमि है। परम कृपालु परमात्मा श्रीराम एवं जगत्जननी श्री जानकीजी के चरणचिह्नों से यह भूमि महिमान्वित हो चुकी है। वनवास का बहुत समय अयोध्यापति रामचन्द्रजी ने यहीं व्यतीत किया था। अतः इस पवित्र तीर्थ में अनेक सिद्ध सन्त-महात्मा एवं भक्तजन नित्य वास करते हुए श्रीराम नाम में सर्वदा रत रहते हैं। महाप्रभु श्री रामानन्दाचार्यजी ने चातुर्मास यहीं रुकने का निश्चय किया। वर्षा ऋतु भी आरम्भ हो गयी थी।

आसपास के नगर-ग्राम के लोगों की नित्य भीड़ जमती रही। स्वामीजी के दर्शन-सत्संग के लिए अनेक लोग दूर-दूर से आते रहे। नित्य सत्संग-भजन-कीर्तन भगवत्-चरित्र का पान तथा ज्ञानचर्चा आदि होते रहे। स्वयं शिवजी किरातराज के रूप में प्रतिदिन सत्संग में आते रहे। भगवान श्री रामचन्द्रजी को प्राप्त कराने वाले स्वामीजी ने, वैसे ही गुण-सम्पन्न यतिरूपधारी कल्याणकारी शिवजी के स्वागत, सत्कार एवं सेवा को नम्रतापूर्वक स्वीकार किया। अनन्तानन्दजी ने श्री सद्गुरुदेव के आदेश से यतिराज शिवजी का पूजन किया।

चातुर्मास आरम्भ हो चुका था अतः बहुत लोगों ने चातुर्मास के क्षेत्रसंन्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियमों को धारण किया था। नदी पार न जाना, एकेषणा करना इत्यादि नियमों से अनेक साधु-सन्त भी साथ रुके थे। कुछ सन्त मेघाडम्बरी थे, जो नित्य खुले में ही रहते थे। जमात के सन्त-भक्तों को एवं स्थानीय लोगों को ऐसा ही प्रतीत हुआ कि भगवान श्रीराम स्वयं पुनः चित्रकूट में निवास करके भक्तिरूपी प्रेमामृत का पान कराने आ गये हैं।

एक दिन पूर्णिमा की खिली हुई चाँदनी में जगद्गुरुश्री ने गिरिराज कामतानाथ की परिक्रमा करने की घोषणा की। जमात सहित स्थानीय सिद्ध-महात्मा तथा भक्तजन भी परिक्रमा में सम्मिलित होने के लिए उपस्थित हो गये।

शंखनाद की दिव्य ध्वनि के साथ जयजयकार के नारे गूँजने लगे। परमात्मा श्री रामजी, जगत्जननी श्री जानकीजी, भक्तराज भरतजी तथा जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की जयजयकार पुकारी गयी। जमात ने प्रदक्षिणा शुरू की। चन्द्रमा ने अपनी धवल-शीतल चाँदनी सर्वत्र बिखेरी हुई थी। मन्दाकिनी का पवित्र जल चाँदी-सा चमकीला होकर कलकल नाद सहित सब की जयघोष करता रहा। महाप्रभु स्वयं परम आनन्द में रत सबके साथ परिक्रमा करते थे। भक्तजन धुन गा रहे थे। कभी 'रघुपति राघव राजाराम' तथा कभी 'श्रीराम जय राम जय जय राम' की ध्वनि आसपास के गाँवों में गूँजने लगी। यह सुनते ही गाँवों की जनता भी परिक्रमा में सम्मिलित होती गयी। पुष्पों से बहती सुमधुर सुगन्ध मन को प्रफुल्लित करती थी।

वातावरण में ऐसी दिव्यता फैल गयी थी कि सर्वजन स्थल-काल को भी भूल चुके। सबने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि त्रेता युग के श्रीराम स्वयं मुनिवेश में उनके साथ कामतागिरि पर विचरण कर रहे हैं। चलते-चलते जमात श्री सीतारामजी के चरणचिह्न के पास आयी। जगद्गुरुश्री की अवस्था कुछ समय के लिए अलौकिक हो गयी। कुछ देर स्थिर होकर वे अचिन्त्य समाधि में निमग्न हो गये परन्तु दिव्य संगीत की मधुर ध्वनि ने उन्हें पुनः बाह्य जगत में खींच लिया।

चित्रकूट में पद-पद पर मर्म-स्पर्शिनी स्मृतियाँ हैं—माताओं के साथ श्री विदेहनन्दिनी का मिलन, आर्य भरतजी के साथ श्री रघुवीर का मिलन—इनके चरणों को शिलाओं ने सदा के लिए अपने ऊपर अंकित कर रखा है। भरतकूप, जिसमें महर्षि अत्रि द्वारा सम्पूर्ण तीर्थों का जल राज्याभिषेक के लिए लाकर उत्सर्ग कराया गया। यहाँ के वन्य मानव, सरलता एवं स्नेह की वे मंजु मूर्तियाँ, यहाँ के तरु, लताएँ, शिलाखंड तक पवित्र भाव का उद्दीपन करते हैं। सब लोग भावविभोर बन चलते-चलते सुनते रहे तथा देखते रहे एक दिव्य महिमामय मूर्ति को अनिमेष। इस अपूर्व, दिव्य, मनोहर दृश्य को देख कृतकृत्य हो गये भक्तजन। परम अलौकिक आनन्द में सराबोर लोगों ने धीरे-धीरे परिक्रमा पूर्ण की।

पुनः सब मुकाम पर पहुँचे। रैदासजी की अवस्था अलौकिक हो गयी। भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में आकर उनके मुख से निकलने लगा :

दरसन दीजै राम ! दरसन दीजै ।
दरसन दीजै, विलम्ब न कीजै ॥
दरसन तोरा जीवन मोरा । बिना दरसन क्यूं जीवै चकोरा ॥
साधो सतगुरु सब जग चेला । अब के बिछुरे मिलन दुहेला ॥
धन जोबन की फूलै आसा । सत सत भाषै जन रैदासा ॥

उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी । सद्गुरुदेव की कृपा से परमात्मा श्रीराम के अलौकिक दर्शन करके वे भाग्यशाली बने ।

कुछ समय में श्रीराम कथा का आयोजन किया गया । लोगों ने परम आनन्द से मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्री रामजी की कथा सुनी । कथा के समय भरत-मिलाप का प्रसंग आने पर लोगों के मन में उस दृश्य को प्रत्यक्ष देखने की अभिलाषा हुई । अतः अन्तर्यामी स्वामीजी की कृपा से सबने कामदगिरि पर मुनिवेशधारी श्री रामजी तथा भरतजी का मिलाप प्रत्यक्ष देखा । भरतजी के साथ आये अवधवासियों का श्री रामजी के प्रति स्नेहभाव देख श्रोताओं के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी । वे लम्बे समय तक परम एकांतिक सुख सहज ही अनुभव करने लगे । स्वामीजी ने परब्रह्म परमात्मा के इस दिवा स्वरूप का सदैव स्मरण एवं ध्यान करने का उपदेश दिया ।

कथा के बाद नित्य भजन-कीर्तन चलता रहा । नये-नये भजन आग्रहपूर्वक लोग कबीरसाहब एवं रैदासजी से सुनते रहे । कबीरसा'ब की गुरुभक्ति देख सब बहुत प्रसन्न होते थे ।

ज्ञानचर्चा एवं सत्संग-भजन करते हुए चातुर्मास पूर्ण हुए । अतः जमात प्रस्थान की तैयारी करने लगी । लोगों ने सजल नेत्रों से जगद्गुरु एवं जमात को विदा किया ।

चित्रकूट से प्रयागराज की ओर प्रयाण हुआ । प्रयाग तो यतिराज का जन्म-स्थल है । यहाँ के लोग स्वयं पर गर्व करते थे । अतः उनके आगमन पर भव्य स्वागत करके उनकी शोभायात्रा निकाली । यहाँ स्थानीय मुस्लिमों ने भी गुरुदेव का सप्रेम स्वागत किया । त्रिवेणी के तट पर जमात ने मुकाम किया । भारत भर में यात्रा करके सर्वत्र श्रीराम नाम की विजयध्वजा को लहराकर पधारे हुए चमत्कारिक महापुरुष के दर्शनार्थ हजारों की संख्या में लोग उमड़ आये । अपना प्रेम एवं आदर प्रदर्शित करने अनेक प्रकार के उपहार चढ़ाये । नित्य सत्संग होने लगा ।

त्रिवेणी का अवगाहन करके एक विशाल मंडप बनाकर श्रीराम महायज्ञ का आयोजन किया गया । सुप्रसिद्ध श्रीवैष्णवों तथा वैदिक पंडितों को बुलाकर यज्ञ में नियुक्त किया गया । सैकड़ों वैदिकों के वेद निर्घोष से दशों दिशाएँ पवित्र हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयीं। महाप्रभु के अलौकिक दर्शन से जनता धन्यता का अनुभव करने लगी। एक दिन अनेक कुष्ट रोगियों ने यज्ञमंडप के समीप आकर जगद्गुरुश्री से रोग-निवारणार्थ प्रार्थना की। अत; करुणावरुणालय आचार्यप्रवर ने कृपापूर्वक दिव्य शंखनाद किया, जिससे उनका रोग सदा के लिए दूर हो गया। यज्ञ की पूर्णाहुति बड़ी धूमधाम से हुई। नगर के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने यवनों सहित उत्साह-पूर्वक भाग लिया।

कबीरसाहब को हिन्दुओं एवं साधुसमाज के साथ भजन-कीर्तन करते देख अनेक मुस्लिमों को बहुत आश्चर्य होता था। वे इस विषय में कबीरसाहब से चर्चा करने लगे। अतः एक दिन कबीरसा'ब ने सुनाया :

भजन में होत आनन्द आनन्द।
बरसत शब्द अंमी के, बादल भींजत है कोई सन्त।
अग्रवास जेंह तत्व की नदियाँ, मानो अठारह गंग।
करी स्नान मगन व्है बैठे, चढ़व शब्द को रंग।
रोम रोम अमिअन्त भींजै, पारस परसत अंग।
गहो निज नाम त्रास तन नाहिं, साहब तेरे संग।
पीवत नाम रस, चहै न सुधा रस, चूवत अमी की गंग।
सो ऐसा सतलोक सिधावै, निर्मल पा को अंग।
श्वास सार रच्यो है साहब, जहाँ नहीं माया मोहंग।

एक बार स्वामीजी श्री वेणीमाधवजी के दर्शनार्थ गये। वहाँ दिव्य शंख से ऐसा अमृतनाद किया कि सुनने वाले मन्त्रमुग्ध होकर परम आनन्द का अनुभव करने लगे। इस प्रकार जनता को सत्संग लाभ देते हुए कुछ समय प्रयाग में रुकने के बाद जमात प्रस्थान करने लगी। लोगों ने भारी हृदय से जमात को विदा किया।

यहाँ से जमात काशी लौटने वाली थी, परन्तु लोगों का प्रेम एवं आग्रह देख जगद्गुरुश्री ने श्री अयोध्याजी जाने की आज्ञा प्रदान की। अतः अनेक स्थान पर मुकाम करते हुए जमात मुस्लिम शासन में पीड़ित लोगों को धैर्य बंधाते हुए अयोध्या की ओर बढ़ने लगी।

दिल्ली का सुलतान फिरोजशाह तुगलक अत्यन्त क्रूर एवं अत्याचारी था। अनेक मन्दिरों का उसने विध्वंस किया था। अनेक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुस्लिम बनाया था। अतः लोग अत्यन्त भयभीत एवं त्रस्त थे। आचार्यश्री ने सबको धैर्य एवं हिम्मत रखने की सलाह दी।

अयोध्या पहुँचने पर जमात का श्रद्धालुओं द्वारा भव्य स्वागत हुआ। अपने प्रियतम श्री राघवेन्द्र की जन्म एवं लीला भूमि पर आते ही जगद्गुरुश्री भाव-विभोर हो गये। पवित्र श्री सरयूजी के तट पर जमात ने मुकाम किया। भगवान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराम के जन्मस्थान पर बने हुए भव्य एवं विशाल मन्दिर में जाते ही पुजारियों ने आचार्यश्री का स्वागत किया। मन्दिर के प्रांगण में नित्य सत्संग होने लगा। पुजारियों के आग्रह से यहाँ श्री सीताराम महायज्ञ का भी आयोजन हुआ। आस-पास के सैंकड़ों श्रद्धालुओं ने यज्ञपुरुष का दर्शन किया। यहाँ के मुस्लिमों को यह बात काँटे की तरह चुभती रही परन्तु वे कुछ न कर सके। यज्ञ की पूर्णाहुति पर श्रीराम कथा का भी आयोजन किया गया। भगवान श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रसंग सबको प्रत्यक्ष दिखायी दिया। नित्य भजन-कीर्तन होते रहे। स्थानीय मुस्लिमों की नाराजगी के उपरांत कबीरसा'ब ने विशाल जनसमुदाय के सामने एक दिन सुन्दर भजन सुनाया :

ना कछु ना कछु राम बिना रे,
देह धरे की यही परम गति, सन्तसंगति में रहना रे।
मन्दिर रचत मास दश लागैं, बिनशत एक छना रे।
पल इक सुख के कारण प्राणी, परपंच करत घना रे।
मात पिता सुत लोक कुटुम में, फूला फिरत मना रे।
कहहिं कबीर राम-भज प्राणी, छाँड सकल भ्रमना रे।

इस प्रकार सत्संग-भजन में कुछ समय व्यतीत करने के उपरांत जमात काशी प्रस्थान करने को तैयार हुई। अयोध्यावासियों को राजा रामचन्द्र के वनवास जाने पर जैसा दुःख हुआ था, वैसा ही आज आचार्यश्री रामानन्द स्वामी के लौटने से हुआ। प्रचंड जयघोष के नारे सहित जमात ने प्रस्थान किया।

मार्ग में लोगों ने आग्रहपूर्वक अनेक स्थानों पर जमात को रोका। कबीर-साहब एवं रैदासजी अपने भजनों से अत्यन्त लोकप्रिय होने लगे थे। जहाँ मौका मिलता वहाँ लोग आग्रह करके उनके सुरीले कंठ से भजन सुनकर भावविभोर हो जाते थे। अनेक लोगों ने सत्संग का लाभ लिया। अनेक भयभीत हिन्दुओं को स्वामीजी ने भयमुक्त करके हिम्मत प्रदान की। विधर्मियों के भय से आतंकित प्रजा को नयी चेतना एवं हिम्मत देकर स्वधर्म में रत रहने की नवीन श्रद्धा से प्रेरित करके तथा भक्ति की अभूतपूर्व भावना जीग्रत करते हुए जमात लम्बे समय के बाद पुनः काशी की ओर प्रयाण करने लगी।

(10)

काशीवासियों ने जब जगद्गुरुश्री के पुनरागमन की बात सुनी तो वे हर्ष-विभोर हो गये। काशी-नरेश सहित नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने जमात का भव्य स्वागत किया। स्वामीजी एवं अन्य सन्तों का पाद-प्रक्षालन किया गया। सद्गुरुदेव के दर्शन के लिए चातक की तरह प्यासे शिष्यगणों ने सद्गुरुदेव एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तों का पाद-प्रक्षालन किया। महिलाओं ने आरती उतारी। नगर में शोभा-यात्रा निकाली गयी। अनेक स्थान पर फूलवर्षा करते हुए लोगों ने आचार्यश्री का स्वागत किया। स्वामीजी के नाम की जयजयकार ने नगर को निनादित कर दिया। भगवान श्री काशीविश्वनाथ के दर्शन करते हुए जमात आश्रम की ओर बढ़ी।

काशी तथा अन्य स्थान के भक्त समुदाय, जो जमात के साथ तीर्थयात्रा के लिए गये थे, उन्होंने महाप्रभु के चमत्कार की चर्चा करके सबको अविस्मरणीय आनन्द दिया।

दूसरे ही दिन से दर्शन तथा सत्संग के प्यासे काशीवासी तथा दूर-दूर के भक्त नर-नारी आश्रम पर दर्शनार्थ आने लगे। लोगों के प्रेमभाव को देखते हुए आचार्य-प्रवर ने अधिक समय झरोखा दर्शन की व्यवस्था कर दी। पूर्व नियमानुसार सत्संग भी होने लगा। भक्तजन आकर जगद्गुरुश्री की जयजयकार के नारे पुकारते। निस्तेज आश्रम स्वामीजी की आभा से पुनः आलोकित हो गया। सत्संगियों के हृदय स्वामीजी की अमृत संजीवनी वाणी सुनकर आनन्द की तरंगों के साथ झूम रहे थे। कर्णोपकर्ण जगद्गुरु के चमत्कारों की चर्चा सर्वत्र व्याप्त हो गयी। भक्तों एवं लोगों ने इस अभूतपूर्व परिभ्रमण को तीर्थयात्रा के साथ-साथ हिन्दू सनातन संस्कृति के, भारत-दिग्विजय के रूप में एकमत से स्वीकार किया। यात्रा के वर्णन को सब कहते-सुनते नहीं अघाते थे।

तीर्थाटन के बाद भोजन कराने की शास्त्रों की मर्यादा की रक्षा के लिए कुछ ही दिनों में स्वामीजी ने घोषणा करायी कि श्री रामनवमी के दिन भव्य राम-जन्मोत्सव मनाया जायेगा। श्रीराम यज्ञ भी होगा। तदनन्तर दशमी को साधु-संतों का बृहद् भंडारा आश्रम पर होगा तथा गृहस्थों को नगर के भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर भोज्यपदार्थ दिये जायेंगे। प्रत्येक भगवत्-प्रेमी को आमन्त्रित किया गया था।

इस घोषणा के अनुसार श्री रामनवमी के दिन भव्य उत्सव मनाया गया। श्रीराम यज्ञ भी हुआ। असंख्य भक्तों ने दर्शनलाभ लिया। आश्रम में भारी भीड़ जम गयी। सबको फलाहार प्रसाद से तृप्त किया गया। प्रत्येक श्रद्धालु अपने श्रद्धाप्रसून जगद्गुरुश्री के चरणों में अर्पित करके परमात्मा के व्यक्त स्वरूप का दर्शन करना चाहता था। पूरे दिन लोगों की भीड़ लगी रही।

रात्रि में श्रीमठ से श्री अन्नपूर्णाजी के मन्दिर में पाँच तुलसीदल पहुंचा दिये गये। प्रातःकाल होते ही नगर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भोजन सामग्री, अन्न, वस्त्र आदि के ढेर लग गये। बड़े-बड़े साहूकार, जिन्हें आज तक किसी ने कभी देखा नहीं था, अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर व्यवहार से सब लोगों का आह्वान करके भगवत् प्रसाद पाने के लिए अनुग्रह कर रहे थे। जिनको क्षुधा नहीं थी, वे भी सुगन्धित दिव्य प्रसाद पाने के लिए पहुँच गये। साहूकारों ने भी आवश्यकता से अधिक मात्रा में सबको चीजें दीं। आश्रम में भी साधु-सन्तों के लिए छप्पन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार के भोग तथा छत्तीस प्रकार के व्यंजनों की व्यवस्था की गयी थी। तीन दिन तक यह व्यवस्था रही। पाने वाले थक गये परन्तु देने वालों का उत्साह नित्य नूतन ही बना रहा।

द्वादशी तक कितने लोगों ने प्रसाद पाया यह कोई नहीं गिन सका। जगद्गुरु-देव के विरोधी भी दूर-दूर से आकर कठिनता से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ माँगने लगे परन्तु पर्याप्त मात्रा में उन्हें सब कुछ मिलता रहा। जिस कार्य में माँ अन्न-पूर्णा स्वयं तत्पर हों उस कार्य में भला किस प्रकार की न्यूनता रह सकती है?

चौथे दिन आश्रम में आमन्त्रित सभी सन्त-महात्माओं को यथायोग्य दान-दक्षिणा से सन्मानित किया गया। जिसने जो चाहा, वही उसे मिलता रहा। श्रद्धालु, सन्त, भक्त सब प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये।

काशी में आज तक ऐसा भंडारा कभी नहीं हुआ था। सर्वत्र जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी की जयजयकार के नारे गूंज रहे थे। हिन्दू संस्कृति के साथ-साथ जगद्गुरुश्री के दिग्विजय का हर्षोल्लास काशीवासियों ने अपूर्व उत्साह से मनाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

7. प्रपत्ति

श्रीमठ की कीर्ति सर्वत्र व्याप्त हो चुकी थी। अनेक आर्त, जिज्ञासु, दलित, पतित तथा धर्मप्रेमियों का सदैव यहाँ मेला-सा लगा रहता था। काशी के मार्तंड के दर्शनार्थ अनेक लोग दूर-दूर से यहाँ आते किन्तु दर्शन सुख से वंचित ही उन्हें लौटना पड़ता था क्योंकि स्वामीजी पुनः गुफा में निजसाधना में निरत हो गये थे। वहाँ उपस्थित सन्त-महात्माओं द्वारा नित्य सत्संग-भजन-कीर्तन चलते थे, उसका लाभ ही श्रद्धालु लोग ले पाते।

दीर्घकाल से दर्शन-सुख से वंचित अनेक शिष्य-भक्त अब श्री गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व की आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे थे, क्योंकि प्रतिवर्ष उस दिन स्वामीजी अवश्य अपने शिष्यों व भक्तों की प्रार्थना का स्वीकार करके दर्शन एवं सत्संग लाभ देकर उन्हें कृतार्थ करते थे।

भारतीय सनातन संस्कृति ने आत्मोन्नति के प्रत्येक याचक के लिए गुरु के मार्गदर्शन को अनिवार्य बताया है। मनुष्य के अन्तःकरण में जन्माजन्म से जमे हुए अज्ञान रूपी अन्धत्व से छुड़ाकर ज्ञानचक्षु मात्र सद्गुरु ही प्रदान कर सकते हैं, सद्गुरु ब्रह्मा की भाँति मनुष्य में सद्गुणों का सर्जन करते हैं, विष्णु की भाँति सद्वृत्ति का पालन करते हैं तथा शिवजी की भाँति दुर्गुण एवं दुर्वृत्तियों का संहार करते हैं। जीव तथा शिव का मिलन मात्र सद्गुरुदेव ही करा सकते हैं। अतः वे साक्षात् परब्रह्म स्वरूप ही हैं।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

जैसे-जैसे श्री गुरुपूर्णिमा का पर्व निकट आता गया, श्रीमठ में दूर-दूर से अनेक सन्त-भक्त, गृहस्थ-विरक्त शिष्य एवं श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ती गयी। उस दिन तो अपार जनसमुदाय वहाँ एकत्र हो गया।

श्रद्धालु भक्तों ने आज भगवान के मन्दिर के साथ-साथ आश्रम की प्रत्येक उटजों को पत्र-पुष्प से शृंगारित कर दिया था। कितना आनन्द, कितनी उमंगें उमड़ आयी थीं आज।

समय होते ही सबके आराध्य, प्राणाधार, जगद्गुरु निजगुफा से बाहर आये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ ही धरा और गगन गूँज उठा जयध्वनि से और परम संकोचशील स्वामीजी अधिक संकुचित हुए। इस उमंग का, इस आनन्द, उल्लास, श्रद्धा, विश्वास का तथा इस अपार जनसमुदाय के आकर्षण का एकमात्र केन्द्र थे वे।

सर्वप्रथम भगवान का पूजन किया गया। आद्यगुरु सम्प्रदाय की प्रवर्तिका जगत्जननी जगदम्बा श्री जानकीजी का पूजन हुआ। साकेतगामी सद्गुरुदेव श्री राघवानन्दाचार्यजी के प्रतीक चिह्नों का पूजन हुआ तदनन्तर सत्संगवाटिका में विराजमान जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का विरक्त एवं गृहस्थ शिष्यों ने क्रमशः पूजन किया। सर्व श्रद्धालुओं ने अपने श्रद्धासुमन समर्पित किये अपने प्रणम्य को उपहारों के प्रतीक द्वारा।

कलकल कलरव करती भगवती भागीरथी सबके अन्तर को अधिक उल्लसित करती थी। सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ थीं। कहीं-कहीं काली घटाएँ इधर-उधर दौड़कर इस महामहोत्सव में विघ्न न करने की मेघराज को सूचना दे रही थीं। शीतल-मन्द सुरभि संयुत वायु चल रही थी।

भक्तों की स्थिति भी अलौकिक थी। सब-के-सब भाव-विह्वल थे आज। किसी के नेत्रों से निर्झर झर रहे थे, किसी का मस्तक बार-बार झुकता था, तो कोई करबद्ध हो जाते थे। कभी सम्पूर्ण अंग कम्पित हो जाता था। कोई अश्रु, स्वेद, कम्प, रोमांच आदि दिव्य भावों के एक साथ बाहुल्य से उन्मादी अवस्था में था, तो कोई आनन्द के अतिरेक से जड़त्व को प्राप्त हो गया था। अद्भुत स्थिति हो गयी थी सबकी। सब-के-सब अनिमेष देख रहे थे उन महिमामय तपोमूर्ति को—प्रलम्ब सुदृढ़ गौर शरीर, शुभ्र वस्त्रों को तेज प्रदान करती तेजस्वी कान्ति, विशाल भुजाएँ, तेजस्वी भालप्रदेश, कमलदल करुणापूरित लोचन तथा जटाजूट से सुशोभित यतिराज मन्द अलौकिक दिव्य स्मित से सबके हृदय में प्रेमवारि का सिंचन कर रहे थे। उनके दर्शन मात्र से लोगों के मन में आनन्द के हिल्लोर उठ रहे थे।

अन्त में समुदाय ने स्वतः सन्तोष के साथ पूजन की समाप्ति की और शान्त होकर स्वामीजी के प्रत्येक शब्द सुनकर हृदय में अंकित करने एकाग्र होकर बैठ गये।

कुछ क्षणों में ही यतिराज का धीर, गम्भीर, करुणा एवं प्रेम से परिप्लावित स्वर गूँजने लगा :

सीतानाथ समारंभाम् बोधायनाय मध्यमाम्।
राघवानंद गुर्वन्ताम् वंदे गुरु परंपराम्॥

अनन्त करुणामयी, आनन्दमयी, कल्याणमयी माँ भगवती जगदम्बा श्री सीताजी के स्वामी अखण्ड सच्चिदानन्द परमात्मा श्री रामजी से प्रारम्भ कर भगवान श्री पुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन जिसके मध्य में हैं तथा सद्गुरुदेव भगवान श्री राघवानन्दाचार्यजी जिस परम्परा के अन्त में हैं, उन प्रज्ञा एवं भक्तिरस के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्झर को प्रवाहित करने वाले सभी महानुभावों के श्रीचरणों में कोटिशः साष्टांग प्रणिपात।

प्रेमियो! श्री गुरुपूर्णिमा का पावन पर्व सांसारिक मोहाच्छन्न प्राणियों को वैराग्य की, साधकों को तीव्र साधना की, तथा सिद्धों को निजानन्द का वितरण करने की प्रेरणा देने के लिए प्रत्येक वर्ष आता है, इस पावन पर्व पर सच्चिदानन्द-घन पूर्णब्रह्म परमात्मा के प्रेमरस के रसिक समस्त भक्तों को सप्रेम शुभ आशीर्वाद।

सामान्यत. मानव जीवन दो धाराओं में प्रवाहित होता देखा जाता है। एक तो कामनापूर्ति रत धारा, जिसमें शरीर, प्राण, मन, बुद्धि एवं अनेकों वाह्य वस्तुओं की अपेक्षा होती है। दूसरी धारा है अनन्त को जान प्रेमरस में सराबोर होना, यह है भक्ति। अनन्त को जानने के लिए शास्त्रों ने अनेक मार्ग प्रशस्त किये हैं, परन्तु अनन्त परमात्मा को मिलने का सर्वोत्तम सर्वसुलभ एवं सरल साधन भक्ति ही है।

भक्त चार प्रकार के होते हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी। आर्त के ऊपर कोई विपत्ति आ पड़ी है इसलिए कष्ट निवारण के लिए भगवान को भजते हैं। जिज्ञासु भगवान को जानने की इच्छा से तथा अर्थार्थी किसी कामना या प्रयोजन की सिद्धि के लिए भगवान को भजते हैं। इन तीनों की भक्ति सकाम है। ज्ञानी भक्त कर्तव्य और विवेक की प्रेरणा से भगवान को भजते हैं।

भक्ति का अर्थ है—भगवान की उपासना तथा शरणागति। भक्ति ही समस्त वेदों का सार है क्योंकि वेदों के पूर्वभाग में धर्म का तथा उत्तरभाग में (उपनिषदों में) ज्ञान का महत्व प्रतिपादित है। परन्तु ज्ञानहीन कर्म कृत्रिम तथा अर्थहीन है और कर्महीन ज्ञान सामर्थ्यहीन एवं एकांगी बन जाता है। भक्त कर्मकांडी नहीं होते, वे कर्मयोगी होते हैं। भक्तों के कर्म प्रवृत्ति एवं वासना से प्रेरित नहीं परन्तु विवेक, कर्तव्य तथा कैंकर्य की भावना से प्रेरित होते हैं। भागवतों का सम्पूर्ण जीवन भगवत् कैंकर्य है।

कैंकर्य अर्थात् दास्यभाव। भगवान स्वामी है, जीव शाश्वत दास है। अतः जीव का स्वरूप है भगवान की भक्ति करना। भगवान के पाँच रूप हैं—(1) व्यूह (2) विभव (3) अर्चावतार (4) अन्तर्यामी (5) पर। भक्तों को परमात्मा के पाँचों रूपों का कैंकर्य भाव अत्यावश्यक है।

'व्यूह' रूप भगवान सृष्टि तथा मायामण्डल के संचालक हैं। उनके चार रूप हैं—शेषशायी वासुदेव भगवान, जो असंख्य ब्रह्मांडों के तथा लीला विभूति के स्वामी हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा पांचरात्रों की भाषा में संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध।

'विभव' रूप परमात्मा के अवतारों को कहा जाता है जिसके द्वारा परब्रह्म परमात्मा लीलादेह धारण कर भूमण्डल पर प्रकट हुए तथा अपने चरित्र द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव मात्र को उसका आदर्श बताया। श्रीकृष्ण, श्रीराम इत्यादि।

'अर्चावतार' भगवान के किसी भी स्वरूप के श्रीविग्रह को कहा जाता है। 'यथा देहे तथा देवे' की भावना से प्रभु के अर्चावतार को स्नान, भोजन, शयन इत्यादि कराया जाता है। परमात्मा के इन तीनों स्वरूपों का कैंकर्य सदैव भगवान के चिन्तन, स्मरण और ध्यान तथा भगवान में अखण्ड विश्वास तथा अनवरत दिव्य स्मृति से प्राप्त होता है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

अर्थात् भगवान की कथा सुनना, नाम-कीर्तन, स्मरण, चरणकमल का ध्यान, सेवा-पूजा, प्रणाम, सख्य भाव से प्रेम तथा आत्म-समर्पण—यह नवधा भक्ति है। भगवान के स्वरूप विग्रह को जीवन का प्रत्येक कर्म—भोजन, पूजन, दान, तपस्या—समर्पित किया जाता है। भक्ति में भगवत्-प्रेम अत्यधिक आवश्यक है।

भक्ति परम प्रेमस्वरूपा है। भगवान को हृदय से प्रेम करने वाले ही उनका चिन्तन सदैव करते हैं तथा उसमें आनन्द की अनुभूति करते हैं। उनके प्रेम में मस्त मतवाले बनकर वे रहते हैं तथा एक क्षण भी स्मरण के बिना उनका हृदय व्याकुल हो जाता है। नारदजी ने भक्तिसूत्र में इसीलिए कहा है 'तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति'। अन्तःकरण का सबसे बड़ा आकर्षण प्रेम है। इसलिए बिना प्रेम के मन को बरजोरी भगवान में लगाने से वह अधिक देर वहाँ नहीं टिक सकता। भगवान के कैंकर्य के लिए शुद्ध सात्विक आहार, आचरण तथा शारीरिक व मानसिक पवित्रता आवश्यक है। असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर जाने की सतत् चेष्टा से कैंकर्य प्राप्त हो सकता है।

अन्तर्यामी भगवान सर्वत्र एवं सदैव विद्यमान है। भगवान का यह सूक्ष्म, व्यापक एवं घटघटवासी रूप है जो प्रत्येक नर-नारी सहित प्राणी मात्र में विद्यमान है। अतः किसी के साथ ईर्ष्या, द्वेष, बुराई, अनिष्ट करना एक तरह से उस अन्तर्यामी भगवान की ही अवहेलना है। सर्वदा गरीब या दुखियों की सेवा करना, सत्य, अहिंसा व प्रत्येक प्राणी को सुखी बनाने की चेष्टा ही अन्तर्यामी भगवान का कैंकर्य है। परिवार, राष्ट्र तथा देश के लिए त्याग और सेवा की भावना इसी स्वरूप का कैंकर्य है। स्वयं अपना शरीर भी अन्तर्यामी भगवान का मन्दिर है अतः उसकी बाह्याभ्यंतर शुचि उनकी सेवा है। अन्तःकरण रूपी मन्दिर से अविद्या का अन्धकार, वासना की गन्दगी तथा अभिमान की बदबू दूर करनी चाहिए। हृदय में काम-क्रोध-लोभ-मोह, दंभ, बैर, ईर्ष्या, हिंसा आदि गन्दे विचारों एवं कलुषित इच्छाओं से अन्तर्यामी भगवान की अवहेलना होती है।

सबसे अलग भगवान का जो 'पर' स्वरूप है उस परब्रह्म परमात्मा, माया-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मण्डल से परे त्रिपाद विभूति के स्वामी श्री रामजी का कैंकर्य शरीर और वाणी से नहीं प्राप्त हो सकता। मन-मन्दिर से वासना की धूल झाड़कर, भक्तिजल से प्रक्षालित कर, ज्ञान रश्मि से दीप्त प्रेम सिंहासन पर श्री रामजी का स्वरूप प्रस्थापित करना ही परब्रह्म का कैंकर्य है। अन्तःकरण परब्रह्म से आलोकित हो जाय, हृदय परमात्मा के चरणों में एकाकार हो जाय, शाश्वत प्रेम और अनवरत ध्यान के कारण भगवान प्रत्यक्ष के समान हो जाय, तब परब्रह्म कैंकर्य सम्पन्न होता है। प्रपत्ति की भावना इसी कैंकर्य भाव की पूरक तथा पोषक है।

भक्ति का सर्वोत्तम तथा सर्वसुगम रूप है प्रपत्ति। प्रपत्ति भक्ति का सर्वोच्च शिखर है। भक्त समझते हैं कि भगवान मेरे हैं—ममैवासौ। अतः उनकी सेवा का भार मेरे ऊपर है। प्रपन्न समझते हैं कि मैं भगवान का हूँ—तस्यैवाहम्—अतः मेरी रक्षा का भार उनके ऊपर है। भगवत् प्रेम—भगवान से मिलने की व्यग्रता ही प्रपत्ति का प्रधान अंग है। जब जीव का अहं शान्त हो जाता है, तब ईश्वर का अहं प्रकट होता है। जब जीव स्वयं को सर्वथा असमर्थ समझता है तब सर्व समर्थ परमात्मा उसकी बाँह पकड़ लेते हैं। भक्ति की परिभाषा में 'प्रपत्ति' सम्पूर्ण शरणागति, निःसाधनता अथवा तीव्र व्याकुलता का नाम है।

प्रपत्ति का होना केवल भगवत् कृपा पर निर्भर करता है। भगवान की इच्छा के अनुकूल ही आहार, विहार तथा अन्य सभी कर्म करते हुए जीव कोई भी शारीरिक या मानसिक कर्म भगवदेच्छा के विरुद्ध नहीं करता है। जिस कार्य से अपना, समाज का एवं संसार का कल्याण हो वह भगवान की इच्छा के अनुकूल तथा जिस कार्य से अपना तथा किसी दूसरे का अनिष्ट होता है वह प्रतिकूल होता है। अहंकारशून्य, प्रपन्न जीवों को परमात्मा श्रीराम सदैव अभय प्रदान करते हैं।

परमात्मा की करुणा ऐसी महान है कि एक बार भी जीव सच्चे हृदय से पुकारकर कह दे कि 'हे प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ' उसका वे स्वीकार कर लेते हैं।

सकृदेवं प्रपन्नाय तवास्मिति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामिनि वृतम् मम:॥

आज के पवित्र दिन हम सब संकल्प करेंगे कि सर्वरूप परमात्मा की सेवा में अपना जीवन समर्पित करेंगे। प्रपत्ति के सही भाव को समझकर प्रभु की शरण में जायेंगे। जय श्रीराम कहते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी ने अपनी वाणी को विश्राम दिया।

गुरु भगवान के श्रीमुख से निःसृत वचनामृत का पान करते हुए सब परम आनन्द से झूमने लगे। जब महामुनि ने वाणी को विश्राम दिया तब सबको सुधि आयी। सबने मिलकर भगवान एवं सद्गुरुदेव की जयघोष के नारे लगाये। तदनन्तर यतिराज उठकर निजगुफा में गये तथा भक्त समुदाय पुनः-पुनः संस्मरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हुए गुरुदेव को प्रणाम करते रहे।

दोपहर को भजन-कीर्तन का कार्यक्रम रखा गया था। भक्तों के आग्रह पर रैदासजी ने तथा कबीरसाहब ने कुछ भजन सुनाये। भक्तों ने मिलकर हरिनाम का संकीर्तन किया। कबीरसा'ब भाव-विभोर हो उठे। गद्‌गद् स्वर, पुलकित रोम-रोम, स्नेहातिरेक एवं सआदर भरे स्वर से वे बोल उठे :

यह तन विष की बैलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दीये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समंद की मसि करूँ, गुरुगुन लिखा न जाय॥
गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हों मुक्ति निवास॥
तीन लोक नौ खंड में, गुरु ते बड़ा न कोई।
करता कर न करि सकै, गुरु करै सो होई॥
कबिरा ते नर अंध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार॥
गुरु गोविंद दोनों खड़े, का को लागूं पाँय ?
बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताय॥
गुरु बड़े गोविंद ते, मन में देखु विचार।
हरि सुमिरे तो वार है, गुरु सुमिरे सो पार॥
पंडित पढ़ि गुन पत्रि मुए गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत सब्द परमान॥
कोटिन चंदा उगवें सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहरे दीसत घोर अंधार॥
चौसठ दीवा जोय के चौदह चंदा माहिं।
तेहि घर किसका चाँदना जेहि घर सतगुरु नाहिं॥

कबीरसा'ब के दोहे सुनकर सब अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उनकी गुरुनिष्ठा से कोई अनभिज्ञ नहीं था।

सायंकालीन सत्संग का समय होने से सब सत्संगवाटिका में एकत्रित होने लगे। जब जगद्‌गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी पधारे तब भक्तों ने उनका आदरपूर्वक जयनाद किया। त्रिभुवन मोहक स्मित से महामुनि ने प्रसन्नतापूर्वक सबका अभिवादन किया, तथा निज आसन पर विराजमान हुए।

उसी समय रोने-बिलखने की करुण ध्वनि सुनाई देने लगी। सबका ध्यान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर केन्द्रित हुआ। देखा कि कुछ लोग एक शव को लेकर आ रहे थे। मृतक का परिवार साथ ही आक्रंद करता हुआ आया था। मृत व्यक्ति को दूर छोड़कर लोग स्वामीजी के पास आये तथा सविनय करबद्ध होकर बोले :

"हे भगवन् ! भारुकी नामक प्रकांड पण्डित की सर्पदंश से आज मृत्यु हो गयी है। बहुत उपचार किये, परन्तु झाड़-फूंक, औषधि आदि से कुछ लाभ नहीं हुआ। हे महाप्रभु ! वह ब्राह्मण सात्विक था तथा मात्र तोला-भर बिल्वपत्र का रस पीकर नित्य स्वाध्याय करता था। उसकी पत्नी भी देहत्याग करना चाहती है तथा दोनों पुत्र भी माता-पिता के बिना जीवित रहना नहीं चाहते। हे स्वामीजी ! अब आप कृपा कीजिये।"

करुणानिधान स्वामीजी को करुणा आ गयी। उन्होंने तुरन्त शंखध्वनि की जिसको सुनते ही मृतक जीवित हो गया। प्रसन्न हो गया उसका परिवार। पण्डित उठकर स्वामीजी के श्रीचरणों में गिर गया। लोग ठगे से यह आश्चर्यकारक घटना देखते रहे। श्री सद्गुरुदेव के चमत्कारों की चर्चा बहुत सुन रखी थी, आज सबने प्रत्यक्ष देखी।

उसी समय एक काला विषधर सर्प सत्संग वाटिका में आया तथा ओजस्वी ब्राह्मण का रूप लेकर महापण्डित की तरह अनुनयपूर्वक बोला :

"हे यतिपति ! यह पण्डित बहुत समय से हमारे कुल का बैरी है। इसी चांडाल ने प्रसिद्ध सर्पसत्र कराके अनेक सर्पों का बलिदान दिया था। तब से अनेक योनियों में जन्म लेकर हमारे दंश से ही वह मरता चला आया है। हे प्रभु ! आपने इसे जीवित करके हमारी परम्परा को क्षति पहुँचायी है। अब हम इसके प्राण नहीं ले सकते क्योंकि सिद्ध-महापुरुषों के कृपापात्र व्यक्तियों की अगति-कुगति नहीं हो सकती।"

लोग चकित हो गये। जगद्गुरुश्री ने सुमधुर वाणी से महासर्प को प्रेमपूर्वक समझाया :

"हे सर्पराज ! यद्यपि तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु यह कार्य दयावश, अचानक ही हो गया है, अतः इसमें जगन्नियंता की अभिरुचि ही प्रकट होती है। तथा यही उचित भी है।

जब एक बार भी बैर साधने के कारण ईश्वर से विमुख होना पड़ता है, तब जन्म-जन्मांतर तक बैर साधते जाना और इसकी इतिश्री कभी न चाहना आप जैसे बुद्धिमानों को शोभा नहीं देता। यदि भगवान की प्रेरणा से यह कार्य हो गया तो आपको तथा आपकी जातिमात्र को प्रसन्न होना चाहिए कि बेचारे ब्राह्मण के लिए हरि सन्मुखता का द्वार खुल गया, तथा आपके प्रतिशोधात्मक कर्मों का भी अन्त हो गया। आपके शेषजी ही तो श्रीहरि के मुख्य पार्षद हैं।"

स्वामीजी के श्रीमुख से यह बात सुनते ही ब्राह्मण वेशधारी शर्प की आँखें खुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयीं। वह गद्गद् होकर स्वामीजी के श्रीचरणों में गिर गया तथा क्षमा माँगने लगा। जगद्गुरु को प्रणाम करके वह विदा हो गया।

पण्डित ब्राह्मण के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। दृढ़ संकल्प किया कि कभी जीवहिंसा करने में प्रवृत्त नहीं होंगे। अत्यन्त अनुगृहीत होते हुए वह स्वामीजी की स्तुति करने लगे।

तदनन्तर सत्संग शुरू हुआ। पण्डित ने अपना जीवन स्वामीजी की सेवा में व्यतीत करने का निश्चय किया। उसके परिवारजन भी स्वामीजी के परम भक्त बन गये।

(2)

काशी में प्रकांड विद्वान पण्डित पुलि पुंगव पाचरजी का बड़ा नाम था। वेदान्त के वे प्रखर ज्ञाता थे। दूर-दूर से लोग वेदान्त के अर्थों को समझने उनके पास आते थे। वे स्वयं भी नित्य वेदान्त के मर्म को समझने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।

दीर्घ काल तक मनन करने पर भी वेदान्त के कुछ वाक्यों का मर्म समझने में वे असमर्थ रहे, अतः अपनी शंकाओं के निवारणार्थ वे जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के पास सत्संग में आने लगे। नित्य श्रवण, मनन करते हुए उन्हें स्वामीजी पर बहुत श्रद्धा हो गयी। एकांत अवसर की प्रतीक्षा करते हुए वे स्वामीजी से समाधान कराने की इच्छा रखने लगे।

परन्तु अन्तर्यामी स्वामीजी ने स्वयं एक दिन पण्डितजी की शंकाओं का समाधान करते हुए सत्संग में कहा :

वह तू है, वह तेरा है, वह तुझसा है।
तू वही है, तू उसी का है, तू उसी जैसा है॥

ये वाक्य जीव और ईश्वर की, आत्मा तथा परमात्मा की आत्मीयता प्रकट करने वाले हैं, तथा मोह के पर्दे को फाड़ते हैं। इन्हीं वाक्यों द्वारा ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होती है। ये जीव को चेताकर माया महारानी की नृत्यकला का उपहास कराने वाले हैं। ये षटवाक्य ही त्रिपाद विभूति का पता बताने वाले तथा सम्पूर्ण ज्ञान तथा कुंडलिनी स्वरूप का तत्वबोध कराते हैं।

तत्वतः प्रत्येक वाक्य एक ही है, इनमें कुछ भी भेद नहीं है। प्रत्येक से जीव का उद्धार हुआ है। प्रत्येक को लेकर सम्प्रदाय चला तथा प्रत्येक वाक्य योग का एक विशेष प्रकार है। सभी वाक्य परमार्थ की निशानी हैं तथा अगम पंथ का राज-मार्ग हैं। भेद मात्र दशा का है।

जीवमात्र का अन्तरात्मा शिवरूप है। शिवजी सदैव श्रीराम षडाक्षर का जप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं, यही ध्वनि हृदय में नित्य गूंजती है। ये षट्वाक्य षडाक्षर मन्त्र के प्रत्येक अक्षर की छह प्रकार की ध्वनियों का विकास है।

जो हृदय का पुजारी है तथा जो एकांत में परमपावन का चिन्तन करना है वह एकाग्र होने पर उन्हें सुनता है तथा योगयुक्त हो जाता है। वह योगयुक्त प्राणी बिना किसी प्रयास षट् सम्पत्ति भाजन हो जाता है। उसके षट् विकार का शमन तुरन्त हो जाता है तथा वह षट्भंग का अधिकारी हो जाता है। तदनन्तर वह ध्वनियों में झिलमिल ज्योति का दर्शन करता है। प्रयत्नशील रहने पर वह झिलमिली ज्योति बदलकर स्फटिक ज्योति हो जाती है। इस समय उस पर समस्त मानसिक शक्तियाँ पतंगे की भाँति हुत हो जाती हैं।

सर्वप्रथम तामसिक प्रलय होता है, फिर राजसिक प्रलय और अन्त में सात्विक प्रलय होता है, अन्त में शिवजी विष्णु में लय हो जाते हैं।

मुनि पुंगव वेदान्त के गूढ़ वाक्यों का मर्म सुनकर कृतकृत्य हो गये। गूढ़ अभिप्राय सुनकर उनके संशय का नाश हुआ तथा पुनः-पुनः अन्तर्यामी स्वामीजी को प्रणाम करके सामर्थ्यवान तथा धीमान होकर चले गये।

(3)

संवत् 1432 में अयोध्या के राजा गजसिंह भटकते हुए काशी पहुँचे। बलात् मुस्लिम बनाये गये ये राजा अपने परिवार एवं प्रजा सहित पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश चाहते थे अतः पण्डितों से प्रार्थना करते हुए भटक रहे थे।

संवत् 1381 में पितृघाती जूना खाँ ने अयोध्या जीतकर वहाँ अत्याचार एवं आतंक मचाकर हजारों लोगों को बलपूर्वक मुस्लिम बनाया था। उसके बाद फिरोज तुगलक ने भी धर्मान्धतावश शासन किया। इस अत्याचार से लम्बे समय से दबी हुई प्रजा ने सर्वत्र विद्रोह कर दिया तथा अनेक राजा स्वतन्त्र होने लगे। अयोध्या के राजा वीरसिंह देव के भागने के उपरान्त मुस्लिम सरदारों ने सत्ता हस्तगत करके प्रजा को सदैव भयभीत रखा। परन्तु परिस्थिति बदलते ही वीरसिंह देव के भतीजे गजसिंह ने मुस्लिम शासन के सामने विद्रोह किया तथा स्वतन्त्र हो गये।

अब उनके सामने विकट समस्या थी पुनः हिन्दू बनने की। 50 वर्ष के लम्बे समय के पश्चात् कोई पण्डित उन्हें पवित्र संस्कार कराने की समर्थता नहीं रखते थे। सर्वत्र भटकते हुए अन्ततः वे एक दिन काशी पहुँच गये।

जब वे श्रीमठ पहुँचे तब सद्भाग्य से कुटीर का परदा खुला ही था। अतः करबद्ध राजा ने विनीत स्वर में कहा :

"हे स्वामीजी ! मैं अयोध्या के राजा वीरसिंह देव का भतीजा गजसिंह हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

50 वर्ष पहले बैसाख सुदी दशमी, शनिवार को राजा वीरसिंह पितृघाती निर्दयी जूना खाँ के भय से भजन करने के बहाने तराई में चले गये थे। उस समय राजा के बिना प्रजा की जो दशा होती है वही हमारी हुई। बीसियों हजार प्राणियों को क्रूरतापूर्वक मुस्लिम धर्म अपनाना पड़ा। अनेक लोगों की विरोध करने पर हत्या की गयी। तब से क्रूर सरदारों के शासन में धर्मभ्रष्टता निरन्तर बढ़ती रही थी।

भगवन्! हम लोग आपको ही धर्म-प्रतिपालक मानते हैं। आप ही सनातन संस्कृति के उद्धारक हैं। भगवान श्री रामजी के नित्यधाम में रहते हुए भी हमको पुनः धर्म प्रवेश का अधिकार कोई नहीं देता। नगर-नगर जाकर पण्डितों से प्रार्थना की, परन्तु ऊँची पगड़ी बाँधने वाले हमारे पण्डितों ने बहुत समय व्यतीत होने का बहाना करके धर्मभ्रष्टों की भ्रष्टता दूर करके वैदिक धर्म के अधिकारी बनाना अस्वीकार कर दिया है। हम सब प्रायश्चित करके पवित्र संस्कार पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं।

हे आचार्यजी! ऐसा कोई रोग नहीं जिसकी कोई दवा न हो तथा ऐसा कोई पाप नहीं जिसका प्रायश्चित न हो। हम अवधवासी अब आपकी शरण में हैं। हम सबका उद्धार कीजिये।"

यह दुःखमयी गाथा सुनकर दयासागर जगद्गुरुश्री द्रवीभूत हो गये। करुणा भरी वाणी से वे बोले :

"हे राजन! आप सब धैर्य धारण करो। आप सबका प्रायश्चित अवश्य होगा। आप पुनः अयोध्या लौट जाओ, तथा सर्व धर्मभ्रष्ट अवधवासियों की मुरझायी आशालता को हमारे सन्देश रूपी जल से सिंचित करके नवपल्लवित करो कि आज से तीसवें दिन प्रातः समय हम सरयू तट पर आयेंगे तथा सबका एक साथ ही उद्धार करेंगे।"

प्रसन्न हो गये राजा गजसिंह यह सुनकर। करुणानिधान की अपरम्पार करुणा का अनुभव करते हुए बारम्बार प्रणाम करते हुए आज्ञा लेकर वे पुनः अयोध्याजी लौट गये।

अयोध्या पहुँचकर राजा ने जगद्गुरुश्री का सन्देश लोगों को सुनाया तो सब हर्षोन्मत्त हो गये। वैदिक धर्म के पुनः अधिकारी बनने की उनकी महेच्छा अब पूर्ण होने वाली थी। अयोध्या में लोग अब दिन गिनने लगे।

इधर स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी ने कुछ शिष्यों को साथ लेकर अयोध्याजी की ओर प्रस्थान किया। अनेक लोगों को आश्वासन देते हुए वे उन्तीसवें दिन सायंकाल अयोध्याजी पहुँच गये। लोगों ने हर्षोल्लास से उनका भव्य स्वागत किया। अगले दिन प्रातःकाल सबको सरयूजी के तट पर एकत्रित होने का स्वामीजी ने आदेश दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही अयोध्या में सरयूजी के तट पर 50 हजार धर्मभ्रष्टों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की संख्या एकत्रित हो गयी। स्वामीजी के आगमन पर सबने भगवान श्री रामजी, जगद्गुरु एवं वैदिक धर्म की जयजयकार के नारे लगाये। दिशाएँ कम्पित हो उठीं।

स्वामीजी ने सबको पवित्र सरयू में स्नान करने का आदेश दिया। जब सब लोग स्नानादि से निवृत्त हो गये तब महाप्रभु ने 'श्रीराम' नाम का उद्घोष किया तथा लोगों से कराया। तदनन्तर दिव्य शंख से अमृतनाद गुंजारित कर दिया। दिव्य अमृतध्वनि कानों में प्रवेश करते ही बाहर-भीतर से विशुद्ध होकर सब दिव्य संस्कारों से युक्त हो गये। स्वामीजी ने सबको अब पूर्णतः हिन्दू एवं वैदिक धर्म के अधिकारी घोषित किया। जन-मेदिनी ने प्रसन्नतापूर्वक दशों दिशाओं को स्वामीजी की जयजयकार की ध्वनि से पुनः कम्पित कर दिया।

तदनन्तर यतिराज की नगर में शोभायात्रा निकाली गयी। राजा गजसिंह स्वयं खुले पैर आचार्यश्री की पीनस को कंधा देकर चलने लगे। भगवान श्रीरामचन्द्र के जन्मस्थान के भव्य मन्दिर के प्रांगण में यात्रा रुकी। जगद्गुरुश्री का संक्षिप्त प्रवचन हुआ। सब दिव्यानन्द में गोते लगाते हुए पुन. अपने घर लौट गये।

परन्तु सायंकाल एक नयी समस्या आयी। श्री अयोध्याजी के ब्राह्मणों एवं पण्डितों ने शुद्धिकृत हिन्दुओं को हिन्दू समाज में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यतीन्द्र ने शास्त्रार्थ करके उन्हें समझाया तथा शुद्धिकृत हिन्दुओं के घर भोजन करने का ब्राह्मणों एवं पण्डितों से आग्रह किया।

तत्काल तो सबने स्वीकार कर लिया, परन्तु किसी विद्वेषी द्वारा सन्देह होने पर वे भोजन में नहीं गये। महामुनि ने अपनी पारलौकिक शक्ति से ब्राह्मणों को द्वित्व प्रदान किया। एक रूप में वे अपने घरों में ही बैठे रहे तथा दूसरे रूप में निमन्त्रण पर आकर शुद्धिकृत हिन्दुओं के घर भोजन करने लगे।

इस बात का भेदोद्घाटन होने पर सब लज्जित हो गये। पूर्णतः स्वीकार करने की भावना से अब वे पुनः स्वामीजी की शरण में आये। स्वामीजी ने सबका सप्रेम स्वागत किया। उनकी क्षमा प्रार्थना पर उन्हें क्षमा प्रदान की गयी। पुनः सबने मिलकर स्वामीजी का जयनाद किया।

सायंकाल को पुन. मन्दिर के विशाल प्रांगण में हजारों की संख्या उपस्थित हो गयी। पण्डित, ब्राह्मण, राजा तथा शुद्धिकृत हिन्दू सहित सब वहाँ उपस्थित थे। जगद्गुरुश्री ने सबको उद्बोधित करते हुए कहा :

"प्रिय प्रेमियो! आप सबको अगर अपना राष्ट्र, अपना धर्म एवं वैदिक सनातन संस्कृति प्रिय है, अपने ऊपर गौरव है तो हृदय की संकीर्णता का त्याग अवश्यमेव करना पड़ेगा। राज्य शक्ति धर्म को छिन्न-भिन्न करने पर तुली है। अगर धर्म के रक्षक पण्डित एवं ब्राह्मण ही धर्म के भक्षक बनकर प्रजा को साथ-सहकार नहीं देंगे तो हमारी संस्कृति अवश्य नष्ट हो जायेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस जाति में केवल पृथक् करने की ही भावना रहती है, वह जाति अथवा समाज चिरकाल तक नहीं टिक सकते। हे पण्डितो ! ध्यान देकर सुनो !

यस्यां जातौ समाजे वा यस्मिन्तिष्ठति केवलम् ।
शक्ति वियोजनस्यैव चिरंजीवेन सा न सः ॥
नोदरेऽन्ने स्थिरीकर्तुं शक्तो वमति यः सदा ।
यथा यस्य चिरायुष्ट्वं नास्ति तस्यापि तत्तथा ॥
अयंतु प्रथमः पादः कलिकालस्य वर्तते ।
तारुण्ये भविता यद्यत्सहिताध्ये कथं च तत् ॥

न पचाने वाले तथा सदा वमन करने वाले जैसे चिरायु नहीं हो पाते उसी प्रकार पृथकतावादी जाति या धर्म की भी वही दशा होती है।

हे ब्राह्मणो ! अभी तो कलियुग का प्रथम चरण मात्र देखा है। अभी से पृथकतावादी वर्तन रहेगा तो कलि के तारुण्य में उसे कैसे सहन करोगे ? समाज में कालवश अनेक दूषण फैलेंगे। दोषग्रस्त सभी व्यक्तियों को यदि सदैव हिन्दू जाति से बहिष्कृत कर दिया जायेगा तो हिन्दुओं का अस्तित्व ही संदिग्ध हो जायेगा। और आप जिन्हें दूषित मान रहे हो, वे वास्तव में दूषित नहीं हैं, बलपूर्वक उन्हें दूषित किया गया है।

बलात्कारेण पातित्यं पातित्यं तन्न सम्मतम् ।

यह सुभाषित सदा से सज्जनों द्वारा मान्य है। अतः जड़ मान्यताओं का परित्याग करके हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान में रत हो जाओ। आसपास ऐसे जितने संतप्त लोग हैं, उनके पास जाओ, उन्हें सांत्वना-हिम्मत प्रदान करो। राज्यमद से छके हुए विधर्मियों के शासन में धार्मिक शक्तियों को एकत्रित करके उनका सामना करो। यही आपकी धर्म एवं संस्कृति के प्रति सेवा है, यही आज का आपका कर्तव्य है।"

पण्डितों एवं ब्राह्मणों के सिर लज्जा से झुक गये। स्वामीजी के वचनामृत से उन्हें नूतन दृष्टि प्राप्त हुई। स्वामीजी के सामने इस भगीरथ कार्य को करने का पवित्र संकल्प उन्होंने घोषित किया। उन सबको स्वामीजी में साक्षात श्री रामजी का दर्शन हुआ।

नित्य अयोध्या में सत्संग होता रहा। पण्डितों ने आसपास घूमकर सर्व इच्छुक धर्मभ्रष्टों को पुनः स्वीकारने का कार्य शुरू कर दिया। एक बार जगद्गुरुश्री ने वृहद् भण्डारा भी किया। पण्डितों के आग्रह पर श्री सीताराम महायज्ञ हुआ। सर्वत्र आनन्द मंगल छा गया। स्वामीजी के जयघोष के नारे सर्वत्र गूंजने लगे। कुछ दिन रुककर जमात ने अयोध्या से प्रस्थान किया। अवधवासियों ने सजल नेत्रों से द्वापर युग के बाद पुनः एक बार परमात्मा श्री रामजी को विदा किया।

अयोध्या से निकलकर जमात जनकपुर धाम पहुँची। यहाँ पुष्पवाटिका में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुकाम हुआ। श्रीराम कथा का आयोजन भी हुआ। हजारों लोग नित्य कथालाभ लेने लगे। भगवान श्रीराम पुष्पवाटिका में पुष्प लेने लक्ष्मणजी के साथ प्रवेश करते हैं, साथ ही जानकीजी भी अपनी सहेलियों के साथ पुष्पवाटिका में प्रवेश करती हैं। परस्पर देखते ही श्रीराम-जानकी में नित्य पुरातन प्रीति का प्रागट्य हो गया। कथा सुनने वाले सभी को यह दृश्य सादृश दिखायी दिया। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा, नेत्र वारिपूरित बन गये तथा स्वतः अंजलि बँध गयी। परम आनन्द में निमग्न जनता ने आचार्यश्री का जयघोष किया।

श्री अयोध्या की चर्चा सर्वत्र फैल गयी थी। अतः अनेक धर्मभ्रष्ट शुद्धिकरण की प्रार्थना सहित आये। महाप्रभु ने कृपापूर्वक सबको एक साथ ही वैदिक धर्म का अधिकारी बनाया। हर्षोल्लास सहित वे स्वामीजी की जय पुकारते हुए विदा हुए।

दूर-दूर से अनेक अद्वैती तथा नाथ सम्प्रदाय वाले शास्त्रार्थ के लिए आते रहे। अनेक बार शास्त्रार्थ हुआ। स्वामीजी के शिष्य श्री अनन्तानन्दजी, श्री सुखानन्दजी, श्री योगानन्दजी तथा श्री सुरसुरानन्दजी ने गुरुकृपा से अक्षय कीर्ति प्राप्त की। सैकड़ों नाथों ने प्रार्थनापूर्वक श्री वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। हजारों अद्वैती महानुभावों ने परम वैदिक वैष्णव सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। परम वैष्णव धर्म की महत्ता से स्वामीजी ने शाक्तों को भी अवगत कराया।

मिथिलामण्डल में इस समय नैयायिकों का भारी प्रभाव था। अतः नैयायिकों एवं मीमांसकों ने जगह-जगह पर शास्त्रार्थ के लिए उनका आवाहन किया। श्री अनन्तानन्दजी एवं श्री योगानन्दजी आदि से वे स्वयं शास्त्रार्थ में हार गये।

मधुवन में व्याख्यान देते हुए जगद्गुरुश्री ने कहा कि मैथिलों की मीमांसा पद्धति वेदानुकूल है, न्याय पद्धति भी अनुकूल है। परन्तु उत्तर मीमांसा बिना मीमांसा पद्धति मोक्ष का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकती। न्याय पद्धति की अन्यथा ख्याति को यदि सत्ख्याति में पर्यवसन्न कर दिया जाय तो सबकुछ वेदान्तानुकूल हो जाय तथा उसमें कोई दोष नहीं रह जायेगा। एतद् विषय में ही मैथिल पण्डितों का शास्त्रार्थ भी श्री अनन्तानन्दजी तथा श्री महेश्वरानन्दाचार्यजी से हुआ तथा पण्डितों की हार हुई। एक बार वृदद् भण्डारा भी किया गया। कुछ दिन रुककर जमात रामपुर के लिए प्रस्थान कर गयी।

रामपुर में भावुक भक्तजनों ने आचार्यप्रवर का भव्य स्वागत किया। यहाँ श्रीराम यज्ञ का आयोजन हुआ। यवनों ने यज्ञ में विघ्न करने की चेष्टा की, परन्तु स्वामीजी के चमत्कार से उनके हाथ-पैर जड़ हो गये। ऐसी भयंकर पीड़ा होने लगी कि यवन सेनापति क्षमायाचना करने लगा। अनेक मुस्लिमों को पुनः हिन्दू बनते देख यवन स्वामीजी के कार्य में अवरोध करना चाहते थे। अपराधियों को दण्ड दिये बिना ही करुणा कर देने से अपराध परम्परा में वृद्धि होने की सम्भावना से घंटों यवनों को उसी स्थिति में रखने के बाद ही दिव्य शंखनाद से स्वामीजी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका दुःख दूर किया।

तदनन्तर यवनों ने भी यज्ञकार्य में स्वामीजी की यथासम्भव सहायता की तथा हिन्दुओं के धर्म कार्य में विघ्न नहीं करने की प्रतिज्ञा की। हजारों लोगों ने यज्ञपुरुष का दर्शन लाभ लिया तथा करोड़ों धर्मभ्रष्टों को उनकी प्रार्थना पर शुद्धिकरण कराया गया। कुछ दिन पश्चात् जमात ने प्रस्थान किया।

कन्नौज पधारकर जमात सहित जगद्गुरु ने पतितपावनी माँ गंगाजी के पवित्र तट पर मुकाम किया। यहाँ श्रीराम यज्ञ किया तथा अनेक धर्मभ्रष्टों का शुद्धि-करण किया। इस बात से खिन्न म्लेच्छों ने यज्ञ में विघ्न करने की चेष्टा की परन्तु उन्हें बड़ा भारी दण्ड मिला। भयंकर सर्पों ने उनका पीछा किया। बहुत लोग भाग गये, कुछ यवनों को डँसकर सर्पों ने तत्काल यमलोक पहुँचा दिया। कई स्वामीजी के श्रीचरणों में भागे तथा पुनः-पुनः क्षमायाचना करने लगे। तदनन्तर स्वामीजी ने शंखघोष किया, जिससे सर्पसमूह अदृश्य हो गया। कुछ दिन सत्संग लाभ देते हुए जमात वहाँ से आगे बढ़ी।

मार्ग में अनेक धर्मभ्रष्टों की सहायता की गयी। बहुत लोगों ने श्री वैष्णव मत को स्वीकार किया। अनेक पीड़ित धर्मप्रेमियों को स्वधर्म में रत रहकर हिम्मत एवं विश्वासपूर्वक विधर्मी शासन का सामना करना सिखाया गया। विधर्मी म्लेच्छ शासकों की दुष्ट नीति-रीति से पीड़ित जनता को नया विश्वास, नयी आशा तथा उत्साह प्राप्त हुआ। अनेक लोगों को प्रेम एवं हिम्मत प्रदान करते हुए जमात नैमिषारण्य पहुँची।

नैमिषारण्य में पण्डितों के आग्रह पर श्रीराम यज्ञ का आयोजन हुआ। अनेक धर्मभ्रष्टों को पुनः वैदिक धर्म में प्रवेश दिया गया। अनेक लोगों ने श्री वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की। बहुत दूर-दूर से आकर लोग यज्ञपुरुष का दर्शन करके धन्यता का अनुभव करने लगे। वातावरण में ऐसी दिव्यता फैल गयी कि सर्वत्र लोग श्रीराम मन्त्र का जप, श्री रामरक्षा स्त्रोत का पाठ अथवा श्री वाल्मीकि रामायण का पाठ करते दिखायी देने लगे। अनेक अद्वैतवादियों ने शास्त्रार्थ में हारकर वैष्णव धर्म अंगीकार किया। अन्त में एकता में निबद्ध होकर धार्मिक अनुष्ठान करने का जगद्गुरुश्री ने सबको उपदेश दिया तथा ईश्वरार्पण जीवन व्यतीत करते हुए दीन-दुखियों की सेवा-सहायता करने का अनुरोध किया। यहाँ से जमात आगे बढ़ी।

गोमती के तट पर लक्ष्मणपुर जमात आयी। अन्य स्थानों की तरह यहाँ भी धर्मभ्रष्टों की भीड़ लग गयी। अनेकों को शुद्धिकृत किया और वैष्णवी दीक्षा प्रदान की गयी। बहुमत वैष्णव तथा विद्वान ब्राह्मणों को देश में परिभ्रमण करके वैदिक सिद्धान्त का प्रचार करने का आदेश दिया। वैष्णव सिद्धान्त और उसके मर्म एवं रहस्य को समझकर सहस्रों पण्डितों ने जगद्गुरुश्री से वैष्णवी दीक्षा की प्रार्थना की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार सर्वत्र उत्तर भारत में परिभ्रमण किया गया। मुस्लिम शासकों के छल-बल के प्रभाव से असंख्य जनता को बलात् धर्म परिवर्तन करना पड़ा था। जगद्गुरुश्री ने यवनों के इस कार्य को निष्फल कर दिया। इधर सुलतान फिरोज तुगलक मन्दिरों तथा मूर्तियों का विध्वंस कर अवशेषों को मस्जिदों की सीढ़ियों पर रख प्रसन्न होता रहा, इधर आचार्यश्री बृहद् अभियान चलाकर मुस्लिम बनायी गयी प्रजा को पुनः हिन्दुत्व प्रदान करते रहे। स्थानीय मुस्लिम शासकों ने अनेक बार उन्हें रोकना चाहा, परन्तु उनके चमत्कारों से डरकर उन्हें उनकी शरण में जाना पड़ा। उनके प्रभाव से मुस्लिम शासक भयभीय होने लगे थे।

इस प्रकार हिन्दू सनातन संस्कृति को ऐसे भीषण काल में सबल सहारा मिला जब लोग धर्मभ्रष्ट होकर घुट-घुटकर मरने लगे थे तथा उनकी घुटन का पूरा-पूरा लाभ विधर्मी शासक लेते रहे थे। परन्तु जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने उत्तर भारत में भ्रष्ट लोगों के शुद्धिचक्र का ऐसा भगीरथ अभियान चलाया कि शासकों का प्रभाव अधिकांश प्रजा को प्रताड़ित न कर सका और हिन्दू धर्म पुनः नव-पल्लवित हो उठा।

आचार्य सम्राट की प्रेरणा से अनेक पण्डित एवं ब्राह्मण भी इस भगीरथ कार्य में अपना सहयोग देने लगे। इस प्रकार सर्वत्र घूमते हुए जमात पुनः काशी लौट आयी।

काशीवासियों ने धर्म संस्थापक के इस आगमन को हर्षोल्लास सहित मनाया। आश्रम में पुनः नित्य नैमित्तिक कार्यक्रम शुरू हो गये।

(4)

सत्संग का समय था। सत्संगवाटिका में लोग एकत्रित हो गये थे। समय होने पर जगद्गुरुश्री यहाँ उपस्थित हुए। कुछ समय पश्चात् गगन गम्भीर स्वर गूंज उठा :

"संसार में प्राणीमात्र को अथवा किसी भी प्राणी को मारने वाला, काटने वाला या दबाने वाला ज्ञान ज्ञान नहीं है, वह अज्ञान है। हममें अहंकार को पुष्ट करने वाला, रागद्वेष बढ़ाने वाला ज्ञान ज्ञान नहीं है, वह अज्ञान है। इच्छा-वासनाओं से चित्त को अशान्त करने वाला भी अज्ञान ही है।

हमारे मत से ज्ञान वही है जो आत्म स्वरूप का दृढ़ अनुभव कराकर सर्वत्र परमात्मा का दर्शन कराये। ज्ञान वह है जिसमें सापेक्ष मान्यताओं का मूल्य न रहे। निरपेक्ष सत्य स्वरूप परमात्मा को बताने वाला, समझाने वाला ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञान प्राणीमात्र को राग-द्वेष के सीमित दायरे से बाहर निकालकर समत्व के साम्राज्य में प्रवेश कराता है। ज्ञान चित्त को अहंकार-वासनाओं से मुक्त करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिन्मय ज्योति को जगमगाकर निजानन्द स्वरूप में निमग्न कर देता है। ज्ञानी का जीवन आनन्दमय होता है। वो अपने विराट स्वरूप में आनन्द के स्पंदनों का विस्तार करके सब पर पड़े हुए मल-विक्षेप आवरणों को दूर करके नित्यानन्द मुक्तानन्द का अनुभव कराता है।"

सत्संग समाप्त हुआ। जगद्गुरु निज आसन से उठकर गुफा में चले गये। साधक-भक्त अपने-अपने कार्य में लगने लगे।

उस समय एक रमते राम महात्मा भ्रमण करते हुए आश्रम पर आये। उन्होंने स्वामीजी से मिलने की इच्छा प्रकट की। अनन्तानन्दजी के पूछने पर उन्होंने बताया कि वे बहुत विकल थे। उनके नेत्रों में झाला पड़ गया था और अकथनीय पीड़ा हो रही थी। बड़े-बड़े भिषगों ने उनका रोग असाध्य बताकर उन्हें निराश किया था। किसी महापुरुष ने स्वामी रामानन्दाचार्यजी का नाम बताकर विश्वास दिलाया था कि एकमात्र वे ही उनकी आँखों का उपचार कर सकते हैं।

स्वामीजी अब विश्राम में थे अतः अनन्तानन्दजी ने उनसे जलपान तथा प्रसाद के लिए आग्रह किया परन्तु उन्होंने बिना स्वामीजी के दर्शन किये कुछ भी ग्रहण नहीं किया। वे स्वामीजी की कुटीर के सामने वृक्ष के नीचे बैठ गये। बैठे-बैठे संध्या हो गयी परन्तु उन्हें दर्शन लाभ प्राप्त नहीं हुआ। अब उनके धैर्य का अन्त आने लगा।

अधीर होकर वे कुटीर के पास आये तथा बोले, "देव ! दया कीजिये। दिव्य दर्शन दीजिये।"

तत्क्षण परदा खुला। देवदुर्लभ दर्शन से वे कृतार्थ हुए। साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया तथा सूर्यमुखी की तरह सद्गुरु रूपी भास्कर की ओर टकटकी लगाकर देखते रहे। स्वामीजी के परम तेजस्वी मुखमण्डल पर त्रिभुवन मोहक स्मित लहरा रहा था। उन्होंने प्रेमार्द्र स्वर में पूछा, "क्या चाहते हो, महाराज ?"

मधुर स्वर सुनते ही महात्मा को सुधि आयी। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। वे हाथ जोड़कर सविनय बोले :

"हे दयानिधान ! परम कृपा करके आपने दर्शन दिये उससे मेरे चर्मचक्षु तो कृतार्थ हो गये। परन्तु हे प्रभु ! वह नेत्र कहाँ जो आपके सहज, सुन्दर स्वरूप का दर्शन कर सकें ? मैं तो वह अंतर्चक्षु चाहता हूँ जिनसे एक बार भी आपका भली भाँति दर्शन कर सकूँ। मेरे नेत्र में झाला पड़ गया है और अकथनीय पीड़ा हो रही है। कृपया मेरा उपचार कीजिये।"

चतुर महात्मा की गूढ़ बातें स्वामीजी समझ गये। उनके अभिप्राय को जानते हुए योगी गूढ़ भाषा में प्रत्युत्तर देते हुए बोले :

"सुनिये महाराज ! वामचक्षु से देखने पर दाहिने नेत्र में फूली पड़ जाती है और दायीं आँख से ताकने पर बायाँ नेत्र मोतियाबिन्दुग्रस्त हो जाता है। परन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों नेत्रों से सम्यक प्रकार से देखने से कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। वीतराग चक्षु अर्थात् सम्यक ज्ञान तो दक्षिण नेत्र से ही परिसाधित है। वीतराग चक्षु स्वप्न तथा सुषुप्ति में अलोल रहता है, स्थिर रहता है। तभी तिल, तुरीय में अन्तर्यामी को धारण करता है। अर्थात् अन्तर्चक्षु खुलते हैं और परमात्मा के दर्शन होते हैं और तिमिर का नाश होता है। इस दिव्य रसायन का उपयोग करने से आपकी आँखें अवश्य अच्छी हो जायेंगी तथा परमात्मा के दर्शन के लिए सद्भागी बनेंगी।"

कहते हुए स्वामीजी ने कमण्डल से जल के छींटे डाले। आगन्तुक महात्मा को तत्काल लाभ हुआ। उनके अन्तर्चक्षु खुल गये। विकार रहित नेत्रों से उन्हें परमात्मा के दिव्य दर्शन का सद्भाग्य प्राप्त हुआ।

महामुनि की स्तुति करते हुए वे सफल मनोरथ होकर वहाँ से विदा हुए।

जगद्गुरुश्री की गूढ़ भाषा कुछ शिष्य समझ नहीं पाये। अतः उन्होंने श्री अनन्तानन्दजी से इस विषय में स्पष्टीकरण कराया। योग मार्ग की परिभाषा समझाते हुए अनन्तानन्दजी ने उन्हें कहा कि मानव शरीर में प्रायश्चित वहन करने वाली तीन मुख्य नाड़ियाँ मेरुदण्ड में हैं। बायी नाड़ी को इड़ा, दाहिनी को पिंगला तथा मध्यस्थ नाड़ी को सुषुम्ना कहते हैं। योग मार्ग का अभ्यासी अनेक प्रयत्न करके मूलाधार में स्थित अधोगामी प्राणशक्ति स्वरूप कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्व-गामी बनाने में सफलता प्राप्त करता है। जब कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी में ऊर्ध्वगति करते हुए षट्चक्र भेदन करके सहस्रार चक्र में पहुंचती है तब तिमिर का नाश होता है, अन्तर्चक्षु खुलते हैं तथा शिव और जीव का मिलन होता है। जीव को परमात्मा का दर्शन तभी होता है, व्यक्ति का समष्टि में आविर्भाव होता है।

परन्तु साधक की साधना गुरु के मार्गदर्शन से वंचित हो अथवा किंचित्मात्र भूल होने से प्राणशक्ति सुषुम्ना में ऊर्ध्वगति न करते हुए इड़ा या पिंगला में ऊर्ध्व-गति कर दे तो साधक अत्यन्त भारी कष्ट का भोगी बनता है। अतः बायें नेत्र से या दाहिने नेत्र से न देखकर सम्यक प्रकार से देखने से कोई विकार नहीं होता।

श्री अनन्तानन्दजी की स्पष्टता से अन्य शिष्यों का समाधान हो गया।

(5)

काहटा प्रदेश के एक बहुत बड़े ज्ञानी एवं गुप्त रहस्यों के ज्ञाता झीटाजी पण्डित जगद्गुरु की ख्याति सुनकर उनके दर्शनार्थ काशी आये। भगवान काशी विश्वनाथ के दर्शन से कृतार्थ होकर प्रातःकाल ही वे श्रीमठ में आ पहुँचे।

जगद्गुरुश्री अपनी कुटी से कई दिनों से बाहर नहीं आये थे। प्रातः से सायं-काल हो गया, परन्तु उन्हें दर्शन लाभ नहीं हुआ। वे काशी लौट गये तथा नयी अभिलाषा लिये दूसरे दिन पुनः आये। इस प्रकार तीन दिन तक प्रयास किया तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनायास ही एक दिन दर्शन हुए।

दिव्य दर्शन मिलते ही झीटाजी को योग समाधि हो गयी और न जाने किन-किन लोकों में सैर करते रहे। अन्तर्गति में अपने मनोविकारों को विकसित होते देख वे बहुत संकुचित एवं लज्जित हुए। समाधि भंग हुई तब सचेत हुए तथा पुनः दिव्य दर्शन करके शिथिल स्वर में नेत्र मार्जित करते हुए बोले :

"प्रभु ! दया करके मेरी रक्षा कीजिये, नहीं तो मैं रसातल पहुँच जाऊँगा।"

प्रेममूर्ति ने आश्वासन भरी वाणी से कहा, "हे पण्डित ! आपने पुस्तकीय ज्ञान तथा लौकिक ज्ञान तो बहुत सम्पादन कर लिया है, परन्तु वह मस्तिष्क में ही है, हृदय तक नहीं पहुँचा। इसी कारण तुम भाव में भटकते फिरते हो। यदि अपनी स्त्री से पूछ लेते तो ठीक मार्ग पर आ गये होते। क्या उसने कहा नहीं था कि घर और वन के बीच जो घाटी है, उसमें उतरना भयावह है ?"

गुप्त रहस्यों के ज्ञाता के साथ स्वामीजी ने उन्हीं की गूढ़ भाषा में बात प्रारम्भ की। ज्ञानी पण्डित विस्मित रह गये। वे चकित होकर सोचने लगे कि स्वामीजी अन्तर्यामी हैं तथा मेरी गुप्त तथा प्रकट सर्व बात जान गये हैं। जगद्गुरुश्री की गूढ़ भाषा का तात्पर्य समझ पण्डित ने भी गूढ़ भाषा में उत्तर दिया :

"हे अन्तर्यामी ! आप सच कहते हैं। उसने कहा था, परन्तु उस समय मैंने बिना समझे-बूझे टाल दिया था। आज, हे नाथ ! आपके श्रीमुख से सुनकर उसके तात्पर्य को समझ रहा हूँ। अब मुझ पर दया कीजिये तथा मुझे उपदेश दीजिये जिससे मैं तृष्णाताप से बच जाऊं तथा आपके गुण गाता फिरूँ।"

सानुगृहीत दृष्टि से देखते हुए स्वामीजी ने कहा, "झीटाजी पण्डित ! जब दर्शन नहीं हुए और घर लौट गये थे, तो अपनी अर्धांगिनी को साथ लेकर क्यों नहीं आये ? अब जाओ, उसे लेकर आओगे तब उपदेश होगा।"

स्वामीजी की गूढ़ बातों का मर्म समझते हुए झीटाजी आज्ञा शिरोधार्य करके पुनः काशी लौट गये। बहुत सोचने पर स्वामीजी की बातों को वे पूर्णतः समझ सके।

दूसरे दिन जब वे श्रीमठ आये तब उनकी स्त्री चूपन्ना विद्यामाया के रूप में उनके साथ थी। संध्या का समय था और दैनिक सत्संग समाप्त हो चुका था। जगद्गुरु संध्या-पूजा में तत्पर नित्य नियम कर रहे थे। संध्या से निवृत्त होने पर परदा खुला।

पण्डित दम्पति अलौकिक दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। उन्होंने बहुत उपहार भेंट किये तथा आचार्यश्री की आरती उतारी, चरणोदक भी पिया। चरणोदक पीकर चूपन्ना अमरत्व को प्राप्त हो गयी।

स्वामीजी ने चूपन्ना से दो प्रश्न किये। प्रथम प्रश्न 'घर-आँगन तथा घर-वन में क्या भेद है' के उत्तर में चूपन्ना ने नेत्र से काजल पोंछकर रखा। इस संकेत को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्र स्वामीजी ही समझ सके कि घर और वन के बीच श्याम घटा से आच्छादित अविद्या माया की भयंकर घाटी रूप मायावी संसार है। ऊपर से आकर उसमें उतरना भयावह है। दूसरा प्रश्न था, 'वह कौन लोक है जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं ?' इसके उत्तर में चूपन्ना ने खुली हथेली चमकायी तथा संकेत से कहा कि वह विद्युत लोक है जहाँ सूर्य प्रकाश नहीं स्वप्रकाश रहता है। वही विद्यामाया का मुख्य स्थान है।

इन संकेतों को स्वामीजी के सिवा कोई नहीं समझ सका। उसके अभिप्राय को जानकर उसकी परीक्षा लेने के लिए स्वामीजी ने दिव्य शंख बजा दिया।

उसे सुनते ही चूपन्ना पागल होकर खड़ी हो गयी तथा प्रार्थना करने लगी, "हे मायापति ! चूपन्ना को शरण में लीजिये तथा भेद मत खोलिये। हे नाथ ! हृदय में बसने वालों को बताना क्या और हृदय से अलग रहने वालों को रिझाना क्या ? हे दयामय ! मेरी रक्षा कीजिये। मति तथा गति की प्रेरिका आप ही की अद्भुत शक्ति मुझे नचाती रहती है। हे प्रभु ! मेरी रक्षा कीजिये।"

गूढ़ वार्तालाप को कोई नहीं समझ सका। पण्डित के पांडित्य का गुमान चला गया। वे हाथ जोड़कर जगद्गुरुश्री के सन्मुख खड़े रहे।

स्वामीजी ने कहा, "जो हमारी शरण पुकारता है, उसे हम अवश्य स्वीकार करते हैं। परन्तु तूने एकबारगी तीन रूप धारण करके जो विलासिता फैलायी है, उसके प्रभाव से ज्ञानी, ध्यानी तथा निर्वाणी भी सुपथ से विचलित हो जाते हैं।"

यह सुनते ही झीटाजी की विद्याजनित अहंकारी बुद्धि चूपन्ना तिरोधान हो गयी। ज्ञानी पण्डित अज्ञान रूपी अन्धकार से बाहर हो गये तथा अपने स्वरूप में स्थित हो गये।

सत्मार्ग पर लाने वाले गुरुदेव को बारम्बार प्रणाम करते हुए उनके नेत्र अश्रुपूरित हो गये। जगद्गुरु से परमार्थ की दीक्षा के लिए प्रार्थना की जो करुणा-निधान ने कृपापूर्वक स्वीकार की। कुछ समय आश्रम में रुककर झीटाजी अपने देश पुनः लौट गये।

(6)

महाराष्ट्र के पंढण जिला के नेवासे गाँव में विट्ठल पंत नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहते थे। वे स्वभाव से ही विरक्त तथा त्यागी थे। उनका मन सर्व वासनाओं से निवृत हो चुका था।

उनकी पत्नी रुक्मणी बाई भी सरल हृदया पतिव्रता स्त्री थी। धर्म का अनुसरण करने वाले पति की नित्य सेवा-पूजा करती थी।

लोग भी विप्र का बड़ा आदर करते थे। उनके सत्कार्य तथा सदाचार से वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबके लिए अनुकरणीय बने हुए थे। परन्तु वैराग्यवान विप्र को संसार त्यागकर परमार्थ प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा थी।

अपनी कोमल हृदया पत्नी की सम्मति लेने का उनमें साहस नहीं था अतः एक बार बिना कुछ कहे ही वे गृह त्याग कर निकल गये।

परिभ्रमण करते हुए वे काशी पहुँचे। स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी की ख्याति सुनकर वे आश्रम पर आये। कुछ दिन सत्संग लाभ लिया। तदनन्तर उन्होंने स्वामीजी से ब्रह्म दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

जगद्गुरुश्री ने अपत्य के श्राप द्वारा अवतरित जनकजी के अंश को पहचान लिया। विप्र विट्ठल को सर्व प्रकार से सत्पात्र तथा वैराग्यवान जानकर आचार्य प्रवर ने उन्हें पंचसंस्कार पूर्वक विरक्त दीक्षा प्रदान की। विप्र का संन्यासी नाम 'भावानन्द' रखा गया।

भावानन्दजी सक्षम सद्गुरु की शरण प्राप्त कर एकान्त में निष्ठापूर्वक भजन-साधन करते हुए कालक्षेप करते रहे। तप करने श्रीमठ छोड़कर वे गुरुदेव के आदेश से गढ़मुक्तेश्वर जाकर बसे। उनकी हठ वृत्ति तथा योग युक्त आभा से आकर्षित होकर अनेक जिज्ञासु, ज्ञान-पिपासा के सन्तोषार्थ उनके पास आने लगे। भावानन्दजी भी अपनी भावपूर्ण ज्ञानधारा से सबको आप्लावित करते रहे। उनके प्रबल वैराग्य तथा प्रखर ज्ञान से प्रभावित होकर उनके अनेक शिष्य भी हो गये। शिक्षा दशकम्, भावनात्रयम् आदि ग्रन्थों की रचना भी हुई।

कई वर्ष व्यतीत हो गये। इधर विट्ठल पंत की स्त्री अपने पति को ढूंढती हुई सर्वत्र घूमने लगी। घूमते-घूमते वह काशी पहुंची।

अनेक धर्मस्थान, मन्दिरों, मठों एवं साधु स्थानों को ढूंढ़ती हुई वह श्रीमठ में पहुँची। यहाँ के चमत्कारिक स्वामीजी अवश्य उसके पति को ढूंढने में उसकी सहायता करेंगे ऐसा उसे विश्वास था।

प्रातःकालीन सत्संग की समाप्ति पर अन्य स्त्रियों के साथ वह स्वामीजी के चरण स्पर्श करने गयी। स्वामीजी के मुख से सहज ही निकल गया, "पुत्रवती भव!"

उस स्त्री की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। इस पर साथ वाली स्त्रियों ने सर्व वृत्तान्त निवेदन किया। अन्तर्यामी स्वामीजी अपने मुख से निकले शब्दों में विधि का विधान जानने को उत्सुक हुए।

उन्हें ज्ञात हुआ कि स्वयं उनका शिष्य ही उस स्त्री का पति था। स्त्री को आश्रम में रोककर उन्होंने अपने प्रिय शिष्य भावानन्दजी को सन्देश देकर बुलाया।

भावानन्दजी ने पुनः गृहस्थ न बनने का अपना दृढ़ संकल्प बताया, क्योंकि वे 'आरूढ़ पतित' बनना नहीं चाहते थे। सद्गुरु ने शिष्य को समझाया कि वह अपनी वासनाओं से पतित होकर गृहस्थ नहीं बन रहे हैं, वे तो सद्गुरु की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। भविष्य में भारतीय संस्कृति को महत्वपूर्ण योगदान देने वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिव्य संतति की बात भी उनको बतायी। बहुत समझा-बुझाकर भावानन्दजी को उनकी पत्नी के साथ पुनः घर भेज दिया।

अनिच्छा होने पर भी गुरु आज्ञा शिरोधार्य करके वे पुनः गृहस्थ बने। लोक-निन्दा का तथा तिरस्कार का सामना करते हुए उन्होंने चार सन्तानों को जन्म दिया। भारतवर्ष की संस्कृति को महान योगदान देने वाले सोपानदेव, ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ तथा मुक्ताबाई जैसे दिव्य मानव रत्न उनको निमित्त बनाकर भारत-वर्ष को मिलने का ही विधि का विधान था।

(7)

सायंकाल समाप्त हो चुका था। आकाश में तारे उदय होकर अपना अस्तित्व दिखाने की चेष्टा कर रहे थे। ठण्डी हवा के झोंके तन-मन को प्रफुल्लित कर रहे थे। आश्रमवासी सायंकालीन आरती से निवृत होकर निजकार्य में निरत हो रहे थे।

संध्या-नियम से निवृत हुए स्वामी श्री रामानन्दजी निज कुटीर में अपने शिष्यों के साथ ज्ञान चर्चा में व्यस्त थे।

उस समय आश्रम में एक कुलीन ब्राह्मण अपनी युवान पुत्री को लेकर आया। पुत्री ने नवोढा की भाँति अपना मुख आँचल में अन्तर्हित कर रखा था। अत्यन्त संकोच सहित वह विप्र स्वामीजी की कुटीर के निकट आये तथा श्री अनन्तानन्दजी से स्वामीजी के दर्शनार्थ प्रार्थना करने लगे।

जगद्गुरुश्री की आज्ञा लेकर श्री अनन्तानन्दजी ने उन्हें स्वामीजी के निकट भेजा। विप्र एवं विप्रकन्या ने स्वामीजी को प्रणाम किया तथा विप्र ने अपनी कन्या के मुख से आँचल हटा दिया। लोगों ने आश्चर्यजनक आघात सहित देखा कि सर्वांग सुन्दर उस युवती का मुख बकरी जैसा था। शालीनता एवं संकोचवश वह पृथ्वी में गढ़ी जा रही थी।

विप्र ने नेत्रों से अश्रु बहाते हुए कहा, "हे भगवन्! मेरी पुत्री अत्यन्त दुःखी है। बकरी जैसे मुख के कारण उसका विवाह भी नहीं हो पाता। हम सबने बहुत उपचार किये किन्तु हमारा दुःख किसी ने कम नहीं किया। अब सब कुछ हारकर आपके पास आये हैं। कृपा करके आप कुछ कीजिये।"

दोनों हाथों में अपना मुख छुपाकर कन्या रोने लगी। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गयीं। बार-बार चुप कराने पर भी उसका रोना बन्द नहीं हो रहा था। ब्राह्मण के नेत्र भी अश्रुपूरित हो गये।

दोनों के मोह निवारणार्थ आचार्यप्रवर ने दिव्य शंखनाद गुंजारित कर दिया। अमृतमय नाद की ध्वनि थिरकती हुई दोनों के कानों से हृदय तक प्रवेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर गयी। ध्वनि के प्रभाव से कन्या का रुदन बन्द हो गया। उन दोनों की चिति-शक्ति एकाग्र बनकर सुषुप्ति की गुफा में प्रवेश कर गयी।

इस अवस्था में उन्होंने देखा कि पवित्र गंगाजी की धारा बह रही है। उस धारा में जल किंशुक के झाड़ लहलहा रहे हैं, जिसमें एक बकरी का मुख फँसा हुआ है। दोनों पुनः जाग्रतावस्था में आये। परम शान्ति का अनुभव करते हुए जो देखा उस पर विचार करते हुए जिज्ञासावश स्वामीजी की ओर देखने लगे।

उनकी जिज्ञासा शान्त करने को परमाचार्य ने कहा, "हे विप्र ! यह इन्द्रमणी कन्या पूर्व जन्म में बकरी थी। संयोग से वह गंगाजी की बाढ़ में बह गयी। बहते हुए उसका मुख उस झाड़ में फँस गया तथा वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। गंगाजी के प्रभाव से उसने कन्या के रूप में जन्म लिया, किन्तु मृत्यु के समय उसका ध्यान मुख में ही लगा रहा था, जिसके कारण उसका मुख बकरी जैसा हुआ। आप उस स्थान पर जाकर झाड़ पर टंगे हुए अजा के मुख का संस्कार करके उसे धरती में गाड़ दो। तुरन्त कन्या का मुख स्त्री के समान हो जायेगा।"

दूसरे ही दिन ब्राह्मण उस स्थान पर पहुँचा तथा उस अजा के मुख को उतार-कर उसका संस्कार कर दिया। तुरन्त ही कन्या का मुख सुन्दर स्त्री-समान हो गया। अत्यन्त श्रद्धान्वित एवं प्रसन्न होते हुए पुनः वे आश्रम पर आये।

यहाँ आकर कुलीन एवं सम्पन्न उस ब्राह्मण ने आनन्दोत्सव मनाया। अनेक साधु एवं ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा से सन्मानित किया। उनकी जाति के एक सुन्दर ब्राह्मण युवक ने स्वरूपवान कन्या से विवाह करना स्वीकार कर लिया। स्वामीजी का आशीर्वाद लेकर विप्र ने दोनों का विवाह निश्चित कर दिया।

घर पहुँचकर धूमधाम से अपनी कन्या का विवाह किया तथा स्वामीजी के प्रेम व उपकार की चर्चा सर्वत्र करने लगा।

(8)

हिमालय की एक गुफा में एक योगी गोहिणनाथ कई वर्षों से अपनी समाधि में लीन थे। उनकी वृत्ति शान्त थी तथा निरन्तर प्रणव का जप हो रहा था। तपस्या करते हुए इतना समय व्यतीत हो चुका था कि उनकी आँखों की पलकें भी गाल तक लटक आयी थीं।

एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर वे नित्य नियम से निवृत होकर तपस्या के लिए बैठ गये। आज उनको बार-बार यही प्रेरणा मिली कि काशी नगरी को अपनी तपस्या के तेज से धन्य करते हुए रामांशावतार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी आश्रम बनाकर निवास कर रहे हैं। परब्रह्म परमात्मा के वे साक्षात् रूप हैं अतः उनके दर्शन करने चाहिए। इस अन्तःप्रेरणावश सूर्योदय होने पर योगी ने काशी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ओर प्रयाण किया।

अपनी योग शक्ति से आकाश मार्ग से फूलों की वर्षा करते हुए वे श्रीमठ पधारे तथा कुटीर के सामने उतरे। कपोल पर लटकी हुई पपनियों को उठाकर स्वामीजी के दर्शनार्थ कुटीर के पास ही बैठ गये। कुटीर का परदा बन्द था।

एक मुहूर्त-भर योगी गोहिणनाथ शान्त वृत्ति से तथा निष्ठा से कुटीर के द्वार पर बैठे रहे परन्तु दर्शन लाभ नहीं हुआ। समय अधिक व्यतीत होने पर वे उद्विग्न होते गये। परन्तु अपनी वृत्तियों को शान्त रखने के लिए उन्होंने प्राणायाम की युक्ति सोची। वे जानते थे कि चित्त के दो बीजक, प्राण तथा वासना हैं। एक का निरोध अन्य को भी शान्त करता है। अतः प्राणायाम से प्राण शान्त करके उद्विग्नता शान्त करने को क्रमशः वे प्रवृत्त हुए।

सर्वप्रथम उन्होंने सहित प्राणायाम किया। उसे साधकर वे सूर्यभेदन तथा उज्जायी प्राणायाम करने में प्रवृत्त हुए। तदनन्तर शीतली और भस्त्रिका प्राणायाम से तर कर भ्रमरी प्राणायाम में भ्रमण करने लगे तथा मूर्छा की दशा को प्राप्त हुए जिसमें मात्र केवली प्राणायाम का ही संचार रहता है।

इस अवस्था में एकाएक गुफा से शंखध्वनि हुई, जिसके श्रवण मात्र से योगी की ज्ञानेन्द्रियाँ स्तब्ध हो गयीं। उनके मन में एक सूक्ष्म प्रकाश-राशि का उदय हुआ जिसने उनका मोहान्धकार दूर कर दिया।

तदनन्तर जगद्गुरु ने कुटीर का परदा खोल दिया। योगी उठकर स्वामीजी के श्रीचरणों में जा गिरे। स्वामीजी ने प्रसन्नतापूर्वक उनका अभिवादन किया। तदनन्तर वे सस्नेह बोले, "हे योगीराज ! पंचधारणा एवं सांभवी मुद्राओं का अभ्यासी जालन्धर बंध की अपेक्षा नहीं करता क्योंकि उसकी आवश्यकता ही नहीं है। और इतने प्रदर्शन की भी क्या आवश्यकता थी ?"

योगी ने सविनय कहा, "हे जगद्गुरु ! जब मैं आश्रम पर आया तथा दर्शन में विलम्ब देखा तो इस विद्या में अपने को बालक समझकर गुरु के समक्ष पुराना पाठ सुनाना ही उचित समझा और किया। जिससे आगे का पाठ मिले।"

निराभिमानजनित उत्तर ने स्वामीजी को वशीभूत एवं उपदेश के लिए प्रेरित कर दिया। प्रसन्न चित्त से मधुर मोहक स्मित सहित वे बोले :

"हे योगीराज ! आपकी विवेकयुक्त वाणी से हम प्रसन्न हैं। अब आगे का पाठ सुनो। कृत्रिम साधन द्वारा प्राप्त इष्ट वस्तु सदैव उन्हीं साधनों के अधीन रहती है। परन्तु अगर परमात्मा की प्राप्ति प्रेम द्वारा हो जाय तो वह स्थायी निरपेक्ष तथा स्वाभाविक हो जाती है। वही प्रेमयोग भक्तियोग आपको पात्र जानकर प्रदान करते हैं।

हे मुनिवर ! हमारा तो सुनिश्चित मत है कि श्रेष्ठतम योग प्रेमयोग, भक्तियोग अथवा शरणागति (प्रपत्ति) योग ही है। परमात्मा स्वयं प्रेमस्वरूप हैं अथवा प्रेम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही परमात्मा है। प्रेम मूर्ति परमात्मा ही हमारे परम सुहृद हैं। उनके प्रेम में जो आनन्द है वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

जब जीव एक क्षण के लिए भी अपने प्रेमास्पद में डूब जाता है तो तीनों लोकों से निराला दिव्य आनन्द पा लेता है। प्रेमस्वरूप परमात्मा की अनेक अभिन्न शक्तियाँ हैं—क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति, चितिशक्ति आदि-अदि। जब परमात्मा के प्रेम साम्राज्य में प्रवेश मिलता है तब वहाँ ज्ञान, कर्म, मुक्ति दीनहीन अवस्था में पड़े हुए नजर आते हैं। परमात्मा ही उनके रहस्यों को स्वयम् उद्घाटित करते हैं। हम तो पूर्ण प्रेम में ही आत्मा की स्वाधीन प्रकृति को देखते हैं।

प्रेम में सीमित तथा असीम एकाकार हो जाते हैं। प्रेम एक साथ गति भी है, विराम भी। जीवन की सब विरोधी शक्तियाँ स्वयं को मिटाकर प्रेम में एक हो जाती हैं। सृष्टि के इस आश्चर्यजनक प्रेमोत्सव में, आत्मदान के इस ईश्वरीय महायज्ञ में प्रेमी निरन्तर आत्माहुति देकर अधिकतर प्रेम प्राप्त करता रहता है। प्रेम मोक्ष की भी चरम स्थिति है तथा बन्धन की भी।

सृष्टि में असीम परमात्मा ने प्रेमवश ही स्वयं को बाँध रखा है। अतः परमात्मा की स्थायी, निरपेक्ष प्राप्ति प्रेमयोग से ही सम्भव है।

परमात्मा के प्रति प्रेम करने के लिए उनकी लीला-नाम-रूप का चिन्तन-मनन भाव की दृढ़ता प्रदान करता है। हे महाराज! प्रेममन्त्र आँखों द्वारा हृदय में प्रविष्ट होता है। अपनी पलकों को उठाइये।"

योगी गोहिणनाथ ने वैसा ही किया। स्वामीजी की तेजस्वी आँखों में ऐसा तेज चमक रहा था कि पलक उठाते ही योगी 'प्रेमयोगी' बन गये तथा तुरीयातीत दशा को प्राप्त हो गये। योगी परमानन्द में निमग्न हो गये।

कुछ समय श्रीमठ में सुखपूर्वक निवास करके पुनः अपनी गुफा में जाने के लिए विदा हो गये। जाते समय अपनी साधना का तथा अपने जीवन का सन्तोषप्रद फल—ईश्वर दर्शन का, परमात्म मिलन का अवर्णनीय आनन्द उनके मुख पर झलक रहा था।

(9)

दक्षिण भारत से सत्यमूर्ति नामक एक सर्वशास्त्रज्ञ वेदान्ताचार्य एक बार आश्रम पर आये। वे विद्वान ज्ञानसागर तथा उपनिषदों को मंथन करने में मन्दार पर्वत के समान थे। स्वभाव से ही शीतल तथा गुणग्राही पंडित की ज्ञान-क्षुधा कभी तृप्त नहीं होती थी।

जगदगुरु श्री रामानन्दाचार्य का बहुत बड़ा नाम सुनकर पीयूष-पान के लिए तृषित चकोर की तरह परम आचार्य के दर्शनार्थ यहाँ पधारे। तीन दिन प्रयत्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने के बाद चौथे दिन उनकी दर्शनाभिलाषा पूर्ण हुई।

करुणाजनक स्वर में सामवेद का गान करने पर आचार्यप्रवर ने परदा खोलकर दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया। पंडित स्वामीजी का दिव्य अद्भुत स्वरूप देखते ही रहे। सहज ही उनका सिर स्वामीजी के श्रीचरणों में झुक गया। आँखों से अश्रुधारा बह निकली तथा श्रद्धा भरे स्वर में बोले :

"हे ज्ञान-सागर ! आपने दर्शन देकर मुझे कृतकृत्य कर दिया। अब आज्ञा हो तो कुछ शंकाओं का समाधान करना चाहता हूँ।"

स्वामीजी ने त्रिभुवन मोहक मन्द हास्य सहित उन्हें स्वीकृति दी, अतः वे बोले, "हे जगद्गुरु ! श्रुति तथा वेदान्त के कुछ वाक्यों को बहुत चिन्तन-मनन करने पर भी मैं नहीं समझ पाया हूँ। श्रुति का वाक्य है, 'उसने प्रपंच को रचकर उसमें प्रवेश किया और सत् एवं त्वक हो गया।' इसका भाव जैसे-जैसे चिन्तन करता हूँ वैसे-वैसे बुद्धि संकुचित और कुंठित होती जाती है। वेदान्त कहते हैं : 'शरीर का लक्षण तो नियामत्व, धारयत्व और शोषत्व है तथा शरीरी का लक्षण नियामकत्व, धारकत्व तथा शोषकत्व है !' वह भी मेरी समझ में नहीं आता है। हे भगवन् ! इनको अनुभवी पुरुष ही जानते हैं। अतः आपसे जानने के लिए आया हूँ। कृपया अज्ञान का नाश करके मेरी बुद्धि को प्रकाशित कीजिये।"

अलौकिक कांति से देदीप्यमान महाप्रभु सौम्य एवं स्नेहभरी वाणी से बोले :

"हे पंडित ! किसको समझायें तथा कौन समझे ? जिस बुद्धि ने पक्ष-विपक्ष की रचना करके विपक्ष के दूषणों से स्वयं को दूषित कर लिया है, वह बुद्धि कुछ भी समझने-बूझने की क्षमता नहीं रखती। अतः अपनी प्रिय बुद्धि का तथा अपने पूर्वाग्रहों का मोह छोड़कर श्रीराम नाम की रटन कीजिये।

हे वेदान्ताचार्य ! शल्य चिकित्सा के विषय में तो जानते हो न ? दूषित अंश को निकाल देने से शेष भाग की रक्षा ही शल्य चिकित्सा का मर्म है। दूषित बुद्धि का दोष श्रीराम नाम से ही निर्मल हो जायेगा। घबराइये नहीं तथा धैर्य धारण कीजिये।"

कहते हुए जगद्गुरुश्री ने दिव्य शंखनाद कर दिया। वह नाद सुनकर परमज्ञानी पृथ्वी पर लोटने लगे। उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। मुख से उपदिष्ट भगवन्नाम श्रीराम-श्रीराम की आवृत्ति होने लगी। कुछ समय इसी भावदशा में रहे तदनन्तर वे निश्चेष्ट हो गये। श्री अनन्तानन्दजी द्वारा जल सिंचन करने पर उन्हें चेतना आयी तथा उठकर आँखें मलते हुए इस प्रकार बैठ गये जैसे स्वप्न से जागे हों।

यतिराज ने जब देखा कि ज्ञानी पंडित पूर्णतः निर्मल मति हो चुके हैं, तब उनकी शंकाओं का समाधान करते हुए बोले :

"हे वेदान्ताचार्य ! ब्रह्म निर्गुण, सगुण तथा दोनों से परे भी है। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिगुणात्मक प्रकृति से भी परे है। वास्तव में ब्रह्म मन-वाणी-बुद्धि का विषय ही नहीं है। परन्तु भक्तों की भक्ति तथा भावना के प्रभाव के वश होकर कल्याण आदि दिव्य गुणों से निर्गुण निराकार ब्रह्म ही सगुण साकार स्वरूप धारण करता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी यही कहा है:

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

अर्थात् अनन्य भक्ति से परब्रह्म परमात्मा देखने, प्रवेश करने तथा तत्व से जानने के योग्य बनते हैं।

'निखिल हेय प्रत्यनीक कल्याण गुण गुणाकर।'

अनादि काल से इस सृष्टि का जो विकास और ह्रास होता रहा है तथा आगे भी जो होगा वह सब भगवत् लीला विलास है। उसको देखकर उसकी सुन्दरता एवं मधुरता का रसास्वादन लेना ही भागवतों की महत्ता है।

हे वत्स! परब्रह्म परमात्मा श्रीराम ही सृष्टि के मूल में हैं तथा वे ही सर्वत्र परिपूर्ण रूप से विराजमान हैं। उनके आधिपत्य में शेषी भगवान, लक्ष्मीजी तथा फणीश प्रतिष्ठित हैं। कमलनाल ब्रह्माजी की उत्पत्ति तदनन्तर ही हुई। चरणकमल की सेवा में तत्पर लक्ष्मीजी तथा आत्मसमर्पण करते हुए शेषजी सृष्टि को विमल भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। शेषजी के हृदय में ही भगवान शेषी विराजमान हैं।

चिद् शरीर है तथा चिदात्मा शरीरी है। चिद् में चिदात्मा का प्रकाश है। लक्ष्मीजी महामाया हैं, वह अचिद् हैं। अचिद् शरीर के शुद्ध सत्व में ही परमात्मा शरीरी बनकर उसमें रमण कर रहे हैं। इस प्रकार सगुण ब्रह्म ही कृपा करके अपने निर्गुण स्वरूप तथा उससे भी परे जो स्वरूप है उसका रहस्य अपने भक्तों को बता देते हैं। प्रिय पंडित! उसको जानने का दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं है।

चतुर्व्यूह का असली भेद भगवान ही जानते हैं। जीव अणु है तथा गुणों के वैषम्य से घट-घट में अलग-अलग भासित होता है। परमात्मा को भी श्रुति में अणु से अणु तथा महान से महान कहा गया है:

'अणोरण्यणीयान् महद्भ्यो महीयान्।'

तदुपरांत राग-द्वेष चिन्तन की प्रतीती से जीव बहु होते हुए भी एक तथा व्यापक भासमान होता है।

हे सत्यमूर्ति! मानव शरीर सहित दृष्टिगोचर समस्त सृष्टि प्रकृति का ही विलास है। जीवात्मा, प्रज्ञात्मा तथा परमात्मा—ये तीन ही पुरुष हैं। जीवात्मा चिदाभास है, प्रज्ञात्मा चिन्मय है तथा परमात्मा चिदानन्द है। जीवात्मा गुणों के वैषम्य से भिन्न है परन्तु उसका शुद्ध स्वरूप प्रज्ञात्मा, परमात्मा से अभिन्न है। प्रतिदिन सुषुप्ति में जीवात्मा का प्रज्ञात्मा से मिलन होता है परन्तु उसे कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानता नहीं है।

हे आत्म जिज्ञासु ! परमात्मा सत्-चिद्-आनन्द स्वरूप है। सत् भाव का जिस शक्ति में प्रकाश होता है उस कार्य शक्ति को 'संधिनी' कहते हैं। चिद् भाव का जिस शक्ति में प्रकाश होता है वह ज्ञान शक्ति है जिसे 'संवति' कहते हैं तथा आनन्द भाव का प्रकाश जिसमें होता है वह इच्छाशक्ति है जिसे 'आह्लादिनी' कहते हैं।

वेदान्त ज्ञान का भंडार है। परन्तु उसमें न्यायशास्त्र का अंश भ्रमजाल है। अतः न्याय का अंश छाँटकर शुद्ध वेदान्त के मनन से ही ज्ञान की उपलब्धि होती है। जब वेदान्त का चिन्तन निर्मल एवं शुद्ध मन तथा परमार्थ की इच्छा से होता है तभी उसको मर्म हृदयंगम होते हैं।"

वेदान्ताचार्य स्तब्ध बनकर सुनते रहे। अन्तःकरण को शुद्ध करने षड्रिपु काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर पर विजय प्राप्त करने का उन्होंने निश्चय कर लिया। अपने ज्ञान का उनका अभिमान नष्ट हो गया। गलिताभिमानी पंडित करबद्ध होकर श्रद्धायुक्त वाणी से बोले :

"हे महाराज ! आज मैंने जाना कि मैं कैसा अल्पज्ञ हूँ। जिस प्रकार ऊँट किसी पर्वत को नहीं देखता तब तक समझता है कि मुझसे बड़ा कोई नहीं, ठीक उसी प्रकार आज तक मैं समझता रहा हूँ। मुझसे बड़ा कोई नहीं, ठीक उसी प्रकार आज तक मैं समझता रहा हूँ। मुझे क्षमा कीजिये।

हे दयालु ! कृपया मुझे उस देश में ले चलिये जहाँ उभय लिंगी ब्रह्म विश्वानुराग एवं विश्वतिग दोनों से परे भासता है, क्योंकि बिना इसके केवल युक्ति दृष्टांत आदि से मुझ अल्पज्ञ को उसका बोध होना सम्भव नहीं है। उसका एक पाद प्रपंच के भीतर है इसको मैं जान गया हूँ परन्तु तीन पाद जो प्रपंच से परे हैं उन्हें मैं नहीं जान पाया और न ही इसके लिए समर्थ हूँ। हे ज्ञानराशि ! सोचते-सोचते हार गया हूँ परन्तु नपुंसक और पुल्लिग दोनों उसी ब्रह्म के विभाव होने की बात से मैं बहुत हैरान हूँ।"

पंडित सत्यमूर्ति की निराभिमानजनित पात्रता पर प्रसन्न होकर आचार्य सम्राट ने कहा :

"हे पंडित ! केनोपनिषद कहता है 'यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थं ब्रह्मणो रूपं।' ब्रह्म के स्वरूप को जानने वालों को अल्पज्ञता का अनुभव स्वतः होता है। हे वत्स ! ब्रह्म के दो विभाव हैं। नपुंसक ब्रह्म निर्गुणत्व प्रकट करता है, और पुल्लिग ब्रह्म सगुणत्व प्रकट करता है। श्रुतियाँ सदैव यही उपदेश देती हैं कि जीव का इष्ट सगुण ब्रह्म ही है। निर्गुण मात्र बोध के लिए है। परमपद को प्राप्त जीव ही परमात्मा के अनुग्रह से उभयलिंगी ब्रह्म तथा उससे परे जो विभु हैं उन्हें पहचान पाता है। तभी उसे ज्ञान होता है कि दिव्य चक्षु से जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सगुण प्रतीत होता है वह सगुण नहीं है तथा जो अन्तर्यामी होने से निर्गुण भासमान होता है वह निर्गुण नहीं है। यही परम ज्ञान है, यही मोह-फांस को तोड़ने वाली भक्ति है।"

कहते हुए जगद्गुरुश्री ने पंडित पर जल सिंचन किया तथा दिव्य शंखध्वनि गुंजारित की। वेदान्ताचार्य उसे सुनते ही समाधिस्थ हो गये। मात्र एक मुहूर्त की समाधि में उन्हें सहस्र वर्षों के कल्पनातीत दृश्य दृष्टिगोचर हुए। समाधि में उन्होंने शिवरूप दर्शन के भीतर व्यापक रूप से उनकी रमण क्रीड़ा देखी। ब्रह्मादिक देव व्यूह तथा मुनि समूह से सेवित जगदम्बा जगत्जननी श्री सीताजी सहित परब्रह्म परमात्मा श्री रामजी को भी देखा। पारलौकिक दृश्य देखते ही उनका मन समस्त पूर्व संस्कारों से मुक्त हो गया। स्वस्वरूप को प्राप्त होते ही वे करुणा शक्ति के सहारे जी उठे। जाग्रत होकर अश्रुवारि से स्वामीजी के पाद-प्रक्षालन करते रहे। महामुनि की महत्ता का अब उनको सही अनुभव हुआ।

परम आचार्य से उन्होंने श्री वैष्णवी दीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की जो कृपापूर्वक स्वीकार की गयी। कुछ दिन आश्रम में रुककर गुरुसेवा तथा सत्संग का लाभ लेकर सत्यमूर्ति पुनः अपने देश लौट गये। वहाँ वे प्रसिद्ध श्रीराम भक्त हुए तथा वहाँ उनकी शिष्य-परम्परा भी चली।

(10)

सिन्धु नदी के तट पर पवाया नामक गाँव में एक विप्र श्री सांबमूर्ति तथा उनकी पत्नी श्री भामादेवी निवास करते थे। धर्मप्रेमी दम्पति का लोग अत्यन्त आदर करते थे। चैत्र कृष्ण एकादशी चन्द्रवार वृषलग्न में विप्र दम्पति को एक दिव्य पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। धार्मिक माता-पिता की छत्रछाया में पुत्र को बाल्यावस्था से ही धर्मप्रेम प्राप्त हुआ।

एक बार ग्रामवासियों ने मिलकर यात्रा करने का निश्चय किया। विप्र सांबमूर्ति भी निज परिवार सहित यात्रा हेतु संघ में सम्मिलित हो गये। सर्वत्र यात्रा करते हुए संघ अब काशी जाने को तैयार हुआ। भाग्यवशात् मार्ग में ही विप्र एवं विप्रपत्नी का देहान्त हो गया। पुत्र यद्यपि कुमार अवस्था में ही था, माता-पिता के संस्कार सिंचन से बहुत धार्मिक था। माता-पिता की मृत्यु को उसने परमात्मा की प्रेरणा समझ शिरोधार्य कर लिया।

काशी पहुँचने पर ग्रामवासियों ने मिलकर श्राद्ध कर्म किया। तदनन्तर जब संघ पुनः आगे बढ़ने को तैयार हुआ तो कुमार ने सर्व सज्जनों से विदाई लेकर काशी में ही बसने का तथा धर्मजिज्ञासा पूर्ण करने का निश्चय कर लिया।

तदनन्तर एक विप्र मंडली में सम्मिलित होकर गंगाघाट पर ही वह अध्ययन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता हुआ निवास करने लगा।

कुछ काल व्यतीत हो गया। एक बार कुमार गंगाजी में स्नान करने गया। उस समय मनोविकार से एक सुन्दरी बार-बार तरुण को आकर्षित करने लगी। घबड़ाकर उसने भगवान विश्वनाथ की शरण पुकारी। तब उसे अलौकिक अनुभूति हुई।

उसने देखा कि एक शुभ्रवस्त्रधारी अमित प्रतिभासम्पन्न महात्मा वहाँ प्रकट हो गये। पुनीत तेज से आलोकित जटाजूटधारी महात्मा ने कुमार की रक्षा की तथा अनन्त करुणार्णव दृगों से प्रेमधारा में आप्लावित करते हुए युवान के सिर पर वरद हस्त रखा और तुरन्त अदृश्य हो गये। इस दृश्य से कुमार अत्यन्त प्रभावित हुआ। बारम्बार उसका चित्त उस अलौकिक महात्मा की छविविग्रह में डूबने लगा।

कुमार ने इस विषय में अपने साथियों से परामर्श किया। साथियों ने बताया कि वे महात्मा अवश्य श्रीमठ के अधिष्ठाता स्वामी रामानन्दजी ही हो सकते हैं। मन को पुनः-पुनः आकर्षित करते उन महिमामय महात्मा के दर्शनार्थ कुमार श्रीमठ गये।

श्रीमठ पहुँचते ही कुमार की सर्व व्यग्रता तथा अशांति विलुप्त हो गयी। सद्-भाग्य से स्वामीजी की गुफा का परदा खुला ही था। अलौकिक दर्शन से कुमार धन्य-धन्य हो गये। सम्पूर्ण शरीर मूर्ति की भाँति स्थिर हो गया। पलकों तक में गति नहीं रही। शरीर जड़त्व को प्राप्त हो गया तथा अन्तर आनन्द के सागर में डूब गया। कुछ क्षणों के पश्चात् जब सुधि आयी तो आत्मविस्मृतिपूर्वक स्वामीजी के श्रीचरणों में प्रणत हो गये।

जगद्गुरुश्री ने देखते ही कुमार को व्यासनन्दन मुनि शुक्रदेवजी के अंश रूप में पहचान लिया। कुमार आर्तभाव से अश्रु बहाते हुए बोले, "हे स्वामीजी ! मुझ अनाथ को अपनी शरण में ले लीजिये। मुझ पर कृपा कीजिये।"

श्री आचार्यपाद ने प्रसन्नतापूर्वक कुमार को स्वीकार किया। दिव्य शंखनाद उन्होंने गुंजारित कर दिया जिसे सुनते ही कुमार की अवस्था दिव्य हो गयी। स्वामीजी ने कुमार को आश्रम में रखने की श्री अनन्तानन्दजी को आज्ञा प्रदान की।

शुभ दिन देखकर पंच संस्कारपूर्वक श्री वैष्णवी विरक्त दीक्षा से कुमार को अलंकृत किया गया। उनका दीक्षान्तर नाम 'गालवानन्द' रखा गया। अपनी श्रद्धा-निष्ठा से गालवानन्दजी स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में माने गये।

कुछ वर्ष गुरु सेवा में व्यतीत करने के उपरांत श्री सद्गुरुदेव ने गालवानन्दजी को कश्मीर जाकर धर्मग्लानि दूर करके वहाँ लोकसेवा करने का आदेश दिया। गालवानन्दजी ने गुरुआज्ञा को चरितार्थ किया। दुष्ट विधर्मियों के अत्याचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से जो धार्मिक ग्रन्थरत्न बच गये थे, उनको दिव्य प्रेरणा से अनन्तनाग की गिरि-कन्दराओं में सुरक्षित कर दिया। अनेक ग्रंथों की रचना की तथा अधर्म पीड़ित जनता की हर प्रकार से सेवा-सहायता की।

(11)

अनादिकाल से हिमालय को भारतीय संस्कृति का तथा आध्यात्मिकता का उद्गम स्थान माना गया है। अनेक नामी-अनामी ऋषि-महर्षि गिरि-कन्दराओं में निवास करके साधना में यहाँ नित्य रत रहते आये हैं। प्राचीन-अर्वाचीन अनेक महात्माओं की आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रभाव साधकों एवं योगियों पर सदैव होता रहा है। यहाँ अनेक पौराणिक तीर्थस्थान भी विद्यमान हैं अतः हिमालय यात्रा का महत्व अत्यन्त श्रमकारक होने पर भी विशेष माना गया है।

गुरुणां गुरु जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने लोक-संग्रह हेतु तथा चौथे धाम की अधूरी यात्रा पूर्ण करने के लिए निश्चय किया। इस कठिन यात्रा हेतु कतिपय सक्षम शिष्यों का वरण किया गया।

शुभ मुहूर्त देखकर शंख की मंगल ध्वनि के साथ यात्रा की प्रस्तुति हुई। जगद्गुरुश्री की अनुपस्थिति से वियोगजनित दुःखों का स्मरण करते हुए काशी-वासी पुनः उद्विग्न हो गये तथा भारी हृदय से जमात को विदा किया।

जमात काशी से उत्तर की ओर प्रयाण कर गयी। सर्वत्र जगद्गुरुश्री का भव्य स्वागत हुआ। उनके अलौकिक दर्शन से अभिभूत जनता ने आग्रहपूर्वक जमात को रोककर सत्संग लाभ लिया। अनेक धर्म पतितों का उद्धार किया गया। साम्प्रदायिक संकीर्णताओं को दूर करने के लिए अनेक धर्माचार्यों तथा विद्वानों को ज्ञान एवं प्रेम से वश करते हुए अनेक जटिल क्रियाकांडों को छोड़ने का विशेष अनुरोध किया गया। देशकाल की परिस्थिति के अनुरूप देश की जनता को अत्यन्त सरल भक्ति मार्ग का आलम्बन देकर मानसिक स्थिरता एवं सुदृढ़ता प्रदान करने का उन्होंने पंडितों से अनुरोध किया। जमात हरिद्वार की ओर बढ़ती रही।

दिल्ली के धर्मान्ध सुलतान फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु के पश्चात् सबल शासक के अभाव में दिल्ली इस समय एक छोटा-सा राज्य बन गया था। अनेक हिन्दू एवं मुस्लिम सरदार स्वतन्त्र बन गये थे। अनेक हिन्दू राजाओं ने जगद्-गुरुश्री का भावभीना स्वागत किया। उन सबसे धर्म के रक्षणार्थ एक होकर विधर्मियों का सामना करने का स्वामीजी ने अनुरोध किया। अनेक नगर-ग्राम में स्थानीय श्रीमन्त एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने काशी के चमत्कारी स्वामीजी का अद्भुत स्वागत करके सत्संग लाभ लिया। अनेक स्थानों पर यवनों ने अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कपटलीलाओं से जमात में विघ्न करना चाहा, परन्तु आचार्यश्री के तेज के सामने वे निष्फल रहे।

इस प्रकार जमात हरिद्वार पहुँच गयी। यहाँ की धर्मप्रेमी प्रजा ने जगद्गुरुश्री का भव्य स्वागत किया। माँ गंगाजी के पवित्र तट पर जमात ने मुकाम किया। पवित्र ब्रह्मकुंड में स्नानादि से निवृत्त होकर कनखल में दक्ष प्रजापति के मन्दिर में माता पार्वती के देहत्याग के कुंड का दर्शन किया। कुछ समय हरिद्वार में रुककर धार्मिक लोगों को सत्संग लाभ दिया। तदनन्तर जमात ऋषिकेश गयी।

ऋषिकेश में भी स्वामीजी का स्वागत हुआ। वहाँ प्राचीन श्री भरत मन्दिर में दर्शनादि करके जमात मन्दिर के पूर्व में गंगाजी के किनारे रुकी। चन्द्रभागा एवं त्रिवेणी के मध्य पवित्र इस क्षेत्र को मायाकुंड के नाम से पहचाना जाता है। मायाकुंड की महिमा का वर्णन करते हुए महाप्रभु ने शिष्यों एवं भक्तों को बताया कि इस क्षेत्र में रहकर साधन-भजन करने वाले परमात्मा की प्रबल माया से सदैव मुक्त रहकर आध्यात्मिक उन्नति सरलता से कर सकते हैं, क्योंकि यह क्षेत्र परमात्मा की परम कृपा से संरक्षित है। काशी के अलौकिक स्वामीजी के दर्शनार्थ मायाकुंड में नित्य भक्तजनों की भीड़ जमने लगी। अनेक साधु-सन्तों ने आकर दर्शन लाभ लेकर अपनी शंकाओं का समाधान किया। अनेक प्राचीन स्थानों का दर्शन किया गया। मुनि की रेती, ध्रुव की तपस्थली, लक्ष्मण की तपस्थली इत्यादि का दर्शन हुआ। लोगों के अत्यन्त आग्रह पर भी अब स्वामीजी को ऋषिकेश छोड़ आगे बढ़ने का निर्णय लेना पड़ा।

अब हिमालय का पर्वतीय मार्ग शुरू हो गया। सघन उत्तुंग वृक्षराशि, यत्रतत्र धरित्रि पर आच्छादित वल्लरियाँ, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई गिरिशृंखला तथा कहीं-कहीं ग्राम्य विस्तार से गुजरती जमात आगे बढ़ती रही। जहाँ तक दृष्टि जाय हिमालय की श्रेणियाँ सुशोभित हो रही थीं। कभी उत्तुंग गिरिशिखर तो कभी गिरिकन्दरा; कभी ग्राम्य प्रदेश तो कहीं सूर्यकिरण भी न पहुँच पाये ऐसा सघन जंगल, अत्यन्त श्रमकारक मार्ग था ये। ऊपर नितान्त निर्मल स्वच्छ आकाश तथा दूर-सुदूर आकाश से मिलती हुई हिमाच्छादित धवल गिरिशृंखला। पास बहती गंगाजी की गहरी धारा से निष्कासित कलकल ध्वनि। परम शांत एवं आह्लादक वातावरण था यहाँ का।

कभी-कभी गिरिकन्दराओं में निवास करने वाले महात्माओं का मिलन हो जाता था। जगद्गुरु से प्रभावित होकर वे भी सत्संग के पिपासु बन स्वामीजी के प्रेमी बन जाते थे। देहाती प्रजा भी स्वामीजी के निर्व्याज प्रेम, औदार्य, करुणा तथा सहृदयता से अभिभूत बनती रही। सत्संग का लाभ देते हुए जमात गंगाजी के किनारे-किनारे बढ़ती तथा चढ़ती रही। इस दुर्गम मार्ग पर भी स्वामीजी अपनी निजानन्दी मस्ती में बढ़ते रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरे-धीरे जमात देवप्रयाग पहुँची। माँ भागीरथी एवं अलकनन्दा के संगम पर जमात ने मुकाम किया। यहाँ के निवासियों ने तेजपूर्ण स्वामीजी का सप्रेम स्वागत किया। पवित्र पुरी में भगवान श्री रघुनाथजी के मन्दिर में दर्शन-पूजन किया गया। अनेक श्रद्धालुओं ने सत्संग लाभ लिया तथा जमात की हर प्रकार से सेवा की। यहाँ यज्ञ, जप, तप इत्यादि हुआ। यहाँ के राजा ने स्वामीजी की पुण्यस्मृति में एक शिलालेख भी लिखवाया (जो आज भी है)। कुछ दिन रुककर जमात टिहरी की ओर आगे बढ़ी। अश्रुपूरित नेत्रों से प्रेमी लोगों ने जमात को विदा किया।

टिहरी के राजा ने स्वामीजी का अद्भुत स्वागत किया। भव्य स्वागत के पश्चात् नगर में शोभायात्रा निकाली गयी। राजा के अत्यन्त आग्रह पर स्वामीजी ने श्रीराम महायज्ञ किया। कुछ दिन यहाँ की जनता को सत्संग लाभ देकर टिहरी नरेश के आग्रह से जमात रुकी, तदनन्तर यहाँ से प्रस्थान किया गया।

अब धरासू होकर जमात यमुना नदी के किनारे-किनारे बढ़ती हुई बरकोट पहुँच गयी। सर्वत्र भावुक जनता ने जमात का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। वहाँ के स्थानीय सन्तों से तत्कालीन भारत की धार्मिक परिस्थिति पर विचार-विमर्श किया गया। तदनन्तर जमात आगे बढ़ी।

अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते-करते जमात माता यमुना की अवतरण स्थली यमुनोत्री पहुँच गयी। यमुना मंया की जयनाद पुकारते हुए सब पूजनादि से निवृत्त हुए। हिमाच्छादित शिखरों के मध्य यमुनोत्री में स्थित उष्ण पानी के कुंड दिखाकर स्वामीजी ने शिष्यों को परमात्मा की सर्वसमर्थता की याद दिलायी। तदनन्तर वे पुनः नीचे उतर आये। हिमाच्छादित गिरि-शिखरों को देख स्वामीजी पुनः-पुनः निजानन्द में मग्न हो जाते थे। शिष्यों को वे कहते थे कि परमात्मा की प्रकृति से प्रेम करके ही परमात्मा के अधिक निकट पहुँच सकते हैं।

यमुनोत्री के पश्चात् जमात प्राकृतिक सौन्दर्य का पान करते हुए उत्तरकाशी पहुँची। उत्तराखंड की पवित्र पुरी काशी में भारतखंड की काशी के स्वामीजी पधारे थे। उनके आगमन पर श्रद्धालु जनता भावविभोर बन गयी। गंगाजी के तट पर केदारघाट पर जमात ने मुकाम किया। भगवान केदारेश्वर का पूजनादि करते हुए स्वामीजी ने पवित्र क्षेत्र की महिमा शिष्यों को बतायी। स्थानीय साधु-सन्तों से ज्ञानचर्चा तथा भक्तिचर्चा हुई। तत्कालीन परिस्थिति पर परामर्श भी हुआ। श्रद्धालु जनता को सत्संग लाभ देते हुए जमात आगे बढ़ी।

असह्य ठण्ड के कारण शिष्य कदाचित् व्यग्र हो जाते, किन्तु महामहिमामय स्वामीजी प्रसन्न एवं निजानन्द में मग्न बढ़ते ही रहे। धीरे-धीरे जमात गंगोत्री पहुँच गयी, जहाँ भगीरथ ने तपश्चर्या करके गंगाजी को प्रसन्न किया था। गंगाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पौराणिक मन्दिर में माता गंगाजी का पूजन-अर्चन करके जमात और आगे गयी। माँ भगीरथी के उद्गम स्थान गोमुख वे पहुँच गये, जहाँ हिमनदी की गुहाओं से माँ भगीरथी प्रत्यक्ष रूप से प्रवाहित होती हैं। पवित्र स्थान पर स्नानादि करके जमात पुनः गंगोत्री आयी।

पुनः आगे बढ़ते हुए बूढ़े केदार एवं त्रिजुगी नारायन के प्राचीन मन्दिरों में दर्शनार्थ पहुँचे। तदनन्तर मन्दाकिनी तथा सोनगंगा के संगम पर स्थित सोन-प्रयाग में स्नानादि से निवृत्त होकर श्रद्धालु लोगों को सत्संग लाभ दिया। तदनन्तर जमात गौरीकुंड पहुँची।

माता पार्वती के पवित्र गौरीकुंड में गरम जल में स्नानादि से निवृत्त होकर गौरीमन्दिर में पूजनादि हुआ। पौराणिक प्रसंगों का वर्णन करके स्वामीजी ने भक्तों को स्थान का महत्व समझाया। तदनन्तर वे भगवान केदारनाथ के दर्शनार्थ आगे बढ़े। चढ़ते-चढ़ते वे गरुड़चटी पहुँच गये। यहाँ मुकाम हुआ। प्राचीन गरुड़ शिला के नीचे बैठ स्वामीजी ध्यानावस्थित हो गये। उस समय परमात्मा के परम-निकट रहने वाले ज्ञानगुणराशि गरुड़जी प्रकट हुए। जगद्गुरुश्री का अभिवादन करके गरुड़जी ने स्वामीजी को भावी कार्यक्रम की अनेक प्रेरणाएँ दीं। दूसरे दिन जमात केदारधाम पहुँच गयी।

हिमशिखरों के मध्य स्थित इस धाम में पहुँचते ही स्वामीजी आनन्द में सराबोर हो गये। लगभग 11,000 फुट की ऊँचाई पर स्थित स्वयंभू ज्योतिर्लिंग का रुद्राभिषेक तथा सविधि पूजन-अर्चन हुआ। शिवसहस्रनामावलि से, ब्रह्मकमल से महाप्रभु द्वारा सहस्रार्चन भी किया गया। हिमालय का पवित्र वातावरण मन में वैराग्य का उद्दीपन कर सबको भक्तिरस में आप्लावित करता रहा। केदारधाम के क्षेत्रपाल भैरोंनाथजी को प्रणिपात करके जमात पुनः नीचे उतर आयी।

अनेक प्रकार के पर्वतीय कष्ट एवं असह्य ठण्ड का सामना करते हुए जमात गुप्तकाशी पहुँची। प्राचीन मन्दिरों में पूजन करके तथा श्रद्धालु भक्तों को सत्संग लाभ देते हुए जमात रुद्रप्रयाग पहुँची। सर्वत्र जमात का स्वागत हुआ। अलकनन्दा तथा मन्दाकिनी के भव्य संगम को देख आचार्यप्रवर को हर ओर हरि की, भगवान शिव और विष्णु की एकता भासित हुई। अपने शिष्य समुदाय को इस विषय में उन्होंने उद्बोधित किया।

श्रीनगर के राजा के निमन्त्रण पर जमात अब श्रीनगर पहुँची। राजा ने भव्य स्वागत-सत्कार किया। श्रीराम यज्ञ का आयोजन किया गया। तदनन्तर कर्णप्रयाग, कर्ण की तपस्थली जमात पहुँची। संगम पर आचमन करके तपस्थली पर ध्यान किया। तदनन्तर वे नन्दप्रयाग होते हुए गोपेश्वर तथा तुंगनाथ और रुद्रनाथ के दर्शनार्थ गये। वहाँ से ज्योतिर्मठ-जोषीमठ जमात पहुँची।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलकनन्दा के पवित्र तट पर मुकाम किया गया। आदिगुरु श्री शंकराचार्य की तपस्थली तथा नृसिंह मन्दिर का दर्शन-पूजन किया गया। वहाँ के पुजारी एवं मठाधीशों को स्वामीजी ने पूजन के दिव्य रहस्यों को समझाया। तत्कालीन शंकराचार्य से वैष्णव-शैव द्रोह तथा तत्कालीन भारतीय धार्मिक परिस्थिति के विषय में पर्याप्त चर्चा-विचारणा हुई। कुछ दिन धर्मप्रिय जनता को सत्संग लाभ देते हुए स्वामीजी ने चौथे धाम बद्रीनाथ की ओर प्रयाण किया।

मार्ग में अनेक प्राचीन पवित्र तीर्थों में दर्शन लाभ लेकर जमात धीरे-धीरे बद्रीनाथ धाम पहुँच गयी। यहाँ के पंडितों एवं पुजारियों ने काशी के स्वामीजी के विषय में अनेक चर्चाएँ सुनी थीं। प्रत्यक्ष दर्शन करके वे प्रसन्नता से उनके श्रीचरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणत हो गये। उनके अलौकिक दिव्य दर्शन मात्र से अभिभूत लोग स्वामीजी का जयघोष करने लगे। जमात का भावपूर्ण स्वागत किया गया। यहाँ के पवित्र गरम कुंड में स्नानादि करके भगवान बद्रीविशाल एवं बद्रीपंचानन के दर्शन एवं सविधि पूजनादि हुआ। स्वामीजी ने पूजन के रहस्य एवं स्थान का पौराणिक महत्व भक्तों को एवं प्रजा को बताया। कुछ स्थानीय सन्त-महात्माओं से ज्ञान-चर्चा भी हुई। एकादशी गुफा पर स्वामीजी ने शिष्यों को एकादशी का महत्व समझाया तदनन्तर वे व्यासगुफा पहुँचे। अनेक सन्तों से सत्संग हुआ।

यहाँ से अब जमात तीर्थपुरी, विष्णुपुरी होते हुए धीरे-धीरे गिरि शृंखलाओं को पार करते हुए मानसरोवर पहुँच गयी। पौराणिक पवित्र सरोवर के स्फटिक सुन्दर पवित्र जल में स्नानादि करके भगवान भोलेनाथ को अर्घ्य दिया गया। पुरातन मन्दिर में कैलाशपति का सविधि शास्त्रोक्त पूजन हुआ। स्थानीय लामाओं एवं मन्दिर के पुजारी ने जगद्गुरु का भव्य स्वागत किया था। जगद्-गुरुश्री ने लामाओं को तन्त्रविद्या का दुरुपयोग न करने की प्रेरणा दी। तदनन्तर असह्य ठण्ड से थरथराती हुई जमात भगवान शिवजी के नित्यधाम कैलाशगिरि के दर्शनार्थ गयी। यहाँ शिवजी नित्य हिमालयसुता माता जगदम्बा सहित विराजमान रहते हैं। प्राचीन गुफा में भगवान भोलेनाथ का सविधि पूजन-अर्चन किया गया। पवित्र कैलाश पर्वत की परिक्रमा भी की गयी।

तदनन्तर जमात नेपाल की ओर बढ़ी। उत्तुंग गिरि शिखरों को पावन करते हुए स्वामीजी काठमंडु पहुँचे। नेपाल-नरेश ने जगद्गुरु का भव्य स्वागत किया। भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन-पूजन से निवृत्त होकर राजा के आग्रह पर जमात कुछ दिन धर्मप्रेमियों को सत्संग लाभ देने वहाँ रुकी। सर्वत्र जगद्गुरुश्री की जयजयकार हुई। जमात दामोदरकुंड तथा मुक्तिनारायण के दर्शनार्थ गयी। अनेक श्रद्धालु एवं सत्संगियों की ज्ञान-पिपासा तथा सत्संग की तृषा पूर्ण करते हुए जमात गोरखपुर की ओर बढ़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय जमात ने अनेक अप्रिय बातें सुनीं। परदेशी विधर्मी तैमूर सर्वत्र हाहाकर मचाते हुए पुनः लौट गया था। सर्वत्र लोग चिन्तित थे। जगद्गुरुश्री ने सर्वत्र सबको शांति एवं हिम्मत प्रदान की।

अन्ततः जमात काशी पहुँच गयी। स्वामीजी के पुनरागमन पर काशीवासियों ने उनका भव्य स्वागत किया। बहुत समय से दर्शन के प्यासे शिष्य समुदाय ने श्रीमठ में आकर अपनी पिपासा को तृप्त किया।

धीरे-धीरे पुनः पूर्ववत् नियम-सत्संग चलने लगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8. पाखंड-खंडन

संवत् 1454 में भारतवर्ष ने एक अत्यन्त अप्रिय घटना का सामना किया। भारत की राजकीय अस्थिरता का लाभ उठाकर ईरान से तैमूर लंग भारत में आया तथा सर्वनाश करके चला गया। उसने ऐसी पाखंड लीला चलायी जो भारत ने आज तक नहीं देखी थी।

संवत् 1444 में दिल्ली के बादशाह फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् सल्तनत में सर्वत्र विद्रोह होने लगा। उसकी धर्मांधता भरी नीतियों के कारण असन्तोष फैल गया जिससे छोटे-छोटे कई राज्य अस्तित्व में आये तथा दिल्ली एक छोटा-सा राज्य बन गया। हिन्दुस्तान की इस राजकीय अस्थिरता का लाभ तैमूर ने उठाया।

संवत् 1454 में ईरान के समरकंद से तैमूर लंग भारत की अतुलित धन-सम्पत्ति को हस्तगत करने के लालच से तथा मूर्तिपूजक हिन्दुओं का धर्मांतर कराने को विशाल सैन्य लेकर आया। काबुल, कंदहार तथा अफगानिस्तान होते हुए तैमूर सिंधु नदी के किनारे आ पहुँचा। उसके सैन्य ने हिन्दुस्तान के बलूच, पंजाब, सिंध तथा कश्मीर प्रान्त में निर्दय तथा निर्मम हत्याकांड चलाया। नगरों में प्रवेश करके असंख्य हिन्दुओं की हत्या की, उनकी धन-सम्पत्ति की लूट चलायी, उन्हें बलात् मुस्लिम बनाया तथा मन्दिरों को नष्ट करके वहाँ मस्जिदें बनाकर खुतबा पढ़ाया। अनेक स्त्रियों पर अत्याचार किये, बच्चों को निर्दयता से कत्ल कर दिया। नगर छोड़ते समय सर्वत्र आग लगाकर भस्मीभूत करता गया। उसका नाम सुनकर ही लोग जंगलों में छिप जाते थे। निर्जन नगर-ग्राम को लूटकर भस्मीभूत करके पैशाचिक आनन्द वह लेता रहा। जहाँ से उसका सैन्य निकला खेतों की फसल को नष्ट कर दिया। इस प्रकार भयंकर विनाश-लीला करते हुए, कांगड़ा, जम्मू, कश्मीर, लाहौर, मुल्तान, भटनेर, पानीपत होता हुआ वह दिल्ली आ पहुँचा।

दिल्ली के निर्बल शासक ने निर्बल सामना किया परन्तु हारकर वह भाग गया। तैमूर ने अपनी प्रकृतिवश पूरे पन्द्रह दिन दिल्ली में संहार लीला की। सर्वत्र विध्वंस करते हुए विशाल भवनों, व्यापार केन्द्रों तथा मन्दिरों को लूटकर भस्मीभूत कर दिया। असंख्य पुरुषों एवं स्त्रियों की हत्या की, अग्नि जलाकर बच्चों एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्त्रियों को उसमें फेंका गया, हजारों नरमुंडों की माला बनाकर निर्जन बाजारों में लटकायीं ! अल्लाह के नाम पर अनेकों को बलात् मुस्लिम बनाया गया। इस प्रकार अल्लाह के नाम से ही सर्व प्रकार से समृद्ध दिल्ली पूर्णतः नष्ट हो गयी। अमानुषी अत्याचार करके वह पुनः समरकंद लौट गया। धर्मांध तैमूर ने यह नहीं सोचा कि अल्लाह के सच्चे बन्दे रक्तपिपासु बन हत्या करने में प्रवृत्त नहीं होते अथवा किसी की धर्मभावना को क्षति पहुँचाने अथवा उसके विनाशक नहीं बनते।

तैमूर के जाने के पश्चात् दिल्ली सम्पूर्णतः उजड़ गयी। राजकीय, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। खेत नष्ट होने से दुकाल पड़ा। शवों की दुर्गन्ध से नगर नरक समान बन गया तथा लम्बे समय तक बसने की कोई हिम्मत न कर सका। जो बसे, महामारी के भोग बन गये।

इस अत्याचार के उपरान्त भी हिन्दुओं की धर्मभावना उतनी ही उत्कृष्ट रही। अनेक अत्याचार सहे, कष्ट उठाये, भय से आतंकित होकर जहाँ स्थान मिला वहीं प्राणों की रक्षा के लिए छिप गये, परन्तु अधिकांश प्रजा ने धर्मपरिवर्तन स्वीकार नहीं किया। हिन्दू धर्म में नैष्ठिक श्रद्धा रखकर अनेक लोगों ने प्राणों की आहुति दे दी परन्तु धर्मपरिवर्तन के बदले मृत्यु को अधिक प्रिय माना।

बचे हुए तथा छिपे हुए लोग धीरे-धीरे पुनः दिल्ली में आने लगे। अपनी सम्पत्ति एवं सम्बन्धियों को नष्टप्रायः स्थिति में देख हिम्मत हार गये। परिस्थिति तथा प्रारब्ध पर अश्रु बहाते हुए जीवन व्यतीत करने लगे।

इस हत्याकांड के तुरन्त बाद काशी में एक बड़ा समारोह होने वाला था। अतः आतंकित पण्डितगण काशी पहुँचे। अन्य स्थान के, अत्याचार से त्रस्त पण्डित-गण भी काशी आ पहुँचे।

परस्पर मिलने से तथा एक ही संकट में घिरे हुए होने से उन पण्डितों में महाभाव उत्पन्न हो गया। सब मिलकर वस्तुस्थिति पर समान भाव से विचार करने लगे। उन्होने सोचा कि धर्मग्लानि दूर करने के लिए पृथ्वी ब्रह्माजी के पास जाती है तथा ब्रह्मा सर्व वृंदारक वृंद के साथ विष्णुजी की शरण में जाते हैं। अतः अत्याचार एवं धर्मग्लानि से आतंकित पृथ्वी पर रहने वाले हम सबको भी समर्थ सिद्ध महापुरुष जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की शरण में जाकर अपनी स्थिति निवेदन करनी चाहिए।

सब मिलकर एक दिन श्रीमठ पहुँचे। सद्भाग्य से उस समय कुटीर का परदा खुला था। सब अपनी कथा-व्यथा भूलकर जगद्गुरु के अमित प्रतिभाशाली मुख-मण्डल को देखते रहे। कुछ समय पश्चात् सुधि आयी तो समुचित रीति से दण्डवत् प्रणाम किया। तदनन्तर वे बोले :

"हे धर्म प्रतिपालक ! दिल्ली में तैमूर द्वारा किया गया नर-हत्याकांड तथा लखनऊ में सुलतानों द्वारा किये गये उपद्रव और अत्याचार धर्म के नाम पर हुए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म के मर्म को न समझने वाले इन धर्मांध उपद्रवकारियों को दण्ड रूप से उचित शिक्षा क्या नहीं मिलनी चाहिए ?"

एक पण्डित ने कहा, "हे दीनबन्धु ! हम सब बहुत व्यग्र हैं। हमारे घर उजड़ गये हैं। हमारी माताओं-बहनों पर दारुण अत्याचार हुए हैं, आप्तजनों की हत्या हुई है, हमारी सम्पत्ति लूटी गयी है। हमारी सहनशक्ति का अब अन्त आ गया है। हम आपकी शरण में आये हैं। हम पर कृपा कीजिये तथा दुष्टों को दण्ड दीजिये।"

भिन्न-भिन्न प्रान्त के आगतों ने अपने-अपने प्रान्त की दुर्दशा का वर्णन किया। सुनने वालों की आँखें उस करुण कथनी को सुनकर छलक उठीं।

जगद्गुरु शान्ति से सबकी कथनी सुनते रहे। उनका हृदय भी करुणा से भर आया। सबको सांत्वना देते हुए कहा :

'प्रिय प्रेमियो ! दारुण कष्टों को सहते हुए भी आप सबने स्वधर्म तथा संस्कृति के प्रति जो निष्ठा निभाई है, वह प्रशंसनीय है। क्योंकि 'स्वधर्मे निधनः श्रेयः।' धैर्य धारण करने से ही विपत्ति के बादल छँटते हैं। आप लोगों के विचारानुसार ही उचित दण्ड की व्यवस्था पहले से ही कर दी गयी है। समस्त भारत में उसका प्रभाव कुछ ही समय में व्याप्त हो जायेगा।"

स्वामीजी मौन हो गये। पण्डितगण पुनः प्रणिपात करके कुटीर से बाहर आये। बाहर निकलने पर श्री अनन्तानन्दजी आदि शिष्यों ने उन्हें बताया कि पिछले दिन ही सायंकाल आश्रमवासियों ने ऐसा धीर-गम्भीर योगिक शंखनाद सुना था, जैसा पहले कभी नहीं सुना। सद्गुरुदेव ने दिव्य योगिक शंखनाद से अपनी निग्रह शक्ति को आकाश मण्डल में प्रसारित कर दिया है, इसका परिणाम सम्पूर्ण भारत में दिखायी देगा।

कुछ ही दिनों में सबने सुना कि सर्वत्र मुसलमानों की नमाज बन्द हो गयी है। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम, सम्पूर्ण भारत में यही परिस्थिति है। पाँचों समय की नमाज जारी नहीं हो रही थी। नमाज के लिए मुल्ला जब ऊँचे स्वर से अजान देने के लिए गर्जन करते तब उनका कण्ठ ही नहीं खुलता। शेख, सैयद, मुल्ला और मौमिन सब किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। मात्र नमाज के समय ही मुल्लाओं की जबान लकवा मार जाती है। दिल्ली, लखनऊ, मालवा तथा गुजरात के सब मुल्ला, फकीर तथा मदांध बादशाहों ने कई प्रयत्न किये, नयी-नयी युक्तियाँ आजमायीं, परन्तु कोई असर नहीं हुआ। सब यही सोचते रहे कि सभी मुल्लाओं की जबान को उसी समय क्यों लकवा मार जाता है जब वे अजान देने लगते हैं !

चारों ओर से गला रुद्ध होने की ही सूचना आती रही। दिल्ली में तब तक मल्लू इकबाल ने शासन के सूत्र हस्तगत कर लिये थे। उसने प्रमुख मौलवी इबन्नूर और तकी आदि से सलाह की। कोई उपाय सोचने का फरमान किया क्योंकि मन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही-मन नमाज पढ़ने की रीति न होने से उस पर किसी की आस्था नहीं थी। नमाज कितने दिनों से बन्द थी, यह तो अल्लाह की तौहीन थी। परिस्थिति का निवारण करने को सब प्रयत्नशील हो गये।

सबको लगा कि यह अवश्य किसी सिद्ध महापुरुष की करामात है। सबको कबीरजी की आशंका थी क्योंकि वे मुस्लिम होकर हिन्दू धर्मगुरु के शिष्य बने थे। सब कबीरसा'ब को इंगित कर रहे थे क्योंकि कबीरसा'ब ने भी गुरुकृपा से कई बार लोगों की बुद्धि को सुपथ पर लाने के लिए चमत्कार किये थे। मौलवियों ने मिलकर कबीरसा'ब से मिलने तथा उन्हें खुश करने की चर्चा की।

इवन्नूर, तकी तथा अन्य मुख्य मौलवीगण राजाज्ञा से दिल्ली से शीघ्रगामी सवारी पर काशी आये। अमूल्य उपहारों के साथ जब वे कबीर साहब की कुटी पर पहुँचे, तब वे अपनी मस्ती में भजन गा रहे थे। जब कबीर साहब ने आगन्तुकों को देखा, तब उन्हें बुलाया तथा बैठाया। राजसी ठाठ देखकर आने का कारण पूछा।

मौलवियों ने बहुमूल्य उपहारों को वहाँ रखते हुए सलाम किया तथा बोले, "कबीर साहब ! इन्हें कुबूल कीजिये तथा हम पर मेहर कीजिये। कई दिनों से नमाज बन्द है और सुलतान हम पर खफा हैं। अब आप ही कुछ मदद कीजिये।"

कबीरजी ने उपहारों को नामन्जूर कर दिया तथा वे बोले, "भाइयो ! मैं कुछ भी नहीं कर सकता। पानी में आग आप लोगों ने ही लगायी है, उसे किस प्रकार ठंडा करोगे ?"

आगतों के प्रमुख ने ठंडी साँस लेकर कहा, "साँई ! जो भी हुक्म होगा, सर-आँखों पर। उसका हम पालन करेंगे। परन्तु अगर इसका इलाज नहीं हुआ तो हम सुलतान द्वारा मरवा दिये जायेंगे।"

कबीर साहब को दया आयी। कुछ सोचते हुए उन्होंने कहा, "आप सब मेरे समर्थ गुरुदेव जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के पास श्रीमठ जाइये। एकमात्र वही आपकी समस्या का समाधान कर सकते हैं।"

मौलवियों ने कबीर साहब से भी साथ चलने के लिए आग्रह किया। अधिक निवेदन करने पर कबीर साहब ने अपना अधूरा कार्य पूर्ण करने तक उन सबको वहाँ बैठाया। कार्य करते-करते कबीर साहब के मुख से निकला :

"न जाने तेरा साहब कैसा है ?
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या तेरा साहिब बहिरा है ?
चींटी के पाँव नेपुर बाजे, वो भी साहब सुनता है।
ऊँचा नीचा महल बनाया, गहरी नींव जमाता है।
चलने को मनसूबा नाही, रहने को मन करता है।
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ि, गाड़ि भूमि में धरता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसी करनी वैसी भरनी, पापी बहि बहि मरता है।
हीरा पाय परख नहीं जानै, कौड़ी परखान करता है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो ! हरि जैसा को तैसा है।"

यह सुनते ही मुल्ला लज्जा से नीचे देखने लगे। वे तो हिन्दुओं को परधर्मी समझकर उन्हें कष्ट देने में आनन्द लेते थे। यह खुदा का ही कार्य है ऐसा वे मानते थे।

कबीर साहब का कार्य समाप्त होने पर सब श्रीमठ पहुँचे। आचार्यश्री की कुटीर के पास पहुँचते ही गुफा मे शंखध्वनि हुई।

यह सुनकर मुल्ला पृथ्वी पर गिर गये तथा बेहोश हो गये। उस अवस्था में उन्हें आकाश-पाताल सब दिखायी दिया। अल्लाह के एक रसूल का उन्हें दर्शन हुआ तथा उसने सबको स्वामीजी के हुक्म पर चलने का आदेश दिया।

कुछ देर बाद सबको होश आने पर वे सम्भलकर उठे। गिरते समय लगी हुई चोट तथा धूल भी वैसी ही रही। वे परम आनन्द में मस्त परस्पर रसूल-दर्शन की चर्चा करते रहे तथा स्वामीजी के हुक्म की प्रतीक्षा करने लगे।

स्वामीजी का भीतर ही से, धीर गम्भीर स्वर सुनायी दिया :

"मौलवियो ! भगवान मात्र मुसलमानों के ही नहीं हैं। सम्पूर्ण संसार का ईश्वर एक ही है। वही सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है। भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायी उन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पहचानते हैं। हिन्दुओं के देवताओं का अनादर स्वयं अल्लाह का अनादर है। अल्लाह किसी का पक्षपाती नहीं है। अतः सर्व धर्म का सदैव आदर करो ऐसा ही रसूल का हुक्म है। यही मुस्तफा का पैगाम है।"

मुल्ला लज्जित हो गये। वे मिलकर स्वामीजी से क्षमायाचना करने लगे। इस पैगाम को भविष्य में शिरोधार्य करने को वे तत्पर हुए तथा अपनी समस्या का निराकरण करने के लिए स्वामीजी से प्रार्थना करने लगे। तब स्वामीजी ने कहा :

"हे भाई ! पैदा करने वाले, पालन और संहार करने वाले एक ही परमात्मा हैं। उन्हीं को श्रीराम, श्रीकृष्ण, अल्लाह, खुदा आदि नाम से पहचाना जाता है। तो मात्र पूजा के विधान में भेद होने से हिन्दुओं पर जजिया कर लगाना बहुत ही अनुचित बात है। जिस प्रकार भोजन और वस्त्र प्रत्येक शरीरधारी मानव के लिए आवश्यक है, वैसे ही उपासना भी मानव का अत्यावश्यक कार्य है।

हिन्दुओं की उपासना पद्धति में आप सबने जो विघ्न एवं बाधाएँ खड़ी की हैं तथा धर्म के नाम से जो अत्याचार किये हैं, उसी का यह परिणाम है। अन्यथा अल्लाह की बन्दगी में रुकावट डालना हम नहीं चाहते।

हमारी कुछ शर्तों को बादशाह से स्वीकार कराके उनके दस्तखत कराने पर आपकी समस्या स्वयं हल हो जायेगी :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) उपासना एवं श्रद्धा के प्रतीक देव-मन्दिरों का विध्वंस न किया जाय।
(2) नये मन्दिर बनाने पर सुलतानों ने जो रोक लगायी है वह दूर कर दी जाय।
(3) किसी को दुःखी न किया जाय। हिन्दुओं की धर्मपुस्तकें नष्ट करने पर रोक लगायी जाय।
(4) पूजन, कथा आदि में शंख बजाने पर जो प्रतिबन्ध है उसे उठा लिया जाय।
(5) कुम्भ आदि पर्वों पर तथा तीर्थों में यात्रियों से कर न लिया जाय।
(6) छल-बल का प्रयोग करके धर्म परिवर्तन कराना बहुत निन्दनीय है। अल्लाह के बन्दों को यह शोभा नहीं देता। यह तो अल्लाह की तौहीन है अतः जबरदस्ती किसी को भी धर्मभ्रष्ट न किया जाय।
(7) गाय की कुर्बानी कभी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि पैगम्बर ने तृषा शान्ति के लिए और अपनी प्राणरक्षा के लिए भी उसे नहीं खाया था।
(8) अपने-अपने रीति-रिवाज स्वतन्त्रतापूर्वक सबको निभाने चाहिए। अतः मस्जिद के सामने से जाते हुए दूल्हों को पालकी से उतरकर पैदल चलने के लिए विवश न किया जाय, क्योंकि यह पुरानी धर्म-नीति के विरुद्ध है। यह पक्षपातपूर्ण होने से आपस में प्रीति बिगाड़ने वाला है।
(9) अपने धर्म प्रचार का अधिकार सभी को समान रूप से है। अतः मुल्लाओं को किसी अन्य धर्म के प्रचार में रुकावटें नहीं डालनी चाहिएं।
(10) किसी स्त्री का अपहरण न किया जाय तथा सतीत्व नष्ट न किया जाय।
(11) मौहर्रम के दिन हिन्दू त्यौहार मनाने पर जो प्रतिबन्ध है, उसे उठा लिया जाय।
(12) यदि कोई हिन्दू श्रद्धापूर्वक किसी फकीर के पास जाय तो उसे उसी के धर्मानुसार उपदेश दिया जाय।

यदि इन शर्तों में से किसी का उल्लंघन होगा तो सुलतान का राज्य स्थिर नहीं रहेगा तथा नष्ट हो जायेगा।"

बुजुर्ग एवं विचारवान मुल्लाओं ने तथा पीरों ने उपरोक्त सभी शर्तों का स्वीकार किया। उन्हें लिपिबद्ध कराके बादशाह से मोहर एवं दस्तखत कराये। उसके तुरन्त बाद सर्वत्र नमाज जारी हो गयी।

स्वामीजी एवं कबीर साहब को सलाम करते हुए वे आश्रम से विदा हुए।

तदनन्तर पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान आदि प्रान्तों से आये हुए हिन्दू यात्रियों ने तैमूर द्वारा किये गये अत्याचार एवं लोगों की दुर्दशा तथा असहनीय दशा का वर्णन किया। अगर इस दारुण समय में उन्हें मानसिक हिम्मत भी नहीं मिली तो हो सकता है कि वे धर्म-परिवर्तन करने के लिए विवश हो जायें, ऐसा सोचकर उन भग्नहृदय हिन्दुओं की मृतप्राय आशालता को नवपल्लवित करने लगा उन्हें नया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बल एवं हिम्मत देने जगद्गुरुश्री ने उन स्थानों पर जाने का निश्चय किया।

कुछ शिष्यों व सन्तों को लेकर वे काशी से प्रस्थान कर गये। जगद्गुरु द्वारा दस्तखत करायी गयी 12 शर्तों की बात सर्वत्र फैल गयी थी तथा सुलतानों द्वारा उसका अमल भी शुरू हो गया था, अतः जनता ने तैमूर के अत्याचारों को भूलकर आनन्दातिरेक में स्वामीजी का भावभीना स्वागत किया। उनका दुख सुनते हुए तथा उन्हें आश्वासन एवं हिम्मत देते हुए स्वामीजी आगे बढ़ते रहे।

सर्वप्रथम वे लक्ष्मणपुर (लखनऊ) पहुंचे। वहाँ सुलतानों द्वारा अनेक अत्याचार किये गये थे जिसे अब राजाज्ञा से बन्द किया गया था। लोगों ने स्वामीजी का स्वागत करके अपनी श्रद्धा-निष्ठा को और दृढ़ किया। आचार्यप्रवर ने आपत्ति से न डरते हुए धैर्य से उसका सामना करके स्वधर्म में ही रत रहने की हिम्मत एवं सांत्वना प्रदान की। कई धर्मभ्रष्टों के प्रार्थना करने पर उन्हें पवित्र संस्कार देकर वैदिक अधिकार प्राप्त कराये गये। अनेक पीड़ित लोगों को प्रेम से मिलकर सर्व प्रकार से सहाय एवं आश्वासन तथा हिम्मत प्रदान करते हुए जमात बढ़ती रही। काशी के महान स्वामीजी ने अनेक पण्डितों एवं धर्माचार्यों को भी भग्नहृदय, व्यथित लोगों में नयी श्रद्धा एवं विश्वास जगाने के कार्य में प्रेरित किया। कष्टों को सहकर भी स्वधर्म में निष्ठा रखने के लिए उनकी प्रशंसा भी की। जगद्गुरुश्री के प्रेम एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार से धर्मग्लानि एवं आतंक से निष्प्राण बनी हुई जनता में प्राण का संचार हुआ। कुछ समय लखनऊ में रुककर वहाँ के लोगों की अश्रु-भरी विदाई लेकर वे दिल्ली प्रस्थान कर गये।

दिल्ली की स्थिति तो अत्यधिक दारुण थी। खेती, व्यापार तथा अनेक व्यवसाय नष्ट-भ्रष्ट हो चुके थे। असह्य दुर्गंध से भरे स्थानों में रहकर कुछ लोग महामारी के शिकार बने थे। समर्थ शासक की अनुपस्थिति में अनेक भ्रष्ट तथा स्वार्थी तत्वों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया था। जनता सर्व प्रकार से निसहाय एवं पीड़ित होकर समय व्यतीत करती थी। इस समय करुणा एवं अपार प्रेममूर्ति स्वामीजी वहाँ पहुँच गये। विपत्ति में घिरे लोगों को सहानुभूति की अत्यन्त आवश्यकता थी, जो जमात ने पर्याप्त सहाय के साथ दी। दिल्ली की जनता में आत्मविश्वास एवं धर्मश्रद्धा पुनः जाग्रत करने कुछ दिन दिल्ली में जमात रुकी, तदनन्तर आगे बढ़ी। काशी के स्वामीजी के उचित समय पर आगमन एवं सहायता से दिल्ली के लोगों की धर्मनिष्ठा अधिक दृढ़ बनी।

मार्ग में सर्वत्र घोर निराशा तथा हताशा के अन्धकार में निमग्न लोग अपने भाग्य पर अश्रु बहाते रहे थे। सर्वत्र महामारी, प्लेग जैसे भयंकर रोग फैल गये थे। अन्न नष्ट होने के कारण दुष्काल पड़ा था। काशी के भास्कर ने उस अँधेरे को दूर करने का भगीरथ कार्य किया। रोगियों को औषधि, दुःकाल पीड़ितों को अन्न, वस्त्र तथा प्रेम, करुणा, सौहार्द से सबको नयी आशा से आलोकित कर दिया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगद्गुरुश्री की 12 शर्तों वाली बात से परिचित लोग उन्हें धर्मग्लानि दूर करने को पधारे परमात्मा ही समझने लगे। जिन-जिन स्थानों पर तैमूर ने अपनी अत्याचार एवं आतंक रूपी आँधी चलायी, उन स्थानों को परिष्कृत करते हुए तथा सबको प्रेम तथा सांत्वना प्रदान करते हुए काशी के स्वामीजी आगे बढ़ते रहे। तैमूर द्वारा बलात् धर्मभ्रष्ट किये हुए हिन्दुओं को पुनः हिन्दुत्व प्रदान करते रहे। इस प्रकार वे कश्मीर की ओर आगे बढ़े।

जम्मू में तैमूर के सैन्य ने भयंकर विनाश किया था। परन्तु वहाँ के राजा ने जगद्गुरुश्री की सहायता से पुनः सेवाकार्य शुरू किया। जम्मू-नरेश स्वामीजी से अत्यन्त अभिभूत हुए। स्वामीजी के प्रेम, धर्मनिष्ठा तथा राष्ट्रप्रेम से उनकी श्रद्धा-निष्ठा बलवान हो गयी।

जम्मू से जमात वैष्णवीदेवी पहुँची। वहाँ श्रद्धासुमन माताजी को अर्पित करते हुए वे श्रीनगर की ओर प्रयाण कर गये। अनेक हिन्दू पण्डितों को बलपूर्वक मुस्लिम धर्म अंगीकार कराया गया था। स्वामीजी ने उन्हें परिष्कृत करके पुनः हिन्दू बनाया। स्वामीजी के शिष्यों ने यहाँ बोधायन वृत्ति की खोज की, परन्तु वह प्राप्त नहीं हुई। श्रीनगर के पण्डितों को हिम्मत एवं विश्वास प्रदान करते हुए स्वामीजी बाबा अमरनाथ के दर्शनार्थ आगे बढ़े।

हिमालय की उत्तुंग गिरि शृंखलाओं का नयनरम्य अवलोकन करके, प्रकृति की मनोहर लीलाओं में व्याप्त पुरुषोत्तम का दर्शन करते हुए आनन्द में निमग्न स्वामीजी बढ़ते रहे। बाबा अमरनाथ की हिम कंकरों द्वारा निर्मित धवल स्वयंभू हिमलिंग का दर्शन करके सब कृतार्थ हुए। यहाँ से जमात बारामूला गयी। वहाँ व्यग्र एवं व्यथित जनता ने काशी के स्वामीजी का भव्य स्वागत किया। अपनी दुर्दशा वर्णन करते हुए वहाँ के पण्डितों के नेत्र वारिधारा से परिप्लावित हुए। उन सबको सांत्वना देते हुए स्वामीजी ने उन्हें स्वधर्म में रत रहने का ही परामर्श दिया। वहाँ से पेशावर होते हुए वे रावलपिंडी पहुँचे। तदनन्तर सिंध प्रान्त से मुलतान जमात पहुँची। वहाँ धार्मिक जनता ने उनका भव्य स्वागत किया। उनके दुख-दर्द को सहृदयता से सुन उन्हें सांत्वना प्रदान की गयी। नित्य सत्संग भी होने लगा। सर्वत्र हताशा तथा निराशा के बदले उत्साह तथा आशा दृष्टिगोचर होने लगी।

मुलतान से जमात ने पंजाब में प्रवेश किया। यहाँ के लोगों में श्रीराम नाम का अमूल्य रत्न लुटाते हुए जमात बढ़ती ही रही। कई जगह पर जमात का स्वागत हुआ। श्रीराम यज्ञ भी किया गया। इस प्रकार सर्वत्र घूमते हुए मथुरा, वृन्दावन होते हुए जमात पुनः काशी पहुँच गयी।

तैमूर के अत्याचारों से त्रस्त तथा आतंकित प्रजा में इस यात्रा से नयी श्रद्धा तथा विश्वास उत्पन्न हुआ। सर्वत्र नवजीवन तथा नवचेतना जाग्रत हो गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म-परिवर्तन करने-कराने की प्रवृत्ति अत्यन्त मन्द हो गयी। तैमूर के शस्त्रों ने जो अत्याचार तथा सर्वनाश किया था उसकी पूर्ति जगद्गुरुश्री ने अपने शस्त्रागार के आत्मबल, निर्मल प्रेम तथा परमात्मा में अविचल श्रद्धा जैसे शस्त्रों से लोगों को सहानुभूति एवं सहायता करके की। अत्याचारों से आतंकित प्रजा के पीड़ित मन के घाव महामुनि ने निर्व्याज प्रेम तथा सद्भावना से भर दिये। सद्भाग्य से वैदिक हिन्दू संस्कृति को अपने अस्तित्व की लड़ाई के भयंकर समय में एक ऐसे धर्माचार्य मिले जिन्होंने साम्प्रदायिक कलहों से ऊपर उठकर हिन्दुओं को एक सूत्र में बाँधा तथा यवनों का प्रभाव क्षीण किया। इसीलिए उनके समकालीन भारत ने तैमूर के आक्रमण का पैशाचिक दृश्य भी देखा परन्तु उनके अभेद सन्तमत के संरक्षण ने संस्कृति को नितान्त अभय रखा।

जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी स्वभाव से ही उदार, क्रान्तिकारी, युगदृष्टा, समय के अनुरूप चलने वाले तथा नीति व सदाचार के प्रतीक थे। उन्हीं की प्रतिभा से इतने अत्याचारों को सहकर भी हिन्दू संस्कृति जीवित रही अन्यथा अन्य देशों में जहाँ बर्बर मुस्लिम जाति पहुँची, वहाँ की संस्कृति का सर्वनाश ही हुआ है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि सर्व बादशाहों को स्वामीजी की शर्तें मान्य रखनी ही पड़ीं। जिस बादशाह ने उक्त शर्तों का उल्लंघन किया तथा अभिमानवश मनमाना कार्य किया, वह अधिक समय तक नहीं टिक सका। उसकी सत्ता छीन ली गयी अथवा उसकी मृत्यु हो गयी।

(2)

प्रसिद्ध धर्मपुरी काशी में दूर-दूर से अनेक पण्डित एवं विद्वान आते तथा अन्य पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ एवं धर्म चर्चा करके अपना मत प्रतिपादन करते थे। एक बार एक जैन मुनि तथा एक अद्वैतवादी परमहंस के बीच विवाद हो गया।

एक प्रबल नैयायिक थे तो दूसरे प्रकांड वेदांती थे। दोनों अपने-अपने पंथ के कट्टर समर्थक थे। जैन मुनि अहिंसा से ही मोक्ष अथवा जिनत्व प्राप्त करने के विषय पर अटल थे परन्तु अद्वैतवादी परमहंस 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' कहते हुए जगत को ब्रह्म का आरोपित आभास समझकर मोक्षत्व की प्राप्ति पर अटल थे। विवाद करते-करते दस माह बीत गये, परन्तु कोई अपना मत प्रतिपादित न कर सका, न ही किसी की पराजय हुई।

दोनों अब थक चुके थे अतः दोनों ने सिद्ध महात्मा जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी के पास जाकर हार-जीत का निश्चय कराने का निर्णय किया। दोनों अपने मन की शान्ति के लिए तथा विवाद का अन्त लाने श्रीमठ में पहुँचे।

दोपहर का समय था। स्वामीजी की कुटीर का परदा बन्द था अतः कुछ दूर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक वृक्ष के नीचे दोनों बैठ गये। आश्रम की पवित्र आध्यात्मिक ऊर्जा से दोनों को बैठे-बैठे अनन्त की अनुभूति हुई।

जैन मुनि भावतत्व के मर्मज्ञ थे। उनकी चेतना प्रदीप्त अग्नि की तरह जाग्रत हुई तथा उन्हें सिद्धावस्था की प्राप्ति से जैन तत्वों के साक्षात दर्शन हुए और 'जिनत्व' के सच्चे स्वरूप की उन्हें अनुभूति हुई। अद्वैतवादी परमहंस को अणु से विभुत्व की प्राप्ति हो गयी तथा सर्वत्र एक ही परिपूर्ण ब्रह्म की चेतना की उन्हें साक्षात अनुभूति हुई। सत्यब्रह्म तथा मिथ्या जगत का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इस प्रकार अद्वैतवादी ब्रह्मजाल से मुक्त हो गये तथा जैन मुनि कर्म और पुद्गलों के बन्धन से मुक्त हो गये। दोनों के हृदय की अशान्ति आश्रम के पवित्र वातावरण में आप ही तिरोहित हो गयी।

दोनों को आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि जिन महात्मा के स्थान का ऐसा महत्वपूर्ण प्रभाव है उनके दर्शन-सत्संग की महिमा क्या होगी? अब स्वामीजी के दर्शन के लिए वे व्याकुल हो गये। बहुत समय प्रतीक्षा की, अतः उनकी दर्शन लालसा भी चरम सीमा पर पहुँच गयी।

अन्तर्यामी स्वामीजी ने परदा खोल दिया। तीव्र लालसा के कारण दोनों वेग से उठे तथा कुटी की ओर दौड़े। चौखट से सिर भी टकराया, चोट भी लगी परन्तु उसकी चिन्ता न करते हुए दोनों स्वामीजी के श्रीचरणों में जा गिरे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। अभिवादन के अनन्तर उन्होंने आसन ग्रहण किया।

स्वामीजी ने सस्नेह आशीर्वाद दिया तथा उनके आगमन का प्रयोजन जानते हुए सप्रेम कहा :

"हे मुमुक्षुओ! विवाद तितिक्षुओं का अलंकार नहीं है। मुनियों एवं परमहंसों को विवाद से दूर ही रहना चाहिए। क्योंकि विवाद में समय और शक्ति दोनों का दुर्व्यय होता है। प्रतिपक्षी को हराने की भावना से हृदय में अहंभाव की वृद्धि होती है। जीतने पर अहं पुष्ट होता है तथा हारने पर अहं को चोट पहुँचती है। दोनों स्थिति त्याज्य हैं।

मर्मज्ञों को यह सोचना चाहिए कि सभी धर्म एक पर्वत पर चढ़ने के भिन्न-भिन्न मार्ग ही हैं। तत्वतः सर्वधर्म एक ही हैं। जैन आचार्य मानव लीला की समाप्ति पर सिद्ध पुरुष को ही ईश्वर मानते हैं तथा अद्वैतवादी जीवनमुक्तों और विदेहमुक्तों के तिरोधान पर उपाधिरहित जीव को ही ब्रह्म मानते हैं, तब विवाद किस बात का?

जैन आकाश, जीव, काल तथा परमाणु को अनादि मानते हैं और अद्वैतवादी ब्रह्म, चिद् तथा अचित् को अनादि तत्व मानते हैं। आकाश को ब्रह्म, जीव को चिद् तथा काल एवं परमाणु को अचित् तत्व मानने से आध्यात्मिक संगति लग जाती है। अतः एक-दूसरे के पारिभाषिक शब्दों पर कभी लड़ना नहीं चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैन धर्म में अहिंसा ही प्रधान अंग है, वही नारायण का शुद्ध स्वरूप है। अद्वैतवादी निर्गुण ब्रह्म को ही परमात्मा का शुद्ध स्वरूप मानते हैं। निर्गुण ब्रह्म के समान ही अहिंसा का ज्ञान दुरूह है। अतः मुनियों एवं परमहंसों को तत्वों को समझना चाहिए तथा सम्प्रदाय के समन्वय को देखना चाहिए। मान्यता-भेद होने से किसी धर्म के बारे में सदैव तर्क या विवाद करते रहना मुमुक्षुओं का लक्षण नहीं है।

तर्क तो गौतम विद्या की उपज है, उसके पीछे पड़ना ठीक नहीं।"

स्वामीजी से ऐसा सुन्दर समाधान सुनकर जैन मुनि तथा अद्वैतवादी दोनों प्रसन्न हो गये। अपनी शंकाओं का अभूतपूर्व समन्वय सुन वे परम सन्तोष से झूमने लगे। असीम श्रद्धा से पुन-पुनः जगद्गुरुश्री के चरणों में प्रणाम करने लगे।

स्वामीजी के सुयश का गान करते हुए तथा पुनः कभी विवाद में समय का दुर्व्यय नहीं करने का निश्चय करते हुए दोनों कुछ समय आश्रम में रुककर अपने देश चले गये। स्वामीजी के श्रीउपदेश से धर्मों के सही तत्वों को समझने की उनमें बुद्धि आयी। इन तत्वों को जानकर वे सही रूप में धर्म का आचरण करते हुए परमार्थ पथ गामी बने।

(3)

नंदीश्वर के निर्जन जंगल के शून्य प्रदेश में दो श्रापित देवता रहते थे। लुंबवाहन तथा चंद्रप्रभ नाम के ये दो विद्याधर मुनि सर्व विद्या के जानकार थे। जीव, जन्तु, प्रेत और यक्ष सब उनके अधिकार में थे। भोग की वृत्ति उनमें शान्त नहीं हुई थी।

दोनों पास ही के गाँव की दो स्वरूपवान कन्याओं पर मोहित थे। एक ब्राह्मण कन्या थी दूसरी वैश्य कन्या। विद्याधर देवता इन बालिकाओं को नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ खिलाया करते तथा फूलों से उनका घर भर देते थे। जहाँ-जहाँ ये कन्याएँ जातीं वहाँ-वहाँ वे भी जाते थे।

कुछ वर्ष बाद कन्याओं का विवाह भी निश्चित हुआ परन्तु दोनों ने उनके दूल्हों को सर्पदंश से मार डाला। दोनों परिवारों ने विद्याधरों से कन्याओं का पीछा छुड़ाने के लिए मन्त्र-तन्त्र आदि अनेक उपचार किये परन्तु वे निष्फल ही रहे। क्योंकि जीव-जन्तु-प्रेत-यक्ष उन्हीं के वश में थे। दूसरी बार विवाह करने पर भी पूर्वानुरूप हुआ, अतः अब उनसे विवाह करने के लिए कोई भी तैयार नहीं था।

वैश्य तथा ब्राह्मण परिवार, समान दुःख से दुखी होने के कारण दोनों परिवारों में बड़ी घनिष्ठता हो गयी थी। अपनी कन्याओं के उपचार के लिए दोनों परिवारों में परामर्श भी हुआ करता था। काशी के स्वामी रामानन्दजी का नाम सुनकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों परिवार अपनी कन्याओं को साथ लेकर काशी श्रीमठ में आये। उनके पीछे-पीछे दोनों विद्याधर देवता भी सूक्ष्म रूप से आये थे।

बहुत प्रतीक्षा और प्रार्थना करने पर कुटीर का परदा खुला। दोनों परिवार अलौकिक दर्शन से प्रभावित हुए। प्रतिभा सम्पन्न महामुनि के श्रीचरणों में वे गिर गये।

उसी समय एक घटना घटी। दो विद्याधर देवता, जो सूक्ष्म रूप से उनके साथ आये थे, स्वामीजी के दिव्य दर्शन से प्रभावित होकर स्वयं को छिपा नहीं सके। परमात्मस्वरूप महामुनि की दिव्य दृष्टि पड़ते ही वे स्थूल रूप लेकर सबके सामने प्रकट हो गये तथा स्वामीजी के सन्मुख करबद्ध उपस्थित हो गये।

देवताओं के दिव्य, भव्य एवं सुन्दर स्वरूप से दोनों कन्याएँ उन पर मोहित हो गयीं। दोनों परिवार भी तेजस्वी युवकों को देख प्रसन्न हो गये।

अन्तर्यामी स्वामीजी ने सबको आशीर्वाद देते हुए कहा, "आप अपनी कन्याओं के विवाह का प्रश्न लेकर आये थे न? इन कन्याओं के लिए ऐसे सुन्दर वर ढूंढने पर भी नहीं मिलेंगे। ये कुलीन हैं, देव वंशज हैं, ऐश्वर्यवान हैं तथा पूर्व संस्कार से प्रणय के चिह्न भी दोनों में उदित हैं। प्रत्येक माता-पिता को चाहिए कि अपनी कन्या योग्य पात्र को ही दें।"

दोनों परिवारों को भी सुन्दर युवक पसन्द थे अतः स्वामीजी की आज्ञानुसार दोनों परिवारों ने अपनी-अपनी कन्या का विवाह निश्चित किया और कुछ समय में कन्यादान भी किया। माता-पिता तथा जगद्गुरुश्री का आशीर्वचन लेकर दोनों वर-कन्या देवलोक को विदा हुए। देवताओं के साथ मनुष्यों का विवाह हुआ।

विद्याधर मुनियों के मलिन भाव तथा अहंकार परमात्मस्वरूप जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी के दर्शन करके नष्ट हो गये। प्रसन्न चित्त से श्राप से निवृत्त होकर वे देवलोक में गये।

देवताओं ने मुनियों का मलिन संस्कार तथा दुर्बुद्धि दूर हुई देख नवपरिचितों के स्वागत में भव्य समारोह किया। स्वामीजी के दर्शन से दोनों विद्याधरों में तथा उनकी भार्याओं में पुण्य कर्मों का उदय हुआ था। चारों ने परामर्श करके स्वामीजी से परमार्थ की दीक्षा लेने का संकल्प किया।

कुछ समय पश्चात् स्वामीजी के दर्शनार्थ चारों एक चाँदनी रात को देवलोक से पुनः काशी आये। अपने साथ वे अनेक प्रकार के द्रव्य तथा सम्पत्ति लाये तथा भिक्षु एवं कंगालों में बाँटने लगे। सोने के थाल में सर्व प्रकार के दिव्य भोग तथा चाँदी के कटोरे में चन्द्रमा की तरह चमकता पायस लिए वे श्रीमठ आये। अब वे पूर्णतः स्वामीजी के शील व स्वभाव पर बिक चुके थे।

विद्याधरों के श्रीमठ पहुँचते ही देवताओं की देदीप्यमान ज्योति सर्वत्र फैल गयी। कुटीर का परदा बन्द था। अतः बाहर ही से बोले 'नमो रामाय', स्वामीजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने भीतर से बैठने की आज्ञा दी अतः चारों बाहर बैठ गये तथा देववाणी में स्वामीजी की स्तुति एवं प्रार्थना करने लगे।

कुछ समय पश्चात् स्वामीजी ने परदा खोल दिया। अत्यन्त प्रसन्न होकर सब ने स्वामीजी के चरण स्पर्श किये तथा आरती उतारी। श्रीमठ में इस समय स्वर्ग-सा वातावरण बन गया। बाहर चन्द्रमा की शीतल धवल चाँदनी थी तो कुटीर में स्वामीजी का तेज एवं देवताओं की देदीप्यमान ज्योति!

कनिष्ठ विद्याधर चन्द्रप्रभ ने अश्रुपूरित नेत्रों से करबद्ध होकर विनयपूर्वक कहा, "हे महाप्रभु! उस दिन श्रीचरणों के दर्शन से एक बात यह अनुभव में आयी कि विषयों की निवृत्ति में ही परम सुख है और यह सुख हम देवताओं को अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि हम भोग में उत्पन्न होकर सदा भोग में ही लिप्त रहते हैं। अतः हम पुनः आपके श्रीचरणों में आये हैं।"

ज्येष्ठ लुंबवाहन ने कहा, "हे भगवन्! परम आनन्द का देव दुर्लभ सुख आपके पास है। हम पर कृपा करके हमें परमार्थ की दीक्षा दीजिये जिससे वह सुख हमें भी प्राप्त हो सके।"

मन्द-मन्द मधुर स्मित सहित जगद्गुरु ने धीर स्वर में कहा, "हे देवताओ! आप लोग प्रसिद्ध देवऋषियों से दीक्षा ले सकते हो, तथा उनसे ज्ञान सम्पादन करके सिद्धावस्था में पहुँचकर परम सुख को भी प्राप्त कर सकते हो।"

परन्तु दोनों विद्याधरों ने कहा, "हे परब्रह्म परमात्मा! जिन महात्मा ने हम अपरिचितों के साथ बिना किसी कारण ही उपकार किया और साथ ही हमारे हृदय में वैराग्य का बीज बोकर दर्शन मात्र से हमारे दो कार्य सिद्ध किये उन परब्रह्म परमात्मा को छोड़कर हम क्यों कहीं और जायें?"

स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की तथा चारों को श्री वैष्णवी दीक्षा देकर कृतार्थ किया। देवताओं की दिव्यता उसी क्षण से अपूर्व हो गयी।

दीक्षान्तर उपदेश में स्वामीजी ने कहा, "अब से आप भोग-विलास को त्यागकर सुख-विलास में रत रहोगे। वह सुख आत्मदर्शन है। जहाँ सनातन ब्रह्म स्वतन्त्रतापूर्वक क्रीड़ा करता है और जहाँ के लता-पत्र तथा चराचर जीव उसी सुख-विलास में सुखी हैं वहीं आत्मदर्शन है। जहाँ चिति शक्ति का पूर्ण प्रकाश है वहीं चित्रकूट है। नित्य चित्रकूट में वास करते हुए परम सुख में रत रहो।"

चारों ने श्री सद्गुरुदेव के पाद-प्रक्षालन किये तथा पुनः-पुनः प्रणाम करके उनके सुयश एवं करुणा का गान करते हुए देवलोक को विदा हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(4)

गुजरात के वलंभीपुर नगर में एक वैश्य महाजन लिउटा (लाखाचन्द) रहते थे। वे अपार धन-सम्पत्ति के स्वामी थे तथा देश-परदेश में उनका व्यापार फैला हुआ था। उनकी प्रतिष्ठा विदेशी महाजनों में भी जमी हुई थी।

परन्तु वे निजी चिन्ताओं से बहुत व्यग्र थे। अपार वैभव को भोगने वाला तथा वंश चलाने वाला कोई पुत्र नहीं था। पुत्रेषणा से वे बहुत धन-सम्पत्ति ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तों को भेंट कर चुके थे, परन्तु विफल मनोरथ ही रहे।

काशी के चमत्कारी जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की ख्याति सुनकर पुत्रेषणा से अपनी पत्नी सहित वे काशी पहुँचे। साथ में अनेक बहुमूल्य उपहार भी उन्होंने लिए थे। उन्हें विश्वास था कि बहुमूल्य उपहारों से स्वामीजी अवश्य उन पर प्रसन्न हो जायेंगे।

जब वे काशी श्रीमठ पहुँचे तब आचार्यश्री की कुटीर का परदा बन्द था। अतः महाजन ने अनन्तानन्दजी से स्वामीजी के दर्शन के लिए प्रार्थना की। परन्तु भाग्य-वश उन्हें दो दिन तक दर्शन लाभ नहीं हुआ। धनी होने का गर्व रूपी पिशाच धीरे-धीरे उनके सिर से उतरने लगा।

तीसरे दिन वे आर्त भाव से प्रार्थना करने लगे, "हे भगवन् ! आपके दया रूपी भण्डार से हमें विमुख न कीजिये। दर्शन देकर हमारा जीवन कृतार्थ कीजिये।" बहुमूल्य उपहार उन्होंने कुटीर के सामने रख दिये। जगद्गुरुश्री ने अनन्तानन्दजी द्वारा उन उपहारों को महाजन के सामने ही गंगाजी में प्रवाहित करा दिया। बहु-मूल्य उपहारों के प्रति स्वामीजी का तिरस्कार देख उन चीजों के प्रति महाजन का मोहभाव नष्ट हो गया। उसकी जीवन ज्योति जगमगा उठी।

अब उन्हें उपदेश के योग्य जानकर स्वामीजी ने कृपापूर्वक परदा खोल दिया। इस अलौकिक दर्शन से महाजन तथा उसकी पत्नी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी, रोम-रोम पुलकित हो गया, अंजलि स्वयं बँध गयी। अपलक आँखों से वे जगद्गुरु का परम तेजस्वी मनोहर मुखमण्डल देखते रहे। उनके हृदय का उल्टा कमल सीधा हो गया।

त्रिभुवन मोहक मन्द स्मित सहित महर्षि के स्वर में स्नेहातिरेक व्यक्त हुआ, "कहो महाजन ! क्या इच्छा है ?"

परन्तु दोनों की स्तब्धता भंग नहीं हुई। वे तृषित चकोर की तरह चन्द्र सम शीतल तेजस्वी महाप्रभु के वदन को देखते ही रहे। अतः स्वामीजी ने पुनः पूछा, "हे महाजन ! अपनी मनोकामना प्रकट करो।"

अब दोनों को सुधि आयी, वे सचेत हुए तथा स्वामीजी के श्रीचरणों में दण्डवत् जा गिरे। अपार अनुनय एवं श्रद्धा भरे स्वर से महाजन ने कहा :

"हे भगवन् ! आये तो हम पुत्र प्राप्ति की इच्छा से थे, परन्तु आपके अलौकिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्शन से हमारी सर्व मनोकामना पूर्ण हो गयी है। मन में किसी वस्तु की इच्छा शेष नहीं है। इस बात से स्वयं हमें आश्चर्य हो रहा है।"

जगद्गुरु इस भाग्यवान पति-पत्नी पर प्रसन्न हो गये। दोनों को उनकी प्रार्थना पर कृपा करके श्री वैष्णवी दीक्षा प्रदान की गयी। दोनों भगवन् सन्मुख हो गये। उन्हें अपने हीन संस्कारों का भी ज्ञान हुआ तथा सद्गुरुदेव की कृपा से उन संस्कारों की निवृत्ति भी हुई। उन्हें स्वस्वरूप का ज्ञान हुआ। समय होने पर उन्हें भगवत् दर्शन भी प्राप्त हुआ।

वैश्य दम्पति परम आनन्द में निमग्न कुछ समय श्रीमठ में गुरुदेव के पास रुके तथा गुरुसेवा, सन्तसेवा तथा सत्संग लाभ लेते रहे। कुछ समय पश्चात् वे पुनः वलभीपुर लौट गये।

घर पर भी नित्य सद्गुरुदेवप्रदत्त मन्त्र का जप, अनुष्ठान नियमपूर्वक करने लगे। नित्य गुरुदेव की मोहिनी मूरत का ध्यान भी होने लगा।

एक वर्ष के उपरान्त उनको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई। गुरुदेव की कृपा से उनका इहलोक-परलोक दोनों सुधर गये। पुत्र का नाम भी उन्होंने स्वामीजी के नाम से ही 'रामानन्द' रखा। दम्पति सदैव सबको यही कहते कि यह तो समर्थ सद्गुरुदेव की कृपा का ही परिणाम है।

पुत्र भी बड़ा होकर 'यथा नाम तथा गुण' वाला हुआ अर्थात् श्री रामजी के आनन्द में निमग्न रहने लगा। वह बहुत बड़ा रामभक्त हुआ तथा साधु-सन्तों के साथ ही रहने लगा। श्रीराम भक्ति के अनेक हिन्दी पदों की रचना भी उसने की।

(5)

सत्संग वाटिका में अनेक सत्संगी लोग एकत्रित हुए थे। चक्रचूड़ामणि जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी अपने आसन पर बैठ वचनामृत का लाभ दे रहे थे :

"परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। जीव ने अपनी मिथ्या मान्यता एवं अहं से स्वयं को ईश्वर से भिन्न मान लिया है अतः हमें इस अहं के आवरण को दूर करना है। हमें अपने मन में ईश्वर ढूंढना है। इसलिए मन को स्थिर रखकर नामस्मरण से मंथन करना चाहिए। जैसे अरणी मंथन से अग्नि प्रकट होता है वैसे ही ईश्वर प्रकट हो जायेंगे। मन को रोकना दुष्कर है परन्तु 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'

वैराग्य तथा अभ्यास से मन को स्थिर किया जा सकता है। वैराग्य होगा, तभी अभ्यास सफल होगा अन्यथा साक्षात ब्रह्मा भी बोध नहीं दे सकते। वैराग्य अर्थात् जो देखे हैं, जो सुने हैं तथा जो भोग चुके हैं उन सब भोगों में अनासक्ति। इन्द्रिय रूपी घोड़ों को मन रूपी लगाम तथा बुद्धि रूपी सारथि से बाँधकर रखना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए जिससे इन्द्रियाँ कहीं भी आसक्त होकर शरीर रथ को कुपथगामी न कर दें।

मन को षड्रिपुओं से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर ये षड्रिपु हैं जो मन को सदैव अस्थिर करते रहते हैं। अतः क्रोध को अक्रोध से, काम को भगवत् अनुरक्ति से, लोभ को सन्तोष से, मोह को ज्ञान से, मद को निरहंकारी बनकर तथा मत्सर को समत्व भाव से जीतना चाहिए। अन्धकार से न लड़कर प्रकाश पाने के लिए प्रयत्न करने चाहिए। षड्रिपुओं पर विजय पाने के लिए अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश करना चाहिए, जिससे मोहांधकार का नाश हो जाय। श्रीराम नाम रूपी मणि हृदय में धारण करने से आत्म-प्रकाश होता है। जिससे सर्व दोष स्वयं छूट जाते हैं।"

उसी समय एक साधु खड़े हुए तथा करबद्ध होकर स्वामीजी से सविनय बोले :

"हे भगवन् ! मेरे घर में सेंध लगाकर चोर घुस गये हैं। न जाने किस कोने में इस प्रकार छिपे हैं कि दिखाई तक नहीं देते और घात लगाते रहते हैं। अवसर पाकर चुपचाप हमारा धन अपहरण कर लेते हैं। हे महामुनि ! चोरों के साथ गूलर के फूल की तरह कभी प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली उषा सुन्दरी अपनी क्षणिक अंगी भंगी से वैराग्य के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाती है तथा अहिरन की मथानी की तरह मन को मथती रहती है। मन्थनोपरान्त बल, वीर्य रूपी नवनीत निकलते ही यह खा जाती है। हे शरणागतपाल ! मेरी रक्षा कीजिये।

मेरी सम्पत्ति जिसे चोर चुरा ले गये हैं वह मुझे पुनः प्राप्त करा दीजिये। सुन्दरी को पाषाण की पुतली बना दीजिये जिससे मुझ गरीब की जान बचे।"

स्वामीजी साधु की बात से प्रसन्न हुए तथा बोले, "हे महाराज ! आप धन्य हो जो यह समझते ही कि आपका घर लुट गया तथा बल-वीर्य चला गया। अन्य लोगों को लुट जाने पर भी इसका पता नहीं चलता।

आप अपनी षड्सम्पत्ति पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो सुनिये। आपको लूटने वाले चोरों का सरदार मोह है जो आँखों के तिल में छिपा रहता है। मोह खाता-पीता कुछ भी नहीं, मात्र सोता है, क्योंकि मोहनिद्रा में ही मनुष्य की पूरी आयु व्यतीत होती है। इस झपकी में जो स्वप्न जगत प्रकट होता है उसी में सामान्यतः जीव विचरण करता है। गीता में कहा गया है, 'इच्छा द्वेष समुत्थेन द्वन्द्व मोहेन भारतः !'

यह मोह ही इच्छा तथा द्वेष रूपी द्वन्द्व को उत्पन्न करके प्राणियों को सृष्टि में सम्मोहित करता है। अपने सरदार 'मोह' की नाकाबन्दी बाकी चोर काम-क्रोध-लोभ-मद-मत्सर करते हैं। वे छिपकर ऐसे घात-प्रतिघात करते हैं कि जीव का उस सीमा से बाहर जाना असम्भव हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोह की अर्धांगिनी माया, सुन्दरी का रूप लिए ज़ीव को सदैव ललचाती है। वही काम बनकर वैराग्यवानों के मन को मथ-मथकर बल तथा वीर्य रूपी नवनीत खा जाती है।

अब तो आपने उन सबका तमाशा देख लिया है। तिल का मर्म भी पा गये हो। तिल वीतराग चक्षु है, वैराग्य है। अब आप तिल पर पहुँचिये, समता धारण कीजिये, हम मोह का परदा हटाते हैं।"

कहते हुए स्वामीजी ने जल छिड़का। सन्त को परम आनन्द की प्राप्ति हो गयी। तिल के मर्म को समझते हुए वे धन्य बन गये। अन्य सत्संगियों पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। स्वामीजी के सामर्थ्य को देख वे सानन्द आश्चर्य में डूब गये। सन्त कुछ समय आश्रम में रुके तथा सत्संग लाभ लिया। तदनन्तर पुनः परिभ्रमणार्थ निकल गये।

(6)

राजस्थान के टोंक इलाके के धुवन ग्राम में एक समृद्ध जाट श्री पन्नालालजी रहते थे। अपनी धर्मपत्नी रेवाबाई के साथ साधु-सेवा करते हुए वे जीवन-यापन कर रहे थे। अत्यन्त धार्मिक वृत्ति के जाट परिवार ने आध्यात्मिक जिज्ञासा तृप्त करने के लिए गुरू भी किये थे। माघ कृष्ण अष्टमी के दिन उनके घर एक सुन्दर पुत्र रत्न का जन्म हुआ।

अलौकिक बालक धार्मिक संस्कारों में पलता हुआ बड़ा होने लगा। एक बार श्री पन्नालाल जाट के गुरु उनके घर पधारे। उनको श्री ठाकुरजी की सेवा करते देख बालक धन्ना ने हठपूर्वक उनसे ठाकुरजी की सेवा माँगी। बालक की हठ पूर्ण करने को श्री ब्राह्मण देवता ने एक गोल पत्थर देकर ठाकुरजी के रूप में उसकी सेवा करने की बालक को आज्ञा प्रदान की।

बालक धन्ना प्रेमपूर्वक ठाकुरजी की सदैव सेवा करने लगा। गुरु की भाँति अनुनय-विनय करते हुए ठाकुरजी को भोजन करने का वह आग्रह करता। बालक के हृदय का विशुद्ध भाव देखकर ठाकुरजी प्रसन्न हुए तथा प्रत्यक्ष होकर भोजन करने लगे। बालक बड़ा होने लगा। ठाकुरजी अब सदैव उसके द्वारा अर्पित की गयी रोटियाँ पाते, उसके साथ खेत में गाय चराने जाते, वार्तालाप करते तथा संग-संग रहते थे। परम सुख में निमग्न धन्ना जाट अब युवान हो गये। उनकी निष्ठा एवं दृढ़ भक्ति देख ठाकुरजी ने उन्हें कहा, "हे सख्य ! तुम्हारी उपासना से यद्यपि हम सन्तुष्ट हैं, परन्तु उसमें एक त्रुटि अवश्य है। हे वत्स ! तुमने अब तक किसी को गुरु नहीं बनाया है।"

धन्ना जाट ने अंजलि बाँधकर अश्रुपूरित नेत्रों से कहा, "हे प्रभु ! जब आप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं मिल गये हो, तो गुरु की मुझे क्या आवश्यकता है ?"

इस पर स्नेह भरे स्वर में ठाकुरजी ने कहा, "प्रिय ! यह तो हमारे ही द्वारा प्रस्थापित मर्यादा है, जिसका हम उल्लंघन नहीं करेंगे। हम स्वयं तुम्हारे गुरु बनेंगे। सशरीरी होकर हम काशी में स्वामी रामानन्द के नाम से रहते हैं। अतः तुम वहाँ जाओ और मर्यादा का पालन करो।" कहते हुए ठाकुरजी अदृश्य हो गये।

परम वैराग्यवान धन्नाजी प्रभु आज्ञा मिलते ही तैयार हो गये। माता-पिता ने भारी हृदय से सम्मति दे दी। अतः वे काशी जाने के लिए निकल पड़े।

जब वे श्रीमठ पहुँचे तब भाग्यवश कुटीर का परदा खुला ही मिला। सानन्द आश्चर्य से उन्होंने देखा कि ठाकुरजी तथा स्वामीजी के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं था। उनका रोम-रोम पुलकित हो गया, नेत्र निर्झर बन गये, स्वर इतना गद्गद् हो गया कि शब्द अत्यन्त अस्पष्ट हो गये। कुछ करने का सामर्थ्य ही न रहा धन्ना जाट में।

परन्तु अन्तर्यामी स्वामीजी बलि राजा के अवतार श्री धन्ना जाट को पहचान गये। करबद्ध धन्नाजी स्वामीजी के श्रीचरणों में दण्डवत् करते गिर गये तथा अश्रुवारि से पाद-प्रक्षालन करते रहे। स्वामीजी सानुगृहीत प्रेमार्द्र दृष्टि से मधुर मनोहर स्मित सहित उन्हें सांत्वना देते रहे। कुछ क्षण पश्चात् धन्नाजी ने स्वयं को सम्भाला। शिथिल स्वर में बोले, "नाथ ! मुझ अनाथ को शरण दीजिये। कृपा-दृष्टि मुझ पर भी फेरिये।" कह तो दिया, किन्तु उनके प्राण श्रवणों में आ गये, जैसे सर्वांग अभी द्रवित हो जायेगा। क्या उत्तर मिलेगा महिमामय जगद्गुरु से ? परन्तु शरणागतवत्सल की शरण में आकर कभी कोई निराश नहीं गया था।

जगद्गुरुश्री ने उन्हें सांत्वना देते हुए स्वीकार किया तथा कहा, "वत्स ! तुम्हारी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।" धन्ना जाट की श्रद्धा-निष्ठा देख कुछ समय पश्चात् जगद्गुरुश्री ने उन्हें वैष्णवी दीक्षा प्रदान की। अपनी श्रद्धा एवं भक्ति से धन्ना जाट जगद्गुरुश्री के प्रमुख शिष्यों में माने गये।

(7)

वाममार्गी तान्त्रिकों का इस समय कहीं-कहीं भारी प्रभाव था। साधना के नाम पर बस्ती से दूर एकान्त में रहकर वे भोगविलास में ही रत रहते थे। त्याग-मार्ग के विपरीत भोगमार्ग को वे श्रेयस्कर मानते थे। उनके कारण आसपास की जनता को भी भयानक कष्ट होता था।

काशी से दूर एक गाँव के पास गंगाजी के किनारे माँझे में ऐसे ही कुछ वाम-मार्गी तान्त्रिक रहते थे। उनमें बिनी नामक एक विप्र कन्या भी थी। तन्त्र विद्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से आकर्षित होकर वह उसमें निपुण बन गयी थी। हर अमावस्या की रात्रि को वह चक्रनायिका का काम करती तथा भोग-विलास से कभी तृप्त नहीं होती थी।

यौवन के मद में अन्धी वह रमणी किसी योग्य चक्रनायक की खोज में थी। ढूंढती हुई सूक्ष्म रूप लेकर वह एक गाँव में रात्रि में पहुँची। छत पर सोये हुए एक सुन्दर नवयुवक को देखते ही वह उस पर मोहित हो गयी। मन्त्र के प्रभाव से सोते हुए युवक को उठाकर अपने साथ माँझे में ले आयी। युवक को मन्त्रविद्या से प्रभावित करके अन्य भैरवियों के साथ वह कामसुख भोगती रही।

गाँव में युवक के माता-पिता को पुत्र के अदृश्य हो जाने पर बहुत आघात लगा। अपने एकमात्र पुत्र को ढूंढने के लिए उन्होंने सर्व प्रयत्न किये परन्तु समस्या का समाधान नहीं हुआ। सब उपायों से थककर वे काशी स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के पास पहुँचे।

स्वामीजी को सर्व वृत्तान्त निवेदन किया गया। माता-पिता का विलाप सुनकर करुणासागर को करुणा आ गयी। युवक के पिता को अन्य व्यक्तियों के साथ कुछ युक्ति बताकर गंगाजी के किनारे उस माँझे में भेज दिया।

माँझे में पहुँचने पर पिता ने देखा कि पुत्र मन्त्र के प्रभाव से मृत व्यक्ति की भाँति पड़ा हुआ है। आसपास कई तरुणियाँ भी अस्तव्यस्त पड़ी थीं। स्वामीजी द्वारा बतायी हुई युक्ति के अनुसार पिता ने पुत्र के सिरहाने रखे हुए पुष्प को उठाया तथा उसे सुँघाया। पुष्प सूँघते ही पुत्र जी उठा। पुत्र को सर्व वृत्तान्त निवेदन करके पिता पुत्र को लेकर पुनः श्रीमठ पहुँचे।

रात्रि में बीना ने जब अपने चक्रनायक को न देखा तब वह अत्यन्त क्रोधित हो गयी तथा उसे ढूंढती हुई श्रीमठ तक पहुँच गयी। चक्रनायक युवक को उधर देख पुनः मन्त्र के प्रभाव से उसे उठाना चाहा परन्तु स्वामीजी की शक्तियों से सम्पूर्ण सुरक्षित उस युवक पर मन्त्र का कोई प्रभाव न पड़ा। अतः उसने स्वामीजी एवं शिष्यों को तंग करना चाहा। परन्तु सात्विक शक्तियों के प्रभाव से उसे ही नरक के भयानक दृश्य दीखने लगे।

अपने मन्त्र का पूरा प्रभाव न देख वह व्याकुल हो गयी तथा उसे अदृश्य में रौरव नरक के भयंकर दृश्य दीखने लगे जिससे वह त्राहि-त्राहि पुकारने लगी। अपने दुष्ट कर्मों का परिणाम देख वह अत्यन्त भयभीत हो गयी। उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ।

तुरन्त वह स्वामीजी की शरण में गयी तथा कहने लगी, "हे स्वामीजी! इस संकट से मुझे बचा लीजिये, फिर कभी मैं दुष्टाचरण नहीं करूँगी।" दयालु स्वामीजी ने तत्काल उसका कष्ट दूर किया। भयानक दृश्य अदृश्य हो गये।

इस पर बिनी सावधान हो गयी और बोली, "हे पतितपावक! आपने कृपा करके मेरी दुष्ट बुद्धि को सत्यमार्ग बताया है। आप ही मुझे शरण दीजिये तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे परमार्थ की दीक्षा दीजिये।"

विप्र कन्या के अन्तःकरण की मलिनता दूर हुई देख स्वामीजी ने कृपा करके उसे श्री वैष्णवी दीक्षा प्रदान की तथा विन्ध्य क्षेत्र में जाकर तपस्या करने की आज्ञा दी। युवक तथा उसके माता-पिता भी स्वामीजी के प्रेमी-भक्त बन उन्हें प्रणाम करके स्वस्थान को चले गये।

(8)

एक बार काशी में भगवान श्री काशी विश्वनाथ के मन्दिर के प्रांगण में एक बृहद् यज्ञ का आयोजन किया गया। दूर-दूर से अनेक पण्डित तथा विद्वानों को यज्ञ में आमन्त्रित किया गया।

दक्षिण भारत के एक प्रकाण्ड विद्वान चिपलूणकर इस यज्ञ में प्रधान अतिथि नियुक्त किये गये थे। उनके आगमन पर श्रद्धालु जनता ने उनका बड़ा स्वागत किया।

यज्ञ की समाप्ति पर श्रीमठ के आचार्य के दर्शनार्थ वे गये। सद्भाग्य से उन्हें शीघ्र ही दर्शन लाभ मिला। स्वामीजी का तेजस्वी एवं प्रतिभासम्पन्न मुखमण्डल देख चिपलूणकर उनके श्रीचरणों में सहज ही गिर गये। स्वामीजी ने पण्डित से सप्रेम वार्तालाप किया। इससे प्रभावित होकर पण्डित ने अपनी शंकाओं के समाधान हेतु पूछा, "हे स्वामीजी ! जैमिनि ऋषि ने—'अभ्रायस्य क्रिवार्थत्वात् आनर्थक्यम् अंतदर्शी नाम।'—लिखकर वेद के ज्ञान को निरर्थक क्यों कहा है? मेरे इस सन्देह को दूर कीजिये।"

स्वामीजी ने मनोहर मन्द हास्य सहित कहा, "हे पण्डितजी ! वेद से ईश्वर का कोई सम्बन्ध न स्वीकार करने के कारण ही ऐसा किया गया है। वेदों में कई जगह ईश्वर को निर्गुण निराकार ही बताया गया है तथा जीवों का ईश्वर से कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया इसलिए ऐसा कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जन्म-मरण का चक्र स्थिर रहे तथा मन्त्र-मूर्ति-देवगण का सम्बन्ध नरलोक से बना रहे।"

यह उत्तर सुन शास्त्री कुछ देर तक सोचते रहे। तदनन्तर बोले, "भगवन् ! इससे तो और भी चक्कर में पड़ गया। कुछ भी समझ में नहीं आता। कृपया आप ही समझाइये।"

जगद्गुरुश्री ने पूजा से उठाकर एक पुष्प पण्डित को दिया तथा उसमें एकाग्र होकर देखने के लिए कहा। पण्डित ने देखा कि आठ पंखुरी वाले पुष्प में दो पर किसी सुन्दरी के पीन स्तन (सृष्टि की सृजन शक्ति का प्रतीक), दो पर तराजू, (न्याय-अन्याय अथवा विद्या-अविद्या के द्वन्द्व को छोड़कर समत्व धारण करने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीक), दो पर नवांकुरित वनस्पति के दल (सृष्टि के सृजन-विकास उत्पत्ति-स्थिति के प्रतीक), तथा दो पर सूर्य तथा सोम की छटा (अमृत तत्व तथा माया के बाह्य ज्ञान का प्रतीक) दिखायी दिये। पुष्प के बीच में साँवले सलोने रामललाजी विराजमान थे। पण्डित ने पुष्प के चित्र को चकित होकर देखा।

कुछ देर तक वे देखते तथा सोचते रहे। तदनन्तर स्वामीजी से कुछ पूछना चाहा तो शंखध्वनि हुई। उस अमृतनाद ने पण्डित को शास्त्रों के सर्व अभिप्राय बताकर सब संशय दूर कर दिये। परम गहन विषय का इस युक्ति से बोध कराने वाले महामुनि को पण्डित ने पुनः-पुनः प्रणाम किया तथा बोले, "हे चक्रचूड़ामणि ! आपके विषय में सुना बहुत था, परन्तु आज अनुभव से जान गया कि आपकी विद्वत्ता एवं शक्ति अपरम्पार है जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। हमेशा मुझ पर कृपादृष्टि रखियेगा।"

जगद्गुरु ने कहा, "हे शास्त्रीजी ! कर्मवादी काल के प्रभाव को जब समझते हैं, तब अपवर्ग पर जुटते हैं।

बहूनींन्द्र सहस्राणि देवा-नांचा युगे-युगे।
कालेत समतीतानि कालोहि दुरति क्रमः॥

सहस्रों इन्द्रों को भी काल के प्रभाव से, देवों के अधिपति होने पर भी, बदलना पड़ता है क्योंकि समस्त संसार काल के प्रभाव मे सीमाबद्ध है जिसका अतिक्रमण असम्भव है। अतः 'सर्वं यस्यवशात् अगात् स्मृति पथं कालाय तस्मै नमः।' जिसके कारण सभी कुछ स्मृतिशेष बन जाता है वही काल एकमात्र सनातन और अनन्त तत्व है। वही जीव का अन्तिम लक्ष्य है। वही अपरिवर्तनशील है, वही ज्ञान है।"

इस सत्संग से पण्डित ने दुर्लभ ज्ञान सम्पादन किया। अनेक बार स्वामीजी की स्तुति करते हुए वे आश्रम से विदा हुए। जाते हुए उनके मुख पर अपूर्व तेज था तथा हाथ में वही पुष्प था।

(9)

श्रीमठ में आज भजन-कीर्तन की रंगत जमी हुई थी। आचार्यश्री आज सत्संग वाटिका में नहीं आये थे अतः भक्तों ने मिलकर भजन-कीर्तन किया। रैदासजी भी आज जल्दी आ गये थे। अतः सबके आग्रह करने पर रैदास ने स्वरचित एक भजन सुनाया। किसी ने ढोलक उठायी, तो किसी ने पखावज। रैदासजी ने गाया :

प्रभुजी ! संगति सरन तिहारी, जग-जीवन राम मुरारी।
गली गली को जल बहि आयो, सुर-सरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वाति बूंद बरसै फणि ऊपर, सीस विषै होई जाई।
ओही बूंद के मोती निपजै, संगति की अधिकाई॥
तुम चंदन, हम रेंड बापुरे, निकटु तुम्हारे आसा।
संगत के परताप महातम, आवै वास सुबासा॥
जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँचे कियो है, कहै रैदास चमारा॥

सब प्रसन्न हो गये। रैदासजी की गुरुभक्ति एवं प्रेम सब जानते थे। उनकी रचनाएँ भी बहुत लोकप्रिय होती रही थीं। सब आनन्द में झूमने लगे।

उस समय एक पण्डित आश्रम पर आये। पूछने पर उन्होंने बताया कि वे सिंध प्रांत के रहने वाले हैं तथा उनका नाम विनय मुनि चौरासी वाले था। ब्रह्म जिज्ञासा के लिए वे सिंध से परिभ्रमण करते हुए यहाँ आ पहुँचे थे। जहाँ-जहाँ गये वहाँ पण्डितों, यतियों तथा महात्माओं से अपना प्रश्न करते रहे, परन्तु किसी के समाधान से उन्हें सन्तोष नहीं मिला। अतः वे आचार्यश्री के दर्शन एवं ज्ञान-पिपासा की तृप्ति हेतु यहाँ आये।

श्री अनन्तानन्दजी उन्हें कुटीर के पास ले गये, परदा अभी बन्द था। परन्तु विनय मुनि चौखट के पास बैठ गये तथा बाहर ही से प्रश्न किया, "हे महात्माजी! क्या आप मेरे मन में ब्रह्म की स्थापना कर सकते हैं? मुझे पुस्तक प्रमाण नहीं चाहिए तथा युक्ति प्रमाण निश्चयात्मक नहीं हो सकता।"

जगद्गुरु ने अन्दर ही से आज्ञा दी, "हे मुनि! भगवान विश्वनाथ की पूजा करके यहाँ आइये। तब समाधान किया जायेगा।"

चौरासी वाले बोले, "हे आचार्यजी! आज आपके कहने से ही पूजन के लिए जाता हूँ, नहीं तो अब तक किसी देवता का पूजन नहीं किया।"

कहते हुए विनय मुनि पुनः श्रीमठ से काशी पहुँचे। भगवान विश्वनाथ के मन्दिर में जाकर भोलेनाथ का विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन की समाप्ति पर पुजारी ने एक बिल्वपत्र प्रसाद में दिया तथा अपने साथ आश्रम पर ले जाने के लिए कहा। विनय मुनि बिल्वपत्र लेकर पुनः श्रीमठ के लिए चल पड़े।

रास्ते में एक परम आश्चर्यकारक घटना घटी। हाथ में पकड़े बिल्वपत्र में से निरन्तर एक ही ध्वनि निकलती सुनायी दी—'पहास्ति पच्चनास्ति सर्वे तदस्मिन समाहित मिति।' मुनि कान देकर सुनते रहे तथा चकित होकर गम्भीरतापूर्वक इस विषय में सोचने लगे।

जब वे आश्रम में पहुँचे, तुरन्त परदा खुला। अलौकिक दर्शन से मुनि प्रभावित हो गये। उन्होंने आचार्यश्री को दण्डवत् प्रणाम किया। यतिराज ने पूछा, "हे मुनिवर! बिल्वपत्र मार्ग में क्या कहता था?"

मुनि अन्तर्यामी स्वामीजी की बातें सुन अत्यधिक आश्चर्यचकित हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने सविनय कहा, "हे धर्मप्रतिपालक ! शिवजी के स्पर्श से बेल की पत्ती दिव्य नायिका की तरह कोमल स्वर से वेद का मन्त्र पढ़ रही थी। वह गम्भीर उपदेश दे रही थी—जो कुछ है अथवा जो कुछ नहीं भी है, उन सबमें वह समाहित है। अर्थात् ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण हैं।"

जगद्गुरु ने कहा, "अच्छा, अब तो आपको सन्तोष हुआ ?"

तब विनय मुनि ने कहा, "हे महात्मन् ! पूर्ण सन्तोष में एक मात्रा की ही कसर बाकी है। सुना है खेचरी मुद्रा से पूर्व अनुभव होता है, परन्तु जब मोहन मोहिनी डालता है तब ज्ञान की एकरसता चली जाती है।"

महाप्रभु ने सोचा इतनी कसर भी क्यूं छोड़ी जाय ? उन्होंने पास रखे हुए कमण्डल से जल का छिड़काव किया। मुनि एक क्षण के लिए बेहोश हो गये। उन्हें साक्षात अनुभव हुआ कि अनन्त ज्ञान भण्डार, परिपूर्ण चैतन्य सर्वत्र व्याप्त है। भीतर-बाहर ब्रह्म ही सर्वत्र परिपूर्ण है। उनका मन भी ब्रह्म ही है।

आप्तकाम मुनि ज्ञान को प्राप्त कर महामुनि के श्रीचरणों में गिर गये तथा अपने 'विनय' नाम को सार्थक किया।

वे सोचने लगे भगवान श्री रामानन्दाचार्यजी में ऐसी दिव्य शक्तियाँ हैं जिससे उन्होंने बेल की पत्तियों द्वारा वेदमन्त्र का उच्चारण कराया तथा यह प्रमाणित कर दिखाया कि परब्रह्म परमात्मा जड़-चैतन्य सभी में सर्वत्र परिपूर्ण है। उन्हें अब सब जगह उस परिपूर्ण ब्रह्म की लीला की झलक ही दिखायी देने लगी। उनका अन्तर्मन अनूठे आनन्द का अनुभव कर सदैव आनन्दमग्न रहने लगा।

विनय मुनि का काशी आना सफल हो गया। आग्रहपूर्वक उन्होंने स्वामीजी से श्री वैष्णवी दीक्षा भी प्राप्त की। कुछ समय आश्रम में रुककर पुनः अपने सिंध प्रांत को चले गये। वहाँ उन्होंने श्रीराम भक्ति का बहुत प्रचार किया तथा अपने गुरुदेव के सदैव गुण गाते रहे।

(10)

अपार नामक एक ब्राह्मण तारादेवी के उपासक थे। सम्पूर्ण तान्त्रिक सिद्धियाँ उन्हें प्राप्त थीं। दक्षिण देश के सिद्धों से स्पर्धा करते हुए वे कामाक्षा (असम) पहुँचे। वहीं पर सिद्धस्थली स्थापित करके रहने लगे। उनके विद्या नाम की एक सुन्दर कन्या थी। एक बार दोनों को परिभ्रमण की इच्छा हुई। पिता-पुत्री घूमते-घूमते काशी आ पहुँचे। गंगा स्नानादि तथा भगवान विश्वनाथ के दर्शन-पूजन से निवृत्त होकर धैर्य, क्षमा, सत्य, विद्या तथा शम-दम से प्रकाशमान काशी में विचरण करने लगे। सुन्दर चन्द्रमुखी गजगामिनी कन्या लोगों के मन का हरण करती रही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी की प्रसिद्धि सुनकर वे आश्रम स्वामीजी के दर्शनार्थ आये। प्रातः-कालीन सत्संग चल रहा था। परम तेजस्वी सूर्य समान प्रभावान, सिंहासनासीन, तिलक से जिनका मस्तक अति सुशोभित था, हृदय में वेदत्रयी के समान सूत्रत्रयी यज्ञोपवीत धारण किये हुए शुक्ल वस्त्रधारी लोकोत्तर तेज वाले स्वामीश्री का दर्शन करके वे धन्य हुए। उस समय कन्या की दृष्टि स्वामीजी के निकट बैठे हुए एक तरुण एवं रूप सम्पन्न शिष्य पर पड़ी। कन्या उसके सौन्दर्य रूप के महासागर में गोते लगाने लगी।

सत्संग की समाप्ति पर एकान्त देखकर बाला ने उस तरुण शिष्य से अपने मन के रहस्य को प्रकट कर दिया। तरुण ने उसकी इच्छाओं का अस्वीकार कर दिया। अतः भग्न मनोरथ वह कन्या अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी तन्त्र विद्या का प्रयोग करने लगी। उसकी विद्या से ब्रह्मचारी पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर गया तथा मुख से रक्त वमन करने लगा।

स्वामीजी को यह समाचार ज्ञात हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम ब्रह्मचारी के कष्ट का निवारण किया। तदनन्तर विद्या को श्राप देकर उसकी सिद्धि एवं क्षमता का हरण कर लिया। मायाविनी विद्या अपनी माया को नष्ट जानकर अत्यन्त विकल हुई। उसने अपने पिता से यह वृत्तान्त सुनाया।

कन्या की दुर्दशा देखकर सर्व सिद्धि भण्डारी अहंकारी अपार ब्राह्मण क्रुद्ध हुआ तथा स्वामीजी को व्यग्र करने को अपनी सिद्धियों का प्रयोग करने लगा। परन्तु :

'या न यद्दासदांस्येऽपि योग्यतां लभते क्वचित्।
सा तस्य यतिराजस्य माया मायात्कृताः पुरः॥

जो माया स्वामीजी के दास की भी दासता के योग्य नहीं है, वह भला स्वामीजी के सन्मुख कैसे रह सकती है? क्रोधित मायावी थकने लगा, परन्तु उसकी सिद्धियों का असर स्वामीजी पर न हो सका।

उस समय अपार की आराध्य तारादेवी वहाँ प्रकट हुईं और बोलीं, "हे नीच-बुद्धि अपार। तू देखता नहीं किसके सामने खड़ा है?"

अपार को परम आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि स्वामीजी की कुटीर के चारों तरफ ब्रह्मादि महर्षि हाथ में माला लेकर परिक्रमा कर रहे हैं। तुरन्त ही तारादेवी तथा दृश्य दोनों अदृश्य हो गये।

गलिताभिमान होकर अपार स्वामीजी के चरणों में गिर गया। कन्या भी अत्यन्त लज्जित हुई। दोनों की याचना पर उन्हें क्षमा कर दिया गया। ब्राह्मण को प्रार्थना करने पर श्री वैष्णवी विरक्त दीक्षा पंचसंस्कारपूर्वक दी गयी तथा उसका नाम 'पद्मनाभ' रखा गया।

कन्या को भी वैष्णवी दीक्षा प्रदान की गयी। एक इच्छुक युवक के साथ कन्या ने विवाह कर लिया। तदनन्तर पद्मनाभ सदैव स्वामीजी की सेवा में रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(11)

निम्बार्क सम्प्रदाय के एक भजनानन्दी सन्त जमुनाजी के किनारे एक कुटीर में अपने इष्ट श्रीकृष्ण के ध्यान में नित्य मग्न रहते थे। श्री निम्बार्काचार्यजी द्वारा प्रचारित द्वैताद्वैत मतवादी सम्प्रदाय के भगवान श्रीकृष्ण तथा उनकी अभिन्न शक्ति श्री राधाजी की वे उपासना करते थे।

एक दिन प्रातःकाल नित्य नियम से निवृत्त होकर वे ध्यान में बैठे। आज उनके ध्यान में उनके श्री सद्गुरुदेव उपस्थित हुए तथा बोले, "प्रिय शिष्य ! अगर तुम श्री राधा सर्वेश्वर के साक्षात दर्शन करना चाहते हो तो काशी के स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के पास जाओ।" अपने श्री सद्गुरुदेव का आदेश होते ही सन्त ने तुरन्त काशी पहुँचने का निश्चय कर लिया। मार्ग की अनेक विघ्न-बाधाओं को सहते हुए वे एक दिन काशी पहुँच गये।

वे श्रीमठ में पहुँचे तब सद्भाग्य से परदा खुला था तथा जगद्गुरु कुछ सत्संगियों से सत्संग चर्चा कर रहे थे। आते ही दर्शन मिलने से सन्त को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने सुना था कि कई दिन प्रतीक्षा करने पर भी भाग्य से ही स्वामीजी के दर्शनलाभ मिलते हैं। स्वामीजी के परम सुन्दर तेजस्वी दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। गौर वर्ण उन्नत, तेजस्वी भालप्रदेश, भव्य जटाकलाप, तेजोमय प्रभावशाली मुखमुद्रा, प्रलम्ब बाहु—सर्वांग सुकोमल तथा सुगठित—आह ! प्रकृति का अनूठा सर्जन ! मानो साक्षात परमतत्व परमेश्वर ही सशरीर यहाँ विराजमान हैं। ज्ञान का प्रखर तेज तथा प्रेम की मधुर शीतलता का अद्भुत सम्मिश्रण महामुनि के मुख पर देख वे प्रणाम करना भी भूल गये।

दर्शन के प्रभाव से दृष्टि मिलते ही उन्हें दिव्य अनुभूतियाँ हुईं। वे निज स्वरूप को प्राप्त हो गये तथा उन्होंने स्वामीजी को देवतागण तथा मुनियों से सेवित दिव्य सिंहासन पर विराजमान देखा। उस समूह में उन्होंने अपने सद्गुरुदेव को भी देखा, जो स्वामीजी के श्रीचरणों में प्रणिपात करने का उन्हें संकेत कर रहे थे। अपने गुरुदेव के संकेत को समझकर जैसे ही सन्त ने स्वामीजी के चरणों में सिर रखना चाहा कि दृश्य एकदम बदल गया।

उन्होंने देखा कि कुंजवन में मधुर-मधुर बाँसुरी बज रही है। इतनी मधुर कि सुनते ही सन्त का रोम-रोम पुलकित हो उठा। दौड़ती हुई गोपियाँ एकत्रित हो गयीं। रहस्य-लीला प्रारम्भ हुई। सन्त अपने प्रियतम गोपीवल्लभ को ढूंढने लगे कि गोपीमोहन ने लपककर सन्त का हाथ पकड़ लिया। प्रसन्न एवं विस्मित होते हुए सन्त ने देखा कि बाँसुरी वाले नटखट के रूप में तथा स्वामीजी के रूप में कोई अन्तर नहीं था।

पुनः तुरन्त ही दृश्य बदल गया। आश्रम का वही दृश्य उनके सामने आया। सन्त आनन्द समाधि से जाग्रत हुए ही थे कि परदा बन्द हो गया। भीतर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी ने पूछा, "बाबाजी ! आपके गुरु ने जो ध्यान में कहा था तथा अभी जो संकेत किया उसे आपने समझ ही लिया होगा। अब कोई सन्देह हो तो प्रकट कीजिये जिससे आपको पूर्ण सन्तोष हो जाय।"

प्रेम विह्वल सन्त प्रेमानन्द में मग्न हो चुके थे। कुछ देर तो वे कुछ बोल ही न सके। बहुत कठिनाई से जिह्वा से शब्द निकले :

"हे कृपानिधान ! मुझे सब प्रकार से सन्तोष हो गया है। मैं जान गया हूँ कि आप में और हमारे इष्ट में कोई अन्तर नहीं है। अब कोई भी सन्देह नहीं रहा है। भला आत्मभानु के उदय होने पर मोहान्धकार कैसे रह सकता है? एक प्रार्थना है। आप आज्ञा प्रदान करें तो कुछ दिन काशी में रहकर भवदीय दर्शन तथा सत्संग का लाभ उठाऊँ।"

सन्त की प्रार्थना स्वीकार हुई। उन्हें इस प्रसंग से ज्ञात हुआ कि भगवान श्री रामानन्दाचार्यजी ही स्वयं त्रिभुवनपति हैं।

(12)

एक दिन रात को एक घटना घटी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। गंगाजी की कलकल ध्वनि तथा वृक्षों के पत्तों की आवाज से निस्तब्धता कुछ भंग होती थी। आश्रमवासी अधिकांश निद्रादेवी के अधीन हो चुके थे।

उस समय एक वृक्ष के समीप से सन्नाटे को चीरती हुई, देववाणी में करुणा-भरी ध्वनि आयी :

"हे करुणानिधान ! मुझ पर दया कीजिये। प्रेत योनि में अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ। आपके दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु आपके श्रीचरणों तक पहुँचने में असमर्थ हूँ क्योंकि वहाँ नित्य प्रेत पलायन मन्त्र का अखंड निनाद होता है। हे दक्षिण से उत्तर ले जाने वाले ! कृपा कीजिये। बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जब कोई पूछ नहीं हुई तो विकल होकर आज पुकार मचायी है।"

स्वामीजी समझ गये कि यह अनिष्ठ कल्पना करके कविताएँ बनाने वाले एक कवि की प्रेतात्मा है। करुणानिधान ने स्वीकृति दी। प्रेत के आने पर उस पर दयालु प्रभु ने अभिमन्त्रित जल छिड़का जिससे वह उस शापित योनि से छूटकर पुण्य भोगने के लिए स्वर्ग की ओर जाने लगा।

प्रेत योनि से मुक्त कवि को स्वर्ग की ओर जाते देख एक ब्रह्मराक्षस भी विमान के पास गया तथा कवि को अपने साथ ले जाने के लिए प्रार्थना करने लगा। कवि ने उसे जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के पास जाने के लिए सलाह दी परन्तु ब्रह्मराक्षस ने उसका पीछा नहीं छोड़ा।

स्वर्ग की सीमाओं में उसे प्रवेश न मिलने के कारण विमान चालकों ने उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धक्का दिया जिससे ब्रह्मराक्षस पृथ्वी पर जा गिरा। हारकर और मार खाकर वह जहाँ भी गिरा वहाँ रेती थी तथा एक साहू का लड़का वहाँ शौच कर रहा था। ब्रह्मराक्षस उस लड़के के सिर पर सवार हो गया तथा साहू के घर आया।

लड़का घर आया तथा उसने सर्व व्यक्तियों को तंग करना शुरू किया। असभ्य भाषा बोलना, कपड़े फाड़ना, चीजें फेंक देना, जला देना आदि व्यवहार से घर के सब व्यक्ति व्यथित हो गये। साहू बहुत धनी व्यक्ति था। वह समझ गया कि लड़का किसी अदृश्य शक्ति के हाथों में फँसा हुआ है।

उसने लड़के को सहज अवस्था में लाने के लिए बहुत धन खर्च किया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में किसी के कहने पर वह काशी जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के पास पहुँचा।

स्वामीजी ने शीघ्र परदा खोल दिया। साहूपुत्र को स्वामीजी के दर्शन हुए साथ ही ब्रह्मराक्षस की मनोकामना भी पूर्ण हुई। वह ब्रह्मराक्षस की श्रापित योनि से छूटकर मिश्रित कर्मफल भोगने मनुष्य योनि में आया।

साहू का लड़का बिलकुल स्वस्थ हो गया। साहू स्वामीजी का परम भक्त बन गया। साहू के पूछने पर महाप्रभु ने बताया कि पूर्व ऋणानुबन्ध, अशुचि एवं तमोगुण प्रधान होने के कारण लड़के को ब्रह्मराक्षस ने पकड़ रखा था। बुरे कर्मों के फलस्वरूप प्रेत योनि अथवा ब्रह्मराक्षस योनि में भटककर कष्ट भोगने पड़ते हैं। सन्त-महात्मा के सत्संग तथा भगवत् नाम स्मरण से सात्विक भाव की वृद्धि होती है जिसके कारण दुष्ट आत्मा भी दूर रहती है।

साहू के बहुत आग्रह करने पर उसे श्री वैष्णवी दीक्षा प्रदान की गयी। अपने घर जाकर साहू नियमपूर्वक गुरुदेव प्रदत्त मार्ग पर चलता रहा तथा अन्य लोगों को भी श्रीराम नाम जप के लिए प्रेरणा देता रहा।

(13)

विष्णुपरक किसी भी विग्रह की उपासना करने वाले को वैष्णव कहते हैं। विष्णु शब्द विश् धातु से बना है जिसका अर्थ व्यापक ब्रह्म होता है! राम शब्द भी रमु क्रीड़ा धातु से बना है उसका अर्थ भी व्यापक ब्रह्म होता है, अतः परात्पर ब्रह्मवाचक विष्णु शब्द से श्रीराम का ही बोध होता है। उपासना में विष्णु विशिष्ट देवता को श्रीराम के अंशरूप में सम्प्रदाय ने स्वीकार किया है। रामावत अथवा श्रीसम्प्रदाय में विरक्त एवं गृहस्थ दोनों को दीक्षा दी जाती है। विरक्तों में पंचसंस्कारों का विधान है। तुलसी कंठी, ऊर्ध्वपुंड्र तिलक तथा मुद्रा छाप, मन्त्रोपदेश तथा भगवत् सम्बन्धी नाम, इन पंचसंस्कारों के साथ विरक्तों को संसार से निस्पृह होकर, परमात्मा श्रीराम को ही अपना सर्वस्व मानते हुए उनसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुदृढ़ सम्बन्ध जोड़कर अहंकार को नष्ट करने के लिए पराप्रेमाभक्ति का आदेश मिलता है।

गृहस्थ शिष्यों को कंठी एवं मन्त्रोपदेश से दीक्षा देते हुए वर्णाश्रम धर्म की मर्यादाओं का पालन करके परमात्मा श्री रामजी की भक्ति का आदेश दिया जाता है। अहिंसा, आहार शुद्धि, भगवत्-भक्ति के साथ-साथ उन्हें उत्तम गृहस्थाश्रमी बनकर प्रत्येक दायित्व को प्रेमपूर्वक निभाना होता है।

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के असंख्य गृहस्थ शिष्य थे। यतिराज सदैव उन्हें कहते कि गृहस्थ जीवन भी एक तपोवन है। जिसमें संयम, विवेक, सेवा, भक्ति तथा प्रेम की साधना की जाती है। अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति मन की भ्रमणा मात्र है। अन्यथा जीवन साधना के लिए प्रत्येक परिस्थिति परमात्मा प्रदत्त परीक्षा अथवा प्रसाद रूप है। जीव को सुख में न उन्मत्त बनना चाहिए, न दुख में निराश। परमात्मा श्रीराम को आदर्श रूप मानकर परिवार के प्रत्येक व्यक्तियों से आदर्श व्यवहार रखना चाहिए। अनेक गृहस्थ शिष्य स्वामीजी से दीक्षा लेकर उनके आदेश का पालन करते हुए अपना जीवन धन्य कर रहे थे।

काशी के पास पारेश्वर नामक एक गाँव में एक विप्र दम्पति रहते थे। वे स्वामीजी के प्रेमी भक्त थे। सद्गुरुदेव दत्त प्रत्येक आज्ञा का वे अक्षरशः पालन करते थे। समय-समय पर श्रीमठ गुरुदेव के दर्शनार्थ आते तथा सत्संग और साधु-सेवा का लाभ लेते रहे थे। गृहस्थों के लिए बनाये गये सनातन आचार के अनुसार अपनी आजीविका का दस प्रतिशत मूल्य वे भगवत् सेवार्थ उपयोग करते थे। विप्र की स्त्री अत्यन्त धार्मिक एवं प्रतिव्रता थी।

एक बार वे श्रीमठ में सत्संग के लिए आये। तब जगद्गुरुश्री ने कहा था, "शास्त्रों का वचन है कि पति ही नारियों के लिए तीर्थ है। प्रत्येक नारी जो अपने दायित्व की रक्षा करती है, पूजनीय है।

नारीणां च सदा तीर्थं भर्ता शास्त्रेषु पठ्यते।
तमेवा वाह्येन्नित्वं वाचा कायेन कर्मभिः॥

घर में छिपकर, संसार से पृथक हो जाने वाली, तथा इन्द्रियों के सर्व व्यापार पति में सन्निहित करने वाली पतिव्रता साध्वी स्त्री की साधना वनवासी तथा विरक्त तपस्वियों की साधना से भी उत्तम मानी गयी है। जिस प्रकार शक्ति प्रच्छन्न रहकर शक्तिमान को प्रकट करती है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में स्त्री प्रच्छन्न रहकर पुरुष को प्रसिद्ध करती है। शक्तिहीन संसार की कल्पना भी नहीं हो सकती। पद्मपुराण में कहा है :

मखानां यजनात्पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते।
तत्पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि सांप्रतम्॥

यज्ञ की दीक्षा लेने वाले पुरुष को यज्ञों के अनुष्ठान से जो पुण्य प्राप्त होता है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वही पुण्य साध्वी स्त्री पति की सेवा मात्र से प्राप्त कर लेती है। पुरुषों को महान कष्ट उठाने पर क्रमशः प्रजापत्य आदि लोकों की प्राप्ति होती है परन्तु स्त्रियाँ मात्र पतिसेवा से ही उसकी भागिनी बन सकती हैं।"

ब्राह्मण स्त्री सुनकर दृढ़ निश्चयी बन गयी। उसकी वृत्ति अधिकाधिक पति-सेवा में लगने लगी। ब्राह्मण भी अपनी स्त्री को प्रेम एवं आदर देता था अतः पत्नी अत्यन्त प्रसन्नता से अपना दायित्व निभाने लगी। दोनों अपनी अन्तरात्मा को दूध-चीनी की तरह मिला चुके थे। ग्रामवासी इस दम्पति के भाग्य की नित्य प्रशंसा करते तथा पतिव्रता स्त्री का सम्मान करते थे।

एक दिन प्रातःकाल नित्य नियम से निवृत्त होकर पति-पत्नी पूजन-अर्चन में प्रवृत्त हुए। कुछ कार्यवश विप्र आँगन में आया। आँगन में एक विषधर काला सर्प था, जिसने आते ही विप्र को डस लिया। विप्र तत्क्षण मृत्यु के आधीन हो गया।

ब्राह्मण स्त्री दौड़कर बाहर आयी। पास-पड़ोस वाले भी एकत्रित हो गये। ब्राह्मण स्त्री का हृदयद्रावक विलाप देखकर लोग उसे सांत्वना देने लगे कि होनी को कौन टाल सकता है ? मृत पति को देखते हुए स्त्री आक्रन्द करने लगी तथा अपने प्रिय सद्गुरुदेव का स्मरण करने लगी। पति को पुनः जीवित करने की वह सद्गुरु से प्रार्थना करती रही।

जगद्गुरुश्री को इस दुर्घटना की सूचना ध्यान में मिली। सूक्ष्म रूप से वे विप्र के घर आये तथा वहाँ प्रकट हो गये। लोग आचार्यश्री को देख आश्चर्य-चकित हो गये। ब्राह्मण स्त्री ने गुरुदेव को देखते ही उनके चरण पकड़ लिए तथा आक्रन्द करती हुई पति को जीवनदान देने की प्रार्थना करने लगी। स्वामीजी ने शंखनाद किया, जिसे सुनते ही कोने में छिपे हुए सर्प को बाहर आना पड़ा। महा-प्रभु ने सर्प को कहा, "इस सती के पति को काटने की तूने हिम्मत कैसे की ? शीघ्र ही विप्र के शरीर से विष पुनः खींच ले।"

सर्प ने मनुष्य के दीन स्वर में उत्तर दिया, "हे भगवन् ! आपकी बनायी हुई मर्यादाओं के वश ही विप्र के कर्मों के विपाक रूप इस कार्य में मैं निमित्त बना हूँ। परन्तु आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ।" कहते हुए सर्प ने विप्र के शरीर से पुनः विष खींच लिया। अपना कार्य समाप्त करके आज्ञाकारी सेवक की भाँति वह स्वामीजी के श्रीचरणों में प्रणिपात करते हुए वहाँ से विदा हो गया।

कुछ ही समय में विप्र इस प्रकार उठे जैसे लम्बी निद्रा से जाग्रत हुए हों। अपने सद्गुरुदेव को सन्मुख देख परम आनन्द से उनके श्रीचरणों में दंडवत् प्रणाम किया। जब सर्ववृत्तान्त ज्ञात हुआ तब सद्गुरुदेव की कृपा देख उनके नेत्र निर्झर बन गये।

विप्र स्त्री ने दौड़कर स्वामीजी के पूजन की तैयारी की। दोनों ने मिलकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सद्गुरुदेव की आरती उतारी तथा चरणोदक लिया। श्रीचरणों को प्रक्षालित करके चरणोदक से गृह को भी सिंचित करके पवित्र किया। जिस समय एकत्रित लोगों ने स्वामीजी का जयघोष किया उसी समय जगद्गुरु वहाँ से अदृश्य हो गये।

काल के मुख से बचा हुआ विप्र अपनी स्त्री के साथ श्रीमठ पहुँचा। स्वामीजी के तेजस्वी प्रतिभासम्पन्न दर्शन से अभिभूत ग्रामलोक भी पुनः दर्शन के लालच से गये। जब तक दर्शन नहीं मिले, वहाँ से उठे नहीं। अन्त में दर्शनलाभ मिला। पति-पत्नी ने अश्रुवारि से श्रीचरणों का पुनः पाद-प्रक्षालन किया तथा अपने आपको कृतार्थ किया।

(14)

असम क्षेत्र में कछार में एक बार भारी अकाल पड़ा। वर्षा न होने के कारण खेतों की फसल नष्ट हो गयी। पशु-पंखी बिना चारा-पानी मृतप्राय होने लगे। मनुष्यों के लिए भी पीने का पानी मिलना कठिन होने लगा। यहाँ के निवासी क्षुधा एवं तृष्णा से व्याकुल होकर नगर-ग्राम छोड़कर जाने लगे।

एक पंडित भी अपने परिवार सहित स्थलांतर के लिए तत्पर हुए। वे प्रसिद्ध एवं ज्ञानी पंडित थे तथा अपने आचरण से दूसरों को सन्मार्ग पर चलाने वाले थे। क्षुधा-तृषा के कारण उनके बच्चे मृत्यु के आधीन हो गये। कठिन काल ने उन्हें ग्रसित करके विकल कर दिया। अतः जीवन से हारकर मृत्यु की इच्छा से वे काशी की ओर जाने लगे।

पंडित ने अपनी पत्नी से कहा कि इस लोक में कल्याणदायिनी, कर्मबन्धन को नष्ट करने वाली ज्ञानदात्री तथा मोक्ष को प्रकाशित करने वाली काशी ही है अतः वहाँ जाकर इस व्यर्थ जीवन का अन्त कर देना चाहिए। वे जानते थे कि हजारों वर्षों से इस नगरी की महिमा और गंगाजी का गौरव विश्व में व्याप्त रहा है तथा वह पवित्र सप्तपुरियों में से एक है। यहीं पर भगवान विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग के मूल मन्दिर की परम्परा, अतीत के इतिहास के अज्ञात युगों तक चली गयी है। अतः ब्रह्मस्वरूपा गंगाजी में स्नान कर भगवान विश्वनाथ के दर्शन से कृतार्थ होकर पवित्र पुरी में आत्मघात करने घाट पर जाकर बैठ गये।

गंगाजी के पवित्र तट पर विप्र दम्पति को अत्यन्त विकल बैठे देख काशी के ब्राह्मणों ने उनसे पृच्छा की तथा समझाकर आत्मघात करने से रोकना चाहा। वे मिलकर दोनों को अपने घर ले गये परन्तु दोनों के मन में अशांति बनी ही रही। पुनः-पुनः वे आत्मघात करने के लिए उत्सुक होते रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंडितों ने सोचा कि अविद्या रूपी विष लता आत्महत्या की वृत्ति से सिंचित होकर इस प्रकार दोनों में फैल गयी है कि उसे उखाड़कर विद्या रूपी सोम लता को रोपकर अमिय तत्व के पवित्र जल से सींचना किसी अलौकिक महापुरुष का ही काम है। अतः कुछ विद्वान दोनों को लेकर श्रीमठ में आये।

स्वामीजी निजकुटीर में पूजन में मग्न थे। पूजन की समाप्ति पर शंखनाद हुआ। बात बन गयी। अमृतनाद जैसे ही उनके कानों से हृदय तक पहुँचा, उनकी टिमटिमाती हुई जीवनज्योति प्रज्ज्वलित हो गयी। मोह-मत्सरादि शलभ (पतंगे) उसमें नष्ट हो गये। उन्हें स्पष्ट ज्ञान हुआ कि पूर्वजन्म में किसी दूसरे के स्वत्व पर अपना अधिकार करने की कुचेष्टा करने का कटुफल इस जन्म में वे भोग रहे थे। कुछ ही समय में वे सचेत हुए।

उसी समय महाप्रभु ने परदा खोल दिया। विप्र दम्पति को धन्य भाग्य से अलौकिक प्रकाशपूर्ण दर्शनलाभ मिला। उन्होंने श्रद्धा कुसुम को स्वामीजी के चरणों में निवेदित करते हुए प्रणाम किया।

मन्द मधुर हास्य सहित जगद्गुरु ने उन्हें सप्रेम बताया, "हे वत्स ! जो दूसरों का भाग भक्षण करने से संकोच करता है और अपने ही भाग पर सन्तुष्ट रहता है वह प्राणी देवतुल्य है। वह मृत्यु को पार करके अवश्य अमृतत्व को प्राप्त करता है। इस शिक्षा को ऐसी युक्ति से हृदय में धारण करो कि जन्म जन्मान्तर तक याद रहे। रथ के चाक के समान कर्मों की पुनरावृत्ति से जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है। परन्तु

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तितः।
शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसंग॥

मोक्ष के चार द्वारपाल हैं; शम, विचार, सन्तोष तथा साधुसंग। अतः सत्संग करते हुए बाकी तीन की प्राप्ति करना ही मनुष्य जीवन का कर्तव्य है।"

विप्र के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। उसने शिक्षा को धारण करने की युक्ति भी कृपापूर्वक बताने के लिए प्रार्थना की।

अतः स्वामीजी ने उन्हें एक पुष्प दिया जिसे सूंघते ही उनकी इन्द्रियों की गति रुक-सी गयी। हृदय मन्दिर में निश्चिन्त बैठकर उन्होंने ध्यान देकर कर्म-ग्रंथि को भी देखा। उसे खोलने की युक्ति उन्हें स्वयं ही प्राप्त हो गयी।

नेत्र खुलने पर उन्होंने आचार्यप्रवर को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया तथा बारम्बार उनकी स्तुति करते हुए वहाँ से विदा हुए। अब उनका पुनर्जन्म हो चुका था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(15)

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की कीर्ति व तेज दिगदिगंत में व्याप्त हो गया था। धर्मकार्य में, ज्ञानमार्ग में, भक्तिमार्ग में, राजकाज में, योगमार्ग में, सभी क्षेत्र के विद्वान स्वामीजी को ही प्रमाण मानते थे। स्वदेशी-विदेशी, स्वधर्मी-विधर्मी, अपनी-अपनी आध्यात्मिक समस्याओं का निर्मूलन आचार्यश्री के चरणों में बैठकर किया करते थे।

स्वामीजी की प्रसिद्धि सुनकर दक्षिण भारत के प्रसिद्ध पाँच तत्वज्ञ श्रीमठ में आये। पाँचों दार्शनिक भारतीय तत्व की पाँच मुख्य धारणाओं के तत्वज्ञ थे। अपने-अपने मत के वे प्रबल समर्थक थे। लम्बे समय तक वादविवाद करने पर भी हार-जीत का निर्णय नहीं कर पाये थे। वे क्रमशः अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद तथा द्वैतवाद के समर्थक थे। शास्त्रार्थ करके थके हुए भाउजी शास्त्री अपने प्रतिद्वंद्वियों को लेकर यहाँ आये।

जब वे श्रीमठ पहुँचे तब सायंकालीन सत्संग समाप्त हो चुका था। लोग अपने-अपने घर जा रहे थे। शिष्य समुदाय निजकार्य में रत हो रहा था। आचार्यश्री निजगुफा में पहुँच गये थे। भाउजी अपने साथियों के साथ सीधे स्वामीजी की कुटीर के पास पहुँचे। श्री अनन्तानन्दजी ने उनका सन्देश स्वामीजी को दिया परन्तु कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। अतः उन्होंने आश्रम में भोजन आदि की व्यवस्था की परन्तु पाँचों ने बिना दर्शन वहाँ से न उठने का निश्चय कर लिया।

सूर्यास्त हो गया। धीरे-धीरे अँधेरा होने लगा। चन्द्रमा अपनी चाँदनी बिखेरने लगा। उस समय एक वृद्ध आश्रमवासी वहाँ आये तथा तत्वज्ञों से ऐसे-ऐसे प्रश्न करने लगे जिनके उत्तर उनमें से कोई भी न दे सका। अपनी बुद्धि पर गर्वोन्मत्त तत्वज्ञ कुंठित प्रतिभा को जगाने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु इसमें भी निष्फल हो जाने से नम्रता से उन्होंने वृद्ध को साष्टांग प्रणाम किया। वृद्ध ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "हे पंडितो! चारुमति वही है जो विचारधारा समुद्र समान विशाल रखे। आप सब यहाँ बैठे हैं परन्तु यतिराज के दर्शन नहीं होंगे, कहा नहीं जा सकता कि कब होंगे।" कहते हुए वृद्ध सज्जन हाथ में लिए दंड के सहारे चले गये।

उनके जाने के बाद सबको ध्यान आया कि उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि वे कौन थे? वे कुटीर के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे रहे।

धीरे-धीरे रात्रि हो गयी। चन्द्र का धवल प्रकाश गंगाजी के जल को चाँदी-सा चमकीला बना रहा था। अपने कार्य से निवृत्त होकर आश्रमवासी भी अपनी-अपनी कुटीरों अथवा कमरों में जाकर निद्राधीन होने लगे। परन्तु पाँचों तत्वज्ञ चौखट छोड़कर कहीं नहीं गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस दिन आधी रात को एक अपूर्व घटना घटी। एकाएक परदा खुला तथा भीतर से ऐसा प्रकाशपुंज प्रादुर्भूत हुआ कि सबकी आँखें चौंधिया गयीं। विस्मित होकर वे देखते रहे। जब सावधान हुए तो उनको अपने आसन पर स्थित जगद्गुरु का परम अलौकिक दर्शन हुआ। वे उठकर दौड़े तथा आत्म विस्मृतिपूर्वक उनके श्रीचरणों में गिर गये। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी।

जगद्गुरु ने सप्रेम उन्हें बिठाया तथा उनके आने का प्रयोजन जानकर सबको उनकी धारणाओं के अनुसार पृथक्-पृथक् प्रवचन किया। पंडितगण प्रवचन सुनकर वैसे ही चकित हुए जैसे शुकजी के प्रवचनों से ऋषिमंडल हुआ था। उनका भ्रम दूर हो गया। परन्तु ज्ञान का लोभ संवरण नहीं कर पाये। उन्होंने जगद्गुरुश्री से कुछ समय आश्रम में रुककर ज्ञानपिपासा तृप्त करने की आज्ञा माँगी। आचार्य-प्रवर ने उन्हें सम्मति दे दी।

उन्होंने स्वामीजी के प्रवचनों को लिपिबद्ध करके संग्रह किया जो अद्वैत अमृत-वर्षिणी, विशिष्टाद्वैत अमृतवर्षिणी, शुद्धाद्वैत अमृतवर्षिणी, द्वैताद्वैत अमृतवर्षिणी तथा द्वैत अमृतवर्षिणी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

उन गलिताभिमानी विद्वानों को सत्पात्र समझ स्वामीजी ने उन पर अद्भुत कृपा की। एक दिन एकादश भाष्यकारों सहित सूत्रकारों का आह्वान करके उन्हें गुफा में उचित आसन पर पधराया तथा पाँचों तत्वान्वेषियों को बुलाकर परदा खोल दिया।

उनको सबका परिचय देते हुए स्वामीजी बोले :

"प्रिय मुमुक्षुओ! भारतीय तत्वधारा के सर्वभाष्यकारों को आह्वान करके यहाँ बुलाया है—

(1) जो मध्य में बैठे हैं वे स्वयं ब्रह्मसूत्रकार महर्षि बादरायण व्यास हैं।

(2) व्यासजी के आगे उनके पुत्र परमहंस शुकदेवजी विराजमान हैं जिन्होंने 'वेदांतसार मीमांसा' लिखा है।

(3) धूनी के पास जगद्गुरु श्री बोधायन के शिष्य सारण हैं। अद्वैत और विशिष्टाद्वैत के मध्यवर्ती सिद्धान्त प्रतिपादक जिन्होंने 'सूत्र भाष्य' लिखा।

(4) अद्वैतवादी जगद्गुरु श्री शंकराचार्यजी दक्षिण भाग में विराजमान हैं जिन्होंने 'शारीरिक भाष्य' की रचना की।

(5) विशिष्टाद्वैत (विष्णुपरक) का प्रतिपादन करने वाले 'श्री भाष्य' के रचयिता जगद्गुरु श्री रामानुजाचार्य (लक्ष्मणाचार्य) वामभाग में विराज-मान हैं।

(6) विशिष्टाद्वैत (शिवपरक) के बोधक तथा 'ब्रह्म मीमांसा भाष्य' के कर्ता श्रीकंठ शिवाचार्यजी उभय पंक्ति में पूर्व में मुँह किये हुए हैं।

(7) पश्चिम की ओर मुखासीन श्री विज्ञान भट्टजी हैं जिन्होंने किसी भी देव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष के प्राधान्य से हीन जड़ विशिष्टाद्वैत मूलक भाष्य लिखा।

(8) श्री शुक्राचार्यजी के समीप पृथक् बैठे हुए श्री भास्कराचार्यजी जिन्होंने किसी भी इष्ट के प्राधान्य से हीन मात्र जड़ द्वैतवाद पर भाष्य लिखा।

(9) द्वैतवाद (शिवपरक) सिद्धान्तों के दर्शक तथा 'श्रीकर भाष्य' के कर्ता श्रीपति आचार्यजी उनके पास बैठे हैं।

(10) द्वैतवाद (विष्णुपरक) सिद्धान्तों के प्रतिपादक श्री माध्वाचार्यजी उनके पास बैठे हैं।

(11) शुद्धाद्वैत के प्रतिपादक तथा कंठस्थ भाष्य के भाषण लिखने वाले श्री विष्णुस्वामी अर्थात् श्री वल्लभाचार्यजी भी यहाँ उपस्थित हैं।

(12) द्वैताद्वैत मूलक सरल सिद्धान्त प्रदर्शक 'वेदांत पारिजात सौरभ' भाष्य के रचयिता श्री राधाकृष्ण के पूजक श्री निम्बार्काचार्य हैं।"

पाँचों तत्वान्वेषियों का जीवन धन्य-धन्य हो गया। प्रत्येक को उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। आचार्यसम्राट की कृपा से वे भाष्यकारों के दर्शन करने के सद्भागी बने। यह पुनीत प्रसंग उनके स्मृतिपट पर अंकित हो गया।

पपीहे की तरह श्यामघन पर एकटक दृष्टि लगाये हुए जिज्ञासुओं के सन्तोषार्थ त्रिकालज्ञ तथा गुप्त से भी गुप्त रहस्यों को सैद्धान्तिक रूप देकर प्रकाश में लाने वाले परम आदरणीय महर्षि बादरायण व्यासजी ने उद्बोधन किया :

"हे पंडितो ! साधना और आराधना की गुप्त क्रियाओं में सबसे सूक्ष्म ध्येय का निश्चय करना होता है। यह निश्चय पूर्व जन्मार्जित साधनाओं के संस्कार पर निर्भर होने के कारण भिन्न-भिन्न हुआ करता है। उस भिन्नता को एकता में परिणत करने वाली ईश्वरीय वृत्ति ने वेदज्ञ ऋषियों के अन्तःकरण में एक ही ध्येय के पाँच प्रकार निश्चित किये हैं। भावनाएँ चाहे जितनी भी हों, इन पाँचों प्रकारों में उनका समावेश हो ही जाता है।

हे जिज्ञासुओ ! मैंने अपने पाँच शिष्यों को पृथक्-पृथक् एक-एक मार्ग का उपदेश दिया था और ध्येय की प्राप्ति पर उनके संशयों को भी दूर कर दिया था। वे जानते हैं कि पाँचों मार्ग अन्त में एक ही स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। परन्तु उनके द्वारा प्रचारित विचारों एवं धारणाओं से अज्ञानी पंडित संशय में पड़े हुए हैं।

जिस प्रकार किसी उत्सव में एकत्रित जनता का कोलाहल दूर से तो अस्पष्ट ही सुनायी देता है परन्तु वहाँ पहुँचने पर अस्पष्टता का लोप होकर सर्व व्यापार स्पष्ट दिखायी देने लगता है उसी प्रकार ध्येय का जब तक सान्निध्य प्राप्त नहीं हुआ तब तक ही तर्क और मीमांसा की गड़बड़ी में भटकना पड़ता है। परन्तु जो ज्ञानी पुरुष इस वाक्जाल से दूर रहकर धीरे-धीरे उस ध्येय तक पहुँच जाते हैं, उनके सामने सत्य स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः हे प्रेमियो ! आप सबको वादविवाद से विरत होकर गुरोपदिष्ट ध्येय की ओर बढ़ते जाना चाहिए और गुरुवाक्य में अटल विश्वास रखना चाहिए। तभी इस अलौकिक प्रयत्न में सिद्धि लाभ की संभावना है, अन्यथा यह अत्यन्त दुष्कर मार्ग है।"

महर्षि व्यास ने आशीर्वाद दिये तथा सब अन्तर्ध्यान हो गये। कुटीर में मात्र जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्यजी तथा अलौकिक प्रकाश ही शेष रहा। जगद्गुरुश्री ने परदा बन्द कर दिया।

पाँचों पंडित अलौकिक सृष्टि से पुनः लौकिक सृष्टि में आ पहुँचे। उन्होंने आचार्यप्रवर से श्री वैष्णवी दीक्षा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की जो स्वीकार्य हुई।

कुछ समय दीक्षा लेकर आश्रम में रुके तथा गुरुवाक्य में श्रद्धा रखते हुए गुरोपदिष्ट ध्येय की ओर बढ़ने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न करते रहे। तदनन्तर गुरुआज्ञा लेकर स्वस्थान को चले गये।

(16)

काशी के पास धुरहठा नामक एक गाँव में एक विप्र रहते थे। दूधनाथ नामक इस विप्र को जगद्गुरुश्री के प्रति अनन्य भक्ति-भाव था। श्री वैष्णवी दीक्षा प्राप्त कर वे सद्भागी बने थे। समय-समय पर सत्संग में भी वे आते रहे थे।

एक बार यतिराज ने कहा, "पहले माता-पिता की पूजा करके मनुष्य जिस धर्म का साधन करता है, वह सैकड़ों यज्ञ तथा तीर्थयात्रा आदि से भी अधिक उत्तम है।

सर्वतीर्थमयी माता, सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन् पूजयेत् ॥

माता-पिता ही धर्म है। उनके प्रसन्न होने से सर्व देवता प्रसन्न होते हैं। जो नीच पुरुष अपने माता-पिता की आज्ञाओं का आदर नहीं करता, उसका समस्त धर्मकार्य भी विफल होता है। अतः गृहस्थ पुरुषों के लिए माता-पिता की सेवा ही उत्तम धर्म है। मातृऋण अथवा पितृऋण के कर्तव्यों को छोड़कर किये गये यज्ञ, तप, दान, पूजन का कोई लाभ नहीं होता।"

विप्र दूधनाथ अपने माता-पिता की निष्ठापूर्वक सेवा करने लगे। उनकी आज्ञा से पूर्व ही उनके सर्व आवश्यक कार्य वे पूर्ण कर देते थे। इस पुनीत सेवा में संलग्न रहना ही उनका आनन्दप्रद कर्तव्य बन गया था। उनकी मातृ-पितृ भक्ति की चर्चा सर्वत्र व्याप्त हो गयी थी तथा लोग उन्हें श्रवण की उपमा देने लगे थे। स्वामीजी विप्र की निष्ठा देख प्रसन्न थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार पूर्व कर्मों के विपाक से दूधनाथ रोगग्रस्त हो गये, इस अवस्था में भी वे गुरुदेव का स्मरण करते रहे। उनके माता-पिता की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। पुत्र की मृत्यु को निकट देख वे आक्रंद करने लगे। उनको आक्रंद करते देख विप्र ने कहा :

"हे देवतुल्य ! मुझे अपनी मृत्यु का कोई दुःख-भय नहीं है। परन्तु आपकी सेवा से वंचित होना ही मुझे असह्य लग रहा है।" इतना कहकर अन्तिम समय आ गया देख विप्र ने सद्गुरुदेव का तीव्रता से स्मरण किया तथा आँखें बन्द कर लीं। उसकी साँस मन्द हो गयी थी। यह देख माता-पिता ने करुण विलाप शुरू किया।

अन्तर्यामी स्वामीजी ने उसी समय एक शिष्य के हाथ दूधनाथ के घर चरणोदक भेजा। अन्तिम श्वाँस लेते हुए दूधनाथ के मुँह में चरणोदक गिरते ही वह जी उठा। माता-पिता के आनन्द की अवधि न रही। दोनों ने स्वामीजी की पुनः-पुनः स्तुति की तथा अपने पुत्र को गले लगा लिया।

विप्र की मरणासन्न स्थिति का समाचार सुनकर एकत्रित हुए लोगों को भी इस घटना से अपार आश्चर्य हुआ। वे भी जगद्गुरु की जयनाद में सम्मिलित हो गये।

धीरे-धीरे दूधनाथ स्वस्थ हो गये। माता-पिता ने पुत्र से स्वामीजी के अलौकिक दर्शन की पुनः इच्छा प्रकट की। उन्हें लेकर दूधनाथ काशी श्रीमठ पहुँचे। साथ ही गाँव के लोग भी थे। सबको जगद्गुरुश्री ने दर्शन देकर कृतार्थ किया तथा केले का प्रसाद भी दिया।

महामुनि के दर्शन से प्रभावित माता-पिता तथा अन्य साथी भी स्वामीजी के परम भक्त बन गये।

(17)

देवों के समान रूप वाली कश्मीर की षड्विद्वन्मण्डली सर्वत्र शास्त्रार्थ करती हुई विद्या के मद में चूर विचरण कर रही थी। स्वामीजी की अद्वितीय प्रशंसा सुनकर विद्या के मद में चूर सुधीगण निःशंक होकर मस्त दिग्गज के समान दिग्विजयी होकर आनन्दकानन काशी में स्वामीजी के दर्शनार्थ पधारे।

प्रातःकाल श्रीमठ में पहुँचने पर उन्होंने देखा कि जगद्गुरु स्वयं सत्संग में उपस्थित हैं एवं सत्संग पूर्ण होने ही वाला है। जिस प्रकार चन्द्रमा के तेज का सूर्य के उदय होने पर ह्रास होता है वैसी ही दशा विद्वन्मण्डली की हो गयी।

लोकोत्तर तेज को धारण करने वाले महामहिम श्री यतिराज का दर्शन होते ही वे अत्यन्त प्रभावित हुए तथा उनका मद उतरने लगा। दर्शन मात्र से आत्म-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभव की उस सीढ़ी पर पहुंच गये कि यह भी भूल गये वे यहाँ किसलिए आये हैं। बहुत प्रयत्न करने पर पूर्वजन्मों की भूली हुई वृत्तियों की तरह केवल संस्कार मात्र से आने का हेतु अस्पष्ट स्मरण हुआ। विद्या मद पर लज्जित वे जगद्गुरु के श्रीचरणों में गिर गये तथा प्रणाम करते हुए सत्संग में बैठ गये।

सत्संग की समाप्ति पर उनमें से एक विद्वान पण्डित खड़े हुए। वे स्वामीजी के सम्बन्ध में उन्नत, श्लिष्ट आदि गुणों से गीर्वाणी भाषा में एक प्रशस्ति बनाकर लाये थे। उन्होंने कविता सुनायी जिसका रूपान्तर निम्न है :

"हे दीनों के नाथ परम यति प्रभु ईश्वर।
गगन व्याप तव चरित महिम हे देव कृपाकर॥
कंटक परुदुष्टतादलि सज्जन सुखकारक।
वेदमार्ग उद्धारक जन पातित्य निवारक॥
करुणामय विज्ञानमय प्रभु दीनबंधु जनदुःख हरन।
करिय दास निज बोधयुत नाथ चरित तारन तरन॥
गर्व भयो गुरु को देवन के अति जब भारी।
मम समान विद्वान नाहि कोई नर तनु धारी॥
तव चरणामृत पान करत हे सुरपति बल्लभ।
गर्व गलित हो गये ज्ञान सुनि प्रभु अति दुर्लभ॥
कीजिये शिक्षित नाथ मोहि बार बार कहे देव गुरु।
अति अपार संसार यह दास जानि प्रभु कृपा कुरु॥
केवल रात्रि आनन्दित कर लोकन सुख दाता।
मर्त्य लोक केवल विलास को तेहि तम त्राता॥
तीन लोक के मध्य नाथ तव कीर्ति विलासिनि।
सब देखन मन क्षोभ अति सुधा सुधाकर मान कर॥
शशि समान शशि भानु सम भानुहि जिमि।
अग्नि समान अग्नि आप सम आपुहि तिमि॥
दुख दावानल तप्त होत शीतल दर्शन कर।
तर दुस्तर भव सिंधु कृपा तव हे श्री यतिवर॥
नाथ चरणस्तंभ जब बंधन को अज्ञान गज।
वृथा विलोकत लोक सब देवन विष्णु महेश अज॥
जय हे जय यतिराज मोहधन प्रबल प्रभंजन।
चिद् विलास सुखरुरु जयति जय जनमन रंजन॥
कुटिल काल कलिकाल सर्पविष बाधित जो जन।
गारुड़ि मंत्र महान वचन तव तेहि को भगवन॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपदेश सिंह प्रभु गवरो सज्जन हिम कानन चरत ।
फिरत महानिर्भय भया पाषंडवाद गज बध करत ॥
दीनबंधु सुखसिंधु जगतगुरु प्रभु जगदीश्वर ।
शत्रुहीन सिद्धांत करण प्रति वादि भयंकर ॥
ऊर्ध्वपुंड्र लखि भगहिं भायवश वादि तत्पर ।
शूल न होय कराल पलायन कीजं सत्वर ॥
त्रिदंड नाथ को देखकर कलि कराल प्रभु विकल अति ।
दास दीन-जन हम सभी देहु कृपा कर विमल मति ॥

कविता और भी लम्बी थी। लोग सुनते ही रहे। प्रशस्तिकारों ने अपनी काव्य शक्ति का परमोत्तम परिचय दिया था। स्वामीजी रूपी सुधाकर निष्कलंक एवं निर्मल बताकर कहा था कि वस्तुतः जगद्गुरु शाश्वत हैं, तुरीयावस्था में ही सदा लीन रहते हैं। बौद्ध, जैन, पारसी आदि समस्त आस्तिक धर्म और सम्प्रदायों पर आपने अनन्त उपकार किये हैं तथा धर्म की दृष्टि में सब सत्य ही है ऐसा आचरण करके उन्होंने सिद्ध किया है। लोग भी यह काव्य सुनकर बहुत प्रसन्न हो गये। पण्डित कविता समाप्त करके बैठ गये।

परन्तु आचार्यश्री ने उस विशिष्ट पद का कर्मधायत्य परक अर्थ करके अपने संकोच को प्रकट किया तथा कहा कि यह प्रशस्ति आपने ठीक ही परमात्मा के लिए बनायी है। जगद्गुरु की सरलता एवं महानता देख पण्डितगण और भी संकुचित हो गये।

यतिराज ने देखा कि पण्डितगण पूर्ण रूपेण गलिताभिमानी हो गये हैं तथा वे बुद्धिमद की व्यर्थता को समझ चुके हैं तो उन्होंने उनका संकोच दूर करना चाहा। उन विद्वानों को एक-एक नारियल, पटुका तथा विचित्र मेवा देकर सबका सत्कार किया। परन्तु पण्डितगण अधिकाधिक संकुचित होने लगे।

उनके संकुचित हृदय को प्रसन्न करने को आचार्यश्री मन्द स्मित सहित सप्रेम बोले :

"हे-विद्वानो ! प्रज्ञावान जब श्रुति और शास्त्रों की विवेचना कर लेते हैं तब अपना हृदय टटोलते हैं। पठन-पाठन द्वारा जो जानकारी उन्हें प्राप्त हुई है उसमें कितनी मस्तिष्क में ही रह गयी तथा कितनी हृदय तक पहुँचकर अनुशीलन-परिशीलन में, आचार-विचार में, वर्तन-व्यवहार में प्रकट हो सकी—यह देखते हैं।

वे सोचते हैं कि उन्हें क्या मिला ? यदि उनको वास्तव में कुछ प्राप्त हो गया है, तब तो हृदय के उस रत्न पर यत्नपूर्वक विचरने लगते हैं। नहीं तो व्यर्थ ही समय नष्ट करने पर पछताने लगते हैं।

हे पण्डितो ! आप सब ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने आमनाय सिंधु को मथकर चौदह नहीं तो कुछ तो अमूल्य रत्न अवश्य पाये होंगे। रत्नों के यत्न के निमित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकान्त में मननशील भी हुए होंगे।"

विद्वानगण विचारमग्न हो गये। उन्होंने सोचा, ऐसा जानकार मिलना भी तो कठिन है। अतः सबने क्रमशः अपने रत्नों की हृदय खोलकर परीक्षा कराई। उन रत्नों में पाँच रत्नों को दिव्य जानकर जगद्गुरुश्री ने बहुमूल्य बताया तथा उन पाँचों को पारखी तथा जौहरी बना दिया।

वे पाँच रत्न इस प्रकार थे :

(1) देवता वा प्रयोजयेत्।

(2) तद्विपरीतः श्रेयान त्यवत विज्ञानात्।

(3) यतः प्रवृतिः प्रसूता पुराणी।

(4) चतुर्थे मन्यन्तेस आत्मस विज्ञोयः।

(5) ताश्च सबीजः समाधिः।

तदनन्तर महाप्रभु ने तुमुल स्वर से शंखध्वनि की। जिससे उन पाँचों तत्व-अन्वेषियों को ऐसा बोध हो गया कि वे कृतकृत्य हो गये और शेष पण्डितों को तथा सत्संगियों को पात्रतानुसार बोध हुआ। कोई भी वंचित न रहा।

पण्डित समुदाय कुछ दिन आश्रम में रुका तथा सत्संग लाभ लिया। जब वे पुनः अपने देश जाने को तैयार हुए तब देशकालानुसार विदाई के प्रसंग पर चक्र-चूड़ामणि यतिराज ने उन्हें चार उपदेश दिये। उन्होंने कहा :

"हे जिज्ञासुओ ! यह चार बातें सदैव स्मरण रखना।

(1) धर्म नीति में कुशल पण्डित विष्णु का हाथ है अतः धर्म में रति तथा परमार्थ में मति सदैव शुभ गतिदायिनी बनती है।

(2) समाज रक्षा एकांतिक विचार से ही सम्भव है।

(3) दुराग्रह, दंभ और दर्प रूपी दानवों का नित्य नाश करते रहना चाहिए।

(4) माया रूपी विष न पीकर अमृत ही पीना चाहिए।"

महाप्रभु के इस उपदेश को हृदय में धारण करके विद्वत्मण्डली जगद्गुरुश्री के आशीर्वाद सहित आश्रम से विदा हुई।

अपने स्थान में जाकर जगद्गुरु के उपदेश को पण्डितों ने चरितार्थ एवं फलितार्थ किया। दंभ, दुराग्रह छोड़कर धर्म में रति तथा परमार्थ में मति रखते हुए समाज सेवा में वे प्रवृत्त हो गये।

(18)

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को 'गंगा दशहरे' का पावन पर्व था। आज के दिन ब्रह्मलोक से माँ भगीरथी का शिवजी की जटा से भूमण्डल पर अवतरण हुआ था।

भारतीय संस्कृति में अनादि काल से गंगाजी को अत्यन्त पवित्र एवं पुण्यफल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दायिनी माना गया है। क्योंकि गंगाजी के रूप में साक्षात ब्रह्म ही द्रवीभूत होकर प्रवाहित हो रहे हैं। कलि काल में तो भगवद् नाम एवं गंगासेवन ही सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वोत्तम साधन है। शास्त्र कहते हैं :

गतिं चिन्तयणां विप्रास्तूर्णं सामान्यजन्मनाम् ।
स्त्री पुंसोमोक्षणाद्यस्माद् गंगा पाप व्यपोहति ॥

अविलम्ब सद्गति का उपाय सोचने वाले सभी स्त्री-पुरुषों के लिए गंगाजी ही एक ऐसा तीर्थ है, जिसके दर्शन मात्र से सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं।

गंगाजी की महिमा को जानने वाले अनेक साधु-सन्त तथा गृहस्थ आज गंगाजी में स्नान करने दूर-दूर से आये हुए थे। काशी का गंगाघाट भक्तों की भीड़ से सजीवन हो उठा था। कोई स्नान कर रहा था, कोई पूजन-अर्चन-तर्पण आदि कर रहा था। सर्वत्र गंगाजी की स्तुति सुनायी दे रही थी। कोई कह रहा था :

नमामि गंगे तव पाद पंकजं, सुरासुरैं, वन्दित दिव्यरूपम् ।
मुक्ति च भुक्ति च ददामि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम् ॥

तो कोई गा रहा था :

गांग वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम् ।
त्रिपुरारि शिरश्चारी पापहारि पुनातु माम ॥

सर्वत्र भीड़ जमी हुई थी। चारों तरफ 'हर-हर गंगे ! हर-हर गंगे' की ध्वनि सुनायी दे रही थी। स्नानादि से निवृत्त होकर सबको श्रीमठ में पहुँचना था क्योंकि आज वहाँ बृहद् भण्डारे का आयोजन किया गया था।

धीरे-धीरे सब श्रीमठ में एकत्रित होने लगे। संसारी, संन्यासी, नर-नारी, पण्डित-मूर्ख, आस्तिक-नास्तिक तथा सर्व सम्प्रदाय के अनुयायी बिना किसी भेद-भाव यहाँ प्रसन्न चित्त से पधारे थे। यहाँ न सम्प्रदाय का भेद था, न वय भेद, न अवस्था भेद और न ही लिंग भेद था। सर्वत्र सर्व जीवों में परमात्मा का दर्शन करते हुए सबका सप्रेम स्वागत किया जाता था। सबको महाप्रसाद के लिए आमन्त्रण भी था।

समय होने पर सर्वेश्वर श्री रघुरायजी तथा जगदम्बा श्री जानकी के मन्दिर में भोग लगाया गया। माँ भगवती गंगाजी को भी नैवेद्य अर्पित किया गया। उपस्थित जनता ने हर्षोल्लास सहित भगवान की एवं गंगाजी सहित जगद्गुरु की जयजयकार की।

तदनन्तर एक ओर समस्त संन्यासी समाज तथा दूसरी ओर गृहस्थ समाज को बिना किसी भेदभाव एक पंक्ति में प्रसाद सेवन कराया गया। भण्डारे के बाद सबके बीच एक वृक्ष के नीचे एक पत्थर पर जाकर महाप्रभु विराजमान हो गये। लोगों ने पुनः उनका जयघोष किया। स्वामीजी प्रेमपूर्ण नेत्र से उन सबको आशीर्वाद देते हुए बोले :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"आज भगवान ने सहस्र मुखों से भोजन किया है। अघाकर भोजन किया है तथा अपूर्व आनन्द लिया है। इस आनन्द को भूल पाना कठिन है। भगवत्-प्रसाद की महिमा अपरम्पार है। प्रसाद की वृत्ति ही जाति-पाँति और बड़ाई की जड़ अहंकार को नष्ट करने वाली है।

ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो अहंकार रूपी सर्प को पास रखकर आध्यात्मिक जीवन से दूर रहेगा? भगवान का भक्त तो ऐसा नहीं कर सकता। शरणागति तथा समर्पण ही एकमात्र अहंकार को नष्ट करने का साधन है।

हे प्रेमियो! आध्यात्मिक स्वतन्त्रता और सामाजिक बन्धन के बीच की स्थिति भयावह, शोचनीय और दुखदायी है। अध्यात्म का मार्ग शूरवीरों का, बलिदानों का है। अपना शिर अपने हाथ से काटकर हथेली पर रखकर चलने वाले ही उस दयामय की चौखट तक पहुँचते हैं।"

उपदेश सुनकर तृप्त हुए लोगों में एक वृद्ध भी थे। वे भट्टारकजी गद्गद् कण्ठ से बोले :

"हे नाथ! आज वृद्धावस्था में मुझे महाप्रसाद की महिमा का परिचय हुआ है। मेरा तो सारा जीवन ही भगवत् चरणों से विमुख व्यतीत हुआ है। इस पश्चात्ताप को बिना सन्त कृपा कौन मिटा सकता है? अतः आप कृपा कीजिये तथा इतना साहस दीजिये कि मैं नंगी तलवार भाँजता हुआ शत्रु के गढ़ में घुस जाऊँ और उन्हें मारकर ढेर कर दूं।"

यतिराज ने त्रिभुवन मोहक मधुर स्मित से कहा, "तलवार तो आपके पास है ही नहीं। युवावस्था में रसना-उपस्थ के संयम से प्राप्त आत्मसंयम रूपी तलवार तो आपने कुंठित कर दी है। जीवन शक्ति क्षीण होने से जो धैर्य आपको प्राप्त हुआ था वह भी तो रक्षित नहीं रहा। तो कैसे और क्या करोगे? परन्तु सन्तों का आश्रय लेने वाले निराश नहीं होते। आपकी इच्छा परिपूर्ण की जायेगी।"

भट्टारकजी धन्य हो गये। जन समुदाय टकटकी लगाकर दर्शनामृत का पान करता रहा। आज बड़ा आनन्द मिलता था। पाप-मोचक, पुण्य-दर्शन के आनन्द को छोड़ना कोई नहीं चाहता था।

जगद्गुरु भी सबका भाव देखते हुए वहीं बैठे रहे। कुछ समय पश्चात् एक सज्जन ने सविनय पूछा :

"हे आप्तकाम! मेरी स्त्री शान्ति जब से स्वर्ग चली गयी है तब से नाना प्रकार के दुःख भोग रहा हूँ। आप कृपा करके उसे पुन. यहाँ बुला दीजिये अथवा मुझे वहाँ भेज दीजिये।"

यतिराज उनकी बातों का मर्म समझते हुए बोले :

"हे वत्स! तुम्हारी स्त्री शान्ति तो स्वर्ग में भी तुम्हारे नाम से रो रही है। वह तो तुम्हारे पास आना चाहती है परन्तु तुमने उसके वासस्थान मन को अशुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर दिया है। उस वासस्थान को उपयोगी द्रव्यों और सुगन्धित वस्तुओं से शुद्ध करो—सदाचार एवं सद्गुणों से उसे सजाओ तब वह अवश्य आयेगी।"

तदनन्तर एक भक्त झिन्नु खड़े हुए तथा हाथ जोड़कर बोले .

"हे भक्तवत्सल ! जो सुख अभी सबको भोजन प्रसादी में मिला है, वह क्या दूसरे भण्डारे में भी मिल सकता है ? इस अवर्णनीय आनन्द का रहस्य क्या है ?"

स्वामीजी ने प्रेमार्द्र नेत्रों से मन्द स्मित सहित कहा :

"परमात्मा द्वारा स्वीकृत भोजन-प्रसादी में इस प्रकार का आनन्द होना स्वाभाविक ही है। जिस प्रसादी के मूल में श्रद्धा है, मध्य में सखाभाव अथवा समानता का व्यवहार है, और अन्त में सत्कार है उसमें अवश्य आनन्द मिलेगा।

भगवत् प्रसादमयी वृत्ति अहंकार का नाश करती है। अहंकार का अभाव ही आनन्द का मूल हेतु है। अहंकार के अभाव में वहाँ परमेश्वर की प्रतिष्ठा होती है, जो पंक्ति में बैठकर पाने वालों की जिह्वा पर विराजमान होकर भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करके तृप्त होते हैं। इस आनन्द का रहस्य परमात्मा की तृप्ति ही है।"

कुछ देर बैठकर 'जय श्री राम' कहते हुए स्वामीजी उठकर निजगुफा में चले गये। परम आनन्द से उल्लसित जनता पुनः-पुनः स्वामीजी के जयजयकार के नारे लगाती हुई क्रमशः विदा होने लगी। सर्वत्र आनन्द की चर्चा होने लगी। सब आश्रमवासी भी अपने-अपने कार्य में लगने लगे।

सायंकाल एक महिलाओं का समूह आया। उनके साथ एक बच्चा भी था। श्री अनन्तानन्दजी के कहने पर बाहर ही से स्वामीजी से उन्होंने प्रार्थना की, क्योंकि बच्चे में बेटे-बेटी के कोई चिह्न उदित नहीं थे। स्वामीजी ने बच्चे को कभी भी लवण न देने की बात कहकर आशीर्वाद देकर विदा किया। कुछ ही समय में महिलाओं ने अपनी इच्छापूर्ति के चिह्न देखे। स्वामीजी को सदैव याद करती हुई वे श्रद्धाकुसुम चढ़ाती रहीं।

(19)

सायंकालीन सत्संग का समय हो रहा था। लोग धीरे-धीरे एकत्रित होने लगे थे। आज रैदासजी जल्दी आ गये थे अतः लोगों ने उनसे भजन सुनाने का आग्रह किया। किसी ने ढोलक उठायी तो किसी ने मंजीरे। रैदासजी ने शुरू किया :

चल मन ! हरि चटमाल पढ़ाऊँ।
गुरु की साटी, ज्ञान का अच्छर, बिसरै तो सहज समाधि लगाऊँ ॥
प्रेम की पाटी, सुरति की लेखिनी, र-रौ म-मौ लिखि आँक लखाऊँ ॥
जेहि बिधि मुक्त भये सनकादिक, हृदय बिचार प्रकास दिखाऊँ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

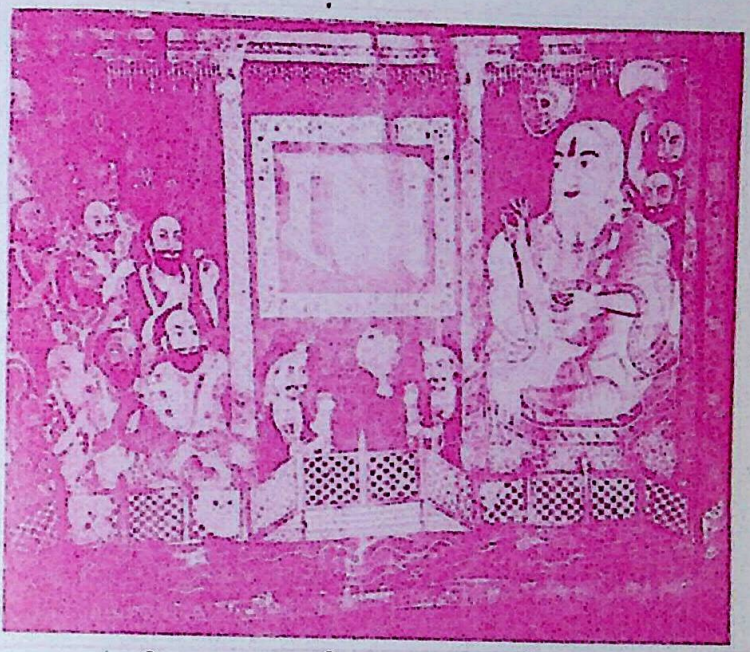

श्री रामानन्दाचार्य जी प्रवचन करते हुए
(श्री रामजन्मभूमि—श्री अयोध्या जी में 100 वर्षों से भी अधिक समय से सुपूजित चित्र)

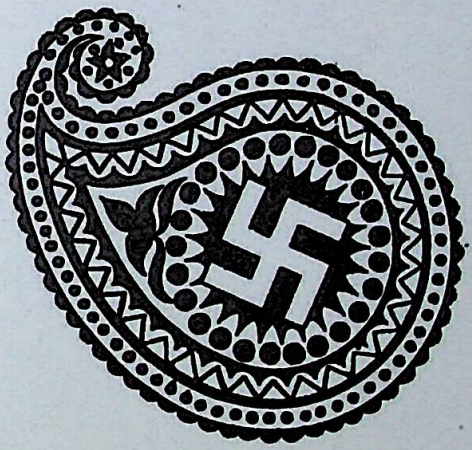

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कागद कँवल मति ससि करि निर्मल, बिन रचना निस दिन गुन गाऊँ ।।
कह रैदास राम भजु भाई, सन्त साखि दे, बहुरि न आऊँ ।।

रैदासजी के सुरीले कण्ठ से भजन सुनते सब प्रसन्न हो गये थे। अब तो सत्संग में मुसलमान, जैन, फकीर, बौद्ध, पारसी तथा षड्दर्शन के अनुयायी भी नित्य आते थे।

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने भी बहुत समय से उदारतापूर्वक परदा हटा दिया था। पूजन का समय छोड़, सब समय सबको दर्शन मिलता था। जगह-जगह से आर्त अर्थार्थी, जिज्ञासु भक्त एवं सिद्ध महात्मागण दर्शन के लिए आते थे।

समय होने पर महाप्रभु सत्संग वाटिका में पधारे। लोगों ने स्वामीजी की जयजयकार की। उनका धीर गंभीर परन्तु प्रसन्न वदन अलौकिक आभा से तेजोदीप्त था। हृदय का प्रेम नेत्र द्वारा बहकर लोगों को आप्लावित कर रहा था। श्वेत जटाजूट एवं श्वेत वस्त्र पुराण रचयिता भगवान बादरायण व्यास की स्मृति दे रहे थे। मुखमण्डल पर मधुर स्मित सदैव सबको आकर्षित करके सहज ही झुकने को विवश करता था।

एक जिज्ञासु ने योगमार्ग सम्बन्धी एक प्रश्न पूछा। प्रत्युत्तर में स्वामीजी ने कहा :

"हे वत्स ! छाती और मस्तिष्क को एक सीध में साधकर हृदय के हाट में प्रवेश करना चाहिए। वहाँ सब्जी-पत्ते बेचने वाले तो बहुत होते हैं, परन्तु हीरा के हेरने वाले सीधे जौहरी बाजार में ही जाते हैं और मणि-माणिक की छानबीन करके अच्छे-अच्छे सौदे करते हैं। तदनन्तर सौदे की निकासी और तुलाधार से हीरे की जाँच कराके सच्चा हीरा ही खरीदते हैं।"

कुछ देर रुकते हुए उन्होंने विनोद किया :

"हाँ, भाई ! एक हीरा हमें भी चाहिए। लेते आना और कचहरी के अध्यक्ष से जाँच करवाते आना।"

इस विनोद पर सब संकुचित हो गये। कुछ भक्त स्वामीजी की गूढ़ भाषा को न समझ सके। उनके पूछने पर जगद्गुरुश्री ने पुन. स्पष्टीकरण करते हुए कहा :

"साधना के समय छाती और मस्तिष्क को सीधा रखकर बैठना चाहिए तथा हृदय में ध्यान केन्द्रित करना चाहिए अर्थात् अन्तर्मुखी बनना चाहिए। निम्न प्रकार के इन्द्रियगत विचार करने वाले बहुत होते हैं परन्तु साधक को सत्कर्म तथा सद्विचार करके भगवत् नाम रूपी मणि तथा आत्मतत्व रूपी हीरे-जवाहरात का चिन्तन करना चाहिए। हृदय स्थान पर दशम रंध्र की जगह अंगुष्ठ प्रमाण आत्मा का निवास है, वहाँ ध्यान करके आत्मा के साम्राज्य में साधक प्रवेश करता है तब वहाँ तुलाधार के रूप में, जीव को कर्म के अनुरूप भिन्न-भिन्न योनि में भेजने वाले,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मा अथवा धर्मराज मिलते हैं। उनकी प्ररणा से ही जीव को कर्म करने चाहिए।"

स्वामीजी मौन हो गये। सब स्वामीजी के तेजोमय मुखारविन्द को निहारते रहे। कुछ देर बाद एक आगन्तुक सन्त ने कबीर साहब से एक भजन सुनाने की विनती की। सद्गुरुदेव ने भी स्वीकृति सूचक सम्मति दी। अतः कबीर साहब ने प्रसंग के अनुरूप ही गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को प्रदर्शित किया :

सन्तो ! सद्गुरु अलख लखाया। जब आप दरसाया ॥
बीज मध्य ज्यों वृक्ष देखिये, वृक्ष मध्ये छाया।
परमातम में आतम दरशे, आतम मध्ये माया ॥
ज्यों नभ मध्ये शून्य देखिये, शून्य अंड ओंकारा।
निःअक्षर में अक्षर तैसे, अक्षर क्षर विस्तारा ॥
ज्यों रवि मध्ये किरण देखिये, किरण मध्ये परकाशा।
पार ब्रह्म ते जीव ब्रह्म है, जीव मध्ये आशा ॥
श्वासा मध्ये शब्द देखिये, अर्थ शब्द माँहि।
ब्रह्म से जीव, जीव से मन है, न्यारा मिला सदा ही ॥
आप ही बीज, वृक्ष, अंकुरा, आप ही फूल-फल-छाया।
सूरज किरण प्रकाश आप ही, आप ही ब्रह्म-जीव-माया ॥
आतम में परमातम दरसै, परमातम में झाँई।
झाँई में परझाँई बोले, लखे कबीरा साँई ॥

सब प्रसन्न हो गये। स्वामीजी भी प्रसन्न हुए। कुछ देर तक सन्तों से बात-चीत होती रही। तदनन्तर स्वामीजी उठकर गुफा में चले गये।

अब तो प्रतिदिन आश्रम में भारी भीड़ होने लगी थी। जगद्गुरुश्री भी आगन्तुकों के स्तर, सम्प्रदाय तथा धर्म के अनुरूप उन्हें उपदेश देकर परमार्थ के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करते थे। भिन्न-भिन्न धर्म, सम्प्रदाय, पंथ तथा मतों की भेदरूपी दीवारें दूर करके सहिष्णुता बढ़ाने का वे निरन्तर प्रयत्न करते थे। इसके फलस्वरूप उनके विशाल दृष्टिकोण से नित्य भिन्न-भिन्न मत अथवा सम्प्रदाय के सिद्ध सन्त तथा जिज्ञासु अपनी ज्ञान-पिपासा तृप्त करने स्वामीजी की प्रसिद्धि तथा प्रेम से दिये पर पतंगा की तरह ललचाकर आने लगे थे। सन्तों के समागम से हर घड़ी सत्संग होता था।

सन्तों की पारस्परिक प्रीति, उनका मधुर भाषण, उनका भव्य दर्शन देखकर भक्तजन भी अपूर्व आनन्द के भागी बनते। ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति के दुरूह तत्वों पर गम्भीर विचार सुनकर सत्संगियों का मन दिव्य लोक में पहुँच जाता था। वेद-वेदान्त-उपनिषद-पुराण-षड्दर्शनशास्त्र आदि के नवीन रहस्य आचार्य-प्रवर नित्य उद्घाटित करते थे। नित्य नवीन विषय पर चर्चा होती थी। स्वामीजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी अत्यन्त सरल भाषा में कहते तो कभी अत्यन्त गूढ़ भाषा में समझाते थे।

आश्रम में सदैव समत्व, एकत्व एवं उदारता के साथ प्रेम का साम्राज्य देखने को मिलता था। जगद्गुरु मानते थे कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता किसी भी बात को काटने में नहीं, उसे सिद्ध करने में होती है, बिगाड़ने में नहीं, बनाने में होती है। प्रत्येक व्यक्ति परिस्थिति तथा बुद्धि के अनुसार अपने सिद्धान्तों को निर्धारित करता है तथा स्वयं को ठीक मार्ग पर ही समझता है। परन्तु सत्य तो सदैव एक ही है—परम तत्व का ज्ञान।

स्वामीजी के शिष्य एवं भक्तों ने नगर-नगर, गाँव-गाँव घूमकर सदुपदेश द्वारा दुःखी जनता को शान्ति तथा हिम्मत देने का भगीरथ कार्य स्वयं ही उठा लिया था। स्वामीजी भी परलोक के साथ-साथ इहलोक को भी सुधारने, संस्कृति की रक्षा करने तथा धर्म का गौरव बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देते रहे।

विश्व में ज्ञान भण्डार ही एक ऐसा अलौकिक भण्डार है, जो लुटाने पर भी वृद्धि प्राप्त करता है। उदार दानी स्वामीजी षड्दर्शन के साथ ब्रह्मविद्या के गुप्त धन को नित्य लुटाते थे। जिज्ञासु तथा सज्जन लोग उत्साहपूर्वक उसे ग्रहण करते थे। नित्य भजन-धुन-कीर्तन भी उत्साहपूर्वक होते थे।

एक दिन स्वामीजी ने कहा :

"गुरु वास्तव में सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही हैं। वे नित्य रूप से उनके स्वरूप में ही स्थित हैं। समय-समय पर हम जैसे जड़ जीवों के कल्याणार्थ इस वसुन्धरा पर अवतार लेकर, हमें उनका स्वरूप समझाकर, जीवन में दिव्यानन्द प्रदान करते हैं। सद्गुरुदेव मात्र शरीर नहीं हैं, एकक्षेत्रीय नहीं हैं, एकदेशीय नहीं हैं। वे तो सर्वत्र परिपूर्ण हैं।

हम सब मोह रूपी रात्रि में सो रहे थे। उन्होंने कृपा करके ज्ञान रूपी सूर्योदय किया, अहंकार रूपी अन्धकार को दूर करके जगाया है। हम उनका ऋण चुकाने में कभी भी समर्थ नहीं होंगे, न ही हम ऐसा चाहते हैं। क्योंकि हमारा कुछ है ही नहीं जो हम उनको दे सकें। गुरुदेव चाहते हैं सच्चा प्रेम। वे चाहते हैं सर्व जीव एकत्व प्राप्त करें। गुरु तथा शिष्य दो न रहें। प्रेमी, प्रेमास्पद, प्रेम सब एक हो जाय। वे चाहते हैं कि शिष्य भी गुरु जैसा ही बन जाय।

परमात्मा ने कृपा करके हमें मानव तन दिया है। यह जीवन एक संघर्ष है। यहाँ देश, काल, परिस्थिति, प्रारब्ध के सामने लड़ना पड़ता है। उसकी सफलता तथा असफलता दोनों दुःखदायी हैं। जीवन का लक्ष्य ही हरिगुरु शरण में जाकर ईश्वर कृपा से इस त्रिगुणात्मक माया को पार करना है, स्वयं को पहचानना है तथा ईश्वर शरणागत होना है।

जीवन का सार है · त्याग, प्रेम, सेवा। इसी से वास्तविक चिरस्थायी शान्ति तथा अखण्ड अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। जीव मात्र में ईश्वरी सत्ता का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभव करके प्रेम तथा सेवा करनी चाहिए, सर्वस्व का त्याग करना चाहिए। क्योंकि परब्रह्म सच्चिदानन्दघन स्वरूप निराकार श्रीराम ही सत्य स्वरूप हैं। उनके बिना कुछ भी नहीं। सर्वत्र श्रीराम ही हैं।

रामः सत्यं परब्रह्म, रामात् किंचित् न विद्यते।
तस्मात् राम स्वरूपं हि सत्यं इदम् जगत ॥"

इस प्रकार नित्य नवीन विषय पर सत्संग होता रहा। समस्त भारतवर्ष से अनेक जिज्ञासु अपनी जिज्ञासा के सन्तोषार्थ यहाँ आते रहते थे।

स्वामीजी के सिद्ध शिष्यों ने भी भारत की धर्मग्लानि नष्ट करने के लिए अनेक स्थान पर भ्रमण करते हुए सद्गुरुदेव के उपदेश को चरितार्थ किया। श्री सुखानन्दाचार्यजी ने बंगाल में कुछ समय सेवा कार्य किया। तदनन्तर वे चित्रकूट गये। वहाँ सिद्ध पीठ की स्थापना हुई। अनेक प्रकार के धर्म तथा सेवा-कार्य होने लगे। कुछ वर्षों के उपरान्त उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा संस्कृति के उत्स में योगदान दिया। श्रुति सिद्धान्त दीपिका, शिक्षा बत्तीसी तथा चित्रकूट मंगल आदि ग्रन्थों की रचना करके उन्होंने श्रीराम भक्ति का विपुल प्रचार किया।

समर्थ शिष्य श्री नरहर्यानन्दाचार्यजी ने उत्कल प्रान्त में सेवा कार्य किया। यहाँ सद्गुरु की आज्ञा को चरितार्थ एवं फलितार्थ करने द्वारपीठ की स्थापना की। कुछ वर्षों में अनन्ततत्वामृतम् तथा नामप्रताप आदि ग्रन्थों की रचना की। यह परम्परा समर्थ सिद्ध शिष्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने आगे बढ़ाई।

श्री सुरसुरानन्दाचार्यजी ने बिहार तथा पंजाब में धर्मकार्य करके अपना दायित्व निभाया। परसा (बिहार) में द्वारपीठ की स्थापना करके लोकसेवा का कार्य किया। कुछ वर्षों में उन्होंने श्री वैष्णव दिनचर्या तथा मैथिलीमहिमा आदि ग्रन्थों की रचना करके श्री सीतारामजी की भक्ति रूपी गंगाजी को सामान्य जन-मानस तक पहुँचाया।

श्री गालवानन्दाचार्यजी ने कश्मीर को सेवाक्षेत्र बनाया। अनेक प्रकार से धर्मसेवा करते हुए श्रीराम भक्ति का प्रचार करके समाज को सुसंस्कृत रूप दिया। अधिकतम मुस्लिम धर्मांतर होने वाले इस प्रान्त में अनेकानेक प्रयत्नों से हिन्दू संस्कृति का अस्तित्व मिटने नहीं दिया। तदनन्तर राजस्थान में जयपुर में सिद्ध-पीठ की स्थापना करके विधर्मियों की धर्म-परिवर्तन करने की प्रवृत्ति को रोक लगा दी। उन्होंने पुरुष सूक्तभाष्यम्, श्री पूर्णब्रह्म रामाष्टकम्, श्री रामानन्द शिक्षा सार आदि ग्रन्थों की रचना की।

समर्थ सिद्ध शिष्य श्री योगानन्दाचार्यजी वृन्दावन क्षेत्र से गुजरात पधारे। यहाँ कुछ समय भक्ति का आन्दोलन चलाकर बिहार गये। वहाँ द्वारपीठ की स्थापना करके योगांगभास्कर, भगवतानुशासन, वैराग्यपचीसी, भक्तितत्वानु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपणम्, अयोध्या मंगलम् आदि ग्रन्थों की रचना की।

श्री पीपाचार्यजी गांगरौनगढ़ (राजस्थान) में द्वारपीठ की स्थापना करके सेवाकार्य करते रहे। उन्होंने पीपाजी की बानी, उपदेश चिन्तामणि, श्री वैष्णवधर्म मंगलम्, प्रबोधपचीसी, चेतावनी आदि ग्रन्थों की रचना की।

श्री भावानन्दाचार्यजी ने गढ़मुक्तेश्वर में द्वारपीठ की स्थापना करके भक्ति आन्दोलन चलाया। उनके बाद उनके समर्थ शिष्य श्री अनुभवानन्दाचार्यजी ने शिष्य परम्परा आगे चलायी।

पंजाब के नानकजी भी स्वामी श्री रामानन्दाचार्य से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके हिन्दू धर्म को नयी शक्ति देने को एक नया संगठन बना रहे थे। (एक मतानुसार वे स्वामीजी के शिष्य थे। गुरु ग्रन्थ साहिब में राम-भक्ति का बहुत उल्लेख मिलता है।) समय-समय पर स्वामीजी के दर्शन-सत्संग के लिए वे भी आते रहे थे।

इसके उपरान्त भी सब शिष्य समय-समय पर परिभ्रमण करके त्रस्त जनता को सांत्वना तथा सहायता देते रहे थे। इस प्रकार हिन्दू सनातन संस्कृति पर हुए प्रथम कठिनतम आघात को स्वामीजी के दृढ़ संकल्प ने नष्ट कर दिया।

इस समय राजकीय रूप से देश अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो चुका था। एक तरफ अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों के अस्तित्व से तथा पुनः-पुन. उनके युद्धों से प्रजा में अस्थिरता तथा असुरक्षा व्याप्त हो गयी थी तो दूसरी तरफ सर्वत्र परिभ्रमण करते हुए साधु-सन्त लोक कल्याणार्थ धर्म जागृति का अभियान चलाते हुए दृष्टि-गोचर हो रहे थे।

दिल्ली सल्तनत नाममात्र की रह गयी थी। स्वामीजी के जन्म काल में दिल्ली में अलाउद्दीन खिलजी का शासन चल रहा था। समग्र उत्तर भारत में उसका शासन व्याप्त था। खिलजी वंश के तदनन्तर तुगलक वंश के राजाओं ने 94 वर्षों तक राज्य किया।

गयासुद्दीन तुगलक, मोहम्मद तुगलक तथा फिरोज तुगलक के धर्मांध तथा अविचारी शासन में प्रजा को अनेक प्रकार से कष्ट उठाना पड़ा। परन्तु उसके समानांतर स्वामीजी ने ऐसा धर्मचक्र चलाया कि राज्य शासन की प्रताड़ना भी प्रजा ने सहन कर ली परन्तु स्वधर्म परित्याग नहीं किया। उनके उत्तराधिकारियों की अक्षमता के कारण हिन्दुस्तान ने तैमूर का भयंकर आक्रमण भी देखा। इसे भी स्वामीजी की कृपा परिपूर्ण दृष्टि ने असरकारक नहीं बनने दिया। तदनन्तर दिल्ली का सिंहासन सैयद वंश के सुलतानों ने छीन लिया। उनके चार सुलतानों ने 37 वर्ष राज्य शासन सम्भाला जब देश पूर्णतः विभाजित हो चुका था। सुलतानों तथा वजीरों की अन्दरूनी लड़ाइयों से शासन जर्जरित हो चुका था। अनेक बार अनेक सरदारों ने तथा राजाओं ने विद्रोह किया। सिंध, दक्षिण मालवा, गुजरात,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जौनपुर, बंगाल में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। पंजाब में भी अनेक स्थान पर तथा ग्वालियर और धौलपुर आदि स्थानों पर भी हिन्दू राजाओं ने स्वतन्त्र राज्य बना लिया।

(20)

वि० सं० 1507 में बहलुल लोदी ने संयद वंश को सत्ताभ्रष्ट करके सत्ता हस्तगत करके लोदी वंश की प्रतिष्ठा की। वह विधर्मियों के प्रति भी अत्यन्त सहिष्णु था। अनेक छोटे-छोटे सरदारों को हराकर उसने दिल्ली की प्रतिष्ठा पुनः प्रस्थापित की।

उस समय जौनपुर एक शक्तिशाली राज्य था। अतः उसे हराकर दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित करने बहलुल लोदी निरन्तर जौनपुर में लड़ता रहा। राज्य की राजधानी जौनपुर काशी के निकट थी। सुलतान बहलुल लोदी अपनी सेना सहित जौनपुर के निकट छावनियों में पड़ा था। क्योंकि जौनपुर के सुलतान हुसैनशाह शर्की से भारी युद्ध हो रहा था। उसी समय बादशाह के मस्तिष्क में प्राणहारिणी पीड़ा होने लगी। बादशाह के काजी-वजीरों तथा हकीमों ने अनेकानेक उपचार किये परन्तु बादशाह की पीड़ा निरन्तर बढ़ती ही रही। जब सर्व प्रयत्न निष्फल रहे तब एक ब्राह्मण सैनिक ने बादशाह से निवेदन किया कि एक प्रसिद्ध महात्मा जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य जौनपुर के पास ही काशी में निवास करते हैं। अगर उनका आशीर्वाद प्राप्त हो तो मृत व्यक्ति भी जीवित हो उठता है। बादशाह ने अपने सैनिकों को काशी भेजा।

उस समय काशी में भगवान विश्वनाथ के मन्दिर के विशाल प्रांगण में काशी के पण्डितों की प्रार्थना पर समर्थ शिष्य श्री सुरसुरानन्दाचार्यजी ने एक सभा आयोजित की थी। महाप्रभु उस सभा में अध्यक्ष के रूप में विराजमान थे। वैष्णवागम में आये वैष्णवाचार पर सत्संग चल रहा था।

यहाँ घोड़े पर सवार होकर कुछ यवन सैनिक हाथ में भाले एवं तलवार लिए जगद्गुरुश्री को ढूंढते हुए सभा में आ पहुँचे। वामन नामक एक ब्राह्मण सैनिक विनयपूर्वक स्वामीजी के पास गया तथा प्रणाम करते हुए बोला :

"हे महाराज ! हमारे बादशाह के मस्तक में प्राणहारी पीड़ा हो रही है। उस पीड़ा का निवारण बड़े-बड़े वैद्य तथा हकीमों ने भी मुश्किल बताया है अतः हम आपके पास आये हैं।"

सन्देश सुनकर दीनबन्धु को दया आयी। वे बोले, "तुम्हारे बादशाह का कल्याण हो। अभी हम व्यस्त हैं अतः आप लोग बाद में आना।"

इस वाक्य से सैनिकों में निराशा फैल गयी। इस पर आचार्यश्री बोले, "तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोग निराश न होओ। जाओ, तुम्हारे बादशाह को आराम हो जायेगा।"

यह सुनते ही वे अत्यन्त आनन्दित हो गयें। वे स्वामीजी की महिमा से अनभिज्ञ नहीं थे। तुरन्त ही वे लौट गये तथा अपने बादशाह को सम्पूर्ण स्वस्थ देखकर प्रसन्न हो गये। सबने स्वामीजी की जयजयकार की। सुलतान ने जौनपुर पर विजय प्राप्त की तथा उसे दिल्ली में सम्मिलित कर लिया।

सुलतान के दिल्ली लौटने पर यह समाचार सर्वत्र व्याप्त हो गया। दिल्ली का सुलतान विधर्मी महात्मा का आदर करे यह बात एक मुस्लिम मौलवी तकी सहन न कर सका तथा स्वामीजी को वाद में पराजित करके अपना महत्व प्रस्थापित करने वह काशी आया।

अहंकार रूपी सर्प के काटने से मूर्छित तकी काशी तो आया परन्तु स्वामीजी के दर्शन से ही इतना प्रभावित हो गया कि वाद करने की हिम्मत ही न कर सका। स्वामीजी को प्रणाम करके उनकी तेजस्विता से अभिभूत होकर वह पुनः दिल्ली लौट गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

9. पर-प्रस्थान

श्रीमठ का विस्तार अब बहुत बढ़ चुका था। सदैव साधु-सन्त तथा भक्तों का आवागमन रहने से नित्य पर्वोत्सव-सा वातावरण बना रहता था। विभिन्न धर्म, विभिन्न सम्प्रदाय तथा विभिन्न जिज्ञासा के अनेक लोग यहाँ आते तथा अपनी शंकाओं का सन्तोषपूर्ण समाधान प्राप्त करते थे। जगद्गुरुश्री प्रत्येक को स्तर के अनुरूप तत्वोपदेश देते थे।

आर्त भक्तों के लिए मात्र वे ही एक आश्रय स्थान थे। जिज्ञासु एवं ज्ञानियों के वे ही प्रमाण थे। सन्त-महात्माओं के शिरोमणि थे। भक्त-अभक्त सभी स्वामीजी के सान्निध्य एवं कृपा के लिए सदैव लालायित रहते थे। यतिराज का निर्वासनिक निर्मल प्रेम तथा आशीर्वाद प्रत्येक प्रेमी को उपलब्ध रहता था अतः प्रत्येक प्रतीत करता कि वही स्वामीजी का सर्वाधिक कृपापात्र है।

सत्संग वाटिका में नित्य भीड़ लगी रहती थी। कभी भगवत्-चर्चा तो कभी ज्ञान-चर्चा होती, कभी कर्मयोग, कभी ज्ञानयोग तो कभी उपासना के विषय में बातचीत होती। समय-समय पर भजन-कीर्तन भी होते थे।

आज सत्संग वाटिका में प्रातःकाल में ही बहुत भक्तजन उपस्थित हो गये। भगवान श्री राघवेन्द्र तथा जगज्जननी श्री जानकीजी के मन्दिर में आरती हुई। तदनन्तर सबने कबीर सा'ब से भजन सुनाने का आग्रह किया। बहुत समय के बाद आये थे आज कबीरदास श्रीमठ में। गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके वे भी निकल गये थे परिभ्रमण के लिए। अनेक युक्ति-प्रयुक्तियों से, कभी चमत्कार तो कभी प्रेम से लोगों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करते रहे थे। उनको देख आज सन्तों ने भजन सुनना चाहा। कबीरदास भला कब अस्वीकार करते थे। किसी ने ढपली उठायी, तो किसी ने मंजीरे। सबके आग्रह पर कबीरदास ने शुरू किया—

कबीरा राम न छोड़िये, तन-धन जाय तो जाय।
चरणकमल चित बोधि यों, रामहि नाम समाय॥
चदरीया झीनी रे झीनी, ये राम नाम रस भीनी॥
अष्टकमल का चरखा बनाया, पंचतत्व की पूनी।
नौ-दस मास गुनन को लागे, मूरख मैली कीन्ही॥ चदरीया···

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब मोरी चादर बन घर आयी रंगरेज को दीन्ही।
ऐसा रंग रँगा रंगरे ने लाल लाल कर दीन्ही ॥ चदरीया···
ध्रुव प्रह्लाद सुदामा ने ओढ़ी, शुकदेव ने निर्मल कीन्ही।
दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, ज्यूं की त्यूं धर दीन्ही ॥ चदरीया···

उसी समय उनके प्रणम्य सद्गुरुदेव सत्संग भवन में पधारे। यतिसम्राट की आयु लगभग 169 वर्ष की होने पर भी स्वामीजी का परम कांतिवान गौर वृद्ध श्रीअंग अत्यधिक स्फूर्तिमान तथा प्रभावपूर्ण लग रहा था। उनकी अलौकिक प्रतिभा सूर्यसम प्रखर तेजपूर्ण तथा चन्द्रसम मधुर शीलत एक साथ भासित हो रही थी। समुद्र समान धीर-गम्भीर होने पर भी प्रसन्नता एवं आनन्द से परिपूर्ण स्वामीजी की उपस्थिति मात्र से भक्तजन प्रसन्न हो उठे तथा उन औदार्यमूर्ति उत्तम श्लोक के श्रीचरणों में प्रणत हो गये सब। कमलदल समान विशाल लोचन से प्रेम प्रवाहित करते हुए स्वामीजी ने सबका प्रसन्नचित्त अभिवादन किया। तदनन्तर वे निज आसन पर विराजमान हुए।

सत्संग शुरू हुआ। सत्संग के अन्तर्गत स्वामीश्री बोले, "मानव तन पंचमहाभूत का संयोजन है। जिस क्षण वह उत्पन्न होता है उसी क्षण उसकी मृत्यु भी निश्चित हो जाती है। मानव तन क्षणभंगुर है। अतः इस क्षणभंगुर जीवन का प्रत्येक क्षण प्रभु में लगाना ही मानव जीवन की सार्थकता है। प्रारब्धवश प्राप्त सुख-दुःखों को भोगते हुए तथा प्रभु स्मरण करते हुए सदैव प्रभुकृपा की प्रतीक्षा करनी चाहिए। सामान्यतः हम सब सृष्टि के कर्ता को भूलकर सृष्टि में ही तल्लीन हो जाते हैं, समुद्र को भूलकर उसकी तरंगें देखने में लग जाते हैं। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि सिंधु से ही लहरें हैं, लहरों से सिंधु नहीं। अनन्त सिंधु में अनन्त लहरें उठकर विलीन हो जाती हैं।

परमात्मा का चैतन्य सर्वत्र परिपूर्ण है। सकल जड़ तथा चेतन में चैतन्य व्याप्त है। आत्मा सर्वत्र एक ही है। शरीर की भिन्नता मात्र एक आभास है। इस प्रकार हम और आप सब एक आत्मा ही हैं। कदाचित् हम आप सबसे शरीर से अलग हो जायें, तो भी हमें विश्वास है कि शरीर का मोह छोड़ आप सब वियोग से दुःखी न होकर हमें अपने अधिक निकट पाओगे। क्योंकि वियोग तो विशिष्ट योग है।

सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर ही चैतन्य रूप में सर्वत्र परिपूर्ण हैं। वे ही अनेक रूप से लीला कर रहे हैं। वे ही गुरु बनते हैं तथा जन्म-जन्मांतर में अनेक रूप धारण करके वे ही शिष्यों का कल्याण करते हैं। हमारे अन्तःकरण में मोह रूपी परदा होने से इस वास्तविकता एवं सृष्टि रहस्य को हम जान नहीं सकते। जब ईश्वर कृपा से माया-मोह निवृत्त हो जाते हैं तब मात्र ईश्वर की अखण्ड आनन्दमयी लीला ही शेष रह जाती है। शिष्य स्वयं को भूला हुआ है, परन्तु गुरु तो जानते हैं कि जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिष्य है, वही वे स्वयं हैं। मात्र नाट्यशाला का अभिनय ही योग्य रूप से निभाना पड़ता है।

आप सब हमारे अन्तःकरण में हो तथा हम आप सबके अन्तःकरण में हैं। प्रेमरस की धारा उभय पक्ष से समान रूप से प्रवाहित होती है, हम परस्पर प्रेम करते हैं अतः हम और आप सब भिन्न नहीं हैं।"

आज के सत्संग के सारगर्भित वाक्यों को सुनकर लोग विचाराधीन हो गये। उसी समय एक घटना घटी।

सत्संग वाटिका के सघन उत्तुंग वृक्षों में कुछ ध्वनि हुई। लोगों ने देखा कि आकाशगंगा में तैरता हुआ एक हंस तथा एक कबूतर धीरे-धीरे नीचे आये। हंस अपनी स्वाभाविक चेष्टाएँ करता रहा तथा कबूतर आचार्यप्रवर के करकमल पर बैठ गया।

स्वामीजी ने सरसों के दाने मंगाकर उन्हें दिये। कबूतर उतरकर दाने चुगने लगा। शुभ्रजात हंस को भी दूध से भरा हुआ कटोरा दिया गया। हंस दूध के जलांश को छोड़ दूध पी गया। स्वामीजी के प्रवचन से आनन्दित लोग इस निःशब्द शान्ति से अधिक भयभीत हुए।

कबूतर ने दाने चुगने के पश्चात् स्वामीजी के चरणकमल में लेटते हुए अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। कई बार लोट-पोटकर वह उड़ गया। तदनन्तर हंस डरता हुआ आचार्यश्री के निकट आया तथा चोंच से चरणस्पर्श करके दूर हो गया। हंस की मनोवृत्ति विचित्र लग रही थी। लगता था वह कुछ निवेदन करना चाहता है किन्तु संकोच हो रहा था उसे। स्वामीजी समझ गये कि कबूतर के रूप में धर्मराज तथा हंस के रूप में ब्रह्माजी पर-प्रस्थान की प्रार्थना करने पधारे हैं। हंस का संकोच दूर करने को मधुर प्रेम-प्लावित हास्य करते हुए स्वामीजी ने हिम्मत दी, अतः हंस ने अपार अनुनयपूर्ण सांकेतिक भाषा में देवाधिदेव को नित्यधाम साकेत पधारने का निवेदन किया। प्रत्युत्तर में जगद्गुरुश्री ने प्रसन्नता से कहा, "एवमस्तु !" इसे सुनकर हंस उड़ गया।

कुछ शिष्य एवं सन्तजन इस रहस्य को समझ गये। करबद्ध होते हुए अत्यन्त गद्गद् वाणी से शिथिल स्वर में कबीरदास ने कहा :

"हे भगवन् ! ब्रह्माजी एवं धर्मराज की प्रार्थना को यदि लोगों के कल्याणार्थ पुनः टाल दिया जाय तो उसमें क्या हानि है ?"

सबके प्राण श्रवणों में आ गये, सर्वांग जैसे अभी द्रवित हो जायेगा। कितनी वेदना निहित थी उन शब्दों के उच्चारण में ! परन्तु प्रकृति के सर्व द्वन्द्वों से परे स्वामीश्री ने अनन्त करुणार्णव नेत्रों से प्रेमवारि का सिंचन करते हुए प्रसन्नता से धीर-गम्भीर स्वर में प्रत्युत्तर दिया :

"नहीं वत्स ! परमात्मा की मर्यादाओं का उल्लंघन यदि कोई विशिष्ट पुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही करते रहेंगे तो लोकसंग्रह में क्षति पहुँचना अवश्यम्भावी है।"

मगन हो गये सब। उनके नेत्रबिंदु अलकों को आर्द्र करने लगे। कुछ शिष्य जानते थे कि उनके श्री सद्गुरुदेव को इच्छामृत्यु का वरदान दिया गया था। वरदान स्वयं जिससे फलीभूत हो उन महामहिमामय जगद्गुरु को वरदान की भी आवश्यकता नहीं थी, किन्तु जब स्वयं उन्होंने ही स्वीकार कर लिया, तो इस धरातल पर कोई उनको रोकने में समर्थ भी नहीं हो सकता था।

विषाद की म्लानता छा गयी उन सब पर। इस पर सानुग्रह दृष्टि से स्नेहातिरेक भरे स्वर में प्रेममूर्ति ने कहा :

"परिवर्तनशील प्रकृति अपनी द्वन्द्वमयी लीलाओं से हमें समत्व का तत्व सिखाती है। सुख-दुःख, संयोग-वियोग अथवा अन्य किसी भी द्वन्द्व से अतीत रहना ही ज्ञानियों का लक्षण है। परमात्मा जब भी अवनी पर अवतीर्ण होते हैं, तो उनको भी लोकमर्यादा हेतु अपना कार्य पूर्ण होने पर नित्यधाम को जाना ही पड़ता है। अतः आप सबको किंचित् भी विचलित न होकर सदैव प्रसन्न रहना चाहिए। प्रसन्नता ही सर्वोत्तम धर्म है।" परमोदार महामुनि ने वाणी को विश्राम दिया। कुछ देर वहाँ बैठकर वे निजगुफा में चले गये।

आश्रम में पूर्ववत् नियम चलता रहा। शिष्य समुदाय यन्त्रवत् कार्य करते रहे, किन्तु उनका मन आशंका से कम्पित होता रहा। कुछ दिन पश्चात् जगद्गुरुश्री ने प्रमुख शिष्य श्री अनन्तानन्दजी को सूचित किया कि मधुमास की शुक्ल प्रतिपदा से श्रीमठ में बृहद् श्रीराम महायज्ञ का आयोजन होगा। तब बृहद् भण्डारे का आयोजन करने की भी आज्ञा प्रदान हुई। श्री अनन्तानन्दजी इस आज्ञा का अर्थ समझ गये तथा अधिकाधिक विशादग्रस्त होते गये।

सद्गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त होने पर श्री अनन्तानन्दजी ने सर्व व्यवस्था की। भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में गुरुआज्ञा से लोकसेवा एवं धर्मसेवा का कार्य करने वाले अपने गुरु बन्धुओं को उन्होंने सन्देश भेज दिया। सम्प्रदाय के अन्य सिद्ध-महात्माओं को तथा अन्य सम्प्रदाय के महात्माओं को भी दूर-दूर से यज्ञोत्सव पर आमन्त्रित किया गया। बृहद् भण्डारे के लिए गृहस्थ-संन्यासी, सन्त-भक्त, नर-नारी सबको निमन्त्रण दिया। यज्ञ एवं भण्डारे की व्यवस्था में सर्व शिष्य समुदाय एवं सन्तजन व्यस्त हो गये।

जिन-जिनको इस यज्ञ का कारण ज्ञात था, उन सबकी स्थिति अत्यन्त करुणाजनक हो गयी। महाप्रयत्न से वे स्वयं को सन्तुलित करते, किन्तु हृदय तो फिर भी अपने प्राणप्रिय सद्गुरुदेव के वियोग की कल्पना मात्र से विरहाग्नि में संतप्त होने लगता था। पुनः-पुनः उनके लोचन अश्रुबिन्दु से छलक उठते थे।

महामुनि श्री रामानन्दाचार्यजी सहजता से प्रसन्नचित्त विचरते रहे। निमन्त्रण मिलते ही पधारे हुए सन्त-महात्मा एवं शिष्य-भक्तों से स्वामीजी वात्सल्य एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेमपूर्वक मिलते रहे। नित्य भिन्न-भिन्न विषयों पर सत्संग होता रहा। शिष्यगण भावक्षुब्ध होकर आगतों की व्यवस्था सँभालते रहे। प्रत्यक्ष रूप से वे न तो कुछ कहने में समर्थ थे, न ही वियोग जनित वेदना सह सकते थे। परस्पर हिम्मत देते हुए आने वाली परिस्थिति को सहन करने की तैयारी वे करते रहे।

एक दिन सत्संग वाटिका में लोग एकत्र हुए थे। स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी अत्यन्त प्रसन्न चित्त से शिष्यों के व्यथित हृदय को सांत्वना एवं हिम्मत देते रहे। सत्संग की समाप्ति पर उन्होंने कबीरदास को एक भजन सुनाने की आज्ञा प्रदान की।

धन्य हो गये कबीरदास! आज सद्गुरुदेव भगवान ने स्वयं उनका भजन सुनने की आज्ञा की। परन्तु भावविह्वल गद्गद् कण्ठ कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं था। ज्ञानी कबीर सा'ब मन को तैयार करने लगे। किन्तु अवश थे वे। पुनः गुरुदेव ने कहा अतः उन्होंने तत्काल शुरू किया :

चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय॥

नेत्र निर्झर बन गये कबीरदास के और स्वर गद्गद्। हृदय की व्यथा नेत्रों से बहकर वाणी के द्वारा व्यक्त हो गयी।

दो दिन का जग में मेला, जग चलाचली का मेला।
दो दिन··· ॥
कोई चला गया कोई जाये, कोई गठरी बाँध सिधावै।
कोई खड़ा तैयार अकेला रे···
कोई खड़ा तैयार अकेला रे··· चलाचली का···॥

ज्ञानी कबीरदास के नेत्र आज अश्रुवर्षा करने लगे। लोग आश्चर्यचकित हो गये क्योंकि कबीर सा'ब को इतना भावुक कभी किसी ने नहीं देखा था। जिसको ज्ञात नहीं था वे विस्मित हो गये कि सदैव स्वस्थ रहकर स्वस्थता प्रदान करने वाले कबीर सा'ब को आज क्या हो गया? कबीरदास की भावसमाधि टूटी। उन्होंने लोगों को आश्चर्य से चकित एवं विस्मित देखा, तत्काल अपने हृदय को वश में कर लिया और स्वस्थ होकर लोगों को सुनाते हुए पुनः गाया :

करे पाप कपट छल माया, धन लाख करोड़ कमाया,
संग चले ना एक अधेला रे···।
सुत नारी और मात पितु भाई, ये सब अन्त कहावत नाहीं,
जो भरे पाप का डेरा रे···॥

सद्गुरुदेव कबीरदास की अन्तर्व्यथा जानते थे। उन्होंने अनन्त करुणा भरी, वात्सल्यमय एवं सानुगृहीत दृष्टि से कबीरदास को सांत्वना दी और मनोहारी स्मित करते हुए अपनी कुटीर में चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(2)

विक्रम शताब्दी 1515 का मधुमास आरम्भ हुआ। श्रीमठ में यज्ञ एवं भण्डारे की तैयारियाँ पूर्ण हुईं। शुक्ल प्रतिपदा, शनिवार को प्रातः समय ही शास्त्रज्ञ पण्डित तथा अच्छे-अच्छे नामी कर्मकांडी ब्राह्मण आश्रम में उपस्थित हो गये। शुभ मुहूर्त में यज्ञकुंड की प्रतिष्ठा हुई और तारक महामन्त्र के अनुष्ठान सहित श्रीराम महायज्ञ का शुभारम्भ हुआ। यज्ञ के धूम्र से वायुमण्डल पवित्र होने लगा।

दूर-दूर से अनेक श्रद्धालु लोग श्री यज्ञपुरुष के तथा जगद्गुरुश्री के दर्शनार्थ आने लगे। सर्वत्र जयघोष गूँजता रहा। आठ दिन तक यज्ञ चलता रहा। उस समय काशी में मानो लघुकुंभ ही हो रहा था। सभी सम्प्रदाय के विरक्त सन्त, महात्मा, योगी, जति, मुनि, दण्डीस्वामी, उदासीन तथा त्रिदण्डी काशी में उपस्थित हो गये। सबके लिए सुन्दर व्यवस्था की गयी थी। दीन-अपंग तथा असहाय लोगों की सेवा का विशेष प्रबन्ध था। गृहस्थ-विरक्त, आबाल-वृद्ध नर-नारी सब प्रसन्न एवं उल्लसित होकर यज्ञदेवता के दर्शन का सद्भाग्य लूट रहे थे। बाहर तथा भीतर के प्रेमियों का अलग समारोह था। असख्य भक्तजन सेवा में उपस्थित हो गये थे।

श्रीमठ के दूर तक स्थान-स्थान पर साधु-सन्तों की जमात डेरा-तम्बू डाले अपने अनुष्ठान व उपासना में लीन थी। कहीं सत्संग चलता था, तो कहीं भजन। दूर-सुदूर से आये प्रेमी भक्त तथा सन्त जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का सत्संग सुनने को उत्सुक थे। एक तरफ यज्ञ चलता रहा तो एक तरफ सत्संग। शिष्यों का चित्त सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में ही लगा रहता था। सर्वत्र जगद्गुरुश्री की ही आवश्यकता थी। सबके मनोभावों के ज्ञाता यतिराज ने सबकी मनोकामना पूर्ण की। एक रूप से वे यज्ञशाला में रहे तथा एक रूप से क्षेत्र में रहे, तो एक रूप से सत्संग में भी उपस्थित हुए। दिव्य शंख के मोहक नाद से मस्त लोग इस अलौकिक लीला को न समझ सके। मात्र भगवान के मुख्य शिष्यगण इस रहस्य को देखकर चुपचाप आनन्दित होते रहे।

अष्टमी को इतवार था। आज यज्ञ की पूर्णाहुति एवं बृहद् भण्डारा था। असंख्य लोग आज श्रीमठ में एकत्रित हो गये। शास्त्रोक्त विधि-विधान सहित श्रीराम महायज्ञ की पूर्णाहुति सम्पन्न हुई। यज्ञदेवता के दर्शन से कृतकृत्य लोग भण्डारे का महाप्रसाद पाकर धन्य हुए। सर्वत्र परब्रह्म परमात्मा श्री राघवेन्द्र, जगदम्बा श्री जानकीजी एवं जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का जयनाद गूँजता रहा। सर्वत्र आनन्दमंगल व्याप्त हो गया।

सायंकालीन सत्संग का समय हुआ। सब कार्य छोड़कर मुख्य शिष्यगण भी उस सत्संग में उपस्थित हो गये। धरा और गगन गूँज उठा उनकी जयध्वनि से और परम संकोचशील महामुनि संकुचित हुए। उन महामहिमामय को लक्षित करके करोड़ों अंजलि स्वतः बँध गयीं और मस्तक झुक गये। प्रसन्नतापूर्वक सबका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिवादन करते हुए आचार्यप्रवर निज आसन पर विराजमान हुए।

कुछ ही क्षणों में धीर, गम्भीर, स्नेहार्द्र स्वर सुनायी दिया : "प्रिय प्रेमियो ! संसार में किसी भी जीव को कायिक, वाचिक अथवा मानसिक रूप से दु:ख देने वाला ज्ञान ज्ञान नहीं है, वह अज्ञान है। अहंकार को पुष्टि देने वाला, राजद्वेष बढ़ाने वाला तथा इच्छा व वासनाओं से चित्त को अशान्त करने वाला ज्ञान अज्ञान है। ज्ञान तो वही है जो संसार के मिथ्यातत्व का बोध दे तथा आत्मतत्व का दृढ़ अनुभव कराके सर्वत्र परमात्मा के दर्शन कराये। प्राणी मात्र को रागद्वेष के सीमित दायरों से मुक्त करके समत्व के साम्राज्य में ज्ञान ही प्रवेश देता है। चित्त को अहंकार तथा वासना से मुक्त करके ज्ञान ही निजानन्द का अनुभव कराता है। ज्ञान के लिए सापेक्ष मान्यताओं का कोई मूल्य नहीं है। निरपेक्ष, सत्य स्वरूप परमात्मा को बताने वाले तथा समझाने वाले ज्ञान को ही ज्ञान कहा जा सकता है।

ज्ञानी भक्त का जीवन परम आनन्द का जीवन है। वह अपने विराट स्वरूप में आनन्द के स्पंदनों का विस्तार करके जीव के मल-विक्षेप को दूर करते हुए नित्यानन्द का अनुभव कराता है। भगवत् प्रेम एवं भगवत् स्मरण ही ऐसा निरपेक्ष ज्ञान प्रदान कर सकता है।

भगवत् स्मरण ही सर्व सन्तों का जीवन एवं सर्व शास्त्रों का सार है। आप सब परमात्मा के प्रेमी हो अतः शास्त्रों एवं संस्कृति का नित्य रक्षण करना। एक बात सदैव ध्यान रखना ! समाज व्यवस्था एक सुनियोजित शरीर है। जिस प्रकार उपयोगिता के दृष्टिकोण से शरीर का कोई अंग निकृष्ट नहीं होता, उसी प्रकार समाज का कोई वर्ण निकृष्ट नहीं है। शरीर के शिर तथा शिखा-सूत्र का आधार पैर हैं, उसी प्रकार वर्णव्यवस्था रूपी शिखा-सूत्र का आधार पादज और अंत्यज हैं। पैरों को काटकर समाज को पंगु न बनाना।"

बोलते गये यतिराज। मुख्य शिष्यगण समझ गये कि यही कदाचित् अन्तिम सन्देश है। अनिमेष नेत्रों से तकते रहे वे प्राणाधार को। इस अलौकिक छवि को अन्तर में अंकित कर दिया उन्होंने। प्रतिभासम्पन्न, तेजस्वी, गौर वृद्धकाय श्रीअंग, त्रिभुवन वंदनीय मुखारविन्द, उन्नत तेजोदीप्त भालप्रदेश, भव्य श्वेत जटा-जूट, विशाल कमलदलायन अनन्त करुणार्णव लोचन, विशाल बाहु, सम्पूर्ण आकृति किसी को भी स्वतः आकृष्ट करके आदर-सम्मान की भावना सहज ही जगा लेने के लिए समर्थ थी। भगवान श्री राघवेन्द्र वृद्धावस्था में वनवासी होते—कदाचित् उनकी यह दूसरी प्रतिमूर्ति थी। शिष्यों के दृग निर्झर बनकर झरने लगे। रोमांचित शरीर प्रेमावेश में पीपल-पत्र की भाँति काँपने लगा। भावधारा में अन्तर्लीन उनके प्राण जब श्रवणों में आये तब उन्होंने सुना :

"कल श्री रामनवमी है। हम अकेले ही अयोध्याजी जायेंगे। कोई साथ नहीं जायेगा, सब यहीं रहेंगे तथा उत्सव मनायेंगे। कदाचित् हम पुनः न लौट सकें,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि उस धाम में जो जाता है, वह लौटकर नहीं आता। आप सब हमारी त्रुटियों तथा अविनय आदि पर ध्यान न देना तथा सर्वत्र प्रेम-सौहार्द बढ़ाते जाना। आप सब हमें अत्यन्त प्रेम करते हैं, हम भी आप सबको प्रेम करते हैं। आप हमारे हो, हम आप सबके हैं। अतः शरीर के वियोग को वियोग न समझना, क्योंकि गुरु-तत्व सदा से सर्वत्र परिपूर्ण है। जो स्थूल रूप से निकट है, वह सूक्ष्म रूप से दूर होता है किन्तु जो स्थूल रूप से दूर हो जाता है वह सूक्ष्म रूप से अधिक निकट हो जाता है। अब हम सूक्ष्म रूप से आप सबके अधिक निकट रह पायेंगे। जिनको आवश्यकता होगी, उनको प्रत्यक्ष अनुभूति भी होगी।"

नेत्र बन्द करके कुछ क्षण मौन हो गये यतिराज। स्पष्ट था कि अभी कुछ और कहना चाहते थे। श्रोताजनों की स्थिति विचित्र हो गयी। उनका स्वर सुनाई दिया :

"भक्ति रूपी कल्प लता, जो अथक प्रयत्नपूर्वक भारत-भर में रोपी गयी है, उसे श्रद्धा रूपी जल से सदैव सिंचित करके जतनपूर्वक सम्भालना। लोक-कल्याण के वेद प्रदत्त जितने मार्ग हैं, उन सबको पात्र भेद के अनुरूप समझाना तथा प्राचीन वैदिक मार्ग को समयोचित भाषा में लोगों को समझाते रहना ही हमारे शिष्य समुदाय का कर्तव्य है। जय श्री राम।"

वाणी को विराम दिया महामुनि ने। लोगों ने जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी तथा भगवान श्री जानकीनाथ के जयघोष से चारों दिशाएँ गुंजित कर दीं। श्रोता-जनों पर प्रेमपूर्वक सानुग्रह दृष्टि से अमी वर्षा करते रहे आचार्यश्री। प्रेमी भक्तों के वारिपूरित अपलक लोचन, उनकी अधीर भंगिमा, उनका अनुरोध, आकुलता से पूर्ण मुख—यह सब क्या कुछ कम कहते थे अपने प्रणम्य से? मुख से कहना ही तो कहना नहीं होता—भले ही वे कुछ कहने का साहस नहीं कर सके। अन्तर्यामी स्वामीजी देर तक बैठे सबके बीच। भक्तों ने धुन शुरू की :

"श्री राम जय राम जय जय राम"

सबको अवसर मिला अपने प्राणाधार को प्रणिपात करने का। मुख्य शिष्य समुदाय दीनबन्धु के श्रीचरणों में मस्तक रखकर अश्रुवारि से पाद-प्रक्षालन करते रहे। करुणानिधि ने अत्यन्त स्नेह सहित उन्हें सांत्वना प्रदान की। रात्रि हो गयी। यतिराज सबको आशीर्वाद देते हुए सबसे प्रेम से मिलकर प्रसन्नतापूर्वक निज कुटीर में चले गये। कदाचित् यही अन्तिम दर्शन था। म्लान मुख हो गया जनसमूह।

(3)

जगद्गुरु के गुफा में प्रस्थान करने के पश्चात् कोई भी वहाँ से नहीं उठा। सत्संग वाटिका में ही उन सबने रात-भर श्रीराम धुन-कीर्तन करने का निश्चय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया। अन्यत्र कार्य में व्यस्त सन्त-भक्त भी आकर धुन में सम्मिलित होते गये। उनके नेत्र से अश्रुधारा बहती रही, कण्ठ धुन गाता रहा तथा मन अपने प्रणम्य प्राणाधार के निकट घूमता रहा। रात्रि कैसे बीती, कब बीती, किसी को ज्ञात न हुआ।

प्रातःकाल हुआ। आज सोमवार, श्री रामनवमी का पवित्र दिन था। रात्रि के उपदेश से सशंकित काशी वासी भी प्रातः समय ही आश्रम पर जमा होने लगे। उनके मन में अज्ञात भय था। आकर सब अखण्ड धुन में सम्मिलित होते गये।

परब्रह्म श्री राघवेन्द्र के मन्दिर में प्रातःकालीन आरती हुई। कुछ लोग आरती में गये, कुछ धुन गाते रहे। आरती पूर्ण होते ही जगद्गुरु की गुफा से दिव्य शंख की गम्भीर ध्वनि उच्च स्वर में ऐसे सुनायी दी, जैसे किसी पर्वत से गूँजती हुई आ रही हो। धुन अचानक बन्द हो गयी। स्तब्ध हो गये सब। सब समझ गये कि यही अन्तिम पावन ध्वनि थी। उनके कण्ठ अवरुद्ध हो गये, नेत्र निर्झर बन गये।

कोई समझ नहीं पाया कि अब क्या किया जाय। परस्पर को तकते हुए जड़वत् बैठे रहे सब। कुछ ही समय में पवन के तेज झोंके से गुफा का द्वार खुल गया। मुख्य शिष्यों को सुधि आयी। वे मिलकर गुफा के भीतर गये।

भीतर प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि दैनिक कृत्य की सर्व वस्तुएँ यथावत् पड़ी हुई थीं, मात्र उनके प्राणाधार तथा उनका दिव्य शंख अन्तर्ध्यान हो चुके थे। चित्रवत् रिक्त आसन को वे ऐसे देखते रहे जैसे गुरुदेव अभी वहाँ विराजमान ही थे। कुछ क्षण तो हिम्मत की परन्तु अन्त में हार गये, टूट गये सब। महाप्रयत्न से उन्होंने स्वयं को वश में कर लिया। अभी तो जनता को समाचार विदित करना होगा, उन सबको धैर्य बँधाना होगा। गुरुदेव के स्थूल वियोग से ज्ञानी शिष्यगण भी असहाय एवं दीन-से हो गये।

सर्वप्रथम कबीरदास स्वस्थ हुए। गुफा से बाहर आकर सत्संग वाटिका में एकत्रित जन-समुदाय को उन्होंने सूचित किया कि श्री रामनवमी के आज के सूर्योदय के साथ ही हमारे प्राणाधार, हमारे अन्तर को आलोकित करने वाले स्थूल रूप धारी सूर्य का अस्त हुआ है। अब उनके सूक्ष्म तेज के आधार से ही सबको जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। आशंका तो सबको यही थी, किन्तु आशा भी थी कि कदाचित् शंका असत्य हो जाय। परन्तु अब तो होनी वास्तविक रूप लेकर सामने आ गयी। सर्वत्र हाहाकार मच गया। कई लोग फूट-फूटकर रोने लगे, कई लोगों की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, कुछ शून्य बन ऐसे बैठ गये, जैसे इस घटना को वे स्वीकार ही न कर पाये हों। परन्तु होनी तो हो चुकी थी। काशी के परमोत्कृष्ट मार्तण्ड का आज अस्त हो गया था।

पुनः श्रीराम धुन शुरू की गयी। धीरे-धीरे नगर-भर में समाचार व्याप्त हो गया। आश्रम में असंख्य लोगों की भीड़ जमा होने लगी। काम-धाम भूलकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषादग्रस्त सब धुन में सम्मिलित होने लगे। अब क्या करना चाहिए, कोई समझ न पाया।

मध्याह्न हो गया। इस समय आकाश से पुनः गम्भीर शंखध्वनि हुई। इस ध्वनि ने सबके संतप्त हृदय को बहुत सांत्वना दी। शिष्यों को सुधि आयी।

श्री अनन्तानन्दजी ने गुफा से लाकर सद्गुरु भगवान की चरणपादुका सत्संग वाटिका में उनके आसन पर प्रतिष्ठित कीं। श्रद्धालु जनता ने क्रमशः पादुका को प्रणिपात करके अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। अब यही उनका स्मरण चिह्न था। सब सोचने लगे, कितना अन्तर हो गया कल और आज में। कल यज्ञ की पूर्णाहुति हुई, भण्डारा हुआ—कितना आनन्दोत्सव छाया हुआ था। और आज? सब कुछ यथावत् है परन्तु मृत शरीर-सा। प्राण ही नहीं रहे उसमें। आश्रम भी वही है। जनता भी वही है। एकमात्र उनके प्राणाधार ही नहीं रहे उनके बीच। वे सोचते रहे, इस पृथ्वी पर न जाने कितने महापुरुष आये और अपना कर्तव्य निभाकर चले गये। कोई रहा नहीं, मात्र उनकी कीर्ति अचल रही। सिद्ध महापुरुष अपनी महिमा में ही बिराजते हैं। सृष्टि की रचना का रहस्य इसी में है।

श्रद्धांजलि अर्पित करने के पश्चात् श्री अनन्तानन्दजी ने गुरुदेव की पादुका सिर पर धारण कीं तथा सब मिलकर गंगाजी के घाट पर गये। परन्तु गंगाजल का स्पर्श होते ही पादुका पाषाण की बन गयीं। उन्हें लेकर पुनः गुफा में भगवान के आसन पर विधिवत् स्थापित किया गया।

सायंकाल हो गया। यन्त्रवत् सत्संग वाटिका में सब एकत्रित होने लगे। गुरुदेव की प्रत्येक स्मृति उन्हें आत्मविस्मृत कर रही थी। उपस्थित सिद्धों ने लोगों के संतप्त हृदय को सांत्वना देने के लिए ज्ञानचर्चा की, आश्वासन एवं हिम्मत प्रदान की। परन्तु लोगों के हृदय में गुरु-वियोग ज्यों-का-त्यों बना रहा। सत्संग की समाप्ति पर कबीरदासजी ने एक भजन सुनाया :

रहना नहीं देश बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद परै घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी, उलझ-पुलझ मर जाना है।
यह संसार झाड़ अरु झांकर, आग लगै बरि जाना है।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।
सतगुरु नाम ठिकाना है···सतगुरु···

कण्ठ अवरुद्ध हो गया कबीरदास का। नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। पुनः निःशब्द गम्भीरता छा गयी। अतः अनन्तानन्दजी ने एक नूतन धुन शुरू करायी :

जय सियाराम जय जय हनुमान।
श्री गुरु रामानन्द भगवान॥

यह धुन लोगों को बहुत अच्छी लगी। बहुत देर तक इसे गाकर अश्रु बहाये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबने। किसी को न भूख लगी न प्यास, इसी प्रकार रात्रि हो गयी। श्रमित निराश जनता जहाँ स्थान मिला वहीं सो गयी। भूमण्डल का एक विशिष्ट सूर्य संसार को आलोकित करके इस प्रकार अस्त हो गया। काशी-मार्तण्ड के उदय ने भारतवर्ष का एवं सनातन संस्कृति का इतिहास बदल दिया तथा काशी में ही वह अस्त हो गया।

प्रातःकाल हुआ। प्रधान शिष्य श्री अनन्तानन्दजी को अब सब कार्यभार सम्भालना पड़ा। सबको सांत्वना एवं हिम्मत देते हुए श्रीमठ का दायित्व उन्होंने गुरु बन्धुओं के साथ मिलकर सम्भाल लिया। प्रातःकालीन आरती के पश्चात् सद्गुरुदेव की गुफा में पादुका पूजन हुआ। कुछ लोगों ने सत्संग वाटिका में निरन्तर धुन चालू रखी :

जय सियाराम जय जय हनुमान।
श्री गुरु रामानन्द भगवान॥

प्रथानुसार आमन्त्रित सन्त-समाज को वस्त्रादि मान-दान से सन्मानित किया गया। धीरे-धीरे सब स्वस्थान लौटने लगे। भक्त समाज स्वामीजी की धूनी से भस्म प्रसाद लेकर भारी हृदय से विदा होने लगा। प्रमुख सिद्ध शिष्यगण भी व्यथित हृदय से गुरुआज्ञा के पालनार्थ निज कर्तव्य कर्म करने स्वस्थान पहुँचने लगे। काशी नगरी निष्प्राण-सी बन गयी।

(4)

देखते ही देखते एक वर्ष व्यतीत हो गया। जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की पुण्यतिथि पर श्रीमठ में श्री रामार्चापूजन एवं बृहद् भण्डारे का आयोजन किया गया। श्री अनन्तानन्दाचार्य अब श्रीमठ के अधिष्ठाता थे। उन्होंने अनेक महात्मा तथा सभी सम्प्रदाय के सन्यासियों को भण्डारे में निमन्त्रण दिया। आठों दिशाओं से अनेक सिद्ध-सन्त-भक्त आश्रम में आने लगे।

श्रीमठ के साथ-साथ काशी नगरी भी एक वर्ष के पश्चात् पुनः प्रवृत्तियों से सजीवन हो उठी। जिस भूमि में काशी-मार्तण्ड ने भक्ति का बीजारोपण किया था, वहाँ भगवत् प्रेम एवं अनुराग की लताएँ पल्लवित हो उठीं। नये-नये श्रद्धाकुसुम के साथ विश्वास एवं आनन्दरूपी फलों ने काशी-निकुंज को विभूषित कर दिया।

श्री रामनवमी के दिन श्री रामार्चापूजन एवं भण्डारा भी हुआ। असंख्य श्रद्धालु एवं भक्तों ने जगद्गुरुश्री की पुण्यतिथि पर दूर-दूर से आकर अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये। पुनः पंचगंगाघाट जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के जयघोष से गुंजारित हो उठा। सन्तों एवं भक्तों के साथ काशी के नगर-जनों ने मिलकर ऐसा भण्डारा किया, जिसकी स्मृति सदैव अविस्मरणीय बनी रहे।

तीन दिन तक भण्डारा चला। साधु-सन्त, नर-नारी, दीन-हीन, गृहस्थ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरक्त, आबाल-वृद्ध तथा अपंगों ने भी मुदित मन से प्रसाद पाया और स्वामीजी का जयनाद किया। तीन दिन अखण्ड धुन हुई :

जय सियाराम जय जय हनुमान
श्री गुरु रामानन्द भगवान।

प्रत्येक ने सद्गुरुदेव की पादुका व आसन को भक्ति-भाव से प्रणिपात किया। प्रत्येक दिन सायंकाल सिद्ध-महात्माओं द्वारा सत्संग होता रहा। धुन-कीर्तन-भजन भी हुए।

इस महत् समागम में सिद्धों ने चेतनदास नामक स्वामीजी के एक शिष्य को संघ में रहकर स्वामीजी के जो वृत्तान्त समूह चयन किये थे, वे सुनाने की आज्ञा की। श्री चेतनदासजी ने वृत्तान्त सुनाये। सुनकर सब परमानन्द को प्राप्त हुए।

द्वादशी के दिन श्री अनन्तानन्दाचार्यजी ने आमन्त्रित सन्त-महात्माओं को भेंट दक्षिणा देकर सन्मानित किया। धीरे-धीरे सन्त-भक्त स्वस्थान लौटने लगे।

आश्रम में तदनन्तर महामुनि के प्रमुख शिष्यगण ही शेष रह गये। अनेक सिद्धों एवं सन्तों के परामर्श से सब शिष्यों ने रामावत सम्प्रदाय अथवा रामानन्दी सम्प्रदाय के आदर्शमूर्ति, हिन्दू धर्मोद्धारक, अनन्त श्री विभूषित, कलि पावनावतार, जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का जीवन वृत्तान्त लिखने का निर्णय किया, जिससे भावी पीढ़ी को मार्गदर्शन मिलता रहे। उसके लिए श्री चेतनदासजी का वरण किया गया।

उपस्थित सिद्धों में मुनि श्री विद्यारण्य स्वामी भी थे। उन्होंने भारतवर्ष के भविष्य के विषय में स्वामीजी का कथन सुनाया तथा उसकी गुप्तता के लिए अपना वचन भी याद दिलाया। जिस-जिसको जो-जो ज्ञात था, सबने सूचित किया।

अन्त में सबने मिलकर ऐसा निश्चित किया कि ग्रन्थ को प्राकृत भाषा में, पिशाच भाषा के सांकेतिक शब्दों के योग से अदना छन्द में इस प्रकार ग्रन्थित किया जाय, जिससे भविष्य कथन की बातें गुप्त रह सकें। यह भी निश्चित हुआ कि इस ग्रन्थ को सिद्ध सन्तों के हाथ में सुरक्षित रखा जायेगा तथा घटना घटित होने पर ही तत्कालीन सिद्धजन उसे प्रकट करने का निश्चय करेंगे। कदाचित् अनधिकृत व्यक्ति के हाथ में ग्रन्थ चला भी जाय तो क्लिष्ट भाषा को वह समझ न सके।

इस प्रकार वरिष्ठ गुरुबन्धु एवं सिद्ध महात्माओं के प्रोत्साहन से अपने श्री सद्गुरुदेव भगवान को प्रणाम करके चेतनदासजी ने अपना कार्य आरम्भ किया।

श्री रामनवमी के भण्डारे के ठीक एक वर्ष पश्चात् महामुनि श्री रामानन्दाचार्यजी की जन्म जयन्ती माघ कृष्ण सप्तमी के दिन भृगुवार को श्री चेतनदासजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने उस ग्रन्थ को 'प्रसंग-पारिजात' नाम देकर पूर्ण किया। हस्तलिखित उस ग्रन्थ को सिद्ध सन्तों के हाथों में सुरक्षित सौंप दिया गया। पुस्तक में भी वह सूचना दी गयी कि समय से पूर्व इस ग्रन्थ को प्रकाशित नहीं करना है।

(5)

सद्गुरुदेव श्री रामानन्दाचार्यजी की आज्ञानुसार सर्व शिष्यों ने अन्य गुरु-बन्धुओं से परामर्श करते हुए लोक-कल्याण के नये-नये मार्गों के विषय में विचार किया। सम्प्रदाय के गौरव एवं प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि हेतु पृथक्-पृथक् स्थान पर कृतस्तम्भ स्थापित किये।

स्वामी श्री अनन्तानन्दाचार्यजी के पूज्य चरणों का स्पर्श करके उनके आठ सिद्ध शिष्य योगानन्दजी, गपेशजी, कर्मचन्दजी, अल्हजी, पयहारीजी, रामदासजी, श्रीरंगजी तथा नरहरिजी ने अपने उत्तम गुणों व भक्ति से भगवान श्री राघवेन्द्र का यशगान करके पवित्र कीर्ति रूपी धन लुटाया। श्री अनन्तानन्दाचार्यजी भगवत् भक्ति रूपी समुद्र की मर्यादा थे। आठ दिशाओं के लोकपाल जिस प्रकार अपने प्रभाव से सृष्टि का पालन करते हैं उसी प्रकार इन आठों शिष्यों द्वारा श्री अनन्तानन्दजी ने अष्ट दिग्गज स्थापित किये।

आदरणीय श्री कबीरदासजी ने सीरसी (बिहार) द्वारपीठ की स्थापना करके गुरुआज्ञा को शिरोधार्य किया। पंजाब क्षेत्र में विधर्मी अत्याचार बढ़ने से वे पंजाब भी गये। हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों उनके शिष्य बने। समय-समय पर विचरण करके लोगों को सदाचार एवं धर्मनिष्ठा का सन्देश वे अपने लोकप्रिय दोहों द्वारा देते रहे। जड़मति मनुष्यों की मति सन्मार्ग पर लगाने उनके द्वारा अनेक चमत्कार भी हुए।

भक्तराज श्री रैदासजी, श्री धनाजी तथा श्री सेनाजी काशी में ही रहे तथा समय-समय पर विचरण करके अपने वर्गों के पतित लोगों में श्रीराम भक्ति का प्रचार-प्रसार करते रहे। चित्तौड़ की झालीरानी तथा मेवाड़ की महारानी मीराबाई ने भक्तराज रैदासजी का शिष्यपद स्वीकार करके भक्ति भगीरथी को अधिक प्रसरित किया। मीराबाई के पदों ने भक्तिभाव को जनमन तक पहुँचा दिया।

समर्थ सिद्ध शिष्य श्री नरहर्यानन्दाचार्यजी के शिष्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी के सिद्धान्त एवं विचारों को 'श्री रामचरित मानस' एवं अन्य द्वादश काव्यों के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाने का अभूतपूर्व कार्य किया। पूर्णब्रह्म परमेश्वर श्री रामचन्द्रजी का आदर्श चरित्र लोकभाषा हिन्दी में लिखकर समाज को उन्होंने अत्यन्त अनुगृहीत किया। कलि के मल को दूर करने के लिए 'श्री रामचरितमानस' गंगाजी के समान अद्भुत सिद्ध हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य द्वादश काव्य—वैराग्य संदीपनी, हनुमान बाहुक, श्री पार्वती मंगल, श्री जानकी मंगल, रामलल्लनहच्छु, श्री रामाज्ञाप्रश्न, बर्वे रामायण, विनय पत्रिका, दोहावली, कवितावली, गीतावली तथा कृष्ण गीतावली—लिखकर श्रीराम भक्ति का समस्त भारत में उन्होंने भावपूर्ण प्रचार किया। कृष्णगीतावली से उन्होंने श्रीराम तथा श्रीकृष्ण का ऐक्य प्रतिपादित किया।

इस प्रकार स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के प्राकट्य ने भारतभूमि पर सन्त-युग का अवतरण सम्भव किया। रैदासजी, कबीरजी, पीपाजी, तुलसीदासजी से लेकर मीराबाई आदि की भक्ति परम्परा उनके ही सिद्धान्तों से प्रभावित हुई। प्रत्येक महात्मा धर्म जागृति, धर्मनिष्ठा, राष्ट्रनिष्ठा तथा सदाचार का सन्देश भी भक्ति के साथ-साथ अविरत रूप से प्रजा को देते रहे। इस प्रकार धर्म कार्य के साथ-साथ लोक-सेवा का कार्य भी होता रहा।

स्वामीजी ने परमात्मा के दिव्योन्माद की प्रेम तथा भक्तिरस रूपी ऐसी उन्मेषकारिणी गंगा बहाई, जिससे सन्त साहित्य आप्लावित हो उठा तथा उसके विकास में असाधारण योगदान मिला। प्रेमी भक्तों से प्रकट भक्तिरस की काव्य-गंगा ने भारतीय जनजीवन और जनभाषाओं के साहित्य को अभिभूत किया। भक्ति साहित्य के सर्जन ने भावात्मक एकता के सांस्कृतिक अतलस्पर्शी तथ्यों को जीवनाभिमुख बनाकर अभिव्यंजित करने की प्रेरणा प्रदान की। एक महाद्वीपवत् इस भारत देश में निहित सार्वभौम मानवतावाद पूर्ण रूप से गौरवान्वित और प्रतिष्ठित हो उठा।

(6)

श्री रामानन्दी सम्प्रदाय की शाखा-प्रशाखाएँ समस्त भारतवर्ष में सर्वत्र फैल चुकी थीं। मुस्लिम सुलतानों के धर्म-परिवर्तन के प्रयत्नों पर स्वतः रोक लग चुकी थी। परन्तु धर्मांध मुस्लिम सुलतानों ने अपने रास्ते में रोक लगाने वाले स्वामीजी के आश्रम को कुछ वर्ष पश्चात् नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। धर्मांध बर्बर किस प्रकार हिन्दुत्व का अभियान सह सकेंगे? स्वामी रामानन्दाचार्य का आश्रम एवं उनके विषय में लिखी गयी प्रत्येक पुस्तकों का उन्होंने विध्वंस कर दिया। वहाँ के सन्त-महात्मा प्राणों की रक्षा हेतु श्रीमठ छोड़ इधर-उधर चल दिये।

परन्तु जगद्गुरु द्वारा प्रस्थापित बीजांकुर, उनके तथा उनके सिद्ध शिष्यों-प्रशिष्यों के संनिष्ठ प्रयत्नों से एक विशाल वटवृक्ष का स्वरूप ले चुका था। आज भी रामानन्दी सम्प्रदाय के रूप में बृहद् सन्त-समाज स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के आदर्श एवं भक्तिरस के साथ-साथ धर्मप्रेम, राष्ट्रप्रेम एवं सदाचार की शिक्षा जन-समुदाय को अविरत रूप से देता रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिकांश धर्मप्रेमी जनता भी अपने महान धर्माचार्य के विषय में, जानकारी के अभाव में, अनभिज्ञ ही रह गयी है। मुस्लिमों के विध्वंस के उपरान्त भी गुप्त रखी गयी 'प्रसंग-पारिजात' की प्रत सिद्धों के हाथ में सुरक्षित रह गयी।

उसमें लिखी गयी सूचना के अनुसार घटना घटित हो जाने के बाद श्री अयोध्याजी के श्री रामनाम मन्दिर के सिद्ध महात्मा स्वामी श्री भगवत्दास मिश्र ने परमहंसदास श्री मंगलदासजी के सत्परामर्श तथा ग्रन्थकार की प्रेरणा से हस्तलिखित प्रत का मुद्रण कराके प्रकाशित किया।

सन् 1986 में केदारनाथ (हिमालय) निवासी परमहंस महामण्डलेश्वर महंत श्री अभिरामदासजी त्यागी ने इस ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण कराया। उसी 'प्रसंग-पारिजात' को मुख्य प्रमाण मानकर 'काशी-मार्तण्ड' की रचना सदगुरु श्री अभिरामदासजी एवं जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी की प्रेरणा से हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(7)

भारतीय जन-मानस पर श्री रामानंदी सम्प्रदाय का प्रभाव देख मुल्ला-मौलवी अत्यन्त चिन्तित थे क्योंकि धर्म-परिवर्तन के उनके प्रयत्नों पर स्वतः रोक लग चुकी थी। सत्ताधारी प्रत्येक सुलतानों को इस विषय में मौलवियों का सामना करना पड़ता था परन्तु कोई भी श्रीमठ के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने की हिम्मत न कर सका।

वि० सं० 1582 में पानीपत का ऐतिहासिक युद्ध लोदी वंश के अन्तिम सुलतान इब्राहिम लोदी तथा मुगल वंशीय बाबर के बीच हुआ। इसके साथ ही भारतीय रंगमंच पर मुगल साम्राज्य का उदय हुआ। दिल्ली का साम्राज्य क्रमशः बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने सम्भाला। उन्होंने अपने शासन में सर्वधर्म समभाव की नीति अपनायी क्योंकि मुस्लिम आक्रमण के सामने हिन्दू जनमत अब तक एकत्रित हो चुका था।

परन्तु समय ने पुनः करवट बदली। शाहजहाँ का पुत्र कट्टर मुस्लिमवादी एवं मौलवियों से प्रभावग्रस्त था। औरंगजेब अपने पिता शाहजहाँ को कैद में तथा उदारमतवादी भाई दारा को यमलोक में पहुँचाकर दिल्ली का बादशाह बन बैठा। सनातन धर्म का शत्रु बर्बर औरंगजेब संस्कृति के दो महत्वपूर्ण सुवर्णस्तम्भों को, उसकी महिमा-गरिमा को कैसे सह सकता था? काशी-विश्वनाथ का वैभवपूर्ण मन्दिर तथा काशी-मार्तण्ड का प्रभावपूर्ण श्रीमठ उसे सदैव बेचैन करते थे।

अन्ततोगत्वा वह दानव अपनी दैत्यसेना लेकर आया तथा दोनों को नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। मन्दिर की सम्पत्ति को लूटा गया तथा आश्रम का सम्पूर्णतः विध्वंस किया गया। वहाँ संग्रहित अलभ्य अमूल्य पौराणिक पुस्तकें जला दी गयीं। दुराचारियों के राक्षसी व्यवहार से त्रस्त सभी सन्त-महात्मा तथा पंडितगण स्थान छोड़कर सुशान्त स्थानों में चले गये। परन्तु इस विध्वंस का भारी परिणाम औरंगजेब को चुकाना पड़ा। जीवनपर्यन्त वह चैन की नींद नहीं सो सका तथा मुगल साम्राज्य का उसके साथ ही अन्त आ गया।

औरंगजेब के पतन के पश्चात् कुछ पंडित तथा सन्त-महात्मा पुनः काशी आये। अपने इष्टदेव भगवान काशी-विश्वनाथ के मन्दिर तथा आचार्यदेव काशी-मार्तण्ड श्री रामानन्दजी की तपःस्थली श्रीमठ के जीर्णोद्धार के प्रयत्नों में लगे।

दुराचारियों की दृष्टि से सौभाग्यवश बची हुई आचार्य चरण-पादुका की श्रीमठ में पुनः सेवा-पूजा प्रारम्भ हुई। आश्रम का आंशिक जीर्णोद्धार भी हुआ। परन्तु बदलते हुए समय के दुष्प्रभाव के कारण मन्दगति से संचालित श्रीमठ बहुत लम्बे समय तक भारतीय जनमानस को पुनः प्रभावित न कर सका। अधिकांश धर्मप्रेमी जनता भी अपने महान धर्माचार्य के विषय में जानकारी के अभाव में अनभिज्ञ ही रह गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमठ छोड़कर इधर-उधर भागे हुए बहुत से सन्त-महात्मा तथा उनके सिद्ध शिष्य-प्रशिष्यों के सन्निष्ठ प्रयत्नों से जगद्गुरु श्री रामानन्दजी द्वारा प्रस्थापित बीजांकुर भारत-भर में विशाल वटवृक्ष का स्वरूप ले चुका था।

आज भी रामानन्दी सम्प्रदाय के स्वरूप में बृहद् सन्त समाज स्वामी श्री रामानन्दाचार्यजी के आदर्श एवं भक्तिरस के साथ-साथ धर्मप्रेम, राष्ट्रप्रेम एवं सदाचार की शिक्षा जन-समुदाय को अविरत रूप से देता रहा है। कदाचित् भिन्न-भिन्न पंथ मूल शाखा से सम्पर्क भी तोड़ चुका होगा। इस प्रकार उत्तर भारत में मुस्लिम आक्रमणों ने हिन्दू संस्कृति की शृंखला को क्षीण किया एवं तत्कालीन महान चरित्रों की जानकारी को नष्ट कर दिया। फलस्वरूप दाक्षिणत्य जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का प्रभाव जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य से अधिक देखने को मिलता है।

इस विषय से ज्ञात रामानन्दी सम्प्रदाय के कर्णधारों ने मिलकर परमपुनीत पीठ श्रीमठ का जीर्णोद्धार करने का संकल्प किया। सर्वप्रमुख रूप से कर्णवीर स्वामी श्री भगवदाचार्यजी के सत्संकल्प से पंचगंगाघाट पर काशी में कुछ वर्ष पूर्व श्रीमठ का निर्माण हुआ। क्योंकि श्रीमठ ही रामानन्दी सम्प्रदाय की प्रेरणा का मूल स्रोत एवं परमाचार्य श्री रामानन्दाचार्यजी की तपःस्थली होने से परम श्रद्धास्पद स्थान था। सन्तों ने विचार-विमर्शपूर्वक सैकड़ों वर्ष से टूटी हुई आचार्य शृंखला को पुनः जोड़ने का भगीरथ कार्य किया।

कुछ सिद्धों के पास 'प्रसंग-पारिजात' की हस्तप्रत सुरक्षित थी, परन्तु वे भी उसमें दी गयी सूचना से आबद्ध थे। पूर्वकथित भविष्य की घटना घटने के पश्चात् श्री अयोध्या के श्री रामनाम मन्दिर के सिद्ध महात्मा स्वामी श्री भगवत्दास मिश्र ने ग्रन्थकार की प्रेरणा से परमहंस श्री मंगलदासजी से सत्परामर्श करके हस्त-लिखित प्रत 'प्रसंग-पारिजात' का मुद्रण कराके सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाया। वि० सं० 2042 में केदारनाथ निवासी परमहंस महामण्डलेश्वर श्री अभिराम-दासजी त्यागी ने इसका पुनः मुद्रण कराया।

उसी 'प्रसंग-पारिजात' को मुख्य प्रमाण मानकर सद्गुरुदेव श्री अभिरामदासजी त्यागी एवं जगद्गुरुदेव श्री रामानन्दाचार्यजी की प्रेरणा से 'काशी-मार्तण्ड' की रचना हुई है।

उन्हीं महिमामय श्रीचरणों में इसे समर्पित करते हुए इसकी इतिश्री करते हैं।

जय श्री सद्गुरुदेव।
जय स्वामी रामानन्दजी।
जय श्रीराम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीरामचन्द्र जी की प्रातःकाल की स्तुति

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी ॥

लोचन अभिरामा तनु घन स्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बन माला नयन विशाला सोभा सिन्धु खरारी ॥

कह दुई कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनन्ता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनन्ता ॥

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्री कंता ॥

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥

उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥

दोहा—विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्री रामाष्टक ॥

श्री अवधपुरी निज धाम कहिए, निकट सरयू श्री गंग हैं।
दशरथ नन्दन असुर भंजन, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं।

सहित सीता भ्रात लछिमन, धनुष धारी सीताराम जी हैं।
चित्रकूट तप लोक कहिए, सीयाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥1॥

भाल तिलक विशाल लोचन, आनन्दकारी सीताराम जी हैं।
साँवली सूरति माधुरी मूरति, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥2॥

लंकापुरी छिन माहिं जारेऊ, आज्ञाकारी श्री हनुमान जी हैं।
रावण मारो विभीषण थाप्यो, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥3॥

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता, भक्ति-मुक्ति बरदायक।
जोग ज्ञान स्वरूप सुन्दर, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥4॥

ब्रह्मा शेष महेस नारद, कोटि अठ्यासी ऋषि मुनि देवता।
इन्द्रादिक सनकादि ध्यावें, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥5॥

अनन्त कला युग चारि प्रगटे, सप्त द्वीप नव खण्ड हैं।
आदि अन्त मध्य खोज देखो, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥6॥

चेतन है छिन्न माहि चेतो, युग-युगत लीला रची।
सियारामहिं कर्ता सियारामहिं भर्ता, सियारामजी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥7॥

श्री राम जी अष्टक पढ़त निशदिन, रामजी धाम सिधावहिं।
श्रीगुरु रामानन्द अवतार अद्भुत, सियाराम जी पूरण ब्रह्म हैं।
राघव राम जी पूरण ब्रह्म हैं ॥8॥ ★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्लोक ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महा सायक चारु चापं, नमामिरामं रघुवंशनाथम् ॥
भवाब्धिपोतं भरताग्रजतम्, भक्त प्रियं भानु कुल प्रदीपम्।
भूतात्रिनाथम् भुवनाधिपत्यं, भजामि रामं भव वैद्यम् ॥
लोकाभिरामं रणरंगधीरं, राजीव नेत्रं रघुवंश नाथम्।
कारुण्य रूपं करुणा करन्तं, श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं, मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥
शान्ताकारं भुजंग शयनं, पद्मनाभं सुरेशम्।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ॥
लक्ष्मी कान्तं कमलनयनं, योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
वन्दे विष्णु भव भयहरणं सर्व लोकैकनाथम् ॥
अच्युतं केशवं राम नारायणं, कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकाबल्लभं, जानकीनायकं श्रीरामचद्रं भजे ॥

॥ जै सीताराम, सीताराम, सीताराम जै सीताराम ॥

राम राम राम राम राम राम नाम तारकम्
श्री रामकृष्ण वासुदेव भक्ति मुक्ति दायकम्
शंकराय केशवाय पुण्यनाम् कीर्तनम्
श्री जानकी नायकम् श्रीरामचन्द्रम् भजे।

❋ मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

❋ अतुलितबलधामं हेमशैशलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामाग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥

❋ कपूँगोरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि ॥

❋ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु, साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

❋ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

❋ सीतानाथं सम्मारम् रामानंदाय
मध्यमाम् अस्मदाचार्य परियन्ताम्
वंदे गुरुम् परम्पराम्

❋ सीताराम सीताराम सीताराम जय सीयावर राम।
राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम जय श्यामाश्याम ॥

❋ जय सीयाराम जय जय हनुमान श्री गुरु रामानंद भगवान।

❋ जय सीयाराम जय जय हनुमान संकटमोचन कृपानिधान।

❋ जय सीयाराम जय जय हनुमान मनसापूरण श्री हनुमान।
संध्याशयन आरती की जय जय जय सीताराम।

❋ भर्जनं भवबीजानमर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री जगद्गुरु रामानन्दाचार्य जी महाराज की प्रातःकाल की स्तुति

भए प्रगट कृपाकर करुणा सागर श्री रामानन्द भगवाना।
रघुपति सम सुन्दर परम मनोहर प्रभु विज्ञान निधाना ॥

संतन सुखदायक मुक्ति प्रदायक शान्ति सदन सुखराशी।
माया मद गंजन जन भय भंजन आचारज अविनाशी ॥

पाखण्ड विनाशन तत्त्व प्रकाशन बन्दति जेहि मुनि ज्ञानी।
दीनन दुःख हारी अधम उधारी तेजोमय तप खानी ॥

माता छवि देखी हर्ष विशेषी बार बार बलि जाई
मुख चन्द्र उजारी चितवन भारी बानिन बरनी न जाई ॥

तनु शोभा सारं कान्ति अपारं तिलक चिन्ह युत भालम्।
मुसुकान रसालं नयन विशालं उर रंजित बन मालम् ॥

हर्षहिं सुर वृन्दा अतिहि आनन्दा वर्षहि सुर तरू फूला।
नभ दुन्दुभि बाजहि ऋषि गण गाजहि भा जग मंगल मूला ॥

दोहा—तीर्थ राज प्रयाग मँह, कारण जगत कल्याण।
प्रगट भए श्री जगद्गुरु रामानन्द भगवान ॥

जगद्गुरु रामानन्दजीकी जै, अयोध्या रामजी ललाकी जै,
पवनसुत हनुमानजीकी जै, उमापति महादेवजीकी जै,
रमापति रामचन्द्रजीकी जै, वृन्दावन कृष्ण बलदाऊजीकी जै,
बोलो भाई सब संतनकी जै, अपने-अपने श्री गुरु महाराजजीकी जै।

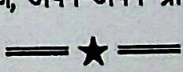

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अमिता शाह

॥ रामानन्दगुरुं नमामि भगवद्रामस्वरूपं परम् ॥

चराचरनायक भगवान श्रीराम स्वरूप जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य के चरणों में कोटिशः प्रणाम।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस लेखन कार्य के माध्यम से महाविभूति श्री रामानन्दाचार्यजी के साथ अन्तःकरण की वृत्तियों को रखकर 'स्वांतः सुखाय'— परमानन्द की प्राप्ति ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य रहा है। आचार्यप्रवर जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य एवं सद्गुरुदेव श्री अभिरामदासजी त्यागी की असीम कृपा से आशातीत लाभ भी मिला है। उन्हीं पवित्र चरणों की अहैतुकी कृपा से यह परम पावन चरित्र लिखने की प्रेरणा, सामर्थ्य एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है।

कलिपावनावतार श्री स्वामीजी के अगाध चरित्र को अल्प मति से समझने में त्रुटि होनी अवश्यम्भावी है, उसे प्रेरणा ग्रहण करने की मेरी अक्षमता समझ पूजनीय स्वामीजी, परमपूज्य श्री सद्गुरुदेव एवं विज्ञ सज्जनवृन्द से क्षमा की अपेक्षा रखती हूँ। जन्म से अहिन्दीभाषी होने के कारण हो सकता है कि भाषा-सम्बन्धी भी कुछ भूलें रही हों। ग्रन्थ सम्बन्धी सर्व त्रुटियों से अवगत कराकर पाठकवृन्द अनुगृहीत करेंगे यह अपेक्षा अवांछनीय नहीं होगी। 'सुज्ञेषु किम् बहुना।'

—अमिता शाह

श्री अभिराम निवास,
10 उमिया पार्क सोसायटी, विद्या विहार स्कूल के निकट,
सुभान पुरा,
वड़ोदरा—390 007 (गुजरात) फोन : 0265-393096

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी-मार्तण्ड

कु० अमिता शाह अपने ग्रन्थ 'काशी-मार्तण्ड' पर वर्ष 1996-97 के 'हिन्दीतर भाषी साहित्यकारों को' (प्रशस्ति-पत्र एवं राशि रु० 25,000/-मात्र), महामहिम राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी के कर-कमलों से ग्रहण करते हुए। दिनांक : 20/6/1997

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi